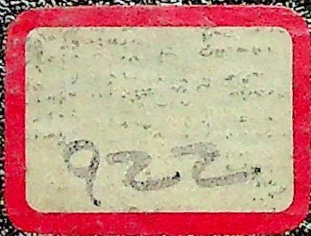
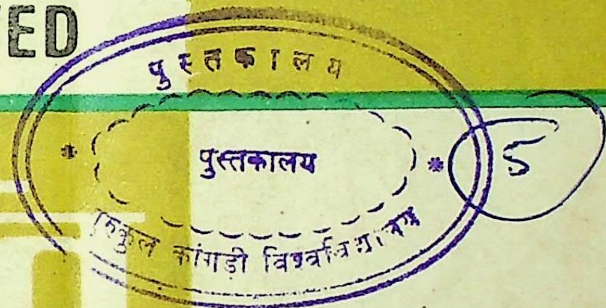


ACHITRA AYURVED




न यातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय भूयापि वर्धते ।।

अर्थात् कामनाओं के भोग से भोगों की इच्छा शांत कभी नहीं होती, किन्तु जैसे अग्नि में घी की आहुति डालने से अग्नि बढ़ती है वैसे ही अनियंत्रित विषय-भोगों से विषय-भोग की इच्छा और भी प्रबल होती जाती है ।



प्रकाशक

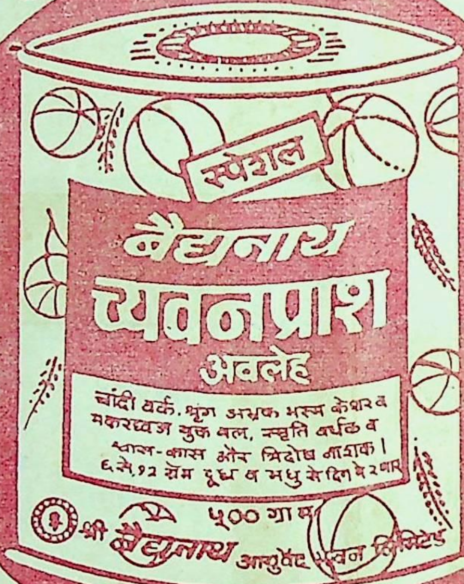



बैद्यनाथ

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि॰

बैद्यनाथ

हर परिवार में
सबका मनचाहा
आदर्श आयुर्वेदिक टॉनिक







# बैद्यनाथ

## स्पेशल च्यवनप्राश

चांदी वर्क, केशर व
मकरध्वज युक्त
शुद्ध घी में
तैयार किया हुआ



# जर्मन शिष्टमण्डल का पुनः पटना आगमन

भारत सरकार के स्वास्थ्य मन्त्रालय द्वारा प्राप्त एक सूचना के अनुसार आगामी फरवरी माह के प्रथम अथवा द्वितीय सप्ताह में जर्मन जनवादी गणतंत्र ( फेडरल जर्मन रिपब्लिक ) के तीन प्रोफेसरों का एक शिष्टमंडल भारत की यात्रा पर आ रहा है, जिसका उद्देश्य भारत में देशी चिकित्सा-पद्धति के सम्बन्ध में नवीनतम जानकारी प्राप्त करना है। उक्त शिष्टमंडल पटना भी आवेगा और श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० पटना का निरीक्षण करेगा।



★ ★

## The coming special number of 'Sachitra Ayurved' To be published shortly

**Covering the following topics in full**

1. **Central council of Indian medicine Act.**
2. **Drug Act.**
3. **Curriculum & Syllabus for Ayurvedic Degree & post graduate courses.**
4. **Rules, Regulations & ordinances.**
5. **Rules of affiliation of Colleges.**
6. **Formation of Faculties.**
7. **Norms & Qualifications for admission etc.**

Editor
**Sachitra Ayurved,**
Baidyanath Bhawan Road
Patna-800001

# 'सचित्र आयुर्वेद' के कृपालु ग्राहकों से

# निवेदन



'सचित्र आयुर्वेद' का प्रत्येक अंक पहली तारीख (अंगरेजी) को प्रकाशित हो जाता है और उसे हम प्रति माह सुरक्षित रूप से अपने ग्राहकों की सेवा में डाक द्वारा भेज देते हैं। कुछ ग्राहकों को जिन्हें किसी कारणवश अङ्क नहीं मिल पाता है उन्हें हम सूचना मिलते ही दुबारा अंक भेजने की व्यवस्था करते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी ग्राहक हैं जो समय पर हमें सूचना न देकर इकट्ठे कई अंकों के प्राप्त न होने की सूचना भेज देते हैं। ऐसे ग्राहकों को अङ्क नहीं रहने पर दुबारा भेजने में हमें काफी परेशानी उठानी पड़ती है और हमारे पत्रोत्तर से उन्हें कभी-कभी निराशा भी होती है। अस्तु, अपने सभी कृपालु ग्राहकों से हमारा विशेष अनुरोध है कि वे अङ्क न मिलने की सूचना हमें एक माह के अन्दर अवश्य दे दें जिससे हम उन्हें समय पर अङ्क की आपूर्ति कर सकें।

आशा है, भविष्य में ग्राहक महानुभाव हमारे अनुरोध पर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

व्यवस्थापक
सचित्र आयुर्वेद
बैद्यनाथ भवन रोड,
पटना-८००००१

सचित्र आयुर्वेद

□

संरक्षक :
आयुर्वेद-चक्रवर्त्ती,
आयुर्वेद-शिरोमणि
प्राणाचार्य
पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा
आयुर्वेदाचार्य

□

परामर्शदाता :
आयुर्वेद-बृहस्पति
आचार्य रामरक्ष पाठक

□

सम्पादक :
श्रीकान्त शास्त्री, एम. ए.

# विषय सूची



वार्षिक मूल्य १० रु०] [एक प्रति १ रुपया




पेरिस विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या-विशारद प्रो० डा० एरियान रोसू के सम्मान में बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना-केन्द्र में आयोजित गोष्ठी में 'भवन' के संयुक्त प्रबन्ध-निदेशक, आयुर्वेद-चक्रवर्त्ती पं० दुर्गा प्र० शर्मा स्वागत-भाषण करते हुए।




बैद्यनाथ के पटना-केन्द्र में फ्रांसीसी विद्वान तथा आयुर्वेद शोधकर्त्ता डा० एरियान रोसू आयुर्वेद के सम्बन्ध में अपने गम्भीर विचार प्रकट करते हुए।




आचार्य श्री रामरक्षजी पाठक, डा० रोसू के सम्मानार्थ अनुष्ठित स्वागत-गोष्ठी में अध्यक्षीय भाषण देते हुए। पाठक जी की दायीं ओर विशिष्ट अतिथि डा० रोसू तथा प्राणाचार्य डा० डी० पी० शर्मा सुशोभित हैं।




डा० रोसू की स्वागत-गोष्ठी में ज्योतिषाचार्य पं० विष्णुकान्तजी झा स्वरचित संस्कृत श्लोकों का पाठ करते हुए। गोष्ठी में बायीं ओर से क्रमशः आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा, आचार्य रामरक्ष पाठक, डा० एरियान रोसू, प्राणाचार्य पं दुर्गा प्रसाद शर्मा तथा 'सचित्र आयुर्वेद' के सम्पादक श्रीकान्त शास्त्री मंचासीन हैं।

Registered with the Registrar of Newspapers for India Under R. N. 2277/75
आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होने वाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र




आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

| वर्ष—३१ | पटना, फरवरी, १९७९ | अंक—८ |
|---|---|---|

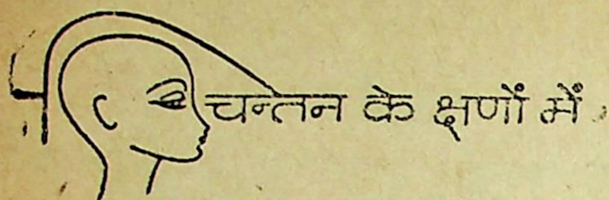
# बच्चे कुपोषण के शिकार

बच्चा सबकी आंखों का तारा है। कहीं का भी और किसी का भी बच्चा हो, मानव मन को उल्लसित करता है और मानव-मानव के बीच की बाधाएं इसमें रुकावट नहीं डालतीं। कवि की भाषा में बच्चे जीवित कविता हैं—अब तक जिन कविताओं का सृजन तथा लेखन हुआ, उन सबसे बढ़कर।

लेकिन भावना और काव्यात्मक अभिव्यक्ति के क्षेत्र से वास्तविकता के क्षेत्र में आने पर हम देखते हैं कि विकसित और विकासशील देशों के, यानी संसार भर के, बच्चे विषम स्थिति में हैं। विकसित देशों की सम्पन्नता स्वयं में बाल-हितकारी सिद्ध नहीं हुई और वे मादक द्रव्यों के आदी हो गए तथा उन्हें अनेक प्रकार के छोटे तथा बड़े अपराधों का चस्का लग गया। जीवन की द्रुत गति, माता-पिता का सम्बन्ध-विच्छेद, प्रारम्भिक निर्माण-काल में बच्चों की देखभाल में कमी तथा प्यार-दुलार का अभाव और अन्यान्य भौतिक एवं मानसिक कारण इन बच्चों के सही विकास में बाधक बनते हैं, जिससे इनके माता-पिता, समाज-विज्ञानी तथा सरकारें चिन्तित हैं।

विकासशील देशों में बच्चों की स्थिति इससे बुरी है—उनके कष्टों का कारण भिन्न, किन्तु अधिक चिरस्थायी तथा घातक है। इन देशों में बच्चों की समस्याओं तथा आवश्यकताओं का विस्तार परिवेश की स्वच्छता से लेकर सीमित वित्तीय साधनों तक है। निर्धनता, कुपोषण, अज्ञान, अधिक जनसंख्या, भीड़-भाड़ तथा रोगों के दुष्चक्र से निकलना तो दूर रहा, उल्टे यह दुष्चक्र निर्धनता तथा कष्टों में इजाफा ही कर रहा है।

हमारे यहां बच्चों की विशाल संख्या है। १९७१ की जनगणना में १४ वर्ष से कम आयु के बच्चों की संख्या २२.८ करोड़ पायी गयी थी। इनमें से प्रतिवर्ष दस लाख बच्चे कुपोषण तथा अन्य कारणों, जैसे स्वास्थ्य सेवा का अभाव, संक्रामक रोग तथा आर्थिक विपन्नता से मर जाते हैं। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में शिशु मृत्यु-दर शहरी क्षेत्रों से कहीं अधिक है। जो जीवित रहते हैं उनमें से बहुतों को पोषण तथा स्वास्थ्य-सेवा की सख्त जरूरत रहती है। भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् द्वारा किये गये एक अध्ययन से प्रकट हुआ है कि ६ वर्ष से छोटे बच्चों में से कम-से-कम ६० प्रतिशत बच्चे पोषण-अल्परक्तता तथा प्रोटीन-कुपोषण से पीड़ित हैं। जाहिर है कि वर्त्तमान जच्चा-बच्चा अस्पताल की स्वास्थ्य-सेवाएं नितान्त अपर्याप्त हैं। ('योजना' से साभार)




# कुपोषण-विकटतम समस्या

भारत में प्रतिवर्ष ५ लाख बच्चे भयंकर कुपोषण के फलस्वरूप मरते हैं। जितनी महिलाएं गर्भवती होती हैं, कुपोषण के कारण उनमें ३० प्रतिशत का गर्भपात हो जाता है या उनको मृत बच्चे पैदा होते हैं। भारत में होने वाली प्रति १०० मृत्युओं में ४० पांच वर्ष से कम के बच्चे होते हैं। और, यह बात भी सिद्ध है कि, जो बच्चे जीवित बच भी जाते हैं, उनकी न तो पूरी-पूरी शारीरिक वृद्धि हो पाती है और न बौद्धिक विकास।

संक्षेप में भारत की पोषण-सम्बन्धी समस्या का यही रूप है और इसका बहुत कुछ कारण गरीबी है। 'नेशनल न्यूट्रिशन मानिटरिंग ब्यूरो' द्वारा किये गये सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि, ४० प्रतिशत परिवारों की दैनिक आय १ रुपया प्रतिदिन है और वे जो भोजन करते हैं, उससे न तो कैलोरी की दृष्टि से अपेक्षा की आपूर्ति हो पाती है और न प्रोटीन की दृष्टि से।

गांवों में ५ वर्ष से कम उम्र के बच्चों की बहुतेरी मृत्युओं का कारण छूतदार रोग कह दिया जाता है; पर उसका मूल कारण कुपोषण होता है। छूतदार रोगों और कुपोषण का पारस्परिक सम्बन्ध सर्वज्ञात है।

हैदराबाद-स्थित नेशनल इन्स्टीटयूट आफ न्यूट्रिशन ने छोटे बच्चों के आहार में विटामिन 'ए' की कमी पर भी काम किया है और उसकी आपूर्त्ति की एक योजना चलायी है, जिसका विश्व-स्वास्थ्य-संघटन ने बड़ी प्रशसा की है और उसकी सलाह है कि, अन्य विकासशील देशों में भी वैसी ही योजना चलायी जाय। वैज्ञानिकों का कहना है कि सहिजन की पत्ती, पालक, चौलाई, गाजर तथा कुम्हड़े में बड़ी मात्रा में कैरोटीन होता है। हमारे शरीर में ये चीजें बड़ी सरलता से विटामिन 'ए' में परिवर्तित हो जाती हैं। यदि इनकी पकी सब्जी एक प्याला प्रतिदिन खा ली जाये, तो विटामिन 'ए' की आवश्यकता पूरी हो जायगी।

इन्स्टीट्यूट ने दक्षिण के ४ राज्यों में जो 'सर्वे' कराया है, उससे ज्ञात हुआ है कि, १ से ५ वर्ष के बच्चों में ३ प्रतिशत भयंकर कुपोषण के शिकार हैं, जबकि, ६० से ७० प्रतिशत बच्चों की बाढ़ में विभिन्न स्तरों पर खामियां मिलीं। इस खामी का भी कारण गलत आहार ही है।

कुपोषण इस देश की आधारभूत समस्या है। भारत एक ऐसा देश है जहां दोनों जून पौष्टिक भोजन मुश्किल से ५% लोगों को नसीब होता है। विगत दो दशकों में विज्ञान और तकनीक में अद्भुत उन्नति हुई है। आदमी चन्द्रमा तक जाकर वापस लौट आया, आकाश और दूरी पर हमने विजय पायी। 'आनुवंशिकी' के नियमों को आदमी ने तोड़ा और कृत्रिम जीन के उत्पादन में भी वह सफल हुआ। जब हम इन विकासों पर दृष्टि डालते हैं, तो तुरत ज्ञात होता है कि, ये सभी काम उस क्षेत्र में हुए, जहां आदमी 'जरूरतों' से मुक्त है और दैनिक जीवन की स्थिति अच्छी है। ये विकास महत्वपूर्ण अवश्य हैं; पर मानव के विकास और उसकी प्रसन्नता पर समष्टि रूप में इनका प्रभाव पड़ा है, यह बात शंकास्पद हैं, क्योंकि कुपोषण आज भी ऐसी मुख्य समस्या है, जिससे विश्व के आधे लोग त्रस्त हैं। चाहे अन्य सुविधाएं कितनी ही मिलें। भूखे पेट आदमी प्रसन्न नहीं रह सकता।

---




## एक प्रशंसनीय कदम

आयुर्वेद-प्रेमियों को यह जानकर निश्चय ही प्रसन्नता होगी कि बिहार की सरकार ने भारतीय-पद्धति एवं होम्यो-पैथी की केन्द्रीय परिषद् के तत्वावधान में शीघ्र ही राज्य की राजधानी पटना में क्षेत्रीय आयुर्वेद संस्थान की स्थापना करने का निश्चय किया है। राज्य के स्वास्थ्य मंत्री प्रोफेसर जाबिर हुसैन ने बताया कि इस संस्थान की स्थापना पर २,५६,६०० रु० का अनुमानित व्यय होगा तथा संस्थान के लिए भवन निर्माण करने तक इसे किसी सरकारी भवन में रखकर कार्यारम्भ कर दिया जायगा। केन्द्र की सरकार ने भी इस प्रस्ताव पर अपनी सहमति दे दी है। बताया जाता है कि प्रस्तावित अनुसंधान से ३० शय्याओं का एक अस्पताल एवं प्रयोगशाला भी सम्बद्ध होगी और संस्थान के लिए एक दर्जन आयुर्वेदिक विशेषज्ञों की नियुक्ति की जायगी। पूर्वी भारत में यह संस्थान अपने ढंग का पहला संस्थान होगा।

केन्द्रीय अनुसन्धान परिषद् के अनुसार क्षेत्रीय अनुसन्धान संस्थान ग्रहणी, विचर्चिका, कण्डु, पामा, श्लीपद, श्वास-कास, आमवात तथा सन्धिगतवात (प्रभृति) सरीखे कुछ चिरकालिक और दुःसाध्य रोगों पर आतुरीय अनुसन्धान कार्य करेगा। यह संस्थान स्थानीय सुलभ साधनों से साधारण रोगों का खोज-कार्य भी करेगा जिससे कि जनसाधारण को उनकी पहुंच के आधार पर चिकित्सा-सुविधाएं पहुंचायी जा सकें।

अनुसन्धान संस्थान की कार्य-सीमा के अन्तर्गत मलेरिया, अपस्मार, मिरगी, स्थूलता आदि रोगों पर प्रभावकारी औषधियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करने के लिए एक केन्द्र भी बनाया जायगा। इतना ही नहीं, संस्थान के अनुसंधानकर्त्ता नियमित रूप से कुछ चुने हुए गांवों में स्वास्थ्य सांख्यिकी आंकड़े एकत्र करने के साथ-साथ इन क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली बीमारियों, लोगों की रोग-प्रवणता, आहार-प्रकृति; सामाजिक, आर्थिक स्थिति और रोगों से सम्बद्ध वातावरण, स्वास्थ्य विज्ञान और स्वच्छता, स्वास्थ्य-रक्षा परम्परागत और जन जातीय आयुर्विज्ञान चिकित्साओं की सूचनाएं एकत्र करेगा। परिवार कल्याण-सम्बन्धी कार्यक्रम भी इसके माध्यम से सम्पादित होंगे।

कहना नहीं होगा कि इस संस्थान की स्थापना से एक बड़े अभाव की पूर्ति होगी, जिसकी इस राज्य में बड़ी अपेक्षा थी। संस्थान के माध्यम से जिन कार्यों का सम्पादन होना है, उसकी हलकी रूपरेखा ऊपर हम बता आये हैं और आशा की जानी चाहिए कि इस क्षेत्रीय अनुसन्धान की स्थापना से देशी चिकित्सा-पद्धति के क्षेत्र में अनुसन्धान और सेवा का अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र इस राज्य में विकसित हो सकेगा—और आयुर्वेद का मार्ग राज्य-स्तर पर निश्चय ही प्रशस्त होगा।

इसके लिए राज्य के स्वास्थ्य मन्त्री अवश्य ही धन्यवादार्ह हैं कि समय रहते उन्होंने आयुर्वेद अनुसन्धान की दिशा में एक समर्थ तथा प्रभावोत्पादक कदम उठाया और राज्य की एक बड़े अभाव की पूर्ति की।

# लब्धप्रतिष्ठ फ्रेंच भाषाविद्
# प्रो० डा० एरिआन रोसू
## ( स्वागत में पढ़ा गया वक्तव्य )

आयुर्वेद-शास्त्र-वाचस्पति, आयुर्वेद-चक्रवर्त्ती, आयुर्वेद-शिरोमणि, वैद्यरत्न, प्राणाचार्य
पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य
सं० प्रबन्ध-निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

सरस्वती के वरद्-पुत्र प्रोफेसर डा० एरियन रोषू का जन्म रूमानिया में हुआ था। ये मूलत: भारत-विद् एवं भाषा-विद् हैं, पर इन्होंने सारा समय भारतीय औषधियों के पाठ्य-ग्रन्थ की अनेक समस्याओं के अध्ययन में लगाया है। यह भारतीयों के लिए गौरव की बात है कि सुदूर रूमानिया में जन्म डा० रोषू मां वीणापाणि के आशीर्वाद से भारतीय-शास्त्र एवं भारतीय औषधि-शास्त्र में पारंगत होकर कला-पारखियों के लिए प्रसिद्ध सांस्कृतिक नगरी, पेरिस में संस्कृत भाषा-शास्त्र के अनुसन्धान में लगे हुए हैं। ये संस्कृत भाषा-शास्त्र की दो विधाओं-चिकित्सा एवं मनोविज्ञान-विषयक साहित्य एवं भारतीय पुरातत्व पर अनुसन्धान कर रहे हैं। इनकी प्रसिद्ध कृति 'कालेज डी फ्रांस', पेरिस से सन् १९७८ ई० में प्रकाशित हुई है, जिसका नाम 'भारतीय-चिकित्सा-शास्त्र में मनोवैज्ञानिक धारणा' है। इसमें इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अनेक विद्वानों के कार्यों की सराहना की है।

ये प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर फिलीयोजा के शिष्य एवं सहयोगी हैं। प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में भारतीय-शास्त्रों, खासकर आयुर्वेदीय विषयों पर १५ से ज्यादा इनके शोध-पत्र प्रकाशित हुए हैं। इन्होंने बुखारेस्ट विश्वविद्यालय से लैटिन एवं ग्रीक भाषा में एम० ए० किया है एव बुखारेस्ट के पुरातत्व-विद्यालय से डिप्लोमा हासिल किया है। इन्होंने संस्कृत भाषा-शास्त्र में पी० एच० डी० की डिग्री पेरिस विश्वविद्यालय से प्राप्त की है।

१९६५ ई० में ये पेरिस आये। १९६५ ई० से १९६७ ई० तक भारतीय कला विभाग में सहयोगी पद 'मुसी गुईमेत' पर थे। इन्होंने भारतीय-शास्त्रों पर शोध-विद्वान के रूप में कार्य किया है। १९६७ ई० के पश्चात् ये राष्ट्रीय वैज्ञानिक अनुसन्धान परिषद्, (फ्रांस) की सेवा में हैं।

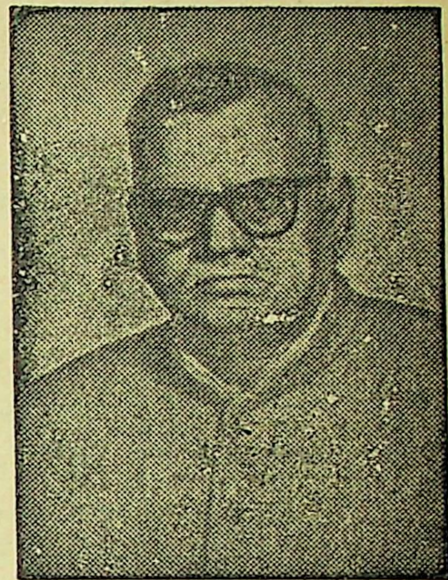
भारतीय-शास्त्रों के प्रति विदेशियों की अभिरुचि देखकर वास्तव में सुखद आश्चर्य होता है। भारतीयों के लिए यह खेद की बात है कि वे प्राचीन ग्रन्थों को भूलते जा रहे हैं, किन्तु डा० रोषू जैसे विद्वान् युवकोचित उत्साह एवं उमंग के साथ ज्ञान की अतृप्त प्यास लिए भारत-यात्रा पर निकले हुए हैं। यह भारतीयों के लिए गौरव की भी बात है कि इस अत्याधुनिक युग में भी भारतीय-ग्रन्थों (भारतीय दर्शन हो अथवा भारतीय चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद हो) के प्रति विदेशियों में ज्ञान-पिपासा बढ़ रही है।

डा० रोषू भी अपने प्रिय देश, रूमानिया को छोड़कर अपनी ज्ञान-पिपासा की शांति के लिए पेरिस आये एवं वहां से भारत की यात्रा पर आये हुए हैं। वे इस देश में छह माह तक सितम्बर, १९७९ तक रहेंगे। अपनी यात्रा के दौरान ये इस देश के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों, अनुसंधान-संस्थाओं का निरीक्षण करेंगे एवं प्रसिद्ध भारतीयों से भी मिलेंगे।

अन्तरराष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त प्रोफेसर डा० एरियन रोषू का मैं आयुर्वेदीय औषधियों के सबसे बड़े प्रतिष्ठान श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना में हार्दिक स्वागत करते हुए आज अत्यन्त उल्लसित हो रहा हूं। आप सरीखे सारस्वत पुरुष मानवता के मुकुटमणि हैं और सारा सारस्वत जगत आप पर गर्व कर सकता है। भारत की प्राचीन विद्याओं के पुनरुद्धार की दिशा में आपके द्वारा हो रहे पुनीत प्रयासों की सफलता की कामना करते हुए पुनः आपका स्वागत एवं अभिनन्दन करता हूं और आशा करता हूं कि आप निरन्तर पुरातन विद्याओं के वैशिष्ट्य को अपनी ज्ञान-प्रभा से प्रज्वलित करते रहेंगे।

# आचार्य पं० रामरक्ष पाठक

## ७५वीं जन्म-तिथि पर अभिनन्दन की योजना



निखिल आयुर्वेद-जगत को यह जानकर हर्ष होगा कि सुप्रसिद्ध आयुर्वेद-विद्वान, आयुर्वेद-बृहस्पति, आचार्य पं० रामरक्ष जी पाठक आगामी २९ अक्टूबर १९७९ को अपने सारस्वत जीवन के ७४ वर्ष पूरे कर ७५वें वर्ष में पदार्पण करेंगे। उस अवसर पर आचार्य श्रीपाठक जी की हीरक जयन्ती मनाने की योजना उनके शिष्यों, मित्रों एवं आयुर्वेद-सेवियों की ओर से बन रही है, जो आचार्य पाठक की प्रतिष्ठा एवं मर्यादा के अनुरुप होगी। एक अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन की भी योजना है, जो उस अवसर पर पाठक जी को भेंट किया जायगा।

कहना न होगा कि आचार्य पाठकजी का जीवन, जहां तक आयुर्वेद का सम्बन्ध है, एक सर्वथा समर्पित जीवन है, और विगत ५ दशकों से उनके द्वारा आयुर्वेद के शास्त्रीय पक्ष को उजागर करने की दिशा में अनवरत प्रयास होते रहे हैं। आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन एवं गवेषण-विषयक उनके कार्य उच्चस्तरीय एवं मौलिक हैं। आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तों के समर्थ व्याख्याता के रूप में पाठक जी विख्यात हैं और आयुर्वेदीय अनुसंधान को दिशा देने-सम्बन्धी उनकी क्षमता एवं योग्यता अप्रतिम है। स्नातकोत्तर शिक्षण को सुव्यवस्थित ढंग से चालूकर उसको संचालित करने का कार्य उनके योग्य निरीक्षण में भारत एवं श्रीलंका में सम्पन्न हुआ था।

अनेक आयुर्वेदीय पुस्तकों के प्रणेता, अनुसंधानकर्त्ता, सुख्यात चिकित्सक, सुयोग्य अध्यापक प्रभृति रूपों में आचार्य पाठक जी की आयुर्वेदीय सेवाओं से आयुर्वेद-क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले सभी सुपरिचित हैं। अतएव ऐसे वरेण्य एवं सम्मानित व्यक्ति का अभिनन्दन सर्वथा युक्तियुक्त, वांछनीय एवं औचित्यपूर्ण है।

आचार्य पाठक जी के अभिनन्दन के सम्बन्ध में एक सुविस्तृत योजना 'सचित्र आयुर्वेद' के इन्हीं कालमों में यथाशीघ्र प्रकाशित की जायगी। एक समिति का भी गठन किया जायगा, जिसके ही तत्वावधान में एक सर्वाङ्गपूर्ण तथा आचार्य पाठक जी के कार्य के विविध अंगोपांगों पर प्रकाश डालनेवाला अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित किया जायगा—तथा अन्य कार्यक्रम भी निर्धारित किये जायगें।

आशा है कि अभिनन्दन-योजना के सफल एवं पूर्ण कार्यान्वियन में निखिल आयुर्वेद जगत का अपेक्षित सहयोग मिलेगा।

—संपादक

# International Conference on Primary Health Care at Alma Ata.

*WHO'S Alma Ata meet shows the way to Health through Traditional Herbal Medicine.*

**Modern Health Services satisfy doctors not the patients. Hospitals of Modern Medicine are Disease Palaces. They provide only an 'Illness Service'.**

Some 1400 delegates to the International Conference on Primary Health Care held recently at Alma Ata (Russia) agreed to a set of resolutions that could lead to a radical improvement in the health of a third of the world's people, as interpreted by the optimists. The meeting was jointly sponsored by the WHO & UNICEF, with a series of 22 recommendations, what is now to be known as "The Alma Ata Declaration".

The conference held in the 2nd week of September, 1978 called for a global plan to raise the level of health of all to acceptable levels by the year, 2000. The call was issued by Dr. H. Mahler, the Director General of WHO and by Mr. Henry R. Labouisse, the Executive Director of UNICEF, after the 700 participants representing governments and non-official bodies from all over the world elected the Soviet Health Minister, Dr. Boris Petrovsky, to preside over the conference. The Indian Minister of state for health and family welfare, Mr. J. P. Yadav, was elected one of the five Vice Presidents. Mr. Yadav, who headed a high level team of five senior officials, to the Alma Ata Internationl Conference, welcomed the promise of co-operation and assistance in primary health care.

A report was presented to the conference by Mr. C. R. Krishna Murthi, the Joint Secretary (Rural Health) and Dr. B. C. Ghosal, Asst. Director General (Rural Health). In their report, they said that the present health services might be satisfying the medical profession but not to those in need of health care. The conventional health services are hospital based and disease oriented, and they depend entirely on the foreign technology leading to over-sophistication. They are unrealistic because of the attitudes, skills and approaches of the health personnel. There is also a lack of community participation in health activities. The modern system is impervious to consumer's influence. India is therefore rightly convinced that these conventional health services have caused widespread dissatisfaction in the country for various reasons. This displeasure was reflected in their paper as it was all a devastating indictment of the present system of medicine. The modern hospitals are the disease palaces which provided only an "illness service". The present health services are inadequate

and one-sided and the treatment of one disease produces another through side-effects or creates other complications.

The report envisages of community-based health system. Mr. C. Krishna Murthi says, "I can forsee no such problems presently for India as it has already trained 42,000 family health workers. They are trained in the identification and USE OF HERBS that are locally available and which provide simple remedies. They learn more about old medicine, identify common medicinal plants and encourage the community to grow such plants".

Mr J. P. Yadav, told the Conference that the world could benefit from India's efforts to develop its traditional systems of medicine, particularly Ayurveda. He said that recently the WHO had shown great interest in this system. If other countries adopted it, humanity would immensely benefit.

Accordingly, the WHO concluded with views that some 1700 million people, mainly in the rural areas of the developing world, lack access to health care. Based on the Western model, the health services tend to be concentrated in cities, staffed by doctors who are trained abroad and have little or no wish to practice in "out of the way" health centres. It focussed the attention of the participants during a week long session on the need for a new approach to primary health care in the third World countries. Thus the conference is regarded by observers as an admission by the U. N. that imposing orthodox Western Medicine on the Third World countries simply does not work. So, it gives the green light to "paramedics" confirming the practitioners of Traditional medicine. "Witch Doctors" Herbalists. Acupuncturists and the Village Midwives, since they have a valuable role to play, now.



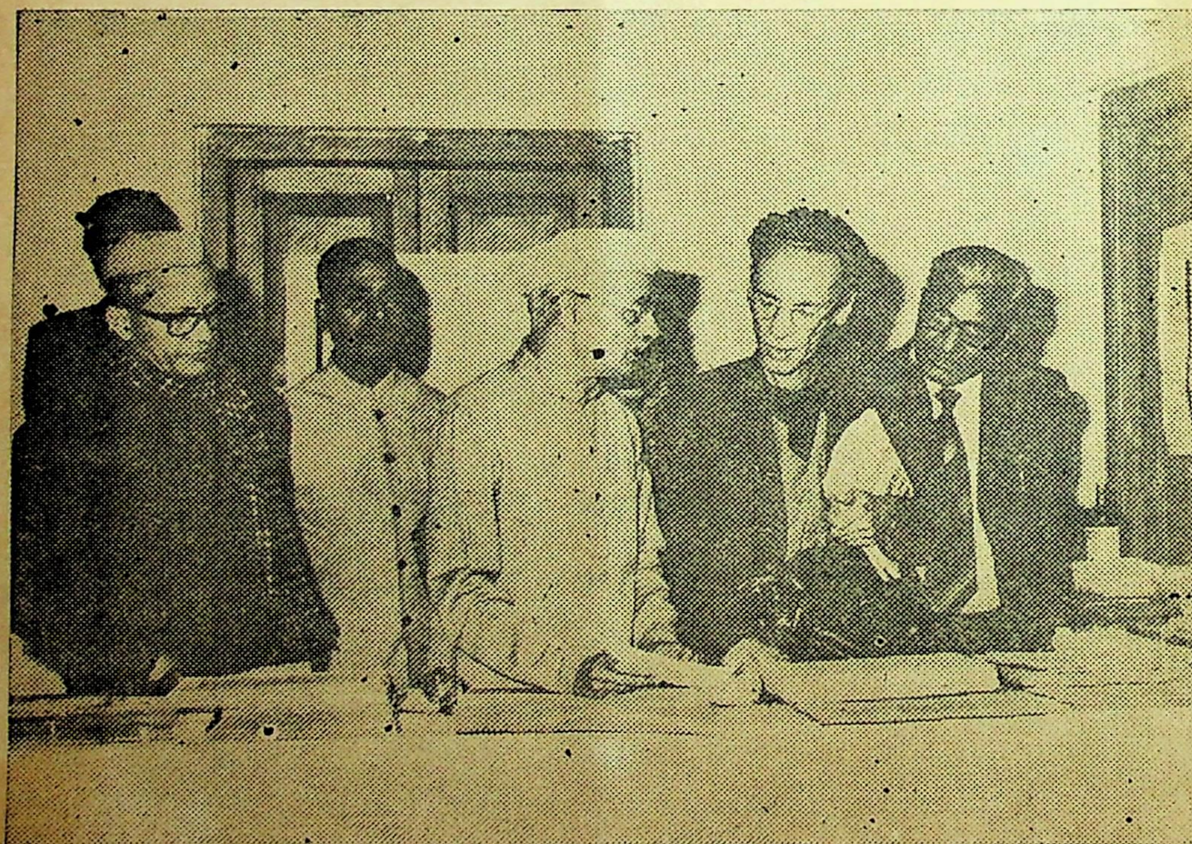

फ्रांसीसी विद्वान प्रो० एरिआन रोसू की स्वागत-गोष्ठी में 'सचित्र आयुर्वेद' के सम्पादक श्रीकान्त शास्त्री डा० रोसू का परिचय देते हुए।




डा० रोसू अंग वस्त्रम् एवं पाग धारण किये हुए रेशमी वस्त्र में आवेष्टित बैद्यनाथ के अंग्रेजी प्रकाशनों का सेट लिए हुए सुशोभित हैं। उनके दोनों ओर क्रमशः आचार्य श्री पाठक एवं बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के सं० प्रबन्ध-निदेशक, प्राणाचार्य श्री दुर्गा प्र० शर्मा परिलक्षित हो रहे हैं।



वैद्यनाथ के पटना केन्द्र स्थित पं० रामदयाल जोशी स्मारक शोध संस्थान पुस्तकालय का डा० रोसू द्वारा निरीक्षण।



वैद्यनाथ प्रतिष्ठान में डा० रोसू के शुभागमन पर आयोजित प्रदर्शनी में डा० डी० पी० शर्मा दुर्लभ हस्तलिखित पुस्तकें डा० रोसू को दिखा रहे हैं।

# निदान-चिकित्सा हस्तामलक
## ( छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा)

# श्वास और हिक्का

वैद्य रणजितराय देसाई

**हिक्का की संप्राप्ति आधुनिक प्रत्यक्षानुसार**

पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र के अनुसार हिक्का की उत्पत्ति का मूल श्वासपटल (उदरपटल, महाप्राचीरा, डायाफ्राम, फ्रेन) में होता है । स्वस्थावस्था में इसका आकुञ्चन-प्रसारण लयबद्ध (रिध्मिक) हुआ करता है, और श्वसन-कर्म के प्राकृत स्वरूप का कारण बनता है। परन्तु किसी क्षोभवश इसका आकुञ्चन सहसा और प्रबल वेग से हो तो, आयुर्वेद की परिभाषा में, उसका स्तम्भ (स्तब्धता) हो तो, उच्छ्वास-काल में नैसर्गिक रूप से निकलने वाला वायु झटके के साथ 'हिक्' इस प्रकार शब्द करता हुआ कण्ठ से बाहर निकलता है। इसी विकृत स्थिति को हिक्का (हिक्कप, या हिक्कफ) कहा जाता है ।

श्वासपटल का यह स्तम्भ (स्पैज्म) दो प्रकार का होता है—थोड़े-थोड़े अन्तर से होने वाला (क्लॉनिक) तथा अविराम रहने वाला (टॉनिक)। हिक्का की सम्प्राप्ति में होने वाली स्तब्धता प्रथम प्रकार की होती है । द्वितीय प्रकार का स्तम्भ निम्न विकृतियों में होता है—धनुःस्तम्भ (टिटेनस), विषतिन्दुक का विष-लक्षण (ये धनुःस्तम्भ के तुल्य ही हुआ करते हैं, निघण्टुकारों ने विषतिन्दुक के गुण धर्मों में इसे वातकर कहा है, उसका एक कारण यह है। अंग्रेजी में—स्ट्रिकनीन पॉयजनिंग), कण्ठ का स्तम्भ-विशेष (लेरिंजिस्मस स्ट्राइडयुलस),[1] गर्भापतानक (एक्लेंप्शिया), अपस्मार और जल-संत्रास (हाइड्रोफोबिया)।

हिक्का का मूलभूत श्वासपटल का स्तम्भ नाना कारणों से होना सम्भव है। यथा (क) महास्रोत से सम्बद्ध कारण यह स्थिति मिर्च, मसाले या तमाखू जैसे कटुरस (चरपरे) विदाही अथवा क्षोभजनक द्रव्यों के सेवन से होती है। पुनः, यह स्तम्भ निम्न विकृतियों के अङ्ग रूप में भी प्राप्त होता है :—आमाशय-शोथ (गेस्ट्राइटिस), आमाशय का विस्फार (डायलेटेशन), अन्त्रशोथ (एण्टराइटिस), बद्धोदर (इण्टेस्टाइनल ऑब्स्ट्रक्शन), आध्मान-आटोप (हिम्पेनाटिस), उदरधरा-शोथ (पेरिटोनाइटिस) एवं क्षयकारी व्याधियों की चरम अवस्था। (ख) नाडी संस्थान-सम्बद्ध कारण : यह स्थिति अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), मस्तिष्क का अर्बुद, सर्पकधरा-शोथ (मेनिंजाइटिस), मस्तिष्क-शोथ (एन्सेफेलाइटिस),[2] अपस्मार तथा मदात्यय (आल्कोहलिज्म) में देखी जाती है। परिसरीय नाड़ी सूत्रों की क्षुब्धता के कारण भी यह हो सकता है। उदाहरण-तया, उरोमध्य[3] का अर्बुद (मीडियास्टाइनल ट्यूमर) या इस प्रदेश का शोथ (मीडियास्टाइनाइटिस) उरोगुहा की शोथयुक्त रस-ग्रन्थियाँ, डायाफ्रामेटिक प्लुरिसी (अमीबिक डिसेन्ट्री के आरम्भक अणुजीवों के संक्रमणवश हुए यकृत् के शोथ—एमीबिक हिपेटाइटिस के उत्पादक जीवाणुओं का संक्रमण प्रथम डायाफ्राम में और पश्चात् वहाँ से पार्श्वधरा कला—प्लुरा—में होने से उत्पन्न प्लुरिसी) अथवा हृदयधरा कला की जातोदकावस्था ( पेरिकार्डियल

---

१. यह व्याधि विशेषतः ९ मास से २ वर्ष तक के बालकों में पाई जाने वाली कण्ठ (स्वरयन्त्र, लेरिंक्स) की स्तब्धता है। बच्चे पोषणाभाव के कारण क्षीण और अस्वस्थ, बहुधा अस्थिशोष (रिकेट्स) से पीड़ित तथा प्रायः एडिनॉयड नामक कुमारों के नासामूल में होने वाली ग्रन्थियों (आयुर्वेद की गलशालूक या कण्ठशालूक) से आक्रान्त होते हैं।

२. कुछ ही काल पूर्व उत्तर प्रदेश और बिहार में जनपद-व्यापी हो गए इस मारक रोग का परिचय चिकित्सकेतर वाचकों को भी होगा ही।

३. मीडियास्टानम—उरोगुहा का विभाजक पर्दा।

इम्युझन)। जनपदव्यापी हिक्का मस्तिष्क शोथ के एक प्रकार नामतः 'एन्सेफेलाइटिस लिथार्जिका' का अङ्गभूत मानी जाती है। इसमें बहुधा मन्द ज्वर भी रहता है। विकृति विराम बिना कई दिन रहना सम्भव है। 'एन्सेफेलाइटिस लिथार्जिका' एक जनपदव्यापी मस्तिष्क-शोथ है। इसमें उत्तरोत्तर वर्धमान निद्रा-तन्द्रा विशिष्ट चिह्न होते हैं। इसी कारण अंग्रेजी में 'स्लीपिंग सिकनेस' भी कहा जाता है। 'लिथार्जी' शब्द भी किसी भी कारण से हुई, चिरकाल स्थायी वैकारिक निद्रा-तन्द्रा का नाम है। लोक-भाषा में सुस्त व्यक्ति के लिए 'लिथार्जिक' शब्द प्रचलित है। (ग) मूत्रयन्त्र की विकृति में, यथा—कफज शोथ (वृक्क शोथ, नेफ्राइटिस) और रक्त की मूत्रविषमता (यूरीमिया) में।

हिक्काओं के आयुर्वेद-दृष्ट्या पूर्व-वर्णित सामान्यतों दृष्ट प्रकारों तथा दारुण हिक्काओं के साथ आधुनिक प्रत्यक्षानुसार वर्णित इन हिक्काओं का साम्य सरलता से देखा जा सकता है। आधुनिकोक्त रोगों में किसका सादृश्य आयुर्वेद की किस हिक्का से है, इसका निर्धारण उन रोगों के विस्तृत लक्षणों को ध्यान में रखते हुए किया जा सकता है।

### श्वास और हिक्का का उपचार

**शोधन उपचार :** आयुर्वेद में रोग मात्र के क्रियाक्रम को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है : उपशय भूत आहारादि के सेवन-समेत हेतुभूत निदान का परिवर्जन, संशमन एवं संशोधन (दोष का शरीर से निर्हरण)। इसमें सशोधन के उत्कृष्टतम क्रियाक्रम होने की स्थापना संहिताकारों ने की है। उनकी प्रसिद्ध उक्ति का तात्पर्य है कि—किसी वनस्पति की शाखाओं और पत्रों को काट दिया जाए, परन्तु मूल को यथास्थित रहने दिया जाए, तो वह वनस्पति निश्चयेन पुनः नवपल्लवित एवं नवपुष्पित हो जाती है। एतावता, वनस्पति को विनष्ट करना हो तो उसका समूल उत्खनन ही विधेय हुआ करता है। इसी प्रकार किसी रोग को सम्पूर्णतया नष्ट करना हो तो उसको मूल-तुल्य दोषों का वमनादि द्वारा निर्हरण (संशोधन) ही उपयुक्त ठहरता है। संशमन उपचारों में मूल (दोष) अस्पृष्ट रहता है। परिणामतया, अपने प्रकोपक कारण के उपस्थित होने पर दोष पुनः प्रकुपित हो रोगोत्पत्ति करते ही हैं। स्थिति यह होने से ही संग्रहकार ने संशोधन चिकित्सा को **'अपुनर्भवकर चिकित्सा'** कहा है।

श्वास, विशेषतः तमकश्वास संशोधन चिकित्सा के उपकर्तृत्व का सुविशद उदाहरण है। इस अध्याय के आरम्भ में कह आए हैं कि, तमकश्वास कफ प्रधान व्याधि है। इसमें कफ के प्राधान्य का अर्थ भी उसी प्रकरण में स्पष्ट कर दिया है कि, यह व्याधि यद्यपि कफ और वात दोनों के प्रकोपवश सप्राप्त होती है, तदपि इससे परिपीड़ित स्त्री-पुरुषों में बहुसंख्या ऐसे व्यक्तियों की होती है, जिनमें प्रधान उत्पातकारी दोष कफ हुआ करता है। कफ के इस रोग में प्राधान्य से यह भी अभिप्रेत है कि वायु भी स्वतंत्र हेतुओं से भले प्रकुपित होकर रोगोत्पत्ति में भाग ले रहा हो तथापि, लक्षणों की अधिकतम संख्या कफ-प्रकोपज ही होती है। इसमें यह वक्तव्य भी जोड़ा जा सकता है कि, वायु के प्रकोप के कारण अन्य भले हों, उनमें प्रकुपित हुए कफ का स्थान प्रमुख होता है। उरः—प्रदेश में तो कफ द्वारा वायु के प्रकुपित होने का स्पष्ट विधान संहिताकारों ने किया ही है। उनका कथन है कि, कफप्रकोप को प्राप्त हो प्राणवह स्रोतों (श्वसन यत्र के अवयवों) में स्थान, संश्रय करके रहा हो (उसकी अवस्था लीन हो किंवा विलीन) तो, तत्कृत अवरोध या आवरण के कारण प्रादेशिक वायु प्रकुपित होकर श्वास के वेगों की उत्पत्ति किया करता है। इस प्रकार प्रकुपित हुआ वायु प्राणवह स्रोतों में स्तब्धता उत्पन्न करता है। अपने प्रधान स्थान पक्वाशय में भी वायु का प्रकोप इतर कारणों के अतिरिक्त कफप्रकोपवश होता ही है। यों तो, जैसा कि सुविदित है, पक्वाशय में वायु की स्वस्थावस्था में भी आहार के मल के रूप में पुष्टि उत्पत्ति) होती ही रहती है और संग्रहकार के मन्तव्य को लक्ष्य में रखें तो यही वायु शरीर में प्रसृत हो प्राकृत तथा रोगजनक पञ्चविध वायुओं की पुष्टि करता रहता है। पक्वाशय में उत्पन्न वायु समावस्था में हो तो पञ्चविध वायु भी समावस्था रह कर अपने-अपने शास्त्र-निर्दिष्ट प्राकृत कर्म करते रहते हैं। इसके विपरीत, पक्वाशय में, वायु की पुष्टि या उत्पत्ति अधिक प्रमाण में हो, तो उसके प्रसरवश शरीर वायु का भी प्रकोप होने से वह रोगोत्पादक होता है। अब, पक्वाशय में वायु का उत्पादन होता तो पुरुषमात्र के शरीर में है, परन्तु उसके मलद्वार से नित्य निर्हरण की

प्रक्रिया प्रकृतिस्थ हो, तो वह यथावत् इस द्वार से प्रवृत्त होता रहता है, फलस्वरूप पक्वाशय एवं शरीर में उसका साम्य अविकृत रहता है। इस वायु के निर्हरण में उपयोगी यंत्र में कोई विघ्नित हो तो उसकी (वायु की) शुद्धि यथा स्थित न होने के कारण वह संचयपूर्वक प्रकोप को प्राप्त होता है तथा पक्वाशय में अथच प्रसृत हो सर्वाङ्ग में वातविकारों की उत्पत्ति करता है। अवश्य ही, वातप्रकोपक आहार आदि की विद्यमानता भी पक्वाशय एवं सर्वाङ्ग में वायु के इस प्रकोप में कारणभूत होती है। इस स्थिति में, वातानुलोमन द्रव्यों का व्यवहार विशेषतः करना विधेय हुआ करता है। ऊपर वायु के पक्वाशय से निर्हरण की प्रक्रिया के विघ्नित होने की स्थिति के प्रति अंगुलि—निर्देश किया है। प्रकरण कफ द्वारा इस प्रक्रिया में विकृति आने का होने से यह विकृति कफ द्वारा कैसे सभाव्य होती है, इसी वस्तु की मीमांसा करेंगे। कफ का प्रधान गुण मन्द होता है। कफ का किसी भी स्रोत में स्थान सश्रय हो, तो उसमें (स्रोत में) स्वस्थावस्था में जो लयबद्ध संवरण-असंवरण[1] (आकुञ्चन-प्रसारण, संकोच-विकास, पेरिस्टालिसस) रूप व्यापार होता है, उसके बल और संख्या में मन्दता आ जाती है। परिणामतया, तदन्तर्गत बाह्य द्रव्य की अपनी अभिमत दिशा में (बहिर्मुख किंवा अन्तर्मुख) गति जितने वेग से होनी चाहिए, वह उतने वेग और बलपूर्वक हो नहीं पाती। पक्वाशय में यह विकृत स्थिति हो, तो पुरीष एवं वायु की मल द्वार की दिशा में गति और उसके बाहर निर्गमन में मन्दता आ जाती है। फलस्वरूप, पुरीष एवं अधो वायु अधिक काल इस आशय में, एवं पच्यमानाशय में भी संचित रह जाते हैं। पुरीष पर पुरीषाग्नि की क्रिया होकर उसके स्नेह और क्लेद (द्रवांश) का अधिक मात्रा में पचन और शोषण होने से वह अधिक शुष्क, और आगे जाकर ग्रन्थिभूत हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त पुरीष अधोवायु के निर्गमन में अधिकतर अन्तराय उपस्थित करता हुआ, उसको सचयपूर्वक वृद्धि और प्रकोप को अधिक अवसर प्रदान करता है। इस प्रकार श्वास रोग के उत्पत्ति-क्रम में वायु के प्रकोप में कफ भी कारणता है। संप्राप्ति यह होने से ही जैसाकि आगे देखेंगे, विशेषतः तमक श्वास में विरेचन को स्थान दिया गया है एवं यह विरेचन वातकफघ्न औषधों के साथ संयुक्त किंवा उनसे संस्कारित करने का उपदेश किया गया है। एतद्विषयक आचार्य चरक का मूल वचन है—**वातश्लेष्म हरैर्युक्तं तमके तु विरेचनम् :**

**—(च० चि० १८।१२१)।**

परन्तु, कफ का मुख्य निर्हरण उसके प्रधान स्थानभूत आमाशय और उरःप्रदेश से वमन के रूप में करने को ही पूर्वाचार्यों ने सविशेष महत्व दिया है। संशोधनों के तो वमन आवश्यक नहीं होता, एवं आतुर अल्पवल हो—वमन के वेग को सहन कर न सकता हो, तो वमन अशक्य होता है। इन स्थितियों में कफ को विलीन कर अल्पाल्पशः बाहर निकालने के नैसर्गिक स्वभाव वाले अर्कक्षार, कण्टकारीक्षार, अपामार्गक्षार प्रभृति कफहर[2] (एक्स्पेक्टोरेंट) द्रव्यों का उपयोग प्राप्त होता है।

पूर्वाचार्यों ने वमन का विधान करते हुए जो शब्दप्रयोग किया है, उससे तो यही ध्वनित होता है कि, श्वास और हिक्का के किसी भी प्रकार पर वमन कराया जा सकता है। परन्तु, श्वास रोग के अन्त्यावस्था में देखे जाने वाले भेदों में, तथा हिक्का के महाहिक्का प्रभृति प्रकारों में वमन अनुपशय ही होगा। उनका विचार करते हुए दुर्बल रोगियों में सशोधन के अनौचित्य के सामान्य सिद्धांत को स्मरण करना होगा।

---

१. च. वि. ६. ९ में आचार्य चरक ने स्रोतों के पर्यायों की गणना में एक नाम (संवृतासंवृत) दिया है। इसका शाब्दिक अर्थ संवृत और असंवृत अर्थात आकुञ्चित और प्रसारित अथवा संकुचित एवं विकसित होने के स्वभाव वाले यह होता है। ये शब्द स्रोतों की 'रिध्मिक पेरिस्टाल्टिक मूवमेण्ट' के प्रति ही संकेत करते हैं। अतः इस क्रिया को संवरणा संवरण हमने यहां लिखा है।

२. दोषों पर क्रिया करने वाले द्रव्यों के विशेषणों के अन्त में 'हर' तथा 'घ्न' ये दो शब्द प्रयुक्त होते हैं। इनके अर्थ का विचार करते हुए 'हर' शब्द से दोष का निर्हरण करने वाले शब्दों का ग्रहण करना चाहिए। कफहर शब्द से आधुनिकों के 'एक्स्पेक्टोरेंट' का, वातहर शब्द से 'कार्मिनेटिवो' का तथा पित्तहर शब्द द्वारा 'कालेगाग' का। 'कफनिष्कासक' आदि शब्द नूतन हैं। 'घ्न' शब्द से अपने दोष-विपरीत गुणों के योग से दोष का शमन करने वाले द्रव्यों का ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार आयुर्वेद-मत से श्वास में संशोधन क्रिया को महत्त्व प्रदान किया गया है। अनुभवी चिकित्सकों को इसकी उपयुक्तता का उत्तम परिचय होता ही है। आधुनिक चिकित्सक श्वास में जिन द्रव्यों का प्रयोग किया करते हैं, वे आयुर्वेद के संशमन-वर्ग के अन्तर्गत परिगणनीय हैं। पाश्चात्य चिकित्सा में तमक श्वास में 'एंटिस्पैज्मॉडिक, एंटिहिस्टामिनिक तथा एंटिबायोटिक' कल्पों का और श्वास की पीड़ा इयोसिनोफिल-नामक श्वेत कणों की वृद्धि के कारण हो तो इन कणों को नष्ट करने वाले द्रव्यों का सेवन कराया जाता है। इनमें 'एंटिस्पैजमॉडिक' कल्प उन्हें कहा जाता है जो श्वास की संप्राप्ति के अङ्गभूत प्राणवाही स्रोतों के स्तम्भ (स्पैजम) का निवारण करें। इनसे तात्कालिक राहत अवश्य होती है। इनका उपयोग त्रस्त रोगी तथा उसके स्वजन परिजनों के क्लेश के निवारणार्थ किया जाना उचित भी है। आयुर्वेद में इस दृष्टि से कनकासव का विधान है। मुष्टियोगों (टोटकों) में धत्तूर, सूर्यक्षार, वासा आदि की बीड़ी का व्यवहार प्रचलित है।

स्तम्भहर एक आधुनिक कल्प इफेड्रिन है। इसके योग से स्तब्धता दूर होकर रोगी को शांति उपलब्ध होती है। परन्तु इसके साथ भ्रम (चक्कर) एवं मुख शोष भी होते हैं। संप्रति वैद्यों में सुप्रचलित सोमलता (इफेड्रावल्गेरिस) में कार्मुक द्रव्य इफेड्रिन होता है। परन्तु निसर्ग ने उसकी व्यापत्ति के वारण रूप में 'स्युडोइफेड्रिन' भी इसमें रखा है। अन्य भी अनेक वनौषधियों में नैसर्गिक रूप से उसके कार्मुक अंश के साथ उसकी व्यापत्ति को दूर करने वाले द्रव्य भी रहते हैं। इसी से सुधी चिकित्सक वनस्पतियों के आल्कलायड के स्थान पर समग्र ही वनस्पति का प्रयोग करना उचित मानते हैं। 'एंटिहिस्टामिनिक' उन योगों का नाम है, जो श्वास-रोग की कारणभूत एलर्जी का प्रतिकार करने में समर्थ हों। शेष 'एंटिबायोटिक' उन औषधों का नाम है, जो कफ की उत्पत्ति में हेतुभूत जीवाणु को निःस्पन्द कर देते हैं। इसमें स्थिति यह होती है कि, विभिन्न जीवाणुओं का संक्रमण प्राणवह स्रोतों की श्लेष्म कला में होने से इन स्रोतों का शोथ होने पर उनमें रसरक्त का आयात अधिक प्रमाण में होता है। यह रस-रक्त कला में स्थित कफोत्पादक ग्रन्थियों को स्वस्थावस्था में उपलब्ध होने वाले रस-रक्त की अपेक्षया मात्राधिक होता है। उसका उपयोग कर वे अधिक परिमाण में कफ (म्युकस) का उत्पादन करने लगती है। जीवाणुओं की निःस्पन्दता के फलस्वरूप शोथ की शान्ति होने से रस-रक्त का आयात अल्प होने के कारण कफ की उत्पत्ति भी न्यूनता को प्राप्त होती है और श्वास-कृच्छ्र में क्षणिक शान्ति-सी प्रतीत होती है। परन्तु, आयुर्वेद-मत से रोग का समवायीकारण वहीं का वहीं रहने से श्वास-कृच्छ्र वैसा का वैसा रहता हैं। लौकिक जन कहते हैं कि, इन औषधों से कफ सूख जाता है, श्वास में कफ सूख जाने से लक्षण में वृद्धि होती है। एण्टिस्पैजमॉडिक' ('संकोच-विकास प्रतिबन्धक' संज्ञा इसके लिए सांप्रत निघण्टुकार उपयोग में लाते हैं।) इन द्रव्यों में एक 'कोडीन' होता है। यह अहिफेन से निकाला द्रव्य अहिफेन के सदृश ही मलावष्टम्भ कर मल और वायु को अवरुद्ध करता है। इससे भी श्वास के लक्षणों और तज्जनित त्रास में वृद्धि होती है। यह कोडीन कास की चिकित्सा में भी स्रोत के मिथ्या संकोच-विकास के निवारणार्थ प्रयुक्त होता है। इस रोग में भी इसकी पूर्वोक्त प्रकार की ही व्यापत्ति होती है।

इयोसिनोफीलिया से हुए श्वास को पूर्व-निर्दिष्ट रीत्या कफज को मानकर उपचार करने से अपेक्षाकृत उत्तम सफलता प्राप्त होती है।

प्रास्ताविक इतना निरूपण कर, अब आयुर्वेद मत से श्वास और हिक्का में वमनादि संशोधनों का विवरण कम प्राप्त है। परन्तु उसके उल्लेख के पूर्व आचार्य बापालाल भाई वैद्य को हुए एक अनुभव का निर्देश करेंगे। इससे वाचकों को श्वास की विकृति में शोधन का महत्त्व अनायास बुद्धिस्थ हो सकेगा। यह उद्धरण आचार्य महोदय के प्रतिष्ठित ग्रंथ 'निघण्टु आदर्श' से लिया गया है।—

'एक बार मैं एक रोगी को देखने रांदेर गया था। रोगी शरीर को समेट कर बैठा था। अच्छे-अच्छे डाक्टरों का बहुत-बहुत उपचार था। अन्त को डाक्टरों ने रोग असाध्य मानकर प्रत्याख्यान कर दिया था। इतिवृत्त में कफ लेशमात्र निकलता न था, जिससे रोगी को अतिशय घबराहट का सामना करना पड़ रहा था। दोनों फुफ्फुसों में यक्ष्मा होने का निदान हुआ था। मैंने यहीं का चुटकी भर जुवार का आटा मँगवा कर, आक के पौधे के समीप जा, उसके पत्ते तोड़ उसमें से जो क्षीर निकले वह आटा भीग जाए तब तक

डाल कर लाने के लिए कहा । वह मिला कि तत्क्षण उसकी तीन-चार गोलियां बना चाय के साथ रोगी को निगलवा दीं । मैं तदनन्तर घर लौट आया । अगले दिन समाचार आया कि, कफ तो इतना निकलता है कि, हम लोग रेवड़ी के आटे के समान उसे खैंच-खैंच कर निकालते हैं । कफ की मात्रा भी प्रभूत होती है । रोगी अतीव राहत अनुभव करता था । आज यह रोगी संपूर्ण स्वस्थ दशा में अपना व्यवसाय कर रहा है । अर्क-दुग्ध का यह चमत्कार हमें बार-बार देखने को मिला है । अर्क और स्नुही (थूहर) दोनों के क्षीरों का विविध प्रकार से उपयोग वैद्यों को करना चाहिए ।"

श्वास रोग में (अन्य रोगों में भी) वमनादि द्वारा दोष की शुद्धि-सम्बन्धी आयुर्वेद के सिद्धांत की उपयोगिता इस दृष्टान्त से सुपुष्ट होगी । अब श्वास रोग में तन्त्र-कारोक्त वमनादि शोधन-क्रम पर दृष्टिपात करें ।

श्वास की दुर्निवार्यता: सुश्रुत ने श्वासादि रोगों के उपचार की अति कष्टप्रदता का जो निरूपण किया है; उसे प्रथम देख लें ।—

> यथाऽग्निरिद्धः पवनानुविद्धः
> वज्रं यथा वा सुरराजमुक्तम् ।
> रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः
> श्वासश्च कासश्च विलम्बिका च ।।
>
> —सु० उ० ५२।५६

अर्थात—जिस प्रकार प्रभञ्जन (प्रचण्ड वायु) की सहायता प्राप्त अति प्रदीप्त अग्नि अथवा देवराज द्वारा किया गया वज्रपात (विद्युत्) का प्रतिकार करना अतिशय कष्टसाध्य होता है, तथैव श्वास, कास एवं विलम्बिका ये तीन व्याधि अत्यधिक दुष्प्रति कार्य हुआ करते हैं । (विलम्बिका का विवरण निदान-चिकित्सा हस्तामलक के द्वितीय खण्ड में दिया है । जिज्ञासु वाचक वहां देखें) ।

चिकित्सा-प्रकरण आरम्भ करते हुए आचार्य चरक ने श्वास और हिक्का के उपचार की तुल्यता का, निर्देश करते हुए पुनः ध्यान आकृष्ट किया है । उनका वचन है—

> कारणस्थान मूलैक्यादेकमेव चिकित्सितम् ।
> द्वयोरपि यथादृष्टमृषिभिस्तन्निबोधन ।
>
> —च० चि० १७।७०

तात्पर्य—श्वास और हिक्का ये दो रोग भिन्न होते हुए भी इनके बाह्य कारण, नाभि आदि स्थान तथा दोष-रूप मूल परस्पर सदृश होने से ऋषियों ने इनकी चिकित्सा भी तुल्य ही कही है ।

हृदयकार ने इस विषय में यह अधिक विधान किया है—

> कासश्वासक्षयच्छर्दिहिध्माश्चान्योन्यभेषजैः ।।
>
> —अ० हृ० चि० ४।६०

—कास, श्वास, क्षय (यक्ष्मा तथा शोष), छर्दि और हिक्का इन पाँच रोगों के अपने-अपने अधिकार में जो क्रिया-क्रम दिया है, उसमें प्रत्येक रोग का क्रियाक्रम शेष रोगों में भी व्यवहार में लाना चाहिए ।

**रुग्णों के चिकित्सोपयोगी चार वर्ग—**

चरक मुनि ने श्वास-हिक्काक्रान्त आतुरों का चिकित्सा-भेद करने के प्रयोजन से प्रत्येक रोग से पीड़ित स्त्री-पुरुषों को दो वर्गों में स्थापित करते हुए कहा है—

> हिक्काश्वासामयी ह्येको बलवान् दुर्बलोऽपरः ।
> कफाधिकस्तथैवैको रूक्षो बह्वनिलोऽपरः ।।
> कफाधिके बलस्थे च वमनं सविरेचनम् ।
> कुर्यात् पथ्याशिने धूमलेहादिशमनं पुनः ।।
> वातिकान्दुर्बलान् बालान् वृद्धांश्चानिलसूदनैः ।
> तर्पयेदेव शमनैः स्नेहयूषरसादिभिः ।।
>
> —च० चि० १७।८८-८९

—चक्रपाणि की व्याख्या को समक्ष रखते हुए इन पदों का अर्थ यह है कि : हिक्का और श्वास से पीड़ित पुरुषों की चार अवस्थाएं देखी जाती हैं । बलवान् वा दुर्बल एवं कफाधिक और स्निग्ध अथवा उल्वणवात वाला रूक्ष । इनकी परीक्षा लक्षणों तथा रुग्ण के बल (व्यायाम-शक्ति, श्रम करने का सामर्थ्य) द्वारा होती है । सभी अवस्थाओं के रोगियों को पथ्य आहार पर रखते हुए कफ-प्रधान एवं बलवान् रोगी को वमन और विरेचन कराएँ ।

पश्चात्, संशोधन के सिद्धान्तानुसार शेष दोष के[1] शमनार्थ उपयुक्त लेह, धूम आदि की व्यवस्था करें। इसके विपरीत उक्त उभय दृष्टि से दुर्बल एवं धातुओं के (तद्घटित शरीर के) विकास की पूर्णता न होने के कारण निसर्गत: बलहीन बालकों तथा धातुओं के (शरीर के) वय:स्वभाववश क्षीण होने से अल्पबल वृद्धों और वात-प्रधान हिक्का-श्वास से पीड़ित स्त्री-पुरुषों का वातहर औषधों के संयोग वा संस्कार से साधित दोषशामक स्नेह, यूष, रस आदि के द्वारा तर्पण (पोषण एवं बलोदय) ही करें।

पुरुष बलवान् परन्तु रोग वाताधिक हो अथवा ऐसी ही अन्य मिश्र अवस्था हो तो अन्य किसी भी द्वन्द्वज रोग के समान मिश्र उपचार करें।

उक्त विधान का साधक-बाधक हेतुओं के पुरस्कार-द्वारा विवेचन करते तन्त्रकार आगे कहते हैं :

अनुत्क्लिष्टकफास्विन्नदुर्बलानां विशोधनात्।
वायुर्लब्धास्पदो मर्म संशोष्याशु हरेदसून्॥
दृढान् बहुकफांस्तस्माद् रसैरानूपवारिजैः।
तृप्तान् विशोधयेत् स्विन्नान् बृंहयेदितरान् भिषक्॥
बर्हितित्तिरिदक्षाश्च जाङ्गलाश्च मृगद्विजाः।
दशमूलीरसे सिद्धाः कौलत्थे वा रसे हिताः॥
—च० चि० १७।९१-९३

चक्रपाणि-कृत टीका का आश्रय लेते हुए इन पद्यों का अर्थ देखें।— (स्नेहन—स्नेह-पान द्वारा) जिनके कफ का उत्क्लेश (बहिर्गमनोमुखता) न हुई हो, स्वेदन जिन्हें न कराया गया हो (अतएव जिनके दोष विलीन एवं चल न हुए हों), अथवा जो दुर्बल हों—वमन के वेग के सहन न कर सकते हों, ऐसे व्यक्तियों को वमन (अथवा अन्य संशोधन) दिया जाए तो (संशोधन के श्रम वश प्रकुपित हुआ) वायु अनुकूल अवसर प्राप्त कर हृदय-प्रभृति मर्मस्थानों को अति शुष्क कर (उनमें से कफ की च्युति द्वारा तत्रत्य कफ को क्षीण कर) शीघ्र ही प्राणों का हरण करता है। स्थिति यह होने से वमन ऐसे ही श्वास (तथा अन्य वमन-साध्य रोगों से) पीड़ित पुरुषों को कराना चाहिए जो दृढ़ (बलवान्) हों तथा जिनमें कफ का आधिक्य हो। दोष को उत्क्लिष्ट करने के हेतु इन्हें आनूप तथा जलज प्राणियों के मांसरस से तृप्त कर, स्वेदन करा वमन कराएं। शेष दुर्बल एवं अतिवात-पीड़ित पुरुषों का बृंहण उपचार करें। एतदर्थ, मयूर, तित्तिरि, कुक्कुट (मुर्गा) तथा जाङ्गल पशु-पक्षियों के मांसरसों को दशमूल अथवा कुलत्थ के क्वाथ में सिद्ध कर उनका सेवन कराना चाहिए।

**श्वास और हिक्का का अन्य सामान्य चिकित्सा सूत्र:**

चरक हृदयकार तथा संग्रहकार श्वास और हिक्का के उपचार के सामान्य चिकित्सा का निर्देश करते पुनः कहते हैं—

यत्किंचित् कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम्।
भेषजं पानमन्नं वा तद्धितं श्वासहिक्किने॥

[चरक के तृतीय-चतुर्थ चरणों के स्थान पर अष्टांग हृदय में निम्न पाठ है—तत्सेव्यं प्रायशो यच्च सुतरां मारुतापहम्—अ. हृ. चि ४५८। टीका में इसके समर्थन में हेमाद्रि ने चरक का आगे उद्धृत 'वातकृद्वा कफहरं' इत्यादि पद्य अष्टांग संग्रह से उद्धृत किया है।]

वातकृद्वा कफहरं कफकृद्वाऽनिलापहम्।
कार्यं नैकान्तिकं ताभ्यां प्रायः श्रेयोऽनिलापहम्।
सर्वेषां बृंहणे ह्यल्पः शाक्यश्च प्रायशो भवेत्।
नाऽत्यर्थं शनैऽपायो भृंशोऽशक्यश्च कर्शने॥
तस्माच्छुद्धानशुद्धांश्च शमनैर्बृंहणैरपि।
हिक्काश्वासार्दितान्जन्तून् प्रायशः समुपाचरेत्॥
—च. चि. १७/१४७-५०; अ, सं. चि. हृ.; अ. हृ. चि. ४/५७-५९

---

१. संशोधन उपचार का एक नियम है कि : दोष की शुद्धि करते हुए प्रकुपित भी दोष का सम्पूर्णतया निर्हरण न करना चाहिये, प्रत्युत उसका कुछ अंश शेष रखना चाहिए। इसमें हेतु यह है कि, किसी दोष का समग्रतया संशोधन करने का आयोजन करें, तो चाहे जितनी सावधानी रखी जाए तो भी सम्भव होता है कि दोष की आवश्यक से अधिक शुद्धि होकर वह क्षीण (क्षमावस्था को प्राप्त) हो जाए। इस अनिष्ट के निवारणार्थ संशोधन-क्रम मे दोष को स्वल्प प्रमाण में शरीर में शेष रहने देने का सिद्धान्त पूर्वाचार्यों ने स्थिर किया है। इस शेष दोष के निर्हरणार्थ दोष को अल्पाल्पशः बाहर निकाला करें, ऐसे द्रव्यों की योजना की जाती है। यथा, वमन कर्म में शेष रखे गए कफ के निर्हरणार्थ कफ को मुख और नासिका मार्ग से विलीन कर कास (बलगम) आदि के रूप में निकालें ऐसे लेहों, धूमपान आदि का विधान है। अंग्रेजी में इन कफहर द्रव्यों को 'एक्सपेक्टरेन्ट' कहा जाता है।

[ अन्तिम पद्य के स्थान पर अष्टांग हृदय में निम्न समानार्थक परन्तु संक्षिप्त वचन है—शमनैर्बृंहणैश्चातो भूयिष्ठं तानुपाचरेत्—अ. हृ. चि. ४/५९]

टीकाकारों के वचनों को दृष्टि में रखते हुए तन्त्रकारों के वचनों का अभिप्रेतार्थ यह है।—जो भी औषध, अन्न यद्वा पान (पेय पदार्थ) श्वास और हिक्का के आरम्भक मूल दोषों कफ और वात को पृथक्-पृथक् अथवा संयुक्त रूप से समावस्था में लाने वाला, उष्ण तथा वायु को अनुलोम (स्वमार्गगामी) करने वाला एवं उष्ण हो वह श्वास और हिक्का—क्रान्त पुरुषों के लिए हितावह होता है। प्रायः उसी का सेवन करना-कराना चाहिए। इनमें भी जो औषधादि वायु को नष्ट करने वाला हो, परन्तु कफ का प्रकोपक न हो, उसे सविशेष पसन्द करना चाहिए।

इस प्रसंग में अरुणदत्तजी कहते हैं—कफ वातघ्न औषधादिक प्रकृत्या प्रायः उष्ण ही हुआ करता है। ततः 'कफवातघ्न' इस विशेषण से 'उष्ण' द्रव्य का ग्रहण स्वयं हो ही जाता है, तथापि पृथक् 'उष्ण' शब्द का पठन किया है, उससे यह अभिप्रेत है, कि जो औषधादिक अतिशय उष्ण हो उसीका सेवन करना चाहिए, न कि किंचित् उष्ण का। एवमेव, 'कफवातघ्न' द्रव्य वातानुलोमन हुआ ही करते हैं, इस करके उनका भी ग्रहण 'कफवातघ्न' इस विशेषण से हो जाता, तथापि 'वातानुलोमन' इस विशेषण का पठन किया, उसका गर्भितार्थ यह है कि, वायु के प्रधान प्रतिपक्ष रूप (विरुद्ध क्रियाकारी) स्निग्ध गुणयुक्त औषधादि का सेवन हिक्काश्वासपीड़ित पुरुषों को सविशेष करना चाहिए। एतावता, कफवातघ्न औषधादि ऐसे ग्रहण करने चाहिए, जो स्निग्ध तथा अधिक उष्ण हों।

कफवातहर औषधादि की पसन्दगी में कठिनाई यह होती है कि, कफहर औषधादि वातकर होते हैं और वातहर औषधादि कफकर होते हैं। स्थिति यह होने से चिकित्सा में किसी एक अन्त (पक्ष) को स्वीकार कर केवल वातहर या केवल कफहर द्रव्यों का व्यवहार न करना चाहिए। तथापि, 'प्रायः श्रेयोऽनिलापहम्—अर्थात्, ऐसे द्रव्य ही बहुधा प्रयोग में लाने चाहिए, जो वातघ्न अथ च बृंहण (पौष्टिक) हों।

इन श्वास और हिक्का रोगों में, एवं अन्य भी ज्वरादि व्याधियों में बृंहण तथा कर्शन (लंघन) उपायों में किसे अधिक महत्व देना चाहिए, यह प्रश्न हो तो बृंहण क्रियाक्रम को ही प्रथम स्थान दिया जाना उचित हुआ करता है। इस विषय की उपपत्ति (औचित्य) दर्शाते संहिताकार आगे कहते हैं—बृंहण रूप शमन (वातशामक) उपाय की योजना की जाए, तो (उसका अतियोग होने पर भी) रोग का आधिक्य या अन्य रोग के प्रादुर्भाव के रूप में कोई अपाय (व्यापत्ति, हानि) होती ही नहीं, और होती भी है तो वह अल्प ही होती है, इतना ही नहीं, बृंहण उपचारों के कारण शरीर में बलोदय होने से वह सुखसाध्य भी हो जाता है। परन्तु, कर्षण उपाय किया जाए, तो अपाय अत्यधिक होता है, एवं कर्षण के कारण रोगी का बल क्षीण हो जाने से उसका प्रतिकार भी शक्य नहीं होता। इस वचन में आए 'शमन' उपचार की पृथक् गणना कर यह भी अर्थ व्याख्याकार करते हैं कि, बृंहण और शमन उपचारों की योजना करने पर जो उपाय होता है वह अल्पमात्र तथा सुखसाध्य होता है। यहां शमन शब्द से ऐसे उपाय गृहीत हैं जो न बृहंण हों और न कर्शन।

सार यह है कि, (परिस्थिति के अनुसार) आतुर का शोधन किया जाए या न किया जाए, दोनों अवस्थाओं में श्वास तथा हिक्का से पीड़ित रुग्णों का शमन एवं बृंहण उपचार अधिकतः करना चाहिए। कोई टीकाकार इस वचन का यह भी अर्थ करते हैं कि, शुद्धि न किए गए रुग्णों का शमन उपचार करना चाहिए तथा शोधित रुग्णों का बृंहण उपचार करें। (बृंहण उपचार अपनाने में प्रयोजन यह है कि, शोधन-वश रोगी का शरीर क्षीण और दुर्बल हो गया होता हैं; अतः उसका आप्यायन अर्थात् बृंहण उपचारों द्वारा परिपोषण विधेय हुआ करता है)।

वस्तु स्थिति का विचार करे तो, बृंहण द्रव्य शमन का ही एक प्रकार है। कारण, यह (अपने गुरु, स्निग्ध, शीत, मृदु आदि गुणों के योग से) केवल वायु का, अथवा पित्त-संसृष्ट वायु का शमन करने वाला होता है।

**हिक्का-श्वास में संक्षेपतः क्रियाक्रमः** इन व्याधियों में चरकादि संहिताकारों द्वारा सविस्तार वर्णित क्रियाक्रमों का समासतः निर्देश योगरत्नाकरकार ने निम्न पदों में किया है—

**स्वेदनं वमनं नस्यं धूमपानं विरेचनम्।**
**निद्रा स्निग्धानि चाऽन्नानि मृदूनि लवणानि च॥**
X X X **इष्टानि हिक्किनाम्।**

स्नेहबस्तिमृते केचिदूर्ध्वां चाऽधश्च शोधनम् ।
मृदु प्रणयतां श्रेष्ठं श्वासिनामादिशन्ति हि ॥
सर्वेषु श्वासरोगेषु वातश्लेष्मनिवर्हणम् ।
विदधीत विधिं विद्वानादौ स्वेदं मृदुं तथा ॥

—तात्पर्य, हिक्काओं में स्वेदकर्म, वमन, नस्य धूमपान, विरेचन, निद्रा, स्निग्ध और मृदु अन्न एवं लवण सात्म्य हुआ करते हैं।

श्वास रोग में स्नेहबस्ति को छोड़ कर शेष शोधन क्रियाओं द्वारा ऊर्ध्व और अधोमार्ग का मृदु विशोधन श्रेष्ठ होता है। श्वास रोग मात्र में सर्व उपायों द्वारा वात और कफ की समता का सम्पादन और प्रथम मृदु स्वेद हितावह होता है।

इन्हीं प्रकरणों में निर्दिष्ट पथ्यापथ्य का उल्लेख आगे करेंगे। हिक्का-श्वास में वमन : इन रोगों में कफ और वायुका उल्लेख शोधन-शमन होने से प्रथम वमन की प्रक्रिया का निर्देश किया जाता है :—

हिक्काश्वासार्दितं स्निग्धैरादौ स्वेदैरुपाचरेत् ।
आक्तं लवणतैलेन नाडीप्रस्तरसंकरैः ॥
तैरस्य ग्रथितः श्लेष्मा स्रोतःस्वभिविलीयते ।
खानि मार्दवमायान्ति ततो वातानुलोमता ॥
यथाऽद्रिकुञ्जेष्वर्कांशुतप्तं विष्यन्दते हिमम् ।
श्लेष्मा तप्तः स्थिरो देहे स्वेदैर्विष्यन्दते तथा ॥
स्विन्नं ज्ञात्वा ततस्तूर्णं भोजयेत् स्निग्धमोदनम् ।
मत्स्यानां शूकराणां वा रसैर्दध्युत्तरेण वा ॥
ततः श्लेष्मणि संवृद्धे वमनं पाययेत्तु तम् ।
पिप्पलीसैन्धवक्षौद्रैर्युक्तं वाताविरोधि यत् ॥
निर्हृते सुखमाप्नोति स कफे दुष्टविग्रहे ।
स्रोतःसु च विशुद्धेषु चरत्यविहतोऽनिलः ॥

—च० चि० १७।७१-७६

स्निग्धैरिति स्वेदैरित्यस्य विशेषणम्, अन्येतु स्निग्धामिति पठन्ति । X X X मत्स्यादीनामपि रसः स्वरसः कल्केन कर्त्तव्यः । दध्युत्तरं दधिसरः ईदृशं च भोजनं वमनानुगुणकफवृद्धयर्थम् । उक्तं हि: श्लेष्मोत्तररुद्धं दयति हृद्दुःखम् (च० सि० १।९) । वाताविरोधीत्यनेन अन्नं रूक्षं वमनं च तीक्ष्णं निषेधति ॥ —चक्रपाणि

कासिनेच्छर्दनं दद्यात् स्वरभङ्गे च बुद्धिमान् ॥
श्वासहिक्कापरिगतं स्निग्धैः स्वेदैरुपाचरेत् ।
आक्तं लवणतैलाभ्यां तैरस्य ग्रथितः कफः ॥
खस्थो विलयनं याति मारुतश्च प्रशाम्यति ॥

X X स्निग्धैः स्वेदैः सालवणप्रभृतिभिः । X X ग्रथितः घनीभूतः । खस्थः स्रोतःस्थितः । विलयनं द्रवभावम् ॥ —डल्हन

X X तदार्तं च पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत् ।
स्निग्धैर्लवणतैलाक्तं तैः पूर्वं खेषु ग्रथितः कफः ॥
सुलीनोऽपि विलीनोऽस्य कोष्ठं प्राप्तः सुनिर्हरः ।
स्रोतसां स्यान्मृदुत्वं च मरुतश्चानुलोमता ॥
स्विन्नं च भोजयेदन्नं स्निग्धमानूपजैः रसैः ।
दध्युत्तरेण वा, दद्यात्ततोऽस्मै वमनं मृदु ॥
विशेषात्कासवमथुहृद्ग्रहस्वरसादिने ।
पिप्पली सैन्धव क्षौद्रयुक्तं वाताविरोधि यत् ॥
निर्हृते X X X X ॥

—अ० हृ० चि० ४।१-५

X X कफः सुलीनोऽपि अतिशयेन श्लिष्टोऽनर्भूतः। X X स्निग्धं शाल्यादिकं, न रूक्षे यवादिकम् । X X विशुद्धेषु उपलेपादि रहितेषु। —अरुणादत्त

X X सुलीनः स्रोतोभिरेकतां गतः। X X पिप्पल्यादिभिर्विभियुक्तं मदनफलादिवच्च ॥ —हेमाद्रि

बलीयसि कफग्रस्ते वमनं सविरेचनम् ॥

X X 'वमनं सविरेचन' 'मृदु हितम्' इति अत्राऽध्या हार्यम् ॥ —डल्हन

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते ।
ऊर्ध्वाधः शोधनं शस्तं दुर्बले शमनं मतम् ॥

—भा० प्र० चि० ८।१६

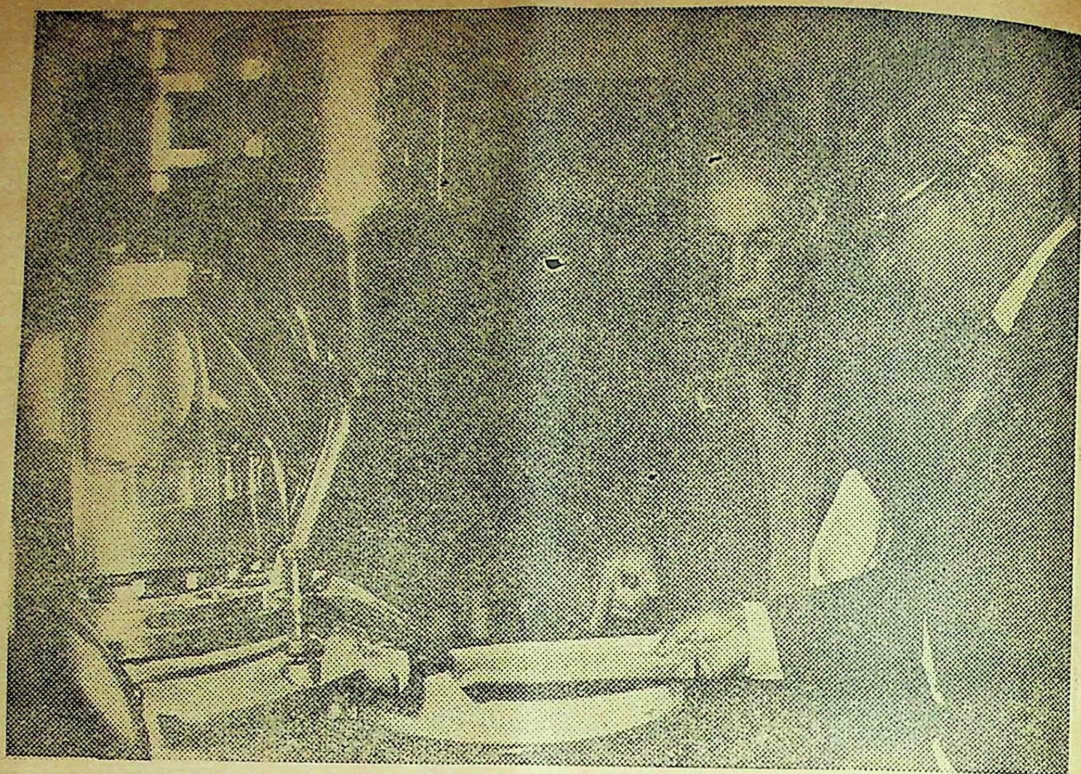
—संहिताकारों के मूल-वचनों तथा उनकी व्याख्याओं का समुचित आशय यह है—हिक्का एवं श्वास रोग से पीड़ित पुरुष को प्रथम स्निग्ध करें—स्नेहपान कराएं। पश्चात्, उसके शरीर पर सैन्धव लवण मिश्रित तिल तैल का अभ्यङ्ग कर नाडीस्वेद, प्रदरस्वेद, से कर स्वेद एवं सालवणस्वेद—इन स्निग्ध स्वेदों से (इनमें किसी से) स्वेदन करें। स्नेहन-स्वेदन के परिणामस्वरूप उसके (प्राणवह प्रभृति) स्रोतों में अतिशय लीन होकर विद्यमान, अर्थात् ग्रथित (पिण्डित) एवं स्रोतों के आन्तर विवर में श्लिष्ट (चिपका हुआ) तथा उनके साथ (जानो) एकाकार हुआ कफ विलीन द्रवीभूत हो जाता है। (द्रव शब्द गत्यर्थक



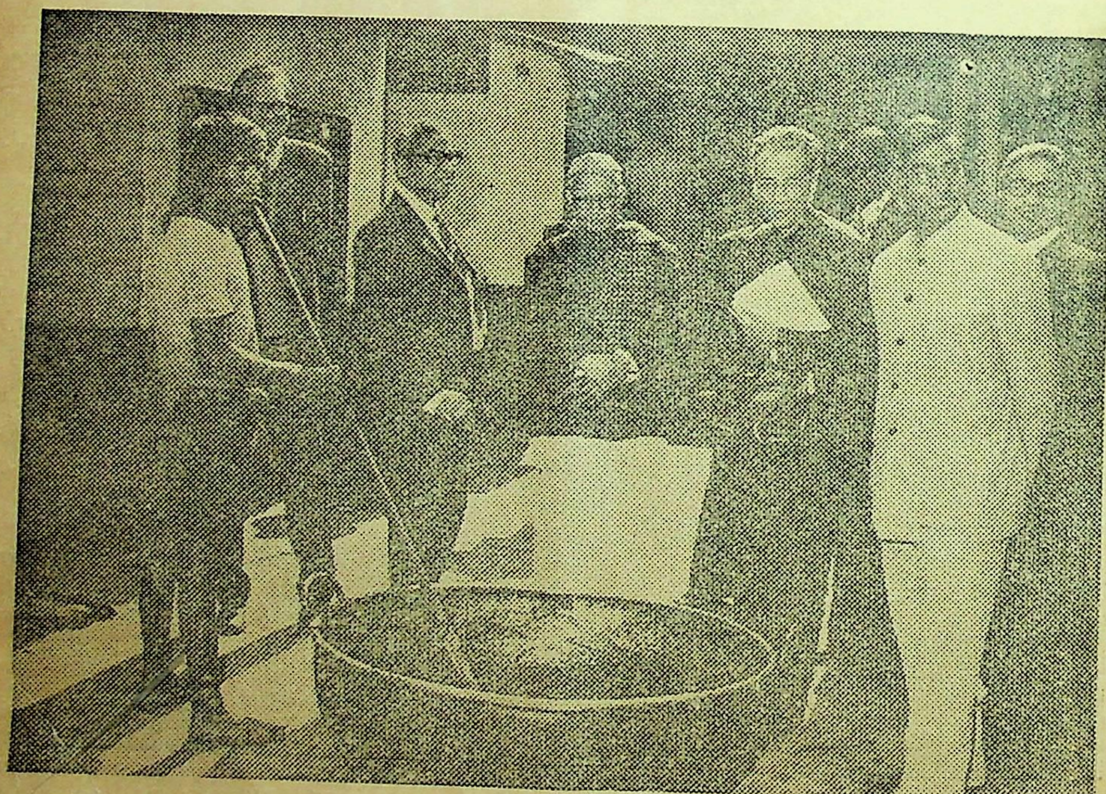

प्रो० डा० एरियान रोसू के अभिनन्दनार्थ बैद्यनाथ के प्रांगण में समबेत पटना नगर के विशिष्ट शिक्षाविदों, आयुर्वेदाधिकारियों, पत्रकारों, साहित्यकारों का उतारा गया एक ससूह चित्र ।



डा० एरियान रोसू द्वारा बैद्यनाथ के पटना स्थित प्रयोगशाला का निरीक्षण । बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के उत्पाद-नियंत्रक श्री आर० के० गुप्त तथा चीफ केमिष्ट श्री बी० के० गुहा आयुर्वेदिक औषध - निर्माण-प्रक्रिया पर प्रकाश डाल रहे हैं ।



बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना निर्माण-केन्द्र के टेबलेट विभाग का डा० रोसू द्वारा निरीक्षण। डा० रोसू के दोनों ओर प्रतिष्ठान के व्यवस्थापक श्री माहेश्वर मिश्र एवं श्री आर० के० गुप्त परिलक्षित हो रहे हैं।



डा० रोसू बैद्यनाथ के पटना-केन्द्र स्थित निर्माणशाला में च्यवनप्राश-निर्माण की प्रक्रिया का अवलोकन करते हुए। डा० रोसू के दोनों ओर क्रमशः श्री आर० के० गुप्त, श्री माहेश्वर मिश्र तथा प्रतिष्ठान के मुख्य वैद्य श्री जायसवाल खड़े हैं।

'द्रु' धातु से व्युत्पन्न होने से कफ के विलीन अथवा द्रवीभूत होने का (अभिप्राय यह है कि, वह—कफ—अपने बहिर्द्वार की दिशा में गमन के लिए अभिमुख होता हुआ, प्रथम कोष्ठ में आता है।) इस स्थिति में वह वमनादि द्वारा सुगमतया निर्हरण (शोधन) की स्थिति में आ जाता है। कफ के इस प्रकार विलीन एवं बहिर्गमनोन्मुख होने से वायु पर भी स्वेदन की शमन क्रिया होती है। फलस्वरूप, वायु के प्रकोपवश स्रोतों में जो स्तब्धता आ गई थी, वह दूर होती है। अन्य शब्दों में उनमें मार्दव (मृदुता, स्थितिस्थापकता, लचकीलापन) आ जाता है। इसके कारण अवरुद्ध हुए वायु का अनुलोमन—स्वमार्गगमन—होता है। (प्राणवह स्रोतों में स्थानसंश्रित वायु मुख और नासापुटों के द्वार से तथा पक्वाशय-गत वायु पायु-मार्ग—गुदमार्ग—से प्रवृत्त होने लगता है। स्रोतों में मृदुता आने के परिणाम रूप में उनकी स्तब्ध हुई संवरणासंवरण-रूप लयबद्ध गति पुनः स्थापित हो जाती है, जिसका फल वायु के उक्त रीत्या स्वमार्गगामी होने के रूप में प्रत्यक्ष होता है।)

उपमा द्वारा इस वस्तुस्थिति को विशद करते चरक मुनि कहते हैं कि—जिस प्रकार हिमाद्रि के कुञ्जों में स्थित हिम सूर्य की किरणों से तप्त होकर द्रवीभूत हो—पिघलकर—बहने लगता है, तद्वत् शरीरावयवों में स्थिर अर्थात् लीन एवं स्तब्ध होकर स्थित कफ स्वेदनों द्वारा तप्त होकर द्रवित होता है—स्वमार्गगामी एवं बहिर्गमनोन्मुख होने से वमन द्वारा अथवा कफहर (एक्सपेक्टोरेंट) औषधों के योग से उसका निर्हरण सुगम होता है। इस कफ की मात्रा में वृद्धि करने के प्रयोजन से वमन देने के पूर्व, स्वेदन के समयोग के लक्षण दृष्टिगत होते ही आतुर को सत्वर शालिधान्य आदि स्निग्ध, अतएव, कफवर्धक न कि यव प्रभृति रूक्ष धान्यों से साधित अन्न मत्स्य, शूकर आदि आनूपज प्राणियों के मांसरस से (मांस के क्वाथ से नहीं) अथवा दही के तर के साथ खिलाएँ। इस आहार से कफ की वृद्धि होने से वमन कष्ट-रहित होता है। इस विषय में चरक-प्रतिपादित सिद्धांत-सूत्र भी है।—**श्लेष्मोत्तरश्छर्दयति ह्यदुःखम् (च॰ सि॰ १।९)।**

वमनार्थ मदनफल आदि मृदु वामक द्रव्य पिप्पली, सैन्धव और मधु-संयुक्त कर के दें। यह समस्त योजना ऐसी होनी चाहिए जो वायु की विरोधिनी—उसे प्रकुपित करने वाली—न हो। तात्पर्य, अन्न रूक्ष न होना चाहिए, तथा वमन द्रव्य तीक्ष्ण न होना चाहिए। वमन के अतिरिक्त विरेचन भी इस रोग में प्रशस्त है, इसका अधिक विचार आगे किया जाएगा। यह विरेचन एवं वमन दोनों ही कर्म बलवान् पुरुष को ही कराने चाहिए। व्याधित पुरुष दुर्बल हो तो वमन-विरेचन न करा धूमादि शमन उपायों की योजना करनी चाहिए।

यों तो हिक्का और श्वास से पीड़ित प्रत्येक सबल पुरुष को वमन देना चाहिए; परन्तु वह कास, छर्दि, हृद्ग्रह और स्वरसाद से पीड़ित हो, तो वमन सविशेष देना चाहिए।

इस योजना से दुष्ट (लीन और स्तब्ध होकर त्रासदायी) स्वरूपवाले कफ का निर्हरण हो जाने से प्राणवह प्रभृति स्रोत विशुद्ध हो जाते हैं। परिणामतया, प्राण वायु निर्बाध होकर अपने संचरण मार्गों में संचार करने लगता है।

**सकर आदि स्वेदः**—निदान-चिकित्सा हस्तामलक के द्वितीय खण्ड में पञ्चकर्म का विषय अल्पमात्र ही लिया है। उस प्रकरण में श्वास और हिक्का में शोधन के क्रम में विहित संकर आदि स्वेदों का निरूपण किया नहीं था। अतः, उनका परिचय यहां कराया जाता है।—

स्वेदन के त्रयोदश प्रकार चरक ने दिए हैं। सुश्रुत तथा वाग्भट ने स्वेद के चार प्रकार कह कर चरकोक्त तेरह स्वेदों को इन चार में ही अन्तर्भूत कर दिया है। संकर, प्रस्तर तथा नाडी इन चरकोक्त तीन स्वेदों का अन्तर्भाव सुश्रुत एवं वाग्भटोक्त ऊष्मस्वेद में हुआ है। **संकर स्वेद** देने के लिए—तिल, माष, कुलत्थ, अम्ल द्रव्य, घृत, तेल, माँस, भात एव खीर, खिचड़ी, मांस आदि के पिण्डों को वे उष्ण स्थिति में हों तभी वस्त्र में लपेट उनसे स्वेदन करें। (केरल में पक्षाघात आदि वात विकारों में शालिषष्टिक के भात से इस प्रकार स्वेदन अद्यापि प्रचलित है। इसमें कोई आठ व्यक्ति एक साथ एक ही आतुर को स्वेद देते हैं। पोटली ठंडी होते ही उबलते जल में रखी गई अन्य पोटलियां ली जाती हैं। इस स्वेद को 'अवर-किषी' कहा जाता है)। इसी प्रकार गौ, गर्दभ, अश्व, उष्ट्र या शूकर के पुरीष अथवा सतुष यव का किंवा वालुका, धूलि (अथवा मिट्टी का ढेला), पाषाण, उपले, ठीकरे, ईंट या

लोह अथवा कांसे के पिण्ड, या किसी धातु के पात्रों का भी व्यवहार विहित है।' रेती को तवी पर खूब उत्तप्त कर पोटली में बांध उससे वेदना-युक्त अवयव पर वस्त्र रखकर स्वेदन का बालुका स्वेद' नाम से इन दिनों भी प्रचार है। विभिन्न किरणों से सेक की अपेक्षया इसका प्रभाव गहरा पाया है। ईंट या पत्थर इसी प्रकार तप्तकर उसकी पोटली से सशूल अर्श के अंकुरों पर स्वेद भी अद्यापि प्रचलित है। सुश्रुत ने उक्त द्रव्यों को उत्तप्त कर उन पर अम्ल द्रव्यों के जल का सिंचन कर या उनमें डुबोकर पोटली में रख स्वेद करने का उपदेश किया है।

चरक ने स्वेदों की नामत: गणना में 'पिण्ड स्वेद' का उल्लेख नहीं किया है; परन्तु उनका विवरण देते हुए उपर्युक्त विधि पिण्डस्वेद में करने का निर्देश किया है एवं अन्त में कहा है कि, इस पिण्डस्वेद में निर्दिष्ट द्रव्यों का ही उपयोग प्रस्तर स्वेद में भी करना चाहिए। स्वेदों के विवरण के इस प्रकरण में चरक ने प्रस्तर-स्वेद की विधि पृथक् दी नहीं है। इस से इतना तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि, चरक के मत से पिण्डस्वेद और प्रस्तर स्वेद दो भिन्न स्वेदों के नाम हैं।

चरक ने पिण्डस्वेद के प्रकरण में कहे द्रव्यों को वस्त्र में लपेट कर (पोटली बनाकर) अथवा उसके बिना संदंश यन्त्र से उन्हें पकड़ कर उनसे स्वेद को संकर स्वेद कहा है। अष्टाङ्ग संग्रहकार ने कण्ठरव से पिण्ड स्वेद और संकर स्वेद को एक और अभिन्न लिखा है। सविस्तर पिण्डस्वेद की विधि लिखकर अन्त में वे कहते हैं: इति **पिण्ड स्वेद:। स एव संकराख्य :—अ. सं. सू. २६।**

संकर स्वेद का विचार ऊपर आ ही गया। अब प्रस्तर स्वेद का परिचय संक्षेप में देते हैं—प्रस्तर शब्द आच्छादन (बिछाना) अर्थ की 'स्तृ' धातु से व्युत्पन्न होने से यह फलित है एवं संहिताओं में भी निर्दिष्ट है कि, इसमें उष्णीकृत स्वेद द्रव्यों को स्वेद्य पुरुष की लम्बाई-चौड़ाई जितना खट्टा आदि पर बिछा रेशमी वा ऊनी वस्त्र से अथवा पञ्चाङ्गुल, उरुबूक (दोनों एरण्ड-भेद) और अर्क-पत्र से आच्छादित कर उस पर सर्वांग पर सम्यक् अभ्यंग किए आतुर को लेटाया जाता है। स्वेदोपयुक्त द्रव्यों शूक धान्यों, शमी धान्यों एवं क्षुद्र धान्यों के शुष्क पौधों सवेवार, पायस (खीर), कृशरा (माष-कृत खिचड़ी) उत्कारिका (रोटिका : अ. हृ. सू. १७/६ की हेमाद्रि-टीका) आदि की गणना है।

**नाडी स्वेद** का अन्य स्वेदों से विशिष्ट साधन स्वेदोपयुक्त द्रव्यों से पूर्ण पात्र के साथ संलग्न नाडी (नलिका) होती है, जिसके मुख से निकलता ताप आतुर के शरीर को स्वेद देता है। इति कृत्वा स्वेद के इस भेद को नाडी स्वेद कहा जाता है। यह नाडी हाथी की सूंड के अग्रभाग के सदृश गोल, आगे की ओर पतली होती हुई तथा अन्दर से विवर-युक्त एवं एक अथवा अर्ध व्याम लम्बी एवं तीन स्थलों पर वक्र (मोड़ लिए) होती है। चरक और सुश्रुत ने मटका (किलिञ्ज) बनाने के काम में प्रयुक्त होने वाले शर (सरकण्डा) कास, वंश, करञ्ज पत्र, अर्क पत्र आदि से नाड़ी बनाने का विधान किया है। (तात्पर्य, यह किसी कुम्भकार द्वारा बनवानी चाहिए)। नाडी लम्बी और वक्र बनाने में प्रयोजन यह है कि, वाष्प (भाफ) शरीर को सीधी नली द्वारा लगायी जाएगी तो उससे त्वचा को दाह होगा। मोड़ों के कारण वाष्प की प्रचण्डता तथा वेग में मन्दता आ जाती है। परिणामतया, उससे दाह होने की आशङ्का रहती नहीं। इस नाड़ी का सम्बन्ध एक मटके से होता है। इसे उष्ण-स्वभावी एवं वातघ्न मूल, फल पत्र, अङ्कुर, दूध, दही, कांजी (धान्याम्ल), मूत्र प्राणियों के मांस, मांसरस आदि से भरकर उपयुक्त अम्ल लवण और स्नेह डालकर उबालें। वाष्प निकलना बन्द हो जाए तो वातरोगी को उत्तम प्रकार से अभ्यङ्ग कर चारों ओर से भारी वस्त्र ओढ़ाकर स्वस्थता से बैठाएं (सिर खुला ही रखें)। नाड़ी को शरीर और वस्त्र के मध्यवर्ती आकाश में रखकर रोगी को ताप दें। मृत्तिका के बने मटके तथा नाडी के स्थान पर संप्रति उक्त आकृति के ही परन्तु ताम्रमय नाडी यन्त्र का व्यवहार किया जाता है। यह चाय की किटली अथवा उद्यानों में पानी देने की झारी के सदृश होता है। नाडी के बिना भी उक्त प्रकार से साधित आतुर को ताप देने का शास्त्र में विधान है। इन दिनों प्रतिश्याय, आम, अङ्गसाद आदि में इसी प्रकार स्वेदन कराया भी जाता है। इसमें क्वाथ-पात्र में नील

१. स्वेदन-कर्म के संदर्भ-स्थल:—च० सू० १४।३-६७; सु० चि० ३२।३;१६; अ० हृ० सू० १७।१-१४, अ० सं० सू० २६।

गिरि तैल (यूकेलिप्टिस—आयल), यूकेलिप्टस के पत्र आदि डाले जाते हैं।

**सालवण स्वेद**—कोई पृथक स्वेद नहीं है। उपनाह द्रव्यों में लवण अधिक परिमाण में लिया जाए तो इसे ही सालवण यह विशिष्ट संज्ञा दी गयी है। 'सलवण' शब्द से यह शब्द व्युत्पन्न हुआ है। इसकी परिभाषा सुश्रुत-वचन उद्धृत कर देते हैं :—

काकोल्यादिः सवातघ्नः सर्वाम्ल द्रव्य संयुतः।
सानूपौदक मांसस्तु सर्वस्नेह समन्वितः॥
सुखोष्णः स्पष्टलवणः सालवणः परिकीर्तितः।
तेनोपनाह कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणम्॥

—सु० चि० ४।१४-१५

तात्पर्य, काकोल्यादिगण के द्रव्यों को भद्रदार्वादि तथा विदारिगन्धादि इन वातघ्न द्रव्यों (इन तीन गणों के पाठों के लिए देखिए: सु० सू० ३८।३५-३६; सु० सू० ३९।७ तथा सु० सू० ३८।४-५) तथा सर्व अम्ल द्रव्यों—शुक्त; काञ्जिक, सुरा, सौवीरक, दधि-मस्तु आदि अथवा दाडिम आदि—, आनूप और जलचर जन्तुओं के मांस एवं घृत, तैल, वसा, मज्जा इन सर्व स्नेहों से संयुक्त कर, सैन्धव-प्रभृति लवण इतनी मात्रा में मिला कर कि कल्पना में लवणों का प्राधान्य स्पष्ट प्रतीत हो, इस संयोग को सुखोष्ण कर वात-विकारों से पीडित पुरुषों को सर्वदा इसी से उपनाह स्वेद दें। "सह आ समन्तात् लवणेन वर्तते इति सालवणः" यह व्युत्पत्ति सालवण शब्द की निबन्ध संग्रह व्याख्या में डल्हन ने की है।

(सावशेष)

## २. ताम्रपात्र का ही पानी पीजिए

पीने का जल मानव-जीवन की मुख्य आवश्यकताओं में एक है। तथापि, यह देश के ग्राम-विभागों में सर्व-सुलभ नहीं है। सीमान्तों के कितने ही ग्रामों में तो कच्चे कूपों अथवा पोखरों का गंदला पानी ही अगत्या पीना पड़ता है। परिणामतः, अनेक रोगों का भोगी भी वे ग्रामवासी बनते हैं।

प्रत्येक ग्राम में फिल्टर प्लाण्ट खड़े करना तो शक्य नहीं। जल को स्वच्छ करने की विभिन्न रीतियाँ व्यवहार में आती हैं; परन्तु वे भी प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक को सुलभ नहीं। क्लोरीन के अधिक उपयोग से गन्ध विकृत हो जाती है; स्वाद भी विरूप हो जाता है।

इस स्थिति में अपने देश में चिरकाल से पानी भर रखने के हेतु ताम्र-पात्रों के उपयोग की जो प्रथा चली आई है, वह स्मरण करने योग्य है। उसकी भूमिका में कोई वैज्ञानिक दृष्टि है वा नहीं, और है तो कौन सी यह जाने बिना यह एक मान्यता प्रवृत्त है कि, ताम्र-पात्र में रखा जल आरोग्यप्रद होता है। आज जबकि इस विषय में जो वैज्ञानिक समर्थन प्राप्त होता है, उससे विदित होता है कि अपने पूर्वज कुछ भ्रान्त न थे।

हाल ही में नागपुर की विश्वेश्वरैया इंजिनीयरिंग कॉलेज की ओर से हुई एक गवेषणा से इस वस्तु की कुछ विशदता हुई है। इस गवेषणा से ज्ञात हुआ है कि, शुद्ध चमकदार ताम्र-पात्र में यदि जल को २४ घण्टे रखा जाए तो उसमें विद्यमान सूक्ष्म जीवाणु सबके सब विनष्ट हो जाते हैं। कालीफॉर्म जीवाणुओं की संख्या दो हजार से घट कर शून्य पर आ जाती है। ताम्र के परमाणु रूप विद्युत्—आविष्ट आयन जल के साथ संयुक्त होने से यह रासायनिक प्रक्रिया उद्भूत होती है।

एतावता, जल को जन्तु-रहित बनाने के निमित्त यह एक अत्यन्त सादी, सरल एवं घरेलू पद्धति है। यह निश्चित फलदायी है। केवल ताम्रपात्र चमकीला हो। इतना स्वच्छ किया होना चाहिए, तथा उसमें फिटकरी अथवा अन्य कोई रसायन द्रव्य डाला गया न होना चाहिए।

इस अनुसन्धान से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि स्टेनलेस स्टील के प्रबल आक्रमणवश धिक्कृत ताम्र के कलश, लोटे, बटलोई आदि की पुनः स्थापना में आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि निहित है?

(भूमिपुत्र के १६-१०-७८ के अंक से साभार)

हमारा विशेष लेख

# काश्यपसंहिताप्रोक्त बालोत्पात-'चर्मदल' एक विवेचन

डा० वेदप्रकाश शर्मा,
M.A., A. M.B.S., Ph. D.
सह आचार्य-राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

बृहत्त्रयी तथा इतर आयुर्वेदीय संहिताओं में 'चर्मदल' प्रधानतः कुष्टान्तर्गत तथा त्वग्रोग के रूप में प्रतिपादित है। मारीच कश्यपकृत नवोपलब्ध काश्यप सहिता में चर्मदल को बृहत्त्रयी के अनुरूप कुष्ठ का एक प्रकार माना गया है[1], तथापि इस संहिता के खिल स्थान में 'चर्मदल चिकित्साध्याय' शीर्षक से इसका बाल 'उत्पात रोग' के रूप में स्वतंत्र सांगोपांग वर्णन भी मिलता है। 'क्षुद्राणां बालानां रोगाः' की उक्ति के अनुसार त्वग्विकार 'चर्मदल' का केवल मात्र शिशुओं में पाया जाना कश्यप सम्मत है। शिशुजनहिताय निर्मित[2] काश्यप संहिता का मुख्य विषय कौमारभृत्य होने के कारण चर्मदल अत्र शिशु रोग के रूप में वर्णित है। इसी धारणा से विदित होता है कि अन्य तन्त्रों में स्वविषय न होने से इस बालामय का विस्तृत वर्णन सापेक्ष नहीं रहा हो। अर्वाचीन विद्वानों द्वारा प्रणीत कौमारभृत्य के ग्रन्थों में चर्मदल को बालामय के रूप में इंगित न किया जाना आश्चर्य का विषय है। काश्यप संहिता और तदन्तर्गत वर्णित कुष्ठ रोग विवरण अतिखण्डित रूप में उपलब्ध रहते हुए भी चर्मदल की उत्पत्ति-वर्णरूप (आकृति)-साध्यासाध्यत्वविचार और उपक्रम का पूर्ण वर्णन प्राप्त है।[3] वृद्धजीवक द्वारा प्रस्थापित विविध प्रश्नों के उत्तर में ऋषि कश्यप ने इसका युक्तियुक्त विवेचन किया है।[4]

### क एष चर्मदलो नाम व्याधिः ?

त्वचा शरीरावरक तथा दुर्भेद्य होती है और भौतिक तथा रासायनिक प्रत्याघातों से शरीर-संरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य करती है। चर्मदल त्वग्विकार है जिसमें त्वचा का दलन होता है। 'चर्मदलमिति चर्मविदारणात्' दल-भेदने से चर्म दलयति—यह प्रधान लक्षण विद्यमान रहता है।[5] विसर्पमाण—अग्निदग्धोपमरूप-अत्याबाधकर स्वरूप-वाली यह व्याधि क्षीरप एवं क्षीरान्नाद कुमारों के अङ्गों में उत्पन्न होती है।[6] अन्नाद तथा बड़ी अवस्था वालों में इस रोग के न होने में हेतु हैं—

'स्थिर कठिनसंहत त्वगस्थिधातूनां तथा नित्यव्यायामोपचितगात्राणां क्लेशसहतां न भवत्येष व्याधिरिति।'

गर्भशय्योचितमृदु शरीर वाले क्षीरप तथा क्षीरान्नाद शिशुओं में सुकुमारत्व—व्याधि प्रतिकार शक्ति की कमी-अक्लेश सहन-उत्तरोत्तर वृद्धिगतशारीरिक विकास आदि के अतिरिक्त उष्णानिलातप—उपसर्ग-अशौच इत्यादि कारणों से त्वचा आसानी से प्रभावित और उपसृष्ट हो सकती है।[7]

### कथं चोत्पद्यते ? कतिविधः ?

क्षीरप कुमारों के स्तन्य दोष से तथा क्षीरान्नाद बालकों में स्तन्यदोष और आहार-दोष से यह विकार उत्पन्न होता है। 'न चैक दोषजं किंचित् कुष्ठं समुपलभ्यते' चरक के इस वचन के अनुसार त्रिदोषज होते हुए भी दोषोल्वणता के आधार पर चर्मदल को कश्यप ने वाय्वात्मक माना है। इसको चरक तथा वाग्भट ने पित्तश्लेष्मप्रधान और सुश्रुत ने पैत्तिक कहा है।[8] 'कुल प्रवृत्ति' उत्पादक कारणों में स्पष्टतः माना गया है।[9] दोष-भेद से चर्मदल ४ प्रकार कहा गया है।[10]

(१) वातिक (२) पैत्तिक (३) श्लैष्मिक एवं (४) त्रिदोषज। इनकी उत्पत्ति भी तत्तत् दोष दूषित स्तन्य से होती है।

* पंचम अखिल भारतीय आयुर्वेद शास्त्र-चर्चा परिषद्, हैदराबाद में अधीत शोध पत्र।

**कानि चास्य लक्षणानि ?**

कश्यप ने कुष्ठ प्रकरण में—'वृद्धिमच्चर्म दलं' अर्थात् निरन्तर बढ़ने वाला; तथा खिल स्थान में—'चर्मविदारण' मात्र लक्षण सामान्यतः दिया है, परन्तु यही चर्मदल के हेतु पुरस्सर दोषानुसार विशद लक्षण भी सविस्तार बताये हैं। कश्यप के मतानुसार चर्मदल में त्वक् से सम्बद्ध लक्षणों के अतिरिक्त कतिपय सांस्थानिक लक्षण भी होते हैं।[११] प्रकुपित दोष तिर्यग्गामिनी सिराओं द्वारा बाह्य रोगमार्ग में चारों ओर फैलते हुए दोषाक्रान्त प्रदेश पर सस्फोट **'मण्डल'** की उत्पत्ति करते हैं। तदनन्तर **'विसर्प'** हो जाने पर आशीविषवत् दुःसह कष्ट होता है।[१२] ततः **'अतिसार'** एक प्रमुख लक्षण होता है। मण्डल-विसर्प और अतिसार के वर्ण तथा स्वरूप उत्पादक दोषानुसार होते हैं। आनुषङ्गिक रूप से कण्डू-रुग्-दाह-स्पर्शासह्यता आदि लक्षण भी हो सकते हैं। त्रिदोषज में कष्ट श्वसन और स्तनविद्वेष भी सम्भव है। मुख-गल-हस्त-पाद-वृषणान्तरस्थ-कट्यङ्ग सन्धियों में चर्मदल प्रायः होता है। सम्पूर्ण शरीर की त्वचा का अवदारण भी हो सकता है। सुश्रुत ने हस्त-पाद तल में विशेष रूप से इसकी उत्पत्ति होने का उल्लेख किया है।[१३] बृहत्त्रयी में चर्मदल के प्रकरण में केवल स्थानिक लक्षण मात्र बतलाये गये हैं।[१४] परन्तु कश्यप ने त्वगाश्रित बाह्य लक्षणों के अतिरिक्त अन्य अंगावयवों से सम्बद्ध सांस्थानिक लक्षण भी दिये हैं। सुश्रुतोक्त 'विस्फोट' रोग के समग्र लक्षण चर्मदल में मिलने से विस्फोट इस विकार का ही एक लक्षण मात्र प्रतीत होता है तथा कफ पैत्तिक विस्फोट में कण्डूदाह के अतिरिक्त ज्वर-छर्दि आदि सांस्थानिक लक्षण भी होते हैं।[१५] काश्यप-संहिता के आधार पर दोषानुसार लक्षणों की निम्नोक्त तालिका द्रष्टव्य है :—

| | वातचर्मदल | पित्तचर्म दल | श्लेष्मचर्म दल | सन्निपातात्मक चर्म दल |
|---|---|---|---|---|
| त्वगाश्रित बाह्य लक्षण | १. मण्डल (कण्डू-स्फोट युक्त पुरुष तथा श्याव वर्ण के) | १. मण्डल (रक्त-नील-श्याव-पीत वर्ण के, शुष्क, उष्ण, दुर्गन्धयुक्त, दोषपूर्ण) | १. मण्डल (शीत-स्तिमित-स्निग्ध तथा सान्द्र) | १. मण्डल (सर्व शरीरव्यापी, कृष्ण-रक्त-दग्ध गुण के समान, तीनों दोषों के गुणों से युक्त, क्षिप्रपाकी, विगन्धी, पूति-कुणप विस्रावी, अवदीर्ण) |
| | २. विसर्प | २. विसर्प (त्वङ्मांसदारक, प्रभिन्न, पद्मपत्र तुल्य, अग्नि-दग्धोपम) | २. पिडकाएं (अनेक, श्वेत, सर्षपमात्र, चिरपाकी, अल्प-वेदना तथा कण्डूतोद युक्त) | २. विसर्प (सर्व शरीर व्यापी) |
| अन्य (सांस्थानिक लक्षण) | ३. अतिसार पिप्लुत-मिले हुए, तनु-विवर्ण मल) | ३. अतिसार (हरित-पीत, गुद-पाककर मल) | ३. अतिसार (बहुल, पिच्छिल, अनुबद्ध मल) | ३. अतिसार (कृष्ण-अरुण मल) |
| | ४. प्रवेपक (कम्पन) | ४. दाह | ४. प्रतिश्याय, कास, पाक | ४. सकष्ट रोदन |
| | ५. मुखशोष | ५. मुखशोष | ५. तन्द्राभिभूत | |
| | ६. रोम हर्ष | ६. छर्दि | ६. श्लेष्म वमन | |
| | | ७. पीतवदन (मुख) | ७. श्वेत तालु और ओष्ठ | |
| | | | ८. अरोचक | ५. स्तन विद्वेष |
| | | | ९. अङ्गगौरव | |
| | | | १०. श्वास कष्ट | ६. निरन्तर कष्ट-पूर्वक श्वास |

**उपद्रवाश्च के? साध्यासाध्यत्व विचार**

त्वचा के रोग केवल त्वचा तक ही परिसीमित नहीं होते उनका सम्बन्ध अन्य अङ्गों के विकारों के कारण भी रहता है, विशेषत; बच्चों में। प्रतीकार न करने तथा दोषों के उत्कट होने के कारण रोग असाध्य हो जाता है।

छर्दि—तृष्णा—ज्वर—आध्मान—श्वयथु — हिक्का— स्वरभेद आदि उपद्रवयुक्त चर्मदल को कश्यप ने प्रत्याख्येय माना है।[१९] कुष्ठ के प्रभेदों में भी कश्यप ने इस रोग को नव असाध्य कुष्ठों में दिया है तथा सान्निपातिक चर्मदल को 'सोऽसाध्यः' ऐसा स्पष्ट कहा है।[१७] अतः कष्टप्रद यह व्यधि बालामय होने के कारण असाध्य या कृच्छ्र-साध्य ही मानी गई है।

**उपक्रम**

'नोपक्रमेदसाध्यं तु साध्यं यत्नेन साधयेत्'—द्वन्द्वज कृच्छ्रसाध्य होने से इसकी सम्यक् चिकित्सा की जाये। उपक्रम्यमाण भी पुनःपुनः उत्पन्न हो जाता है। अतः इसे 'उत्पात रोग' कहा गया है जिसका कभी भी विश्वास न किया जाये—

येनोपक्रम्यमाणोऽपि शान्तिं नैति पुनःपुनः।
तेनैवोत्पात रोगोऽयं न विश्वास्यः कथञ्चन ॥

क० सं० खिल १५/१३-१४

इस रोग की गणना पित्त के नानात्मक विकारों तथा रक्तज रोगों में की गई है। अतः रक्तपित्तहर चिकित्सा क्रिया का निर्देश किया गया है। एतदर्थ रक्तावसेचन श्रेष्ठ चिकित्सा है। दूषित रक्तरूपी आश्रय के नष्ट हो जाने पर विसर्प आदि का नष्ट होना शास्त्र सम्मत सिद्धांत है।[१८]

बृहत्त्रयी में चर्मदल के लिए पृथक् से किसी चिकित्सा विशेष का निर्देश उपलब्ध नहीं है। कश्यप ने दोषानुसार शिशु तथा माता (धात्री) दोनों के लिए विस्तारपूर्वक चर्मदल का प्रतीकार बतलाया है। स्नेहन (वातिक में स्वेदन भी)—वमन-विरेचन और ततः संसर्जन-क्रम आवश्यकतानुसार किया जाये। स्तन्यशोधनार्थ दोषभेद से स्तनावलेप तथा प्रदेह भी कहे हैं।

स्थानिक चिकित्सा के अन्तर्गत परिषेक-अवचूर्णन-कल्क, प्रदेह-सिद्ध तैल या घृताभ्यङ्ग आदि का विधान वर्णित किया गया है जिससे ज्वर-दाह-राग-पाक-व्रण आदि का उपशमन होता है।[१९] बाल चर्म रोगहर योग (हारीत प्रोक्त),[२०] व्याघ्री तैल[२१], श्वेतकरवीराधतैल; रुद्र तैल; सोमराजी तैल आदि का प्रयोग उत्तम है। उक्त योग प्रचलित आधुनिक Skin Ointments की तुलना में परमोपयोगी, अल्प व्ययसाध्य और निरापद सिद्ध हो सकते हैं। शिशुओं की त्वचा अति कोमल होने से प्रक्षोभक मरहम तैल या रासायनिक पदार्थ लगाना हितकर नहीं रहता।

**उपसंहार**

संहिता ग्रन्थों में स्वतंत्र रोग के रूप में चर्मदल का उल्लेख होना रोग का कुष्ठेतर 'बालमय' सिद्ध होने के साथ इसका विशेष महत्व भी द्योतित होता है। कुष्ठ और चर्मदल में भिन्नता ख्यापक कतिपय द्रष्टव्य स्थल निम्नोक्त है :—

(i) त्वक् के वर्णन - क्रम में कुष्ठ और चर्मदल के अधिष्ठान में विभेद है[२२]—

| आधार ग्रन्थ | कुष्ठ का आश्रय | चर्मदल का आश्रय |
|---|---|---|
| च.सं.शा. ७/४ | चतुर्थी त्वचा | ? |
| सु.सं.शा. ४/४ | चतुर्थी और पंचमी त्वचा | तृतीया श्वेता त्वचा |

(ii) वर्णन क्रम में चर्मदल को अनुक्रम १८ पर रखना भी कम आश्चर्य की बात नहीं। चरक ने कुष्ठ रोग के समानान्तर पृथक् रूप से चर्मदल रोग रक्तजरोगान्तर्गत विधिशोणितीय तथा विविधाशितपीतीय दोनों अध्यायों में क्रमसंख्या १८ पर दिया।[२३]

(iii) कश्यप ने चत्वारिंशत् पित्तविकारों में क्रमसंख्या १८ पर ही चर्मदल रखा है।[२४] चरक ने भी पित्त के नानात्मज विकारों में क्रम संख्या १८ पर चर्मदल शब्द द्योतक 'चर्मदलनं' [पाठ भेद से 'चर्मावदरणं'] शब्द दिया है तथा क्रम संख्या १७ पर चर्मदल से ही सम्बद्ध शब्द 'त्वमवदरणं' आया है। 'चर्मदलमिति चर्मावदारणात्' कश्यप के इस वचन से चरकोक्त 'त्वमवदरणं और 'चर्मावदरण' दोनों शब्द चर्मदल सूचक हैं। कविराज गंगाधर ने यद्यपि अब सूक्ष्म विभेद अवश्य किया हैं—'त्वगवदरणं बाह्य त्वङ्मात्रविदीर्णता, चर्मावदरणं षण्णां त्वचां विदीर्णता।'[२५]

उक्त विवेचन से प्रतीत होता है कि चर्मदल कुष्ठ के

समान स्वतन्त्र या विशिष्ट त्वग्रोग है जिसे कश्यप ने बालामय के रूप में विशद रूप से प्रतिपादित किया है।

---

१. अब क्षुद्र कुष्ठ शब्द न देकर नव असाध्य कुष्ठों में इसे समाविष्ट किया गया है।

२. द्रष्टव्य—का० सं० चि० द्विव्रणीयचिकित्साध्याय, तथा खिल १४/५-६

३. एषा चर्मदलोत्पत्तिर्व्याख्याता वर्णरूपतः।
साध्यासाध्यविधानैश्च ···। तदेव खिल १४/१८

४. क एष चर्मदलो नाम व्याधिर्विसर्पमाणोऽग्नि-दग्धोपमरूपोऽत्याबाधकरो बालानामंगेषूपद्यते। तदेव १५/३

५. द्रष्टव्य-वाचस्पत्यम्।

६. का० सं० खिल १५/३



७. तदेव १५/४

८. का० सं० खिल १५/६; च० सं० चि० ७/३०; अ० हृ० नि० १४/९; सु० सं० नि० ५/१६

९. ···कुल प्रवृत्त्यादिभिरुपायैः···। का० सं० खिल १५/४।

१०. द्रष्टव्य है कि कुष्ठान्तर्गत वर्णित चर्मदल के भेद या प्रकार का अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता।

११. द्रष्टव्य—का० सं० खिल १५/

१२. ···मण्डलीभूतं त्वग्रक्तं मांसमेव च विदहन् दृश्यते व्याधि राशीविष विषोपमः। सुकुमाराणां कुमाराणां विशेषतः। तदेव खिल १४/४

१३. सु० नि० ५/१०

१४. —रक्तं सकण्डूसस्फोटं सरुग्दलति चापियत्।
तच्चर्मदल माख्यातं सस्पर्शासहमुच्यते॥
—च० चि० ७/२४

—स्युर्येन कण्डूव्यथनौषचोषास्तलेषु तच्चर्मदलं वदन्ति।
—सु० नि० ५/१०

—सस्फोटं मस्पर्शसहं कण्डूषातोददाहवत्। रक्तं दलच्चर्मदलम्॥ —अ० हृ० नि० १४/२१

१५. अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः।
क्वचित् सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः॥
कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दि रेतैस्तु कफपैत्तिकः॥
—सु० नि० १३

१६. का० सं० खिल १५।१५

१७. यद्यपि चरक (च० चि० ७) ने कफपैत्तिक कुष्ठ को कृच्छ्रसाध्य मानते हुए भी कृच्छ्रसाध्य कुष्ठों के गणनाक्रम में कुष्ठ-किलास-दद्रु आदि के साथ 'चर्मदल' (पित्तश्लेष्म प्रधान) का नाम नहीं दिया।

१८. वाग्भट ने भी 'कृच्छ्रं पित्तद्वन्द्वम्' (अ० हृ० नि० १३।३२) माना है। रक्ताश्रयो रक्तभवः पित्त रक्ते व्यवस्थितम्। का० सं० खिल १४।१७।

१९. का. सं. खिल १५/१५-१७

२०. अर्जुनश्च कदम्बश्च कुष्ठं गैरिक मेव च।
लेपनं त्वचि दोषाणां वारणं बालकस्य च। इ.सं. बाल२०

२१. व्याघ्री तैलमिदं हन्यात् त्वग्दोषान् निखिलानपि। (अ० २०)

२२. तृतीया सिध्मकिलास सम्भवाधिष्ठाना, चतुर्थी-दद्रु कुष्ठसम्भवाधिष्ठाना। च. शा. ८/४
—तृतीया श्वेता नाम चर्मदला जगल्लीमषकाधिष्ठाना, चतुर्थी ताम्राविविधकिलास कुष्ठाधिष्ठाना, पंचमी वेदिनी नाम कुष्ठविसर्पाधिष्ठाना। सु.शा. ४/४

२३. कण्ड्वरूः कोठपिडका कुष्ठ चर्मदलादयः।
विकाराः सर्व एवैते विज्ञेयाः शोणिताश्रया : च.सू. २४/१६

२४. रक्त प्रदोषाज्जायन्ते······कुष्ठविसर्पपिडका······ दद्रुश्चर्मदलं श्वित्रं···। च.सू. ८७/११-१२

२५. का. सं. सू. २७/३५
च. सू. २०/१४ पर

---

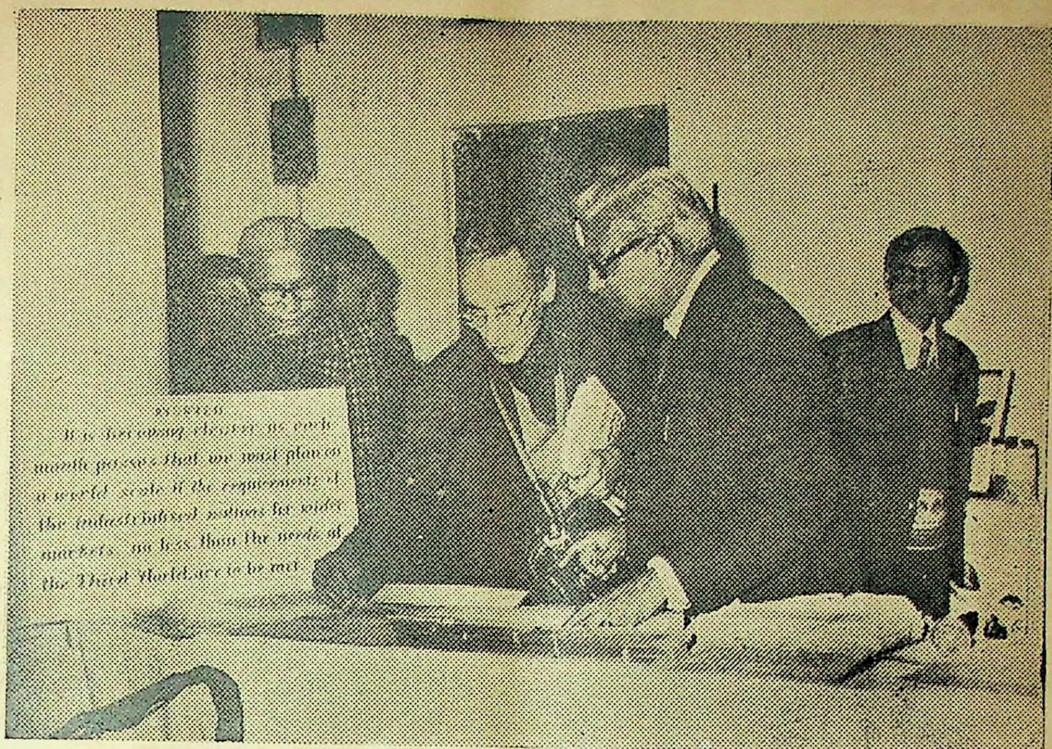
# आधुनिक भेषज अनुसंधान एवं आयुर्वेद

वैद्य शिव सागर शुक्ल
रीडर, मौलिक राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय
सिद्धांत एवं संहिता, लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ

विश्व के वैज्ञानिक इतिहास में वेदों को मानव ज्ञान का प्राचीनतम स्रोत स्वीकार किया जाता है। वेदों में वर्णित भावरूप ज्ञानराशि को मूल आधार मानकर विविध ज्ञान, संस्कृति, कला, शिल्पादि का कालान्तर से आवश्यकतानुसार विकास होता आया है। वैदिक ज्ञान - शृङ्खला की अन्तिम कड़ी अथर्ववेद है। आयुर्वेद चिकित्सा-विज्ञान को अथर्ववेद का उपवेद स्वीकार किया गया है। क्योंकि आयुर्विज्ञान-सम्बन्धी सर्वाधिक क्रमबद्ध विवेचन अथर्ववेद में ही उपलब्ध होता है। यदि देखा जाय तो आयु, भेषज, वनस्पति-सम्बन्धी ज्ञान, बीज रूप में वेदों की अन्य पूर्ववर्ती संहिताओं में भी उपलब्ध होते हैं। वैज्ञानिक आधार एवं निर्दुष्ट उपादेयता को दृष्टि में रखकर आयुसंरक्षण एवं रोगापनयन के विविध विषय विचारणीय हैं। किन्तु इतना तो सर्वविदित तथ्य है कि आयुर्वेद के मौलिक सिद्धांत स्वभाव संसिद्ध होने के कारण अद्यावधि अपनी उत्कृष्ट और निर्दुष्ट उपादेयता को अबाध गति से अक्षुण्ण रखते हुए जनस्वास्थ्य के संरक्षण का मार्ग प्रशस्त किये हुए हैं। इन प्राचीन वैज्ञानिकों ने इस ज्ञानार्जन में क्या-क्या प्रक्रियायें (Methodology) अपनायी थीं तथा इन अनुभवात्मक आत्मदृष्टिपरक (Self Realization) प्रयोगशाला का क्या प्रारूप रहा है और उस प्रयोगशाला में बैठकर विशिष्ट प्रक्रियाओं एवं साधनों को अपना कर इन आधारभूत मौलिक सिद्धांतों की स्थापना की थी, जो वस्तुशून्य (Subjective) एवं वस्तुनिष्ठ (Objective) दोनों प्रकार के परीक्षणों का विवेचन एवं व्यवहार प्रस्तुत करते हैं। उन सार्वभौम सत्य (Universal Truth) आधारभूत मौलिक सिद्धांतों का सर्वात्मना न हो तथापि आंशिक रूप से ध्यान आज की अनुसन्धान - प्रक्रिया (Methodology) में रखना पड़ता है।

मानव के स्वसंवेद्य भाव आज भी उतनी ही मात्रा में कालान्तर के प्रभाव से अनाक्रान्त रहकर सर्वसाधारण को बोधगम्य और उपादेय सिद्ध हो रहे हैं..उदाहरणार्थ- शीत, उष्ण, गुरु, लघु, संतर्पण-अतर्पण, बृंहण-लंघन), सुख, दुःख, राग-द्वेष, काम-क्रोध, आदि शारीरिक एवं मानसिक भाव अब भी व्यावहारिक तथ्य हैं। इनके सुपरिणाम एवं कुपरिणाम से प्रत्येक प्राणी प्रतिदिन प्रभावित हो रहा है। यदि उन वैज्ञानिकों ने अपने अनुभवात्मक परीक्षणों के आधार पर आमला और हरीतकी सदृश सर्वसुलभ द्रव्यों को सभी के लिए रसायन एवं व्यस्थापिनी बताया है तो वह तथ्य आज भी स्थिर है। इसका कारण यह है कि आमला एव हरीतकी द्रव्य की पूर्ण ईकाई है तथा उन्हें पूर्ण रूप में ही इस शरीर की पूर्ण ईकाई में प्रयोग किया जाता है। इसे इस प्रकार समझें कि उनके किसी एक अंश विशेष का प्रयोग न करके संपूर्ण प्रयोज्यांग का प्रयोग होता है। इसलिये इनके गुण-कर्मों में पूर्णता एवं स्थिरता आज भी चली आ रही है। यह पूर्णता एवं स्थिरता तब तक बनी रहेगी जब तक उनकी मौलिक तात्विक संरचना की विकृति न करते हुए प्रयोग किया। इन द्रव्यों का बाह्याभ्यन्तर प्रयोग सात्म्य (Assimilative) होकर समस्त प्राणी मात्र को स्वगत वैचित्र्य के आधार पर न्यूनाधिक मात्रा में उपादेय ही होगा। असात्म्य (प्रतिकूल) होकर अनुपादेय नहीं होगा।

भेषज अनुसंधान एवं परीक्षण की आधुनिक प्रक्रिया के आधार पर औषधि द्रव्यों की निश्चित एवं उद्घोषित गुण एवं कर्म और तज्जनित चिकित्सकीय उपादेयता (Clinical utility) में दीर्घकालीन स्थैर्य की कौन कहे तत्काल में भी वे विवाद - रहित निर्दुष्ट नहीं होते हैं। उनकी सार्वकालिक निर्दुष्ट उपादेयता को कहने में वैज्ञानिकों के मन में संदेह एवं संकोच उत्पन्न हो जाता है। यदि कुछ अंशों में उपादेयता सिद्ध हुई भी तो प्रायः अन्य अंशों में अवांछनीय प्रभाव अवश्य होते हैं। इसके साथ-साथ देश-काल, प्रकृति, वय एवं असात्म्यता के आधार पर



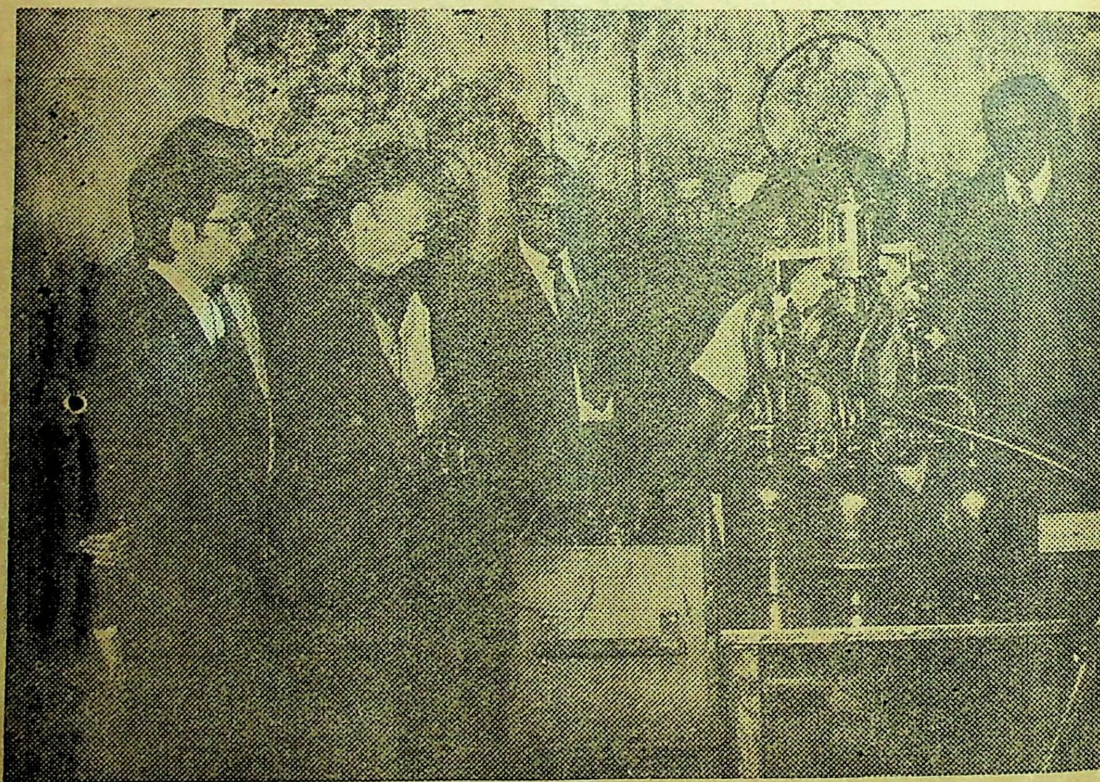
प्रदर्शनी का एक और दृश्य । वैद्यनाथ के वरिष्ठ अधिकारियों के साथ डा० रोसू आयुर्वेद की पांडुलिपियों की निरीक्षण करते हुए ।



डा० रोसू द्वारा वैद्यनाथ प्रतिष्ठान की प्रमुख आयुर्वेद मासिक पत्रिका 'सचित्र आयुर्वेद' के कार्यालय का निरीक्षण । चित्र में डा० रोसू स० आयुर्वेद सम्बन्धी जानकारियां नोट करते दिखायी दे रहे हैं ।



डा० रोसू द्वारा वैद्यनाथ के वरिष्ठ अधिकारियों एवं पत्रकारों के साथ पैकिंग विभाग का निरीक्षण।



डा० रोसू वैद्यनाथ के पटना स्थित निर्माणशाला में आसव-अरिष्ट विभाग का निरीक्षण कर रहे हैं।

नाना उपद्रवों एवं कुप्रभावों ( Different complications and side effcts) के कारण औषधि - निर्माता, चिकित्सक, एवं सर्वाधिक रूप से प्रभावित रोगी परेशान हो रहा है। ये तीनों निजी क्षणिक स्वार्थ सिद्धि से प्रेरित होकर औषधि-जनित विषाक्त प्रभावों को हटाने के लिये क्रमश: औषधि-निर्माण, निर्देश, एवं प्रयोग प्रारम्भ कर देते हैं। यह प्रक्रिया आधुनिक जगत् में चिकित्सक समाज के लिये अभिशाप बनकर दिन प्रतिदिन असाध्य होती आ रही है। इन समस्याओं को कोई सामान्य चिकित्सक माने या न माने परन्तु प्रमुख चिकित्सा वैज्ञानिक जिनकी कल्पना विकारशीलता एवं व्यावहारिकता की स्थिति रोग और द्वेष से रहित है पर्याप्त चिन्तित होकर अत्यधिक जागरूक दिखाई पड़ रहे हैं। शनैः-शनैः क्रान्तिदर्शी वैज्ञानिकों की मानसिक स्थिति इस प्रकार बदलती दिखाई पड़ रही है जो 'आइंस्टाइन' जैसे महान वैज्ञानिक की परमाणु विस्फोट के कारण उनके कुत्सित परिणामों को देखकर जीवन के अन्तिम चरण में हुई थी। आप सभी को सुविदित होगा कि 'आइंसटाइन,' अपने जीवन के अन्तिम चरण में वैज्ञानिक की अपेक्षा अधिक दार्शनिक (अध्यात्म-निष्ठ) हो गये थे।

विचारणीय है कि ऐसी असंगतियां चिकित्सक-समाज में हो रही है ? यह सर्वविदित तथ्य है (तथा जो अविज्ञ है उन्हें जान लेना चाहिए) कि मौलिक तत्वों के सहयोग एवं समवाय से यह शरीर निर्मित हुआ है। उन्हीं तत्वों की न्यूनाधिकता (विषमता) से शरीर में विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं —

—येषामेव हि भावानां संपत् संजनयेन्नरम्।
तेषामेव विपद् व्याधीन विविधान समुदीरयेत्॥
(च० सू० २५/२९)

चिकित्सा का तात्पर्य है कि उन न्यूनाधिक भावों का विवेचन एवं विनिश्चय करके यथा आवश्यक सामान्य एवं विशेष सिद्धांत के आधार पर बाह्य जगत् में स्थित तत्समान विविध भावों के द्वारा आपूर्ति कर दें। यह विवेचन तथा विनिश्चय एवं तदुपरान्त समान भावों की आपूर्ति की प्रक्रिया बहुत ही जटिल एवं असाधारण है। अत: विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। किंचित् असावधानी के परिणामस्वरूप विविध उपद्रवों का सामना प्रतिदिन रोगी को प्रायः करना पड़ जाता है। यदि इनका ध्यान चिकित्सा में न रखा गया तो मनुष्य को स्वास्थ्य के विपरीत अन्य व्याधि उपहार-स्वरूप प्राप्त हो जाती है। वैसे यदि हम देखें तो इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर अन्यान्य विविध चिकित्सा-पद्धतियां भी अपने चिकित्सा-व्यापार में विविध साधनों से अग्रसरित हो रही हैं। तो कौन-सी ऐसी मौलिक विभेदक स्थिति व्याप्त है जो एक पद्धति की प्रक्रिया द्वारा साम्यस्थापन (स्वास्थ्य) बिना किसी अन्य उपद्रवों को उत्पन्न करते हुए प्राप्त होता है। जो कि विशेष चिन्ता एवं विचार करने की बात है। रोगापनयन का उद्देश्य तो समान ही है इसमें किसी प्रकार का भेद नहीं प्रतीत होता, किन्तु उद्देश्य-प्राप्ति के साधन भिन्न-भिन्न हैं तथा उनके प्रयोग की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न है। क्योंकि यदि साधन (Means) निर्दुष्ट होंगे तो उनसे प्राप्त साध्य भी निर्दुष्ट ही होंगे। कुछ लोग यह आशंका कर सकते हैं कि प्राय: साधन के आधार पर साध्य होता नहीं दिखायी पड़ रहा है। होता है कालान्तर (Delayed action) से। यदि कोई व्यक्ति उष्णवीर्य युक्त द्रव्यों का सतत् दीर्घकाल तक सेवन करता चला आ रहा है किन्तु पैत्तिक-दोष प्रकोप का लक्षण उत्पन्न नहीं होता है। दूसरा व्यक्ति उष्ण वीर्य प्रधान आहार द्रव्य के अल्पकालीन सेवन मात्र से पित्तज रोगों के लक्षण से ग्रसित हो जाता है। तो इस प्रक्रिया में उष्ण वीर्य आहार की विषमता नहीं है ऐसी बात नहीं, बल्कि आहार - सेवन करने वाले व्यक्ति के प्रकृति, वय, देश, काल, सात्म्य, संयोग आदि व्यक्तिगत भावों के परिणामस्वरूप प्रयोग किया गया उष्णवीर्ययुक्त आहार-रूपी साधन की कालान्तर की क्रिया (Delayed action) से है। अत: उस द्रव्य ने अपनी क्रिया का प्रभाव समान रूप से दोनों पर प्रदर्शित किया किन्तु उनके स्वगत विशिष्ट मौलिक संरचनाओं के भेद के कारण विभेदक स्थिति उत्पन्न हुई है।

यदि औषधि के तात्विक संरचना एवं उनके प्रयोग के प्रतिफल निर्धारण पर ध्यान दें तो यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी। एक पद्धति अपनी चिकित्सा साध्य की सिद्धि हेतु मात्र औषधि-निर्माण एवं विभिन्न प्रकार के प्रयोग पर ही बल देती है। और विविध नवीन संसाधनों द्वारा प्रकृति प्रदत्त एवं संरचित औषधि द्रव्यों की क्रियाकारित्व-शक्ति (Energy of Active principles) को कृत्रिम

साधनों से बढ़ाकर दिन-प्रतिदिन द्रव्यों में आशुकारिता (Quick Action) के एकमात्र लक्ष्य को ध्यान में रख कर अन्य हितकर एवं उपादेय भावों को ध्यान में न रख कर विविध प्रयोगशालीय परीक्षण आये दिन क्षुद्र कोटि के जन्तुओं पर किया जा रहा है। जिनके विविध विस्तृत, चामत्कारिक परिणाम चिकित्सक समाज के समक्ष, प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इसी प्रकार की औषधियाँ प्रायः भविष्य में प्रयोग करने पर विचित्र उपद्रवों का कारण बनती हैं। ऐसा क्यों ? यह शरीर जो विविध रोगों का अधिष्ठान है तथा विविध औषधियों का कार्यस्थल है। जिन तात्विक संरचना (स्थिति, देश, क्रम, प्रवृत्ति आदि) से बना है—और तत्पश्चात् उस शरीर से संरक्षण, पोषण, अभिवर्धन-हेतु हमने प्रतिदिन के व्यवहार में जिस प्रकार की तात्विक संरचना (Substantial arrangements) का आहार-द्रव्य विहार (पर्यावरण) का प्रयोग करके अपने इस शरीर को अभ्यासी बना दिया है। जिन आहार-द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है उनका शरीर में विविध पाचकाग्नियों द्वारा एक सुव्यस्थित, सुनिश्चित, परिणमन प्रक्रिया (Metabolic process) के द्वारा आहार के तत्व परिवर्तित होकर सामान्य एवं विरोध के सिद्धांत के आधार पर यथाआवश्यक सारभूत पोष्य भावों से विविध सूक्ष्मातिसूक्ष्म-अंग प्रत्यंगों की संरचना का संरक्षण, अभिवर्धन, पोषण, प्रतिदिन एवं प्रतिक्षण करता चला आ रहा है। इस प्रकार की प्रक्रिया के अभ्यासी, (सात्म्यी) शरीर में यदि प्रतिक्षण आहार की तात्विक संरचना के समान या उसी से मिलता-जुलता (साम्यभाव) प्रकृति (स्वभाव) युक्त तात्विक सरचना की औषधि शरीर के रोगग्रस्त होने पर प्रयोग की जाय तो शरीर में प्रविष्ट होकर प्रतिदिन की अभ्यस्त आहार परिणमन की प्रक्रिया की ही भाँति औषधि परिणमन (Metabolised) होता रहेगा। यह प्रक्रिया शारीरिक एवं मानसिक संरचना के बिना किसी प्रकार का अधिभार पहुंचाये हुये उपादेय होगी। जब आपके इस प्रस्ताव के प्रयोग के परिणाम स्वस्थ शारीरिक मानसिक सरचना को अधिभार एवं तनाव (Excess Load & Tension) नहीं होता, तो उपद्रव भी होने की सम्भावना कम होगी। इन आशुक्रियाकारी औषधियों के प्रयोग का मूल कारण आधुनिक भौतिकवादी समाज की अत्यधिक व्यस्तता एवं आतुरता तथा तीव्र गतिशीलता की माँग की पूर्ति है। क्योंकि इस परिवेश में सभी लोग प्रत्येक औषधि का आशुकारित्व फल (Quick Acting Result) चाहते हैं जिसकी पूर्ति आधुनिक चिकित्सक एवं वैज्ञानिक अपने ढंग से कर रहे हैं। किन्तु आशुक्रिया के घातक परिणामों का ज्ञान साधारण जन को तो है नहीं हम लोग भी ठीक से नहीं बता पा रहे हैं, क्योंकि मिथ्या प्रशंसा एवं भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति की आकांक्षा से अभिभूत हैं। यह उसी प्रकार की स्थिति है जैसे ऐन्द्रजालिक अपने हस्तलाघव से सब कुछ बना देता है किन्तु स्थायी एवं सत्य नहीं होता है। सामान्य लोगों की ऐसी धारणा है कि इन आशुक्रियाकारी औषधियों से शीघ्र स्थायी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है, जो गलत है। आजकल हम जिस काल, देश, प्रकृति, वय, सत्व, सात्म्य एवं आहार के द्वारा अभ्यस्त होकर प्रतिक्षण पोषित एवं अभिवर्धित हो रहे हैं उनका ध्यान दिये बिना औषधियों के प्रयोगात्मक परीक्षण के परिणाम निश्चित कर उन्मुक्त हस्त से शरीर में औषधियों का प्रयोग करना गलत है। जिसका परिणाम यह होता है कि वह चिकित्सकीय औषधि निर्दिष्ट, स्थायी सम्पत्ति, योग्यता, आदि उपादेय गुणों से वंचित होकर कुछ काल के पश्चात् चिकित्सक, रोगी एवं औषधि-निर्माता द्वारा तिरस्कृत कर दी जाती है। यदि अनभिज्ञतावश औषधि का प्रयोग किया जाता है तो क्रमशः तीनों यश, स्वास्थ्य एवं अर्थहीन का कुपरिणाम भोगकर अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय स्वास्थ्य को भी कुप्रभावित करते हैं। अतः किसी भी व्यक्ति हेतु औषधि निर्धारण में यदि यह मूलभूत सिद्धांत-परक बातें ध्यान में रखी जाय तो आज भी अपनी उपादेयता से चिकित्सक समाज को दीपस्तम्भ की भांति मार्ग अवबोध कराने में सफल होगी। यथा—

'दूष्यं देशं बलं कालं अनलं प्रकृतिं वयः।
सत्वंसात्म्यं तथा आहारमवस्थाश्च पृथग्विधः॥
सूक्ष्म सूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिस्मणे।
यो वर्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित्॥
(अष्टांग हृदय सू० १२/५७-६८)

इन अनुभूत सिद्धान्तों में दूष्य (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) शरीरस्थ भाव तथा मन। देश जांगल, आनूप, साधारण) बाह्यभाव, रोगाधिष्ठान शरीर,

एवं मन तथा औषधि दोनों को सतत् प्रभावित करते हैं। बल (सहज, कालज, युक्तिकृत) जो शरीर, रोग एवं औषधि तीनों को प्रभावित किया करते हैं। काल (नित्यग, आवस्थिक) ऐसा व्यापक भाव जो जाने-अनजाने में सभी अपने प्रभाव से प्रभावित कर रहा है। ऋतुओं के प्रभाव से कोई भी वंचित नहीं है—अर्थात् इनका समय-समय पर प्रभाव शरीर, मन तथा इन पर प्रयोग होने वाली औषधियों पर पड़ा करता है। **अनल** (अग्नि) भौतिकाग्नि, सात धात्व-अग्नियां, एक जाठराग्नि ये सभी अग्नियां मिल कर शरीर की आवश्यकतानुसार बाह्यात्त तत्व का परिणमन करते हैं। **प्रवृत्ति** (शारीरिक एवं मानसिक) शारीरिक प्रकृति वात, पित्त एवं कफ दोषानुसार, मानसिक प्रकृतियां, सात्विक,राजस एवं तामस के अनुसार होती हैं, जिनका विचार रोग-विनिश्चय एवं औषधि-प्रयोग के समय अनिवार्य रूप से होनी चाहिये। **वय** से तात्पर्य रोगी रोग एवं औषधि की अवस्था विशेष से है—जिनका ध्यान औषधि निर्धारण के समय रखना परमावश्यक है, क्योंकि इन विविध अवस्थाओं का सम्बन्ध शारीरिक एवं मानसिक दोषों से होता है। **सत्व** (मन)-(प्रवर, मध्यम, हीन) वे ऐसे सामान्य भाव हैं जिनका रोगी के सत्व - विनिश्चय के उपरान्त औषधि का निर्माण एवं निर्धारण होना चाहिये। **सात्म्य**—आहार एवं विहार (पर्यावरण) की सात्म्यता (अनुकूलता) का विचार रोग-विनिश्चय एव आहार तथा औषधि-निर्धारण में अवश्य किया जाना चाहिए। क्योंकि सात्म्य भाव उपयोगी एवं सुखकारक होते हैं। असात्म्य अनुपयोगी एवं दुखकारक होते है। **आहार अवस्था**—अष्ट आहार विधि विशेषायतन् (प्रकृति, करण, संयोग, राशि, देश, काल, उपयोगिता एव उपयोग संस्था) का भी औषधि निर्धारण के समय ध्यान रखना चाहिये। इन उपरोक्त विविध मूर्त्त एव अमूर्त्त भावों को दोष - दूष्य एवं औषधि निरुपण के समय सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से समीक्षा करनी चाहिये। क्या कोई भी भेषज अनुसन्धानकर्ता विशेष रूप से आयुर्वेदीय अपने अनुसन्धान के समय इन सभी भावों को सर्वात्मना या अंशतः परिपालन एवं समीक्षा करता है ? यदि समीक्षा करके औषधियों का गुणकर्म एवं प्रयोग निर्धारित करता है और फिर भी औषधि अनुपादेय सिद्ध हो तो विडम्बना एवं चिन्ता की बात उत्पन्न होती है। यदि इन उपरोक्त भावों का सर्वात्मना विचार एवं परिपालन अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा न हो रहा हो और मात्र क्षुद्र प्राणियों के क्षुद्र एकांगों पर एककालिक विकृति औषधि के परिणाम का विनिश्चय कर चिकित्सा जगत् में हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न की जा रही है, जो समाज एवं राष्ट्र के लिए भविष्य में आत्मघाती सिद्ध हो सकती है।

इस विवेचन में मेरा यही मन्तव्य है कि किसी अनुसन्धान में अन्तिम निष्कर्ष की प्राप्ति मात्र वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Objective experiment) पर ही नहीं संभव है, बल्कि वस्तुनिष्ठ के साथ-साथ आत्मनिष्ठ विश्लेषण (Subjective Analysis) एवं इनके अतिरिक्त जो अन्य अमूर्त भाव देश-काल (Environment), प्रकृति, बल, आदि हैं, जो अपने प्रभाव से इस जगत् के प्रत्येक वस्तु को क्षण-प्रतिक्षण प्रभावित कर रहे हैं। जब तक हम अपने अनुसन्धान की प्रक्रिया में इन विविध दृश्य एवं अदृश्य भावों का यथासम्भव विश्लेषण एवं विचार नहीं करेंगे तब तक औषधि एवं उसके प्रभावी क्रियाकारित्व की निर्दिष्ट उपादेयता दीर्घकाल तक नहीं मिल सकेगी। यह अनुसन्धानकर्ताओं के आत्म-विश्लेषण की बात है। आयुर्वेद ने अपने अनुभवात्मक परीक्षण के समय शारीरिक भावों एवं बाह्य भावों में सामजस्य स्थापित किया है क्योंकि इन दोनों का मूल स्रोत एक ही है इसलिये आयुर्वेद में लोकसंमित पुरुष की बात कही गयी है। 'एवंमयं लोकसंमितः पुरुषः। यावन्तो हि लोके मूर्तिमन्तो भागविशेषास्तावन्तः पुरुषे, यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके इति, बुधास्त्वेवं द्रष्टु मिच्छन्ति।' क्योंकि जब तक वाह्यभ्यन्तर भावों को जानकर एवं तद्नुकूल उन परिवेश में रहने वाले प्राणियों हेतु तद्नुसार सामान्य एवं विशेष आचरण संहिताओं (General & specific code & conducts for the society) का निर्धारण करना ही अनुसन्धान का चिरस्थायी विकल्प सम्भव हो सकता है। पुरा भारतीय वैज्ञानिकों ने जिन मूर्त एवं अमूर्त भावों की सत्ता का अनुभव किया है उनका भी विचार उपादेयता एवं व्यावहारिकता को दृष्टि मे रखकर करना चाहिए। मूल त्रिगुण शक्तियों (सात्विक, राजस, तामस) का ही विवेचन करें, जो समस्त जड़-चेतन जगत में न्यूनाधिकता के आधार पर विभिन्नता एवं विचित्रता प्रकट करते हुए व्याप्त हैं। इन मूल शक्तियों द्वारा जगत् की विभिन्नता शक्तियों को दर्शाया

गया है। एक शक्ति (गति) (Energy) सात्विक है तो शरीर एवं वाह्य जगत् के समस्त द्रव्यों में व्याप्त है तथा लघु, चेतन पदार्थों में प्रकाशक, शुद्ध, ज्ञान, आनन्द, कामना का कारण है। दूसरी तामस शक्ति जो गुरु, जड़ पदार्थों में विशेष रूप से अज्ञान, मोह, प्रमाद, आलस्य निद्रा, आवरण, अप्रवृत्ति, मेह, दुख का कारण है। तीसरी राजसशक्ति—इन दोनों के मध्य में अवलम्बन का कार्य करती है तथा विभिन्न शक्तियों का कारण है : सात्विक मात्र उर्ध्व गति तामस मात्र अधोगति एवं राजस इन दोनों के केन्द्र में अवष्टम्भक का कार्य करता है। अर्थात् रज, क्रिया शक्ति की वह बिन्दु है जहाँ पर उर्ध्व एवं अधोगति समान रूप होकर अन्दर एवं बाहर समान बल प्रदान कर शून्य केन्द्र बिन्दु निर्धारित करता है। जगत् की निरुक्ति (गच्छतीति जगत्) अर्थात् जो बराबर चलता (क्रियाशील) है वह जगत् है। यह जो दृश्य जगत् है वह मात्र सूक्ष्मातिसूक्ष्म कम्पनों (Vibrations) का समष्टि स्वरूप है। भौतिक पदार्थों का जो विविध स्वरूप दिखाई दे रहा है वह मात्र सूक्ष्म एवं स्थूल कम्पनों (Subtle and gross Vibrations) का ही रूप है। जो कल्पित शक्तियां हैं उन्हें सत्व, रज एवं तामस के रूप में जाना जाता है। इस स्थूल एवं सूक्ष्म (दृश्य एवं अदृश्य) गतियों (शक्तियों) का यथासम्भव ध्यान रखना तदनुसार अपने अनुसन्धान की प्रक्रिया का निर्धारण एवं उनसे प्राप्त परिणामों का आकलन करना ही श्रेयस्कर होगा। उदाहरणार्थ दुग्ध-गोदुग्ध (Cow's-Milk) माहिष दुग्ध (Buffalo Milk) को लीजिये। रासायनिक विश्लेषण (Chemical analysis) में मात्र वसा (Fat) ही न्यूनाधिकता के अलावा कुछ भी नहीं बताया जाता परन्तु सेवन के पश्चात् गोदुग्ध सात्विकता के कारण सात्विक प्रभाव पैदा करता है। तथा माहिष दुग्ध तामस होने के कारण तामस प्रभाव उत्पन्न करता है। यह तो एक अतिसाधारण उदाहरण है। इस विश्व में उपलब्ध चेतन-जड़ पदार्थ विविध (मूर्त एवं अमूर्त भाव रूपी) जटिलताओं से व्याप्त है। जिनका अधिकाधिक ज्ञान, प्रयोग, उपादेयता, वाह्य जगत् में व्याप्त भावों के साथ सामंजस्य शक्ति पर किया जाना चाहिये। अन्यथा यह विश्व नष्ट हो जायेगा।

अन्त में मेरे इन विचारों से यदि कहीं किसी को उत्कलेश पहुंचा हो तो क्षमा करें।

# चरक संहिता में मन का स्वरूप

श्री देवव्रत चौबे, एम. ए. (दर्शन)

चरक संहिता में मनस्तत्व का विचार अत्यन्त गंभीरता से हुआ है। यह विचार आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से कितना उपादेय है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। पाश्चात्य विचारक मन को चेतना से अतिरिक्त नहीं मानते हैं जबकि भारतीय विचारक मन को चेतना से पृथक मानते हैं। अब आप प्रश्न पूछ सकते हैं कि यदि मन अचेतन है तो वह नाना प्रकार के कार्यों को संपादित कैसे करता है? इसका उत्तर देते हुए चरक कहते हैं कि आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित होने पर वह संपूर्ण कार्यों को संपादित करता है। यद्यपि संपूर्ण कार्य वही करता है फिर भी उसे कर्त्ता नहीं कहा जाता, आत्मा को कर्त्ता माना जाता है।[१]

मन के संदर्भ में मुख्यतः भारतीय वाङ्मय में चार प्रश्न चर्चित हैं वे ये हैं—(१) क्या मन इन्द्रिय है? (२) क्या एक शरीर में एक ही मन है? (३) क्या मन अणु परिमाण होता है या विभु? या मध्यम परिमाण का हुआ करता है? क्या मन भौतिक है या अभौतिक?

(१) क्या मन इन्द्रिय है? आयुर्वेद इस प्रश्न का विध्यात्मक उत्तर देता हैं। चरक-संहिता में मन को षड़िन्द्रिय कहा गया है।[२] मन ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों है। इन्द्रियाँ अपने विषयों को मन की अनुपस्थितिमें ग्रहण नहीं कर सकती। मन के द्वारा प्रेरित होने पर ही वे अपने विषयों को ग्रहण करती हैं।[३] आयुर्वेद में मन को अतीन्द्रिय कहा गया है।[१] चरक ने मन को अतीन्द्रिय मानने के निम्नलिखित कारण बतलाये हैं—

(१) मन अन्य इन्द्रियों की तरह केवल बाह्य विषयों का ही कारण नहीं है बल्कि आन्तरिक विषयों का भी कारण है।

(२) मन संपूर्ण इन्द्रियों का अधिष्ठायक है।

(३) सम्पूर्ण इन्द्रियार्थों को मन के द्वारा ग्रहण किया जाता है लेकिन मन को किसी भी इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता। अष्टांग-संग्रह में ऐसा ही विचार आता है।

सांख्य के विचारक भी मन को इन्द्रिय मानते हैं। उनका कहना है कि ग्यारह इन्द्रियों में मन दोनों ही प्रकार का अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय भी है क्योंकि मन से संयुक्त होकर चक्षु इत्यादि ज्ञानेन्द्रियां तथा वाक् इत्यादि कर्मेन्द्रियां अपने-अपने विषय में प्रवृत्त होती हैं अन्यथा नहीं।[२] नैयायिक भी मन को इन्द्रिय मानते हैं लेकिन स्मृति, बाह्य प्रत्यक्ष तथा अनुमान में वह इन्द्रिय का कार्य सम्पन्न नहीं करता। वेदान्त में मन को इन्द्रिय स्वीकार नहीं किया गया है।[३] भगवद्गीता में चरक के सदृश मन को छठवीं इन्द्रिय के रूप में स्वीकार किया गया है।[४]

(२) क्या एक शरीर में एक ही मन होता है? चरक का कथन है कि प्रत्येक शरीर में एक-एक मन

---

१. चेतनावान् यतश्चात्मा ततः कर्ता निरुच्यते। अचेतनत्वाच्च मनः क्रियावदपि नोच्यते ॥ चरक संहिता, शारीर स्थान ३ : ७६।

२. षडिन्द्रियप्रसादने। चरक संहिता सूत्र स्थान २६ : ४३

३. मनः पुरःसराणीन्द्रियाण्यर्थग्रहण समर्थानि भवन्ति। चरक संहिता सूत्र ८ : ७

---

१. अतीन्द्रियं पुनर्मनः चरक संहिता, सूत्र ८:४

२. सांख्यतत्त्वकौमुदी-प्रभा, डा. आद्या प्रसाद मिश्र श्लोक, २७, पृष्ठ २४३,

३. वेदान्त परिभाषा, प्रत्यक्ष प्रकरण, पृष्ठ ११

४. मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति। गीता, अध्याय १५:७

है ।[१] तब यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि यदि एक शरीर में एक ही मन है तो यह अनेक कैसे प्रतीत होता है ? इसके उत्तर में चरक का कथन है कि मन में तीन गुण पाये जाते हैं—सात्विक, राजसिक, तामसिक । यदि मन में सत्व की प्रधानता है तो उसे सात्विक कहा जाता है, यदि रज की प्रधानता हो तो उसे राजसिक कहते हैं और यदि तम की प्रधानता है तो उसे तामसिक नाम से अभिहित किया जाता है ।

आयुर्वेद में मन को सत्व भी कहा जाता है ।[२] आयुर्वेद में दो प्रकार के सत्व का वर्णन आया है । एक गर्भ-पिण्ड की दृष्टि से तथा दूसरा बर्द्धमान व्यक्ति की दृष्टि से । ये दोनों मनोमय स्तर के दो उपभेद हैं । आधुनिक मनोवैज्ञानिक विचारक डा० युंग ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव की मनोमय गुहा बहुत ही गहरी है । फ्रायड केवल बाल्य की मर्यादा तक मन की गहराई का पता लगा सके हैं । युंग ने 'Collective' या 'Radical' तक मन की गहराई को सिद्ध किया है । किन्तु प्राचीन भारतीय चिकित्सकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मन की गहराई पूर्वजन्म तक पहुंचती है । चरक का स्पष्ट कथन है कि गर्भ में पूर्व जन्म का मन सूक्ष्म शरीर और आत्मा के सहित प्रविष्ट होता है ।[३] यह मन जिस जाति का होगा उसी प्रकार की गर्भ की मानस प्रकृति का निर्माण होगा । पहले ही हम कह चुके हैं कि सात्विक, राजसिक तामसिक ये तीन ही मन के प्रकार हैं । पूर्वजन्म के ब्राह्म, ऐन्द्र, वारुण, कौबेट, गान्धर्व, आर्ष, याम्य ये सात सात्विक तरीके, आसुर, राक्षस, पैशाच, सार्प, प्रेत, शाकुन ये छः राजसिक तरीके, और पाशव, मत्स्य तथा

१. अणुत्वमथ चैकत्वं द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ ।

चरक संहिता, शारीर १ : १९

२. चरक संहिता, सूत्र ८ : ४

३. भूतैश्चतुर्भिः सहितः सुसूक्ष्मैर्मनोजवो देहमुपैति देहात् ।

कर्मात्मकत्वान्न तु तस्य दृश्यं दिव्यं विना दर्शन-मस्ति रूपम् ।।

चरक संहिता, शारीर २:३१

वानस्पत्य ये तीन तामसिक तरीके हुआ करते हैं ।[१] इस प्रकार मानव की सोलह विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ हुआ करती हैं ।

न्याय में भी प्रति शरीर में एक ही मन को स्वीकार किया गया है । वात्स्यायन का कथन है कि एक शरीर में एक ही मन होना चाहिए क्योंकि अनेक ज्ञान युगपद् उत्पन्न नहीं हो सकते (ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः) । यदि यह मान लिया जाय कि प्रति शरीर में अनेक मन हैं तो उसका सम्बन्ध एक ही साथ सम्पूर्ण इन्द्रियों से होगा और एक ही साथ सम्पूर्ण इन्द्रियों का ज्ञान होने लगेगा । परन्तु ऐसा होता नहीं । इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक शरीर में एक ही मन है ।

(३) मन के परिमाण को लेकर भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय में अनेक चर्चायें हुयी हैं । चरक ने मन को अणु माना है ।[२] किन्तु भाट्ट और योग सम्प्रदाय के अनुयायी मन को विभु मानते हैं । चरक का कथन है कि मन इतना सूक्ष्म है कि एक समय में एक ही वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, दो या दो से अधिक का नहीं । यही कारण है कि मन को विभु नहीं माना जा सकता । यदि मन को विभु मान लिया जायगा तो एक ही समय सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान हो जायेगा लेकिन ऐसा होता नहीं । उदाहरणार्थ, भोजन करते समय एक ही साथ उसके स्वाद, गंध, रंग आदि का ज्ञान नहीं होता, बल्कि क्रमशः होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही साथ हो रहा है । आयुर्वेद में एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण आता है कि यदि कमल के सैकड़ों पत्तियों को एक साथ रखकर सुई से छेदा जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण पत्तियां एक ही साथ छिद गयीं लेकिन वास्तविकता तो यह है कि एक के बाद दूसरी पत्तियां छिदती हैं । अपने अणुत्व के कारण मन की गति अत्यन्त तीव्र होती है । इसीसे ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही साथ कई कार्य होते हैं ।

चरक के अनुसार मन अणु है । मन का त्वचा से समवाय सम्बन्ध रहता है । स्पर्श इन्द्रिय ही एक ऐसी इन्द्रिय है जो हर एक इन्द्रियों में विद्यमान है । चूंकि त्वचा सारे शरीर में व्याप्त है इसलिए अणु मन भी

१. चरक संहिता शारीर ४ : ३७,३८,३९

२. अणुत्वमथ ...चरक संहिता, शारीर १ : १९

सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है।[१]

न्याय वैशेषिक के अनुसार भी मन अणु है। इसके मतानुसार मन विभु नहीं हो सकता। क्योंकि विभु द्रव्य में गति नहीं होती। चूंकि विभु गति में असमर्थ है इसलिए वह सम्पूर्ण वस्तुओं से संयुक्त ही रहता है। इसलिए यदि मन विभु हो तो वह सभी इन्द्रियों से सदा संयुक्त ही रहेगा और तब एक ही समय अनेक ज्ञान घटित होगा। परन्तु ऐसा नहीं होता।[२]

वेदान्त का मन के परिमाण के सम्बन्ध में अपना एक विशिष्ट मत है। वेदान्ती मन को मध्यम परिमाण मानते हैं। अणुत्व का खण्डन करते हुए शंकराचार्य का कथन है कि 'अणु अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे एक दीपक का प्रकाश एक स्थान पर ही रखे जाने पर भी वहाँ से सारे कमरे में फैल जाता है। इस उत्तर में शंकर का कथन है कि गुण द्रव्य के परे नहीं जा सकता। दीपक की ज्वाला तथा उसका प्रकाश परस्पर द्रव्य तथा गुण के रूप में सम्बद्ध नहीं है। दोनों ही अग्निमय द्रव्य हैं, केवल ज्वाला में अवयव अधिक एक-दूसरे के निकट है किन्तु प्रकाश में वे अधिक दूरी पर एक-दूसरे से पृथक् पृथक् रूप में हैं।

विभुत्व का खण्डन करते हुए वेदान्तियों का कथन है कि यदि मन विभु होता तो कोई भी व्यक्ति किसी भी समय किसी भी वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर सकता लेकिन ऐसा नहीं होता है। इससे सिद्ध होता है कि मन विभु भी नहीं है।

१. चरक संहिता, सूत्र स्थानम् ११:३८

२. न्याय सूत्र ३. २. ८

इस प्रकार की चर्चा पाश्चात्य जगत में नहीं हुयी है। इसका कारण यह है कि वहां पर मन को जड़ नहीं माना गया है। किन्तु भारत के प्रायः विचारक इसे जड़ मानते हैं। इसी कारण इसके आकार के सम्बन्ध में अनेक मत प्रस्तुत किए गए हैं।

(४) मन भौतिक है या अभौतिक ? यह प्रश्न बड़ा ही जटिल है। चरक ने अथवा आयुर्वेद ने स्पष्टतः यह कहीं भी नहीं कहा है कि मन भौतिक है या अभौतिक। किन्तु फिर भी कुछ प्रमाणों के आधार पर यह तो कहा ही जा सकता है कि मन भौतिक है। मन की गणना चरक ने इन्द्रिय के रूप में की है और प्राचीन भारतीय चिकित्सा में इन्द्रियों को भौतिक माना गया है।[१] अतः इस आधार पर मन को भौतिक माना जा सकता है। दूसरा आधार यह है कि सुश्रुत संहिता में एक स्थल पर वर्णन आया है कि पांच तत्वों अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, अग्नि और वायु के संयोग से ही सम्पूर्ण पदार्थों की उत्पत्ति होती है।[२] इस तर्क के आधार पर भी मन को भौतिक माना जा सकता है। इस मत की पुष्टि श्रुति के द्वारा भी होती है। श्रुति का कहना है कि जैसा अन्न खाओगे वैसा ही मन बनेगा।

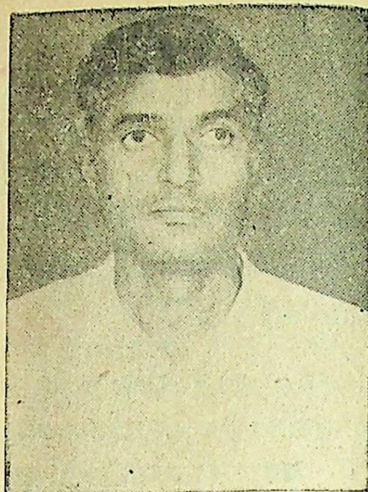
नैयायिक मन को अभौतिक मानते हैं। उनका कथन है कि मन अणु होने के कारण अनन्त है, निरवयव है। वेदान्त में मन को भौतिक माना गया है। अपने मत की पुष्टि में श्रुति प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। मन की उत्पत्ति अन्न (पृथ्वी) से हुयी है, प्राण की जल से और वाक् की उत्पत्ति तेज से हुयी है। इससे सिद्ध होता है कि मन भौतिक ही है।

१. भौतिकानि चेन्द्रियाणि आयुर्वेदे वर्ण्यन्ते]। सुश्रुत-सहिता, शारीर स्थान १:१४

२. सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थानम् ४१:३

# Report on Study tour to China Regarding Traditional Medicine

Vaidya **S. K. Mishra**
Asstt. Adviser (Ayurveda)
Ministry of health & family Welfare
Govt. of India, New Delhi



**Under World health organisation programme Vaidya S. K. Mishra, Asstt. Adviser ( Ayurvada ), Ministry of health and family welfare, Govt. of India, visited Communist China a few months ago. A brief report on study tour to China regarding Traditional medicine is given below for the readers of 'Sachitra Ayurved' in the hope that they would derive benefits from this comprehensive & authentic report authored by a man who enjoys high reputation as a scholar & expert of the Indigenous system of medicine.**

**—Editor**

The Chinese civilisation and culture are very aneicnt like those of India and Egypt. The traditional Chinese medicine is an extremely rich summarization of the experience acquired by the Chinese people over thousands of years. In the 5th century B. C. the first comprehensive document on Chinese medicine, known as 'Huang Ti Nei Ching' (Yellow Emperor's Manual of Internal Medicine) was prepared. The clinical and surgical aspects of Chinese medicine registered rapid advances during the 2nd century A C. Hua Tuo, the renowned physician did pioneering work in laparotomy under anaesthesia, provided by spirits in conjunction with drugs.

The first educational institution in Chinese medicine was founded some time in the 6th/7th century A. D. The Academy of Imperial Physicians established by Tang Dynasty in their capital town Changan (now known as Sian in Shensi province ) was a government-run institution where facilities were provided for training medical students. Teaching arrangements for 300 students were available in this institution. During this period, the Hsin Hsiu Pen Tsao ( Revised Materia Medica), a pharmacological work was compiled by the government authorities and circulated throughout the country laying down the criterian for the assessment and adminstration of medicinal substances.

By 10th century A.D. China had develope the technique of vaccinating with human po for preventing the attack of smallpox. Later this method spread to many other countries. A mammoth 52 volume classic on Chinese materia medica. named Pen Tsao Kang Mu, wa compiled by Li Shih-chen in the 16th century It describes 1892 medicinal substances an contains over a thousand illustrations. Thi compilation was completed in a period c

30 years and is considered as the most authentic classic on materia medica of the Chinese traditional medicine.

The Chinese people came into contact with western scientists and doctors during 19th century. Thereafter, the western medicine was introduced into that country. As the Chinese rulers preferred overall westernisation, Chinese medicine began to be neglected gradually. At one time, the practitioners of the traditional medicine were even harassed and measures taken to abolish this system. Restrictions were imposed on the practice of Chinese medicine by the traditional physicians. Setting up of new medical schools and publishing of books and periodicals on Chinese medicine were banned.

With the founding of the People's Republic of China in 1949, the Chinese traditional medicine started receiving due attention and encouragement. In 1950, the Ministry of Public Health convened the First National Conferenee on Health Work for which Chairman Mao Tse-Tung inscribed the following message in his own hand : "Unite all sections of medical and public health workers veteran, or new, Chinese or Western style, in a solid united front and strive to promote great work of public health for the people".

Thereafter, the Chinese national health policy was based on a combination of traditional Chinese medicine and western mecicine. Relations between traditional Chinese doctors and doctors of western medicine improved after the declaration of this policy and all discriminations against traditional practitioners were removed. In 1965, the ministry of Public Health established the Chinese Medical Research Academy in Peking. Many traditional practitioners began to work in large hospitals of western medicine, while colleges of traditional Chinese medicine were set up in Peking, Shanghai and many other places. It was also decided that training of Chinese tradional medicine should be provided to western medicine doctors and the first batch of 70 such doctors underwent this training for a period of $2\frac{1}{2}$ years in Peking. After the training the doctors were very much impressed by the fact that the Chinese medicine offered remedies to many problems and diseases for which solutions were not available with the western medicine.

In 1958, Chairman Mao issued a further call : "Chinese medicine and Pharmacology are a great treasure-house, and efforts should be made to explore them and raise them to a higher level." This call was responded to by medical workers enthusiastically and thousands of doctors of the western medicine started studying and using traditional Chinese medicine. Now the Chinese medicine is included as an integral part of the syllabus of allopathic medical colleges and graduates coming out from these oolleges are well trained both in Chinese medicine and modern medicine. Likewise, training of modern medicine is being provided in medical colleges of the traditional system and graduates of these collegsə are well trained in both the systems. Graduates of both these categories are authorised to practise modern medicine as well as Chinese

traditional medicine. This is a unique situation in the medical world. Though traditional systems are practised in many other countries, on such combination and integration of two different systems of medicine has taken place in any other country.

In view of this position prevailing in China, the World Health Organisation decided to send a study team to that country to study their traditional medicine and understand how the integration of two different systems had been effected. This team which visited China in May, 1978 consisted of 18 members. Dr. Wan Fook Kee, Regional Adviser of the World Health Organisation Regional Office, Manila was the Group Coordinator of this team. The delegation included representatives from 13 Asian countries. The study started on 14-5-1978 at Peking and ended on 1-6-1978 at Canton.

**Major Hospitals visited :**

1. CSIYAN Hospital of the Academy of Chinese Traditional Medicine in Peking.
2. Kushang Teaching Hospital attached to Medical College in Shanghai.
3. Shukang Hospital attached to Traditional Chinese Medical College, Shanghai.
4. First affiliated Hospital of Phunan Medical College, Changsha.
5. First affiliated Hospital of Traditional Chinese Medical College, Changsha.
6. First affiliated Hospital of Medical College, Wuhan.
7. Attached Hospital of Medical College, Canton.

**College, Research Centre and Pharmacy :**

1. Institute of Pharmacological Research, Peking.
2. Traditional Chinese Medical Collese, Shanghai.
3. The No. 2 Pharmaceutical Plant, Fooshan.

**County Hospitals, Commune Health Centres and Brigade Health Stations :**

PEKING AREA :

1. Tri Ti Shung County Hospital.
2. Soe Chwang Commune Health Centre.
3. Ho Phung Ko Brigade Health Station.

SHANGHAI AREA :

4. Mai Cheu Commune Health Centre.

WUHAN AREA :

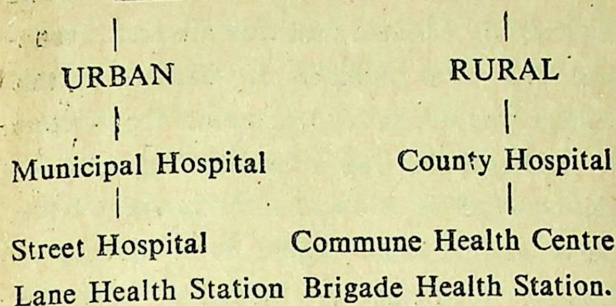
5. Chian Kiang County Hospital.
6. Hau Kau Commune Health Centre.
7. Ching Lao Brigade Clinic of Yongsu Commune.

CANTON AREA :

8. Sin Than Commune Health Centre.
9. Pai Jang Brigade Health Station.

**Medical and Health Care Programme in China :**

Both the medical and health care programmes are combined at operational level in China. There are separate schemes for urban and rural areas. The medical needs of cities, are catered by hospitals attached to medical colleges, municipal hospitals, street hospitals and lane health stations. The rural population is served by county hospitals, commune health centres and Brigade health stations.




The Brigade Health Stations in rural areas and Lane Health Stations in urban areas are being managed mainly by 'bare foot' doctors. However, doctors of Commune Health Centre and Street Hospitals also visit these health stations from time to time.

The medicare system of China is combined and integrated. Western medicine and traditionnl Chinese Medicine are integrated at every level and used by doctors of both the systems. There is provision for training for western medicine doctors in traditional medicine and likewise. Traditional Chinese Medicine doctors are also trained in western medicine. Every big and small hospital is manned by both and they work in close cooperation. They are not concerned about the system in which they were trained, but are only eager to serve the ailing humanity in best possible way. We were informed that 90% of western doctors are already trained in the traditional medicine and they prescribe these medicines with full faith and confidence. The Chinese national pride cultural heritage and the development of their own scientific temper are more important to them than their knowledge of the western medicine. It is interesting to note that the old allopathic system of medicine, which is known everywhere else as the modern medicine is still called western medicine in China. The syllabus followed in the medical colleges has been revised and subjects on the traditional Chinese medicine constitute nearly 30% of the new syllabus. The medium of instruction in western medical colleges is Chinese. Students of these institutions need not know English at all. We could hold discussions with senior Chinese doctors on various aspects of medical and health programmes only through interpretors.

Diseases like cold, cough, bronchitis, diarrhoea, gastric ulcer, tonsilitis, joint pains, austeomylitis, hypertension, hepatitis, migrane, myocardinal infections, pneumonia, fracture, burns, facial paralysis, etc. are treated mainly by the practitioners of traditional medicine but the doctors cf western medicine also use the traditional drugs. Decoction is very popular item. We have seen a machine called 'Pheya Chi', one in Peking and another in Shanghai, which quickens the distribution of decoction drugs. This machine is installed in two storey building. There are 400 containers with raw powders of decoction drugs. Every container is connected with a pipe and the main pipe is connected to switch board installed in the lower floor. This switch board has 100 main points, each point having 4 sub-points. There are buttons on the board for regulating the quantities of drugs dispensed. The operator on receiving a prescription, presses the buttons of the required medicines and the prescribed quantities. The drug according to the prescription in the required quantity is received in a pot within seconds. This shows

popularity of decoction preparations in China. Injections from extracts of traditional medicines are also prepared in large quantities. Every commune hospital is having a small pharmaceutical concern.

**Herb Gardens :**

Herbs of common use are grown in every brigade. Some land is kept apart only for this purpose and cultivation is done by the bare foot doctor-in-charge of the health station. The green herbs are distributed to the needy persons from this garden. Any excess quantity produced is dried and preserved for preparation of compound formulations. It may be mentioned that herb gardens are maintained by commune and county hospitals also and some of these are very large in size. Even the large hospitals in big cities grow some herbs in their compounds. Herbal treatment is very popular in China and is being developed at every level.

**Chinese Medicine College :**

There are 23 colleges of traditional Chinese medicine all over the China. Every college is having an attached hespital. We saw one such college in Shanghai and separate two attached hospitals with 350 and 250 beds. Courses vary from 3 to 5 years and subjects on western medicine are also taught in these colleges Graduates coming out of these colleges are entitled to prescribe western medicines as well as Chinese medicines. More stress is being given on clinical teaching in these colleges. The traditional medicine college in Shanghai has three attached hospitals with 750 beds. Facilities for post graduate training of 1½ years duration and refresher courses for western medicine doctors in Chinese medicine are also available. The total number of teachers in this college was about 260, excluding the doctors in the hospitals. The admission capacity of this college is 300 and total number of students about 1000. There is a Faculty of Chinese Medicine in Shanghai and this college is technically managed by this Faculty. Various departments of the college are divided into fundamental and clinical departments. Basic principles, Anatomy, Histology, Biochemistry, Pathology, etc. are included in first group and Medicine, Surgery, Acupuncture, etc. in the latter group. The college and hospital are provided with modern pathological instruments, X-Ray machines, operation theatres, etc.

**Acupuncture :**

Acupuncture is a special process using needles for curing diseases and providing Anaesthesia. This technique of treatment was invented by traditional Chinese doctors over 2000 years ago. Stone needles were used in ancient times which were later replaced by metal needles. It is stated that there are various channels in the body like heart channel, stomach channel, kidney channel, etc. and every channel has got special needling points. There are 365 such points in the human body, out of which only 160 are usually utilised. There are separate points and methods of needling for different diseases and symptoms. The acupuncture treatment is effective in diseases like Arthritis, Rheumatism, Lumbago, Nervousness, etc.

Acupuncture is also used for anaesthesia and this technique is used even for major

operations all over China. Six major operations were performed in our presence in the western medicine hospitals at Shanghai and Wuhan using acupuncture for anaesthesia. Two cases were of malignant tumour, one of Glycoma, two of growth in stomach and one case of fistula in the annus. All the six operations were successful and the patients who were fully conscious though the surgery did not cry or show any other sign of pain during operation.

A battery operated machine for rapid application of acupuncture has also been developed. Normally, there are 5 nodes in such a machine Wires are connected to the nodes and upper portion of the needle and the action is intensified. There is another machine which helps in locating acupuncture points. The acupuncture specialists of Wuhan Hospital have developed another machine by which automatic needling is done. Research on various aspects of acupuncture is being conducted all over China. This technique is becoming very popular as a curative as well as anaesthetic measure not only in China but all over the world.

**Combination of two systems is better :**

As stated earlier, the two medical systems in China are being combined and the aim is to develop a new Chinese system of medicine out of them. Research is being conducted on the basis of this ideology and the results are encouraging. A gist of a few surveys and research projects undertaken at various places were placed before the Study Team by a doctor of the Canton hospital. This hospital is attached to a medical college having 455 beds and 712 staff members.

A team of doctors of this hospital visited the countryside and surveyed the spread of diseases among the people. It was found that bronchitis was the most prevalent disease, as 3-4% of the samplo population were suffering from this disease. Since there was no specific drug available to treat this disease, they undertook research using combinations of drugs from both the systems. The following drugs of traditional medicine were used along with western medicine :

1. Rhododendron Mariao Hance
2. Ardisia Japonica
3. Breynia fruticosa
4. Polysticus Vesicolor

These drugs proved effective and the survival rate rose from 60% to 84%. Animal experiments were also conducted and after careful studies from all relevant angles, the results were announced. The effectiveness of drugs were increased by about 50%. The entire research was conducted on modern lines. By this study, they demonstrated that combining of Traditional Chinese Medicine with western medicine could provide a better way for treating diseases. This treatment for bronchitis is now being adopted by doctors of both the systems all over China.

The Chinese have also experimented with combination treatments for intravascular congulation arising out of complication of coronary pulmonale. Administration of western medicine drugs alone in six cases resulted in the death of all the six, while by combination treatment in 5 cases, survival of 4 patients could be ensured. Likewise, combination treatment in cases of Myasthenia gravis and many other serious diseases have

shown remarkable results. Similar experiments are being conducted at many hospitals and the results are being used for providing better service to the ailing humanity. It has also been observed that administration of traditional Chinese drug enhances the capacity of the body and prevents recurrence of diseases in future. Preliminary experiments have also shown the efficacy of traditional medicine in treating cases of cancer and further investigations are being carried out.

Herbs form the main basis of Chinese drugs. These herbs are available in abundance all over China and are being cultivated also. While these drugs are effective for curing diseases, these do not have side effects. Efficacy of many drugs are known to general public also. There is a general feeling that these drugs which are indigenously available should be utilised fully. Besides the traditional ways of using these as decoctions, powder, tablets, etc., new preparations like injections and extracts are also being developed, so that these drugs could be used more effectively but in lesser quantities.

All the commune hospitals are having an attached pharmaceutical unit where injections are manufactured along with other preparations. Experiments are being conducted to improve the quality of these preparations at many places under the supervision of doctors of western medicine, traditional medicine and scientists.

**Co-operative medical service for rural population :**

Before liberation, medical and health care facilities available for the vast rural population of China were highly inadequate. The situation improved slightly after 1950, but the shortage of doctors and dispensaries persisted. On June, 1965 Chairman Mao Tse Tung directed : "In medical and health work, put the stress on the rural areas". This guideline created the idea of co-operative medical service in China. This service was initially started in Changwai prefecture and a few other places. In the spring of 1970, Chairman Mao and Party Central Committee issued special directive affirming faith in co-operative medicine and barefoot doctors as two new socialist goals. The directive called upon the whole country to popularise co-operative medicine promptly and make greater efforts to train barefoot doctors.

It was thought that the shortage of trained doctors would continue for many decades to come. The short term solution would lie in giving short term training to willing workers, who would later shoulder the responsibility for providing primary health and medical care facilities to the people. This was the ideology behind the decision to create the cadre of barefoot doctors. There are about 1.8 million barefoot doctors in China trained in health and medical care for periods varying from three months to 18 months, working in various brigades in the countryside.

The second problem was about the allocation of funds. This was solved by making the scheme contributory on a co-operative basis. Every member of the commune pays 3 Yuan (about Rs. 15/—) per annum as a membership of this service and thus a good amount is collected for running the scheme.

Besides this annual subscription, they have to pay a registration fee of 5 Cents (about 25 paise) when they go to brigade health station for treatment. For treatment at commune health centre, 10 Cents (about 50 paise) have to be paid.

As stated earlier, the rural area of China is grouped into brigades, communes and counties. The average population of a brigade is 1500 to 2000, that of a commune is 40,000 to 70,000 and of a county is 0.6 to 1 million. Every brigade has a health station managed by barefoot doctors. There are 2 to 4 barefoot doctors in a brigade. Senior and more trained and experienced doctors of these will be in-charge of the station. Some para medical workers are also attached to these stations. These stations are responsible for providing general medical treatment for common ailments as well as preventive health measures. Doctors from commune hospitals visit these health stations from time to time. Serious cases are referred to commune/county hospitals for treatment. Implementations of various disease eradication programmes, maternity and child welfare programmes, family planning programmes, registration of deaths and births, etc. are also carried out through these brigade health stations.

Commune health centres are full fledged dispensary-cum-hospitals and regular qualified doctors are posted in these centres. Every centre is having 6 to 10 doctors of western medicine and Chinese traditional medicine. The centre is divided into surgical, medical, pathological, dental and opthalmology and ENT sections for the convenience of the general public. A small operation theatre is also available in every commune health centre and minor operations are done there. Drugs of both western medicine and Chinese medicine are used in these centres. To every centre is attached a pharmacy which produces mostly traditional drugs. However, some of the commune pharmacies manufacture modern drugs also. Production of injection from traditional drugs is a special feature of these pharmacies. The products of these pharmacies are sent to brigade stations also.

It may also be mentioned that doubts were raised in China itself about the success of this scheme. A group of doctors and political leaders were not in favour of this scheme. However, since the scheme had mass support in addition to the backing from the Government and the party, it succeeded to a great measure.

**Eradication Programmes :**

Until a few years ago, China was lagging behind in providing health care facilities and in eradicating epidemic diseases. After the Cultural Revolution, these matters were taken up on priority basis and more workers were employed for this purpose. The 1.8 million barefoot doctors and 4.2 million para medical workers are directly engaged in this work under the guidance of qualified doctors and Directors of Medical and Health Bureaus. Small pox and plague have been totally eradicated and Malaria is fully under control. Leprosy cases are also rare. Bronchitis was more prevalent in the country but that has also been controlled to large extent with the help of traditional medicines. On the whole, the health measures are being implemented in a very effective manner and target is to

eradicate all epidemic diseases in the shortest possible time,

**Family Planning :**

Family planning programme has been taken up for implementation in China in a very determined manner. Even though this programme is described as voluntary, the results show that acceptance of the programme by the people is more or less compulsory. The new generation has already adopted the two-child norm. According to the information available from various brigades and communes, condome, IUD, sterilization operations, etc. are being used for this purpose. Abortion is also allowed. The IUD is the most popular. The average birth rate now is 10 to 13 per thousand per year. In one of the brigades in Canton area, it was revealed after enquiry that there were 166 women in fertility group. Of those 8 are sterilised and remaining 157 are using IUD (ring) so there is no question of any unplanned birth. Every women is examined after every two months and abortion is allowed if required. The Chinese aim is not only to check the growth rate but to reduce the pupulation ultimately.

**Ayurvedic System of India visavis Chinese Traditional Medicine :**

The Chinese traditional medicine has much similarity with the Ayurvedic system of medicine of India. Both the systems are very ancient and were in existence before 500 B. C. Ayurvedic system of medicine is based on the Panchamahabhuta and Tridosha theory. The Chinese medicine is also based on Panchamahabhuta (5 basic substances) but there is difference in the substances of the two systems.

| Ayurvedic Substances | Chinese Substances |
|---|---|
| 1. Prithivi (Earth) | 1. Wood |
| 2. Jala (Water) | 2. Water |
| 3. Agni (Fire) | 3. Fire |
| 4. Vayu (Air) | 4. Air |
| 5. Akasha (Space) | 5. Metal |

**Nadipariksha (Pulse examination)**

The Chinese traditional practitioners examine pulse of patients like their Ayurvedic counterparts. The drugs used in chinese traditional medicine are also made from vegetables, minerals, and animals but vegetable origin drugs are more commonly used. Among the preparations, decoctions are more popular. The raw powders of drugs are boiled in these preparations just like Kwatha in Ayurvedic medicine. A standard book of Chinese materia medica published in two volumes described pharmacognosy, pharmacology and actions of about 1800 drugs. However, only 400 drugs are commonly used for decoctions and other preparations. Some of the drugs like Madhuyashti (Glyceriza glabra), Godanti (Zypsum), Pooga (Areca catachu), Gopita (Cow's gall stone), Parada (Mercury), Twak (Cinnamomum zeylaynicum), etc. are commonly used in both the systems. However, a large number of drugs of Chinese origin are not described in Ayurvedic classics. A medicine known as 'Zensang' is popular as a tonic preparation in China, like Chyavanaprasha in India. The main ingredient of this medicine look like genuine Lakshamana as described in Ayurveda, which is now seen rarely in India. Some of the

vegetables drugs are being clinically tried for treating various diseases and these researches confirm that traditional medicine has got cure for cancer, leukaemia, heart diseases, etc. Drugs of mineral origin are also used in China but not much development has taken place as much developed like under the Indian Rasashastra. There are many things common among these two systems. The collaboration of these two may be beneficial for the further development of these systems as well as for the entire world.

**Chinese hospitality :**

The Study Team was received with warmth and cordiality and all necessary facilities were provided. The programme was also arranged with lot of care. Dr. Chi Chung Phu, Director of the Academy of Traditional Chinese Medicine supervised the entire programme of Study Team. From the time of its arrival at the Peking Airport on 14-5-1978 till its departure on 2-6-1978, there had been not a single incidence of negligence. Dr. Chichung Pny himself along with his associates was present at the Airport at the time of reception and departure. No customs checking was done at the Airport as the delegation was sponsored by the World Health Organisation. Banquet parties were arranged at all places visited by the Team. The Peking banquet was attended by VIPs like :

| | |
|---|---|
| i) Yang Chon | A leading member of the Ministry of Health. |
| ii) Tang Jing | A leading member of the Ministry of Foreign Affairs. |
| iii) Chan Meiching | Leading member of the Ministry of Economic Affairs |
| iv) Chi Chung Phu | Director of Academy of Traditional Chinese Medicine. |

Banquets at Shanghai, Changsha, Wuhan and Canton were hosted by provincial heads of medical and health services. The Team consisted two members from India who were vegetarians. Everywhere in banquets as well as in hotels special arrangements were made in advance for the vegetarians and I am indeed thankful to the Chinese authorities for this.

A group of four, lead by Dr. Shih, Professor of Internal Medicine of the Academy of Traditional Chinese Medicine accompanied the Study Team throughout the visit and ensured that everything was properly explained and shown.

Besides visits to medical institutions and hospitals, sight seeing trips were arranged to places of tourist interest. The Team saw the famous Mao's mausoleum, Peking Palace, Sumemr Palace, the Great Wall of China, Mink dynasty's Tomb, the birth place of Mao-Tse-Tung at Shao-Shan, etc. Many agricultural farms, industrial units, Buddhist temples, lake gardens, etc. were also shown in various cities. Opportunities were fine to witness the famous Chinese Opera at Shanghai and Canton and see a few films also. The

members of the delegation were touched by the friendliness and cordiality of Dr. Shih. Dr. Chichung Phu also spent a lot of time with us on many occasions even though it was not really expected of a person of his stature.

The members of the delegation are extremely thankful to Government of China for arranging this extremely useful study trip.

**Recommendations to the World Health Organisation :**

**1. Policy matters :**

(i) Combination of two systems of medicine in China has enabled the provision of better medical care and facilities by increasing the capability of modern medicine. This aspect needs to be recognised.

(ii) The present policy of the World Health Organisation to recognise only the modern medicine needs revision. Developing countries like India and China are not in a position to provide the minimum health care facilities to all the citizens in the near future. If medical and health measures cannot be made available according to the new standard norms, at least they should not be debared from using traditional methods.

(iii) The term 'traditional' gives the impression that these systems are not based on scientific lines. This may be true of traditional medical methods of many countries but not true of the Ayurvedic system of medicine of India and the Chinese traditional system. I am of the opinion that medical systems may be categorised as :

(a) New medical systems :
This group should include modern medicine, Homoeopathy, Bio-chemic, etc.

(b) Indigenous medical system :
This group may include : Ayurvedic Systems of Medicine of India, Chinese Traditional System of Medicine and Unani System of Medicine, etc.

(c) Traditional medicine :
This group may include such indigenous medical methods which are not based on any principle and literature, but followed on the basis of experience gathered over the years.

(iv) Training, research and medical aid institutions of traditional medicine should also be assisted and advised by the World Health Organisation for their development.

(v) Experts of traditional medicine should be appointed in the World Health Organisation, headquarters and regional offices to look into problems relating to traditional medicine.

(vi) W. H. O. representatives posted in various countries presently are only experts of modern medicine. Tradi-

tional experts may also be posted at least in those countries where practice of traditional medicine is recognised by the respective Governments.

**2. Training**

(i) Training facilities in traditional medicine are available in India, China, Sri Lanka, Burma, Bangaladesh, Nepal, etc. There are a large number of such institutions in India and China. The World Health Organisation may assist in evolving appropriate training programmes at graduate and post-graduate levels and to upgrade the standards of these training institutions.

(ii) Many countries, where no training facility is available presently, are interested in sending to other countries their nominees for training in traditional medicine. World Health Organisation may arrange to reserve seats in traditional medical institutions and award fellowships to these nominees.

(iii) Collaboration among various systems of traditional medicines may be arranged and courses formulated for scholars of one system to understand other systems.

**3. Research**

(i) Vast medical knowledge and heritage are left unattended in the classics of traditional medicine. A large number of diseases, specially those produced by metabolic and other functional disorders have solutions mentioned in these classics. Research may be conducted into this respect on modern lines so that the outcome could be utilised for the welfare of people.

(ii) All countries of the world should be encouraged to establish such research institutions and World Health Organisation may guide and assist actively in the establishment and functioning of them.

(iii) Cancer, coronary diseases, mental tension, nervousness, arthritis, etc. are problems still confronting the medical world. Countries may be assisted by World Health Organisation in formulating clinical research programmes in these diserases, based on traditional medicine.

**4. Medical Aid**

(i) While there is a shortage of medical personnel in developing countries thousands of semi-trained traditional practitioners remain unutilised. This imbalance needs to be removed and services of traditional practitioners be utilised in all developing countries as is being done in People's Republic of China.

(ii) A number of diseases which can be cured by simple local herbal drugs are treated with anti-biotics, etc. which have side effects and produce chain of iatrogenic diseases. If this vicious circle is to be broken, doc-

tors of modern medicine will have to be given training in traditional medicines also. Medicines having side effects may be used only in extreme cases where simple medicines may not be effective.

(iii) It was evident from the study tour to China that every hospital of western medicine, large and small, had traditional medcine departments a'so. Other countris may be urged to follow this approach.

---

सहयोगी पत्रों के विचार

# New Health Policy : Care, not Cure

Care will be the core of the new national health policy – not cure. The policy will be keyed to 'the health needs of the deprived, under-served population, living in Social poverty and suffering from a combination of unemployment, underemployment, illiteracy, poor housing, poor sanitation, malnutrition, ill-health and social apathy with consequent lack of will and initiative to seek a change for the better,. This is what the draft national health policy says.

The draft policy in its final form will be circulated soon—to the States, medical bodies, doctors, and different organisations and people to get their opinions.

The national health policy will be a square Its four arms will be: prevention, promotion, cure and rehabilitation. Its goal will be: 'maximally attainable and acceptable levels of health for all people' and organisation of health services with 'social purpose'.

The draft says : 'Improvement in the health status of the population can be achieved only if there is a shift from the hospital-based, disease-oriented approach depending heavily on sophisticated technology, to a system where attitudes, skills and approaches of the trained personnel are in tune with the needs and aspirations of the common man and where the facilities are accessible to the population in physical, social, cultural and financial terms. For this to become possible, participation of the community in all health activities is of the utmost importance'.

It says the health care of all segments of the population must be shaped around their life patterns. It should form an integral part of the total development. It should place 'maximum reliance' on the available community resources. And it should use an integrated approach—preventive, promotive, curative and rehabilitative services for the individual, the family and the community.

The draft Plan wants a chain of 'sanitary-cum-epidemiological stations' all over the country, 'suitably manned and appropriately equipped'. These stations will take care of environmental health problems, detection and control of epidemics, checks on the quality of food, water and other things.

Some other goals envisaged in the draft plan are: 100 percent coverage of the population by 2,000 in terms of innoculation and vaccination; safe drinking water to all and improved sanitation; health education on a wide scale; 100 percent health coverage of all children in the 0-5 age group by 1990, and of all childern below 16 by 2,000.

The draft says the country should now make an attempt at coo-rdination of the services offered by the indigenous systems of medicine for 'optimal economic utilisation'. The modern system and these systems should support each other. This can be done only 'by a concern for other systems and understanding of their functioning'.

Some other things suggested by the draft are: giving the doctors a greater say in determining the direction of growth of the drug industry; liberalising the idea of self medication and making a 'single, comprehensive' health law, after reviewing the existing health laws at the Centre and in the States.

The draft lists six short-term and six long-term goals.

The short-term goals are:—Fradication or control of communicable diseases.

Adequate infrastructure for primary health care in rural areas and in urban slums.

Educating people on health.

Utilising knowledge from different systems of medicine for providing quick and safe relief from sickness and debility 'at the cheapest possible cost.'

Recorlentation of medical equcation so that it may be in tune with the needs of the community.

Increasing maternal and child health coverage.

The long-term goals are: To improve public health services by setting up a chain of sanitary-cum-epidemiological stations.

To eonsure cent percent coverage of all segments of the population with preventive services.

To create a self-sustaining system of health security so that the earnings of an individual are not adversely affected during periods of illness.

To develop a composite system of medicine, utilising knowledge from the ancient and the modern systems, to obliterate 'the caste system prevailing in the field of medicine.'

To inculcate a sense of self-reliance and discipline in all segments of the population.

'To impart medical education in a medium which is an integral part of our culture and lifestyle and thus remove the foreign concepts associated with foreign languages, which are a major factor in inhibiting people from understanding the true and proper role which medicine plays in the development of a healthy community.'

The Government has decided to go in for a national health policy because it feels that it will be better to have a clear picture of what it is trying to do in the field of health. Even affter 30 years the country has not been able to provide health care in the rural areas.

It feels that the country should have its 'nationally proclaimed goal'—like the internationally declared goal at the international health conference at Alma Ata last year: Health for all by 2000.

[ By Courtesy Indian Express ]

# Central Council for Research in Indian Medicine & Homoepathy

E-25, DEFENCE COLONY, NEW DELHI—110024

**The following abstracts/research papers which were accepted but could not be included due to paucity of time in the scientific seminar held at New Delhi on 26-27 Dec., 1978 under the auspices of Central Council for Research in Indian Medicine and Homoeopathy; are being published here for our research minded readers in general & Research scholars in particular in the hope that they will be benefited by its publication.**

**EDITOR.**

It is regretted that the following abstracts/research papers which were accepted could not be included due to paucity of time in the Scientific Seminar :—

| S. No. | Authors | Title of the Paper |
|---|---|---|
| 1 | Dr. G. D. Mukherjee, Calcutta. | Epilepsy, A Social Problem, II. The method of diagnosis, III. Clinical Observation and Results. |
| 2. | Dr. B. P. Nanal (Mrs.) Poona. and Sh. S. S. Ranade | Clinical trial of Shigru (Modinga Petrigosperma) on all sorts of under Krimi). |
| 3. | Dr. (Mrs.) B. P. Nanal, Dr. S. S. Ranade, Poona. | Preliminary Clinical trial of Punarnava in cases of Shotha. |
| 4. | Dr N. Hanumantha Rao, Dr. V. V. S. Rama Shastry, Vijayawada. | Standardisation of Bhasmas and Sindooras. |
| 5. | Dr. N. Hanumantha Rao, Dr. V. V. S. Rama Shastry, Vijayawada. | Study of Preservatives on Ayurvedic lines. |
| 6. | Dr. R. A. Prasad, K. N. Mehta, Dr. N. S. Joshi Bombay. | Effect of Basti Karma in Pakshawadha. |
| 7. | Dr. V. S. Togunashi, Dr. B. S. Venkataram Dr. S. N. Yoganarsimhan, Bangalore. | Novelties of Rajanarhori, Shreevalli—A new and Correct Ayurvedic name for Acacia Sinuata (lour) Merr. |
| 8. | Dr. S. N. Yoganarsimhan, Dr. V. S. Togunashi, Dr. R. C. Nair, Dr. L. Mary, Bangalore. | Studies on Additional source for Indian Valerian focun South India. |

| | | |
|---|---|---|
| 9. | Dr. H. J. Kulkarni, Bombay. | Pharmacological action of Tophrosia purpurea (sharpunkh). |
| 10. | Dr. S. N. Joglekar, Bombay | Analgesic activity of Tephrosia purpurea (Linn) Sarpunkh. |
| 11. | Dr. S. D. Nadar, Bombay | Anti inflamatory activity of Tephrosia purpurea (Linn.) |
| 12. | Dr. Madhava Prasad B. Acharya, Ahmedabad. | Kshar Sutra treatment in Bhagandara (Fistula-in-auo). |
| 13. | Dr. V. P. S. Trivedi, Ahmedabad. | A pharmaceutical study on Tribhuvan Kirti Rasa. |
| 14. | Dr. M. V. Dholakia, Dr. B. G. Chowdhary, Ahmedabad. | Preliminary study on Ashoka (saraca indica, Linn) |
| 15. | Dr. M. V. Dholakia, Dr. B. G. Chowdhary, Ahmedabad. | Role of Packing containers in self life period of ayurvedic formulations. |
| 16. | Dr. B. G. Chowdhary, Dr. M. V. Dholakia, Ahmedabad. | Studies on wood for dia fruticosa, Kurz. (Dhataki.) |
| 17. | Dr. K. Hemadri, Dr. C. Raja Rajeswara Sharma, Dr. S. Sashi Bhushan Rao, Vijayawada. | Procurement of Raw Drugs. |
| 18. | Dr. M. L. Kapoor, Dr. R. C. Gupta, Hardwar. | Role of Mahatriphala ghrit in the treatment of Timir Roga (Error of refraction.) |
| 19. | Dr. M. B. Bhide, Dr. P. Y. Naik, Dr. R. S. Joshi, Bombay, | Neuromuscular Blocking activity of Solanum species and some natural synthetic oxygen neterocyclics. |
| 20. | Dr. M. B. Bhide, Dr. P. Y. Naik, Dr. R. S. Joshi, Bombay. | Antiasthmatic activity of some indegenous and synthetic drugs. |
| 21. | Dr. (Mrs.) M. M. Shah, Dr. D. N. Sharma, Nagpur. | A preliminary study of Rakta-rodhakchurna on raktapradara. |
| 22. | Dr. M. R. Shah, Dr. D. N. Sharma, Nagpur. | Role of 'Musta' (Cyperus Scariosus) on Atisara. |
| 23. | Dr. K. P. Reddy, Dr. D. N. Sharma, Nagpur. | A preliminary study of Nityananda Rasa and Bhoonimba on Filariaris (Sleepada). |

| No. | Authors | Paper |
|---|---|---|
| 24. | Dr. M. C. Joshi, Rajpipla. | Some medicinal plants of Gujrat Forests used in Ayurvedic Pharmacies. |
| 25. | Dr. J. K. Pattansheety,<br>Dr. Koshy Abraham,<br>Dr. S. N. Yoganarsimham,<br>Bangalore. | Phytochemical analysis on the roots of pygmacopremna nerbacea and Comparision with clerodendron serratum. |
| 26. | Dr. H. S. Puri,<br>Dr. G. Pandey, Chandigarh. | Pharmacognostic study of the crude drugs of Sikkamn. |
| 27. | Dr. V. B. Pandey,<br>Dr. M. Biswas,<br>Dr. A. B. Roy,<br>Dr. B. Das Gupta, Varanasi. | Studies on the alkaloids of Fumaria indica (Haussk) Pugsley. |
| 28. | Dr. P. C. Sharma,<br>Dr. Shrikant Sharma, Patna. | Another 'Rasna' from Rajgir, Bihar. |
| 29. | Dr. P. C. Sharma,<br>Dr. G. N. Sinha, Patna. | Folk lore medicinal plants of Ranchi District (Bihar). |
| 30. | Dr. G. N. Sinha,<br>Dr. B. N. Pandey,<br>Dr. P. C. Sharma, Patna. | Geographical distribution of Ayurvedic medicinal plants in Bihar—I Haritakyadi Varga. |
| 31. | Dr. B. N. Pandey,<br>Dr. G. N. Sinha,<br>Dr. P. C. Sharma, Patna. | Geographical distribution of Ayurvedic Medicinal Plants in Bihar—II Guduchyadi Varga. |
| 32. | Dr. V. Chelladurai,<br>Dr. S. Usman Ali, Palamkottai. | Medico botanical observation in the island of Car Nicobar. |
| 33. | Dr. Vinod Kumar,<br>Dr. D. D. Chaturvedi, Headquarters. | Man Avem Mansaic roga Yek Dristhi. |
| 34. | Dr. M. N. S. Namboodari,<br>Bhubaneswar. | Amavata—A Clinical Study. |
| 35. | Dr. Ajayashankar,<br>Dr. M. R. Parsai,<br>Dr. S. M. A. Nagui,<br>Dr. J. P. Jain, Gwalior. | A clinical trial of Apamarga (Achranthes aspera) in cases of general masarca (soth). |
| 36. | Dr. B. B. Patra,<br>Dr. S. Sikdar,<br>Dr. S. R. Dasgupta, Calcutta | Some Pharmacological actions on the defetted alcoholic extract of Blumea lacera. |

37. Dr. B. B. Patra,
Dr. S. Sikdar,
Dr. S. R. Dasgupta, Calcutta

Some Pharmacological activity of a flavon[e] from Acorus Cala.

38. Dr. J. K. Pattaneshetty,
Dr. B. S. Venkataram,
Dr. T. Radhavkula,
Dr. L. Mary, Bangalore.

Periodical study on the effect of time, packing material and light on certain ayurvedic preparations.

39. Dr. V. B. Mhaiskar,
Dr. G. K. Chaturvedi,
Dr. Y. S. Barit, Baroda.

A study of pratisyaya aaving 'Laxmivilas rasa' for oral administration and for Nasya.

40. Dr. K. S. Sharma,
Dr. I. S. Despande,
Dr. V. V. Mehendale,
Dr. O. P. Gupta,
Dr. P. S. Gupta,
Dr. P. G. Batiliwala, Ahmedabad.

A study of Berginia liqulata (Pashanbhed, as a diurectic agent in various disorders).

41. Dr. O. P. Gupta,
Dr. P. S. Gupta,
Dr. P. G. Batiliwala,
Dr. K. S. Sharma,
Dr. I. S. Deshpande,
Dr. V. V. Mehendale,
Dr. A. G. Somani, Ahmedabad.

A study on hypoglycaemic effect of syzyginm cumini (Jambu) in diabetes Mellitus.

42. Dr. B. N. Sharma.
Dr. F. H. Sarkar,
Dr. R. H. Singh,
Dr. K. N. Udupa, Varanasi.

Comparative studies on the effect of the four Medya Rasayana described by Charaka on Brain Tissue neurohumours.

43. Dr. R. Singh,
Dr. A. K. Mehta,
Dr. B. N. Sinha,
Dr. K. N. Udupa, Varanasi.

Clinical studies on the Medhya rasayana effect of sankhapuspi (convolulus puericaulis chois).

44. Dr. R. Prasad,
Dr. J. P. N. Chansouria,
Dr. K. N. Udupa, Varanasi.

Effect of an indegenous drug, Brahmi (Bacopa monieri Linn.) on catecholamine metabolism in albino rats exposed to stress.

45. Dr. H. C. Singh,
Dr. R. H. Singh,
Dr. K. N. Udupa, Varanasi.

Effect of Shankhapuspi on some Neurotransmitters of electric shock induced rats.

| | Authors | Paper |
|---|---|---|
| 46. | Dr. A. A. Ansari.<br>Dr. R. H. Singh,<br>Dr. K. N. Udupa, Varanasi. | A study of Neuroticism and anxiety in stress diseases in relation to different Dehaprakritis. |
| 47. | Dr. R. H. Singh.<br>Dr. R. S. Singh,<br>Dr. K. N. Udupa, Varanasi. | Studies on Panchakarma therapy with special refference to standardisation of Vamana and Virechane Karma. |
| 48. | Dr. R. Prasad,<br>J. P. N. Chansouria,<br>K. N. Udupa. | Effect of an indegenous drug, Brahmi (Bacopa monieri linn) on catecholamine metabolism in adbino rats exposed to stress. |
| 49. | Dr. H. C. Singh,<br>Dr. R. H. Singh,<br>Dr. K. N. Udupa. | Effect of Shankhapuspi on some Neurotransmitters of electric shock induced rates. |
| 50. | Dr. A. A. Ansari,<br>Dr. R. H. Singh,<br>Dr. K. N. Udupa. | A study of Neuroticism and anxiety in stress diseases in relation to different Dehaprakritis. |
| 51. | Dr. R. H. Singh,<br>Dr. R. S. Singh,<br>Dr, K. N. Udupa. | Studies on Panchakarma therapy with special reference to standardisation of Vamana and virehane karma. |
| 52. | Dr. M. D. Verma,<br>Dr. R. H. Singh,<br>Dr. J. P. Gupta,<br>Dr. K. N. Udupa, | Amalaki as a Naimittika rasayana in therapy of prarinama sula. |
| 53. | Dr. N. Gopalakrishna Pillai,<br>Dr. K. V. Nair,<br>Dr. Usman S. Ali. | On the identity of Brahmi and Mandookaparni. |
| 54. | Dr. D. S. Antarkar,<br>Dr. G. V. Nande,<br>Dr. U. M. Joshi,<br>Dr. Anjali Gurjar. | Assesment of vrsyatwa of Masa (Phases lous mungo) by estimation of Plasma testosterone. |
| 55. | Dr. C. V. Mande,<br>Dr. D. S. Antarkar,<br>Dr. A. V. Athavale. | Assesment of acute effect of Brsta Dhangya (Roasted articles) on blood sugar level of normal male volunters (Preliminary Study). |
| 56. | Dr. P. P. N. Bhattathiri,<br>Dr. N. P. Vijayan,<br>Dr. K. P. Bhaskaran,<br>Dr. B. V. Holla,<br>Dr. S. V. Vnkataraghavar. | Therapeutic effect of certain measure with and without drug in the treatment of chronic pakshavadha. |

57. Dr. D. P. Mishra, Junagar. — Medico-Pugto- sociology of alpine pastures.

58. Dr. S. J. Hussain, Dr. T. N. Srivastava, Jammu. — Identity of Unani Medicinal plans ustukhudus and Badranjoya.

59. Dr. S. Rajasekharan, Dr. T. N. Srivastava, Dr. Suresh Kumar. — Vacha—(Acorus Calamus Linn) Anethino botanic study and its preliminary clinical trial on tamaka Swasa (Bronchial asthma).

60. Dr. K. K. Chopra, Dr. B. N. Sharma, Dr. K. R. Sharma, Dr. P. J. Deshpande, Varanasi. — Treatment of anal wounds and fissures with indigonous drugs.

61. Dr. B. N. Sharma, Dr. K. K. Chopra, Dr. K. R. Sharma, Dr. P. J. Deshpanda, Varanasi. — Role of kshara and Kshara Sutra in the treatment of Piles.

62. Dr. R. C. Chowdhary, Dr. K. R. Sharma, Dr. S. N. Pathak, Varanasi. — Nasyakarma in Urdhwa jatrusrogas.

63. Dr. V. P. Tewari, Tarikhet. — Sleepada roga ki chikitsa.

64. Dr. K. Kuppurajan, Dr. V. Rajagopalan, Dr. K. Janaki, Dr. R. Revathi, Dr. S. Vankataraghavan, Madras. — Rasayana effect of Aswagandha on hair melanin.

65. Dr. D. K. Mishra, Dr. D. N. Singh, Hardwar. — Role of Kanchanar guggulu in the treatment of Galagande.

66. Dr. C. Bhattacharya, Calcutta. — A comparative study of the effect of guggulu and Prasarani on Rheumatid arthritis and osteo-arthritis.

67. Dr. Suraksha Kohli, Calcutta. — Amavata and trial on Basarani.

68. Dr. Suraksha Kohli, Calcutta. — Oral contraceptive-The pipplyadi Yoga.

69. Dr. R. Kumaraswami, Dr. K. Sivaprakasam, Pallamkottai. — Contribution to the Pharmacological identity of some Piravi Pashanams (Natural mineral) of siddha medicine.

70. Dr. R. Kumaraswamy, Dr. K. Sivaprakasam, Pallamkottai. — Studies on the role of arsenic in siddha Medicine.

71. Dr. R. Kumaraswamy, Dr D. Radmanaban, Pallamkottai. — The rejuvenating role of amuri tharanai (Urine therapy in Siddha Medicine.)

| | Authors | Paper |
|---|---|---|
| 72. | Dr. R. Kumaraswamy<br>Dr. P. Guru Shiromani | Study of the source survey of Pooneeru of siddha medicine in Tamilnadu |
| 73. | Dr. N. Gopalkrishna Pillai,<br>Dr. K. V. Nair,<br>Dr. Usman S. Ali, Jaipur. | On the identity of Brahmi and Mandooparni. |
| 74. | Dr. K. C. Audichya,<br>Dr. K. V. Billore,<br>Dr. T. G. Joseph, Jaipur. | Medicinal plants lore from the tribal areas of the Aravalli ranges, |
| 75. | Dr. K. V. Billore,<br>Dr. B. B. L. Yadava, Jaipur. | A treasure house of medicinal plants at Mt. Abu. |
| 76. | Dr. D. S. J. Acharya,<br>Dr. A. S. Rao, Jaipur. | A study of locally available crude drugs in some vill ages of Ajmer forests, |
| 77. | Dr. B. B. L. Yadav,<br>Dr. K. V. Billore, Jaipur | Possibilities of cultivation of Medicinal Plants at Mt. Abu. |
| 78. | Dr. K. V. Billore,<br>Dr. K. C. Audichya, Jaipur. | Some oral contraceptive family planning trial. |
| 79. | Dr. C. R. Karnick,<br>Dr. P. D. Jopat, Poona. | Studies on the effect of lunar phase on the growth of Abrus precatorious linn (Ligumi-nosae) |
| 80. | Dr. C. R. Karnick, Poona. | Cultivation trials of Ocimum Kilimand scha-ricm Guerka (Kapuri tulasi) used in Indian System of Medicine p, xviii, |
| 81. | Dr. C. R. Karnick, Poona. | Cultivation trials of *Coleus aromaticus* Benth (Pathorchur, owa, Paterchur, Pasham-bhedi) used in Indian System of Medicine, |
| 82. | Dr. V. K. Singh, Calcutta. | Compartive study of Madwari A & B in the treatment of Prameha (Diabetes mellitus) |
| 83. | Dr. S. S. Rajgopalan,<br>Dr. R. Revathi, Madras. | Effect of Fraction 'A' of petrolium ether extract of gum guggulu on liver lipids of cholestrol induced hyper cholestero lemic rats, |
| 84. | Dr. S. Venkataraghavan,<br>Dr. V. Rajgopala,<br>Dr. K. Janaki, Madras. | Production of Peptic ulcer (Parinamsula) on the basis of prakriti (Constitution and tenperament) study, |
| 85. | Dr. S. S. Gupta, Bhopal. | Adrenergic effect of the saponin of Ranbia pumatrum, |

| No. | Authors | Title |
|---|---|---|
| 86. | Mrs. L. Sharma, Dr. B. N. Sharma, Dr. C. P. Shukla, Jamnagar | Rural medical aid in the villages of Saura. sntra |
| 87. | Dr. B. N. Sharma, Mrs. L. B. Sharma, Dr. C. P. Shukla, Jamnagar | A. study of the O. P. D. patients of the Villages of Saurashtra. |
| 88. | Dr. M. R. Uniyal, Dr. J. Tewary, Dr. S. N. Chaubey, Dr. R. S. Dixt, Jhansi | Establishment of doubtful drugs 'Hastikarn' (Leea macrophylla, Roxb) |
| 89. | Dr. B. P.Nanal, Mrs. S. S. Ranade, Poona | Clinical trials of Kakodumber (Ficus hispida) in cases of shwitra. |
| 90. | Dr. D. John, Dr. C. A. A. Nair, Dr. K. V. Nair, Tum | Folk lore medicine of the kani trible of Trivendrum forest dlivision. |
| 91. | Dr. K. C. Tewari, Dr. R. Majumdar, Dr. Bhattacharjee, Gauhati | Folklore information from Assam for family planning and birth control. |
| 92. | Dr. R. Majumdar, Dr. K. C. Tewari, Dr. Bhattacharjee, Gauhati | Important Medicinal Plants of Gauhati and surrounding areas. |
| 93. | Dr. S. P. Singh, Dr. N. Singh, Dr. J. N. Sinha, Dr. R. P. Kohli, Lucknow | An analysis of hypotensive of Buddelja ascia-tica (Newarpati). |
| 94. | Dr. N. Singh, Dr. R. Nath, Dr. S. P. Singh, Dr. R. P. Kohli, Lucknow | A pharmacological evoluation of some idige-nous drugs which induce a state of non-specifically increased resistance (enhance adaptability during stress) in animals. |
| 95. | Dr. J. Lal Aligarh | Pharmacognostic studies on the leaves of portulaca avadrifida linn. |
| 96. | Dr. Prem Kishore | Clinical study of Grahani roga and its treatment with surthi. |
| 97. | Dr. R. K. Tyragi, Dr. M. K. Tyagi, Dr. Keerti Sharma, Patiala. | Anthelmintic properties of two Ayurvedic compounds (A comparative Clinical Study). |

| No. | Authors | Paper |
|---|---|---|
| 98. | Dr. H. R. Goyal, Patiala. | A study of etiological factors on 728 cases of tamak swasa (Bronchial Asthama). |
| 99. | Dr. P. P. Singh,<br>Dr. S. K. Bhattacharya,<br>Dr. R. M. Tripathi,<br>Dr. P. K. Das, Varanasi. | Effect of trace retails on some neuropsycho-pharmacological action of cannabis indica. |
| 100. | Dr. S. N. Tripathi<br>Dr. Pratibha Sukla,<br>Dr. A. K. Mishra,<br>Dr. K. N. Udupa, Varanasi | Prevention of bronchospasm in guineapigs by Albizzia libbeck (with special reference to its mode of action.) |
| 101. | Dr. S. N. Tripathi,<br>Dr. B. N. Upadhyaya<br>Dr. L. D. Dwivedi, Varanasi | Role of commiphora mukul in the management of ischemic heart disease. |
| 102. | Dr. S. N. Tripathi,<br>Dr. C. M. Tiwari,<br>Dr. O. P. Dlxit,<br>Dr. S. K. Shrivastava,<br>Dr. B. N. Upadhyay, Varanasi | Role of Takrarista in the management of Secondary malabsorption caused by giardia lambia (Krimij grahani). |
| 103. | Dr. S. N. Tripathi,<br>Dr. C. M. Tiwari,<br>Dr. N. S. Tiwari, Varanasi | Experimental and Canceal study on concept of Jatharagni and Dhatwagni. |
| 104. | Dr. Ayodhya Pandaya, Hyderabad. | Development in biography writing on commentators of Braddhatrayi. |
| 105, | Dr. K. C. Tiwari,<br>Dr. R. Majumdar,<br>Dr. S. Bhattacharjee,<br>Dr. S. Chandar, Gauhati. | A short note on drying of medicinal plants. |
| 106. | Dr. P. B. Kahdal,<br>Dr. P. Joshi, Tarikhet. | Effect of burn through toxic acid on growth and flowering of crocus sativus Linn, in Kumaon hills. |
| 107. | Dr L. C. Tewari,<br>Dr. P. Joshi, Tarikhet. | Present of amino acids in rock sample of Silajatu from Devalthal area. |
| 108. | Dr. H. C. Pandey,<br>Dr. P. Joshi, Tarikhet. | A study on the distribution of neurology and preliminary chemical ivestigation of Cymopidium mackinnoni Duthie. |

| | | |
|---|---|---|
| 109. | Dr. D. N. Tiwari, Tarikhet. | Visham Jwara—Kala Jwara Ke Leye Bheshj, vigyan per ek disha nirdes. |
| 110. | Dr. Jugal Kishore, New Delhi. | Comparative study of efficasy of Homoeopathic and allopathic medicine in upper respiratory tract infection. |
| 111. | Dr. Nand Raj, Hyderabad. | The Homoeopathic treatment of Cholera—A Historical study. |
| 112. | Dr. M. H. Khan, New Delhi. | Diagnostic significance of serum enzymes. |
| 113. | Dr. Y. G. Wadalkar, Dr. (Mrs.) R. N. Jain, Dr. (Mrs.) U. P. Abhyankar, Poona. | The importance of Dosha prakriti in prevention and treatment of disease. |
| 114. | Dr. R. Uma Dr. D. Ghosh, Madras. | Uterotrophic activity of Laksha-an indigenous drugs—some preliminary bochemical observation. |
| 115. | Dr. M. Sundaram, Dr. T. P. R. Bharadwaj, Dr. K. K. Purshothaman, Madras. | Role of 'RGX' in various types of Cancer. |
| 116. | Dr. G. N. Chaturvedi, Dr. U. N. Pandey, Dr. G. Singh, Dr. S. K. Tiwari, Dr. C. M. Maheshwari, Varanasi. | Role of Kutaki (Picrorrhiza Kurroa in hepato cellular Jaundice). |
| 117. | Dr. G. Singh, Dr. G. N. Chaturvedi, Dr. K. P. Sukla, Dr. S. K. Tiwari, Varanasi. | Effect of Kumari asava. (Aloe Vera) in Jaundice. |
| 118. | Dr. G. Singh, Dr. G. N. Chaturvedi, Varanasi. | Studies on cathartic effect of Kutaki (Picrorrhiza Kurroa). |
| 119. | Dr. V. N. Pandey, Dr. G. N. Chaturvedi, Varanasi. | Effect of Kutaki (Picrorrhiza Kurroa) on biliary system on experimental study |
| 120. | Dr. G. N. Chaturvedi, Dr. Ram Dhani, Dr. Krishan Mohan, Dr. K. P. Shukla, Dr. S. K. Tiwari, Varanasi. | Effect of indigenous drugs on gastric secrection. |

| | | |
|---|---|---|
| 121. | Dr. C. M. Maheshwari,<br>Dr. S. K. Tiwari,<br>Dr. G. N. Chaturvedi, Varanasi. | Management of Parinam Shoola (Peptic ulcer) by an indigenous drugs shatavari (Asparagus recemosa). |
| 122. | Dr. S. K. Tiwari,<br>Dr. C. M. Maheshwari,<br>Dr. K. P. Shukla,<br>Dr. G. N. Chaturvedi, Varanasi. | Treatment of bronichia asthama by the bharange Gardenia turgicla. |
| 123. | Dr. G. N. Chaturvedi,<br>Dr. G. Singh, Varanasi. | Hypocholesteroiemic and anticoagulant action of garlic (Allium Sativium). |
| 124. | Dr. S. Nand,<br>Dr. (Mrs.) R. K. Tyagi,<br>Dr. Y. N. Upadhyaya,<br>Dr. G. N. Chaturvedi, Varanasi. | Health statistics survey of Chitaipur village at Varanasi District. |
| 125. | Dr. G. N. Chaturvedi,<br>Dr. S. Nand,<br>Dr. (Mrs.) Pandey S. | Health Statistic of three Northern Indian villages of U. P. (A door to door survey). |
| 126. | Dr. S. Nand,<br>Dr. (Mrs.) R. K. Tyagi,<br>Dr. G. N. Chaturvedi, Varanasi. | Treatment of Diarhoea with Kutajadi Yoga in rural patients. |
| 127. | Dr. R. N. Tewari, Tarikhet. | Study of preferences exhibited by musk deer in captivity to fodder through buffet selection. |
| 128. | Dr. S. Mehrotra,<br>Dr. Roma Mitra, Lucknow. | A comparative Pharmacognostical study on 'Plaksha'. |
| 129. | Dr. R. C. Gupta, Lucknow. | Pharmacognostic study on 'Dhava' (Anogeissus latifolia Wall) Stem bark. |
| 130. | Dr. R. C. Gupta, Lucknow. | Is 'Shveta Sharpunkha' a white flowered form of Tephrosia purpurea (L) pers. |
| 131. | Dr. R. Mitra, Lucknow. | The role of Pharmacognosy in relation to Indian Medicinal Plants. |
| 132. | Dr. S. Bhattacharjee,<br>Dr. A. R. Nair, Gauhati. | Incidence of intestinal parasitic infestation (Puree-shaj krimi) amongst the patients attended. |
| 133. | Dr. B. J. Vakil,<br>Dr. N. J. Dalal,<br>Dr. P. N. Shah,<br>Dr. K. N. Mehta,<br>Dr. S. R. Gawade, Bombay. | Evaluation of some popular Ayurvedic antithelmintic drugs. |

| | | |
|---|---|---|
| 134. | Dr. D. John,<br>Dr. C. A. A. Nair,<br>Dr. K. Vasudevan Nair, Trivandrum. | Folklore medicine of the Kani tribals of Trivandrum forest division. |
| 135. | Dr. M. L. Sharma,<br>Pt. Keerti Sharma, Patiala. | Effect of combination of Ayurvedic drugs on the Pakshagbata. |
| 136. | Dr. M. K. Tyagi,<br>Dr. R. K. Tyagi,<br>Pt. Keerti Sharma, Patiala. | Biomedical survey of village-Hassanpur. |
| 137. | Dr. B. N. Sannd,<br>Dr. B. V. Holla,<br>Dr. M. Sharma,<br>Dr. P. Dash, Bhubaneswar. | Bone tumour:—Discussion on a case report and evaluation of an Ayurvedic drug regimen. |
| 138. | Dr. B. N. Sannd,<br>Dr. B. V. Holla,<br>Dr. P. N. Pandey,<br>Dr. (Mrs.) M. Sharma,<br>Dr. S. Dash, Bhubaneswar. | A Pilot study of Parinam shoola with symptomatic analysis of cases treated with different drugs. |
| 139. | Dr. D. D. Mishra,<br>Dr. B. V. Holla, Bhubaneswar. | A Pilot study on sleepada with Nityanand rasa in the coastal district of Orissa. |
| 140. | Dr. B. N. Sannd,<br>Dr. P. N. Pandey,<br>Dr. P. K. Dash, Bhubaneswar. | Concept of parinam shoola (Peptic ulcer) from Ayurvedic and Modern stand point with a comparative analogy between the two approaches. |
| 141. | D. J. P. Kotiyal,<br>Dr. D. B. Bhist,<br>Dr. D. S. Singh, Pondicherry. | The hypolipidimic effect of Gumguggulu (Commiphora mukul) Fraction 'A' |
| 142. | Dr. P. V. Tiwari,<br>Dr. S. K. Mishra,<br>Dr. K. Basu, Varanasi. | An approach to limit the Family with the help of Indigenous drugs. |
| 143. | Dr. V. P. Trivedi,<br>Dr. S. Nesamany,<br>Dr. V. K. Singh, Lucknow. | A clinical study of tbe antitussive and anti-asthamitic effect of Vibhitak Phal Chorna (Terminalia bellerica) in cases of Kas-swas. |
| 144. | Dr. M. Ahmed, Hyderabad. | A successful response to a single application of Unani drugs on vitiligenous patches—a Trigger mechanism : case report. |

| No. | Authors | Paper |
|---|---|---|
| 145. | Dr. Bahauddin, Hyderabad. | Vitiligenous lesions on scalp. |
| 146. | Dr. Rattan Mishra,<br>Dr. K. Raghunathan,<br>Dr. K. V. Billore, Headquarters. | Exploration of mineral wealth of Rajasthan. |
| 147. | Dr. K. K. Purushothaman,<br>Dr. A. Sharada, Madras. | Structure of roxburgilin. |
| 148. | Dr. K. K. Purushothaman,<br>Dr. A. Sharada, Madras. | Structrual elucidation of malabaricones A-D, Noval Diary nonanoids from M. Malabarica lam (Fam : Myristicaceae). |
| 149. | Dr. K. K. Purushothaman,<br>Dr. S. Chadrashekharan, Madras. | Chemical examination of Jatropha Gossypifolia. |
| 150. | Dr. K. K. Purushothaman,<br>Dr. K. Kalyani, Madras. | Chemical examination of Melia composita Wild. |
| 151. | Dr. K. K. Purushothaman,<br>Dr. A. Sharada,<br>Dr. S. Mutharassan, Madras. | Chemical examination of cithorexylum subserratum. |
| 152. | Dr. K. K. Purushothaman,<br>Dr. S. Vasanth, Madras. | Chemical examination of O. Americanum (Kanjankorai). |
| 153. | Dr. R. Bhima Rao,<br>Dr. P. S. N. Sharma,<br>Dr. (Smt.) Natarajan,<br>Dr. G. Saraswathi,<br>Dr. K. K. Purushothaman, Madras. | A method for the determination of mercury in medicinal preparation |
| 154. | Dr. S. Sukumar,<br>Dr. K. K. Purushothaman, Madras. | The significance of serom-macoids in prognosis of cancer |
| 155. | Dr. P. Brindha,<br>Dr. B. Rukmini,<br>Dr. K. K. Purushothaman, Madras | Further pharmacognostic studies on Anisomoles manarica R-Br |
| 156. | Dr. K. K. Purushothaman,<br>Dr. R. K. Natarajan,<br>Dr. M. Natarajan, Madras | Chemical examination of Aquilaria Isolation oxoaporphine alkaloids |
| 157. | Dr. M. Alam,<br>Dr. T. V. Vardarajan,<br>Dr. D. Dayalavenkata Krishna,<br>Madras | Some studies on chyavanaprasha, Preparation and standardisation |

| No. | Authors | Title |
|---|---|---|
| 158. | Dr, D. S. Vyas,<br>Dr. V. N. Sharma,<br>Dr, H. K. Sharma, Jodhpur, | Study on antidiabetic and other pharmacological properties of aegle marmalos and enicostemolittorale, |
| 159, | Dr. P. Pandey,<br>Dr. G. N. Chaturvedi,<br>Dr, K, N, Udupa, Varanasi, | A trend analysis of Research progress on Indian Medicine, |
| 160, | Dr, O, P, Gupta,<br>Dr, S, C, Gupta,<br>Dr, C, K, Atal, Jammu, | Structure of a new piperidine alkaloid from piper peepuloides, |
| 161, | Dr, O, P, Gupta,<br>Dr, C, K. Atal, Jammu, | Synthesis of L-Guggul sterone from 16 DPA |
| 162, | Dr, D, Suganthan,<br>Dr, K, Rathinan,<br>Dr, N, R, Pillai,<br>Dr, G, Santhaknmari, Trivandrum, | Pharmacological action of nimbidine, |
| 163. | Dr. G. Premkumari,<br>Dr. G. Santhakumari,<br>Dr. D. Suganthan, Trivandrum. | Pharmacological action of plumbagin. |
| 164. | Dr. G. Santhakumari,<br>Dr. J. Kumari,<br>Dr. D. Suganthan, Trivandrum. | Site and mechanism of action of plumbagin. |
| 165. | Dr. O. Seshadri,<br>Dr. K. Rathinar,<br>Dr. G. Santhakumari, Trivandrum. | Anticomgulamt activity of plumbagin. |
| 166. | Dr. P. Premakumari,<br>Dr. D. Suganthan,<br>Dr. G. Santhakumari, Trivandrnm. | Anti fungal and anti bacterial activity of plumbagin. |
| 167. | Dr. Suganthan,<br>Dr. G. Santhakumari, Trivandrum. | Antifertility activity of an indigenous preparation Ayush-AC II. |
| 168. | Dr. D. Suganthan,<br>Dr. G. Santhakumari, Trivandrum. | Antifertility activity of an indigenous prepayation AYUSH-47. |
| 169. | Dr. D. Suganthan,<br>Dr. G. Santhakumari, Trivandrum. | Antifertility activity of an indigenous preparation AYUSH-7. |
| 170. | Dr. C. Seshadri,<br>Dr. D. Suganthan,<br>Dr. G. Santhakumari, Trivandrum. | Biochemical changes in the female genetal tract and liver of mated rats treated with embelium a nonhormonal oral contraceptive agent. |

| | | |
|---|---|---|
| 171. | Dr. C. Seshadri,<br>Dr. D. Suganthan,<br>Dr. N. R. Pillai,<br>Dr. G. Santhakumari, Trivandrum. | Antioestrogenic activity of AYUSH AC II-An indigenous oral contraceptive agent. |
| 172. | Dr. C. N. P. Nair, Jogindernagar. | A comparative study of Amlapitta with ten point formula and its modern aspects. |
| 173. | Dr T. H. Joseph,<br>Dr. T. J. Dennis,<br>Dr. K. P. Mishra,<br>Dr. K. V. Billore, Jaipur. | Pharmacognostical study on Fagonia Cretica Linn. |
| 174. | Dr. K. J. Shamsi, Lucknow. | Medicinal Properties of Urine refered by Ibnul-baitar in Janiul Mufradat. |
| 175. | Dr. A. K. Jain, New Delhi. | A Pilot Study on Clinical Trial of Post-Beekh-e-Madar (Root) bark of Contropis procera (Rit) R. Br. in Zoosantaria-e-Meui and Zaheer-e-Muzmin Chronic intestinal amoebia sis. |
| 176. | Dr. M. N. Das,<br>Dr. D. Dey, Calcutta. | Pharmacognostic studies of Acorus Calamus and its adultarants. |
| 177. | Dr. M. N. Das,<br>Dr. D. Dey, Calcutta. | Pharmacognosy of leaf and stem of Capparis Sepiaria Linn. |
| 178. | Dr. D. D. Chaturvedi,<br>Dr. K. Raghunathan, Headquarters. | An attempt to classify mental disorders in Ayurveda in the present Psychiatric concept. |
| 179. | Dr. H. R. Goyal,<br>Dr. Keertisharma, Patiala. | A clinical study on 468 cases of Tamak Swasa (Bronchial Asthama). |
| 180. | Dr. Keertisharma,<br>Dr. K. M. Mishra,<br>Dr. R. P. Sharma, Patiala. | Role of Vamana and Virechana in the treatment of Tamak Swasa (Bronchial Asthama). |
| 181. | Dr. N. N. Pathak,<br>Dr. T. N. Srivastava,<br>Dr. S. Jalil Hussin, Jammu. | Suddha Madhu Kshetra (J & K) Me Upla-bdha Vanaspatiya Evam Unka Chikitsakiya Upyoga. |
| 182. | Dr. R. K. Issar, New Delhi. | Pharmacognostic studies of some imported and sustituted Unani vegetable drugs. |
| 183 | R. Kumaraswami, (Dr.)<br>Dr. K. Sivaprakasam,<br>Palayamkottai. | Contribution to the Pharmacognostic identity of some native minerals (Piravipashnams) of Siddha medicinal, Karkadaga Pashana. |
| 184. | Dr. M. B. Patel, Rajpipla. | Survey of road side cultivated trees of Gujarat. |

| | | |
|---|---|---|
| 185. | M. C. Jain, (Dr.)<br>Dr. M. B. Patel, Rajpipla. | Charakkalin Rasayana Shastra. |
| 186. | Dr. B· B. Sharma,<br>(Mrs.) H. B. Sharma,<br>Dr H. . D. Shastri, Kurukshatra. | Clinical trial of marichadi vati on Kas. |
| 187. | Dr. B. P. Srinivasan,<br>Dr. O. P. Sachadeva,<br>Dr. V. M. Nagpal, New Delhi. | Standardisation of Mother Tincture of Ficus religiosa. |
| 188. | Dr. O. P. Sachadeva,<br>Dr. N. Suri,<br>Dr. D. D. Gera,<br>Dr. V. P. Singh, New Delhi. | Addition to Kent's reportory on eapar—Mouter. |
| 199. | Dr, B. P. Srinivaean,<br>Dr. O. P. Sachadeva,<br>Dr. V. M. Nagpal, New Delhi. | Standardisation of Mother tincture of Azadi·rachta Indica. |
| 190. | Dr. O. P. Sachadeva,<br>Dr. Y. S. Chillar,<br>Dr. Nirmal Suri,<br>Dr. D. D. Geru,<br>Dr. V. V. Saxena, New Delhi. | Role of Arsenicum album Bronchial asthama. |
| 191. | Dr. S C. Varshney,<br>Dr. L. M. Singh, Varanasi. | Electroolytes study in Patients of Urolithia-sis treated with Ayurvedic drugs. |
| 192. | Dr. D. T. Giri,<br>Dr. B. D. Nandubarkar,<br>Dr. A. N. Vyas, Ahemedabad. | A comparative study of various modes of Shodhana in cases of Vicharchika. |
| 193. | Dr. K. J. Joshi,<br>Dr. P. L. Dhyani,<br>Dr. S. Vasavada,<br>Dr. A. J. Baxi, Jamnagar. | Vitamin 'C' content of a few Ayurvedic for-mulation containing Amalaki. |
| 194. | Dr. Damodar Joshi,<br>Dr. P. Vasanta, Trivandrum. | Study on Gandhaka Bhasma with special reference to Twak rogas (Skin diseases). |
| 195. | Dr. R. M. Tripathi,<br>Dr. B. B. Nayak,<br>Dr. P. K. Das, Varanasi. | Study on hypogycaemic and hypochole strol-mic effect A Albizzia lebheck. |
| 196. | Dr. Gyan Singh,<br>Dr. S. Singh,<br>Dr. S. C. Varshney,<br>Dr. I. M. Singh, Varanasi. | Etiopathogenesis of Ashmari (Urolithiasis) |

| | | |
|---|---|---|
| 197. | Dr. Sarmila Aggrawal,<br>Dr. G. P. Dubey,<br>Dr. K. N. Udupa, Varanasi. | Studies on certain physiological and biochemical functions in relation to different body types. |
| 198. | Dr. V. M. Srivastava,<br>Dr. G. M. Dubey,<br>Dr. R. H. Singh,<br>Dr. K. N. Udupa, Varanasi. | Biochemical parameters the assessment of Human constitution. |
| 199. | Aruna Agrawal,<br>Dr. G. P. Dubey, Varanasi. | Psychosomatic basis of Health and disease according to Charaka Samhita. |
| 200. | Dr. Geeta Anand,<br>Dr. G. P. Dubey,<br>Dr. K. N. Udupa, Varanasi. | Studies on certain objective parameters for the assessment of Manas Prakriti (Psychic constitution) |
| 201. | Dr. G. P. Dubey,<br>Dr. K. Sharma,<br>Dr. S. Agarwal,<br>Dr. K. N. Udupa | Incidence of cardiovasula disorders in relation to different body weight. |
| 202. | Dr. Salanuddin S. M. Husain<br>Dr. M. T. Kazmi,<br>Dr. H. M. Taiyab. | Clinical trial of Autrialal in vitiligo. |
| 203. | Dr. Mithilesh Gupta,<br>Dr. B. Prasad<br>Dr. S. N. Tripathi. | Effect of extract of gugglu on Est rogen induced by perlipidemia in chicks. |
| 204. | Dr. S. N. Tripathi,<br>Dr. Mithilesh Gupta<br>Dr. S. P. Sed.<br>Dr. K. N. Udupa. | Effect of a keto steroid of C, mukul on hypercholesterolemia and hperlipidemia induced by neomerazole and cholesterol mixture in chicke. |
| 205. | Dr. K. N. Tewari,<br>Dr. P. Joshi, Tarikhet. | Cynanthus bookeri clarke A new record from westerm Hinialayas. |
| 206. | Dr. S. K. Srivastava,<br>Dr. K. Chandrasekhar,<br>Dr. S. N. Tripathi, Varanasi. | An experimental model for Grahani Effect of raw soya bean on the pancreas and its repercussion on thyroid. |
| 207. | Dr. L. M. Singh,<br>Dr. S. C. Varshney, Varanasi. | Managment of Urinary disorders by Indigenous drugs. |
| 208. | Nutan Tripathi,<br>Dr. G. P. Dubey, Varanasi | Incidence of Hypotention in Different psychic constitution. |
| 209. | Dr. B. B. Sharma | Morbidity studies of village Bajidpur. |
| 210. | Dr. A. K. Basu. Calcutta. | Role of Auto and induced suggestion (mesmerism) in general practice and omoeopathy. |

| No. | Authors | Title |
|---|---|---|
| 211. | Dr. P. Sharma, Delhi, | New Dily alro furanoconmarine from the recds Apium leptophyllum. |
| 212. | Dr. N. C. Shah,<br>Dr. K Raghunathan, Delhi | The role of survey of Medicinal Plants in relation to medicine. |
| 213. | Dr. N. Kamiah, | Chemical investigation of the connarus monocapus—II |
| 214. | Dr. G. A. Nair | New approch to the standardisation of Ayurvedic finished products. |
| 215. | Dr. V. P. Trivedi | An evaluation of Antiussived and anti-asthmatic effect of Terminalia Bellerica roxb in experime Amimals. |
| 216. | Dr. Billore, K. V.<br>Dr. Togunasni, V. S.<br>Mishra, Ratan. | Special Medico botanical survey of Panchmarhi. |
| 217. | Dr. Puri, H. S.<br>Dr. Audichya, K. C.<br>Dr. Joseph, T. C. | Special Medicobotancal survey of Desert areas of Rajasthan. |
| 218. | Dr. Uniyal, M. R.<br>Dr. Issar, R. K. | Medico botanical exploration and Natural resources survey of Sihkim-Himalyas. |
| 219. | Srivastava, T. N.<br>Gupta, O. P.<br>Pathak, N. M.<br>Hussain, S. J.<br>Tuli, S. N. | A medico-botanical survey tour to Ladakh (J & K)—II |
| 220. | Mrs Umual Fazal | Clinical study on Zaheer muzmin and Zoosantaria mev, wita posth bekh madar (Root of calotropis procra) |
| 221 | Dr. Salahuddin<br>Dr. Husain S. M. S.<br>Dr. Kaim S. H. T.<br>Dr. Taiyab. H. M. | Clinical trial of ATRILAL IN vitiligo. |
| 222. | Mohd- Iqbal Ali | A clinical study of vitilige lesions. |
| 223. | H. K. Bahauddin | Therapeutic response to Zimed (Z) and Suioof (SFI) |
| 224. | H. K. Muneer Ahmad | A successful response to a single application of Unani drug on vitillgenous patch es a Trigger Mechanism case report. |
| 225. | Dr. K- J. Shamsi | Medicinal properties of urine referred by IBNUL BAYAR in JAMI-IL-MOFRADAT. |
| 226. | Dr. S. J. Hussain &<br>Dr. T. N. Srivastava | Identity of Unani Medicinal Plants USTU-KHUDUS AND BADRANJ BOYA. |
| 227. | Dr. Jamal Ahmad and<br>Hafizullah Khan- | Chemical Investigation of Calophyllum Wightianum. |

# Unani & Ayurvedic Pharmacy

**List of papers on Unani and Ayurvedic Pharmacy presented at the Session of the 30th Indian Pharmaceutical Congrass held at Calcutta, on 26-28 December, 1978, is being publsihed here for those readers and researchers who are connected with Unani & Ayurvedic Pharmacy.**

**—Editor**

H1

IDENTIFICATION OF SEMIPRECIOUS STONES OF AYURVEDIC IMPORTANCE BY OPTICAL CRYSTALLOGRAPHY : BY (Miss) S. Satakopan (The Laboratory of the Drugs Control Administration ( Gujarat, Baroda)

Several semi-precious stones in their uncut and crude form are used in Bhasmas, Market and raw materials of the manufacturer available under the names Neelam, Manikyam, Panna, Pokhraj, Vaiduryam, Vaikrantam, and Gomedakam are identified in polarised light by optical crystallography. A key, by the use of which a very small quantity of sample can be identified in a very short time is presented for distinguishing the genuine from the substitutes

H2

STANDARDIZATION OF "ASHOKARISHTA" AN AYURVEDIC FORMULATION : By H. P. Sharma* and R.K. Khanna (Pharmacognosy Laboratory, National Botanic Gardens, Lucknow).

A large number of drug formulations of the traditional systems of medicine are sold in the market. However, no reliable scientific standards have so far been prescribed for these. The first step towards, evolving such parameters is the analysis of the prepared drugs. Accordingly, samples of "Ashokarishta' from some of the well known drug manufacturers were analysed and compared with samples prepared under controlled conditions in the laboratory. The results are presented herein and their significance discussed.

H3

PROBLEMS IN STANDARDIZATION OF INDIGENOUS DRUGS : By B. R. Mardikar, R. Santhanam and R. Vasant (M/s. Orient Pharma Pvt. Ltd.. Pallavaram, Madras 600 043).

Hunt for new and safer drugs for many clinical problems is constantly going on. Even though the synthetic drugs are well characterized, many times they pose problems of grave consequences. The contribution of synthetic drugs is also limited and not economically feasible for a large country like ours. Also the international competition is dangerously acute.

Considering a very large medicinal herbal flora we are having and also the possession of the knowledge regarding the usage of these, in the form of Ayurveda and Siddha Sciences. It is very much essential to develop Indian Herbal Drugs. One of the initial steps of such development is 'Standardization of the Herbal drugs at various stages.' This problem will be discussed.

H4

A STUDY OF MADHUYASTHI RASAYANA IN RELATION TO SERUM PROTEINS : By S. N. Mishra and L. V. Guru (Banaras Hindu University, Varanasi).

The effect of the drug Madhuyasthi (Glycyrrhiza Glabra) on body weight, total serum protein level and percentage proportion of serum proteins fractions was estimated in rabbits. The influence of the drug on the Nitrogen balance was also investigated to evaluate its anabolic, property using adult albino rats and administering the drug orally as a suspension in water. The dose was 0.25 g/kg bodyweight of the animals.

The drug Madhuyasthi has been found to have an anabolic effect in both rabbits and albino rats as evident from increase in body weight and positive nitrogen balance in the body of experimental animals.

H5

IMPORTANCE AND SCOPE OF STANDARDISATION OF DRUGS IN AYURVEDA : By P. V. Raj,* Kosh Abraham and J. K. P. Shetty (Regional Research Centre (Ay.), Jayanagar, Bangalore 560 011).

In recent years indigenous systems of medicine particulary Ayurveda is attracting modern scientists for finding out solutions for many challenging diseases. In order to meet this goal one of the important measures that should be taken up immediately is the standardisation of all the drugs used in Indian medicine as well as method of preparations. Vnrious aspects are dealt with.

H6

STUDIES LEADING TO THE STANARDIZATION OF 'ITRIFAL USTUKHUDUS' (UNANI MEDICINE) : By A. H. Israili (Hamdard (Wakf) Laboratorties, Delhi-6).

Itrifal Ustukhuds belongs to an important class of Unani Murakkabats-compound preparations which are known as Itrifalats. The name Itrifal is derived from three-phal (three fruits) and these three fruits are Har, Bahera and Amla (three myrobalans).

There are a number of Itrifalats which are claimed to be useful in a number of ailments of brain, eyes, nose and ear etc.

Here an attempt has been made to work out standards for Itrifal Ustukhudus by analysing samples of the medicine making use of modern analytical methods. The analytical values reported include loss of weight on drying, essential oil content, ash value, acid insoluble ash, reducing sugars before and after inversion, tannin content, resins, anthraquinones-glycosides and alkaloids. The ash was also analysed for its calcium and iron content.

H7

IDENTIFICATION OF A MARKET SAMPLE OF AN AYURVEDIC DRUG 'TAKKOLA' FROM SOUTH INDIA : By S. N. Yoganarasimhhan* and V. S. Togunashi (Regional Research Centre (Ay.), Jayanagar, Bangalore 560011).

During a market study of crude drugs in South India, it was observed that the fruits of a plant under the name 'Takkola' (Kannada) are marketed which are used as one of the ingredients in many compound ayurvedic preparations in certain leading S. Indian ayurvedic pharmacies. The studies on the ingredients of the several ayurvedic preparations wherein this drug is used revealed that this (Takkola) is used in place of the ayurvedic drug 'Kankola' which consists of the fruits of Piper cubeba L. f. (Piperaceae). A critical study on 'Takkola' revealed that they are the fruits of Vitex altissma L. f, of the family Verbenaceae. Details on the identfication are discussed in this paper.

# सामयिक चर्चाएँ

## भारतीय चिकित्सा-पद्धति एवं होम्योपैथी की केन्द्रीय अनुसन्धान परिषद् की वैज्ञानिक संगोष्ठी

### ( कार्यालय पर्यवेक्षक द्वारा )

भारतीय चिकित्सा-पद्धति एवं होम्योपैथी की केन्द्रीय अनुसंधान-परिषद् के वैज्ञानिकों की अखिल भारतीय संगोष्ठी दिनांक २६-२७ दिसम्बर, १९७८ को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली के सभा-कक्ष में सम्पन्न हुई। संगोष्ठी का उद्घाटन केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण राज्यमन्त्री श्री जगदम्बी प्रसाद यादव ने किया। सारे भारत से लगभग २५० के लगभग भारतीय चिकित्सा-पद्धति एवं होम्योपैथी के वैज्ञानिक उपस्थित थे।

इस अवसर पर श्री यादव ने अपने उद्घाटन-भाषण में कहा कि भारत में आयुर्वेद आदि देशी चिकित्सा पर जनता का अटूट विश्वास रहा है और आज भी अधिकांश लोग अनेक रोगों का इलाज इन पद्धतियों से कराते हैं। इन पद्धतियों की दवाएं रोग को दूर करने में लाभकारी तो होती ही हैं—साथ ही इन दवाओं का व्यक्ति के शरीर पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं होता। औषधियों के शोधन एवं मारण की विविध विधियों का अन्वेषण इसी लक्ष्य को सामने रखकर किया गया था। शोधन-मारण की क्रिया के बाद विष को भी अमृत बनाया जा सकता है। इसका सफल प्रयोग आयुर्वेदज्ञों ने किया था। संखिया, मीठा विष आदि मारक द्रव्य हैं परन्तु वैद्य लोग शोधन-मारण के बाद इन्हें अमृत बनाने में समर्थ हो सके।

श्री यादव ने आगे कहा कि आयुर्वेद के प्राचीन आचार्य अनुसन्धान के कार्यों में निरन्तर तल्लीन रहे और तभी वे आयुर्वेद को पूर्ण चिकित्सा बनाने में समर्थ हो सके। समय की आवश्यकताओं को उन्होंने गहराई से समझा। उन्होंने कहा कि आज भी ऐसा ही अवसर हम लोगों के समक्ष उपस्थित है। नए-नए रोग उत्पन्न हो रहे हैं। इन रोगों की सफल चिकित्सा के लिए नए द्रव्यों एवं नयी औषधियों की खोज करना हम सबका पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है।

आगे उन्होंने कहा कि अभी हाल ही में देश के उत्तरी राज्यों में जापानी इन्सेफ्लाइटिस रोग बड़ी तेजी से फैला जिसमें १५०० से अधिक लोग इस रोग से काल-कवलित हो गए। इस रोग से जनता को त्राण दिलाने के लिए बाहर से दवाएं मंगायी गयी परन्तु बाहर की दवाओं पर कब तक निर्भर रहा जा सकता था। आयुर्वेद आदि देशी पद्धतियाँ इस रोग की चिकित्सा में सफल हो सकती हैं। इस दृष्टि से देशी चिकित्सकों का एक दल दिल्ली के प्रसिद्ध वैद्य श्री बृहस्पतिदेव त्रिगुणा जी के नेतृत्व में उन प्रदेशों में भेजा गया था और अनुसन्धान परिषद् को भी इस दृष्टि से तत्परता से कार्य करने का निर्देश दिया गया था।

केंद्रीय स्वास्थ्य राज्य मंत्री ने बताया कि जनता सरकार देशी चिकित्सा-पद्धतियों के विकास में आस्था रखती है। इसी दृष्टि से छठी पंचवर्षीय योजना में इन पद्धतियों के विकास हेतु ६० करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है जबकि पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में इसके लिए मात्र २५ करोड़ रुपये निर्धारित थे। उन्होंने बताया कि देशी चिकित्सा-पद्धति के कालेजों के स्तर को उठाने के लिए इस योजना में अनेक कालेजों को २० लाख प्रति कालेज के अनुपात से सहायता दी जायगी। जिन विषयों के पाठ्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं उन्हें छपवा कर सस्ते मूल्यों पर छात्रों को उपलब्ध कराया जायगा। अध्यापकों को भी विशेष दक्ष बनाने की दृष्टि से प्रशिक्षण दिया जायेगा। परम्परागत ढंग से शिक्षा प्राप्त चिकित्सकों को प्रशिक्षण देकर चिकित्सा एवं स्वास्थ्य-सम्बन्धी नई एवं उपयोगी विधियों से परिचित कराया जायगा। राज्य योजनाओं में अस्पतालों एवं औषधालयों की स्थापना, जड़ी-बूटियों की खेती आदि विकास की अनेक चीजें सम्मिलित हैं। इन सब कार्यों के सुचारु रूप से संचालन के लिए स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अन्तर्गत एक निदेशालय स्थापित करने का भी विचार है।

राज्य मंत्री ने आगे कहा कि अनुसन्धान-सम्बंधी कार्यों में अधिक गति लाने के लिए यह निश्चय किया गया है कि वर्त्तमान एक परिषद् के स्थान पर ४ नई

परिषदें बना दी जायें—जिससे आयुर्वेद और सिद्ध, यूनानी, योग और प्राकृतिक चिकित्सा तथा होम्योपैथी के अलग-अलग परिषद हों और अपनी-अपनी पद्धति की समृद्धि के लिए ये परिषदें अधिक उत्साह और निष्ठा से कार्य करने में समर्थ हो सकें। नई परिषदों का गठन हो गया है और यथाशीघ्र जनवरी १९७९ से इन परिषदों को दक्षता से कार्य करने का निर्देश दे दिया गया है। पिछले वर्ष परिषद् के लिए १३० लाख का प्रावधान था, जब कि इस वर्ष नई परिषदों के लिए १८७ लाख की राशि निर्धारित की गयी है। उन्होंने कहा कि मैं आशा करता हूं कि विविध पद्धतियों के शोधकर्त्ताओं को जो यह कार्य-विस्तार का नया अवसर मिल रहा है, उसका लाभ उठावेंगे। मंत्री महोदय ने वर्त्तमान परिषद् द्वारा अनके क्षेत्रों में किये गये कार्यों का उल्लेख किया।

श्री यादव ने पुनः कहा कि चार परिषदों के बन जाने से काम के विस्तार की जो नई संभावनाएं बनी हैं उसका लाभ सभी को मिलेगा। आपकी जितनी कठिनाइयां कम हो सकें, इसके लिए हम प्रयत्नशील रहेंगे। उन्होंने कहा कि हम भी यह अपेक्षा रखते हैं कि आप वैज्ञानिक अनुसंधान-कार्य मात्र उदरपूर्ति के लिए न कर सहृदयता के साथ जन कल्याण और देश प्रेम की सर्वोच्च भावनाओं से प्रेरित होकर करें।

अनुसंधान सत्य का अन्वेषण है। निरन्तर परीक्षा का पथ है और सत्य सूर्य के प्रकाश के समान है जो सभी कसौटियों पर खरा उतरता है। आप के कार्य का आधार वैज्ञानिक हो और स्वरूप आपकी पद्धति के अनुरूप हो। इस कार्य का परिणाम जन-जन के लिए कल्याणकारी हो और सभी के लिए ग्राह्य हो।

### पं० शिव शर्मा

भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद के अध्यक्ष पं० शिव शर्मा जी ने इस अवसर पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि आयुर्वेद में अनुसंधान का कार्य आयुर्वेदिक पद्धति के अनुसार होना चाहिए। अभी तक जो इस दिशा में कार्य हुआ है उससे आयुर्वेद विज्ञान को अधिक लाभ नहीं मिला। आयुर्वेद में जो अनुसन्धान हो उसका लाभ आयुर्वेद को ही मिले।

पं० शिव शर्मा ने आगे बताया कि हमने कुछ व्यक्तियों की एक समिति बनायी है जो आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से आयुर्वेद विज्ञान के अनुसन्धान की दिशा में अपना सहयोग देगी। उन्होंने कहा कि अनुसन्धान के क्षेत्र में हमें पाश्चात्य का अनुकरण नहीं करना है, अपितु आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से गवेषणा होनी चाहिए। पाश्चात्य तो हमारा अनुकरण कर रहा है। आयुर्वेदिक पद्धति की ओर उनकी रुचि बढ़ रही है।

आयुर्वेद विज्ञान की महत्ता एवं गरिमा का उल्लेख करते हुए पं० शिव शर्मा ने कहा कि श्री वृहस्पतिदेव त्रिगुणा के नेतृत्व में जो दल इनसेफ्लाइटिस की चिकित्सा-हेतु गया था, उन्होंने १६ केसों की चिकित्सा की, जिनमें ५ केस असाध्य माने जा चुके थे।

पं० शिव शर्मा जी ने बताया कि आयुर्वेद विज्ञान अन्तर्ज्ञान (इनट्यूशन) पर आधृत है। विज्ञान परीक्षण के परे भी है जो हमें सत्य का दर्शन करा सकता है। उन्होंने जोर देकर कहा कि केवल गम्भीर आध्यात्मिक चिन्तन ही सत्य के दर्शन कराने में समर्थ है, जैसा कि प्राचीन ऋषियों ने किया।

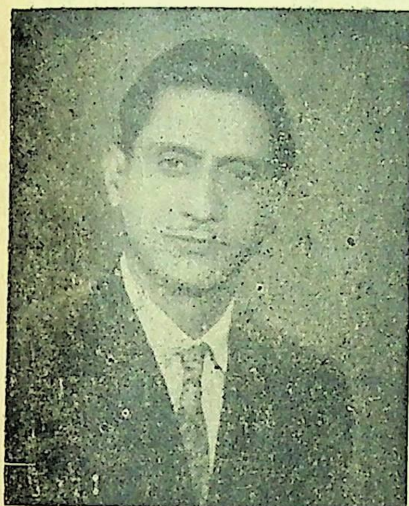
उन्होंने कहा कि पाश्चात्य पद्धति के अनुसार कैंसर, इन्सेफ्लाइटिस पर करोड़ों रुपये खर्च किये गये किन्तु कोई सफलता नहीं मिली है।

पं० शिव शर्मा ने आगे बताया कि आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में एक औषध भिन्न-भिन्न ढंग से देने से कई रोगों में प्रयुक्त की जा सकती है। रोगी के व्यक्तित्व के अनुसार औषध का प्रभाव होता है। औषध और रोगी का मानकीकरण अधिक महत्वपूर्ण है। इस पर ध्यान देना चाहिए। आयुर्वेदिक औषधें केवल दुष्प्रभाव ही उत्पन्न नहीं करती, बल्कि अतिरिक्त लाभ भी प्रदान करती है। अन्य अनेक रोगों को भी साध्य करती हैं।

उन्होने कहा कि तपस्या और मेहनत, लगन और समर्पण से आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से गवेषणा करनी है। नोबेल पुरस्कार-विजेता डा० ऐलेक्सिस करेल के कथन को उद्धृत करते हुए आपने कहा कि बड़े सत्यों की खोज स्टेज (मंच) पर नहीं, परदे के पीछे होती है और बहुत कम होती है। आपने कहा कि चिकित्सा- परिषद् में अनुसन्धान के क्षेत्र में यह प्रथम प्रयास है। रिसर्च का क्षेत्र तपस्या का क्षेत्र है और तपस्वी बन कर रिसर्च का कार्य करना होता है।

इसके उपरान्त योग, सिद्ध, यूनानी एवं होम्योपैथी चि० पद्धति की सलाहकार समितियों के अध्यक्षों के भाषण हुए और उसके पश्चात् संगोष्ठी के कार्यक्रमानुसार इन्सिफ्लाइटिस पर सामूहिक चर्चा हुई । संगोष्ठी का कार्यक्रम दो दिनों तक चला और लगभग २५० से भी अधिक शोध-पत्र पढ़े गये । विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ वक्ताओं ने स्लाइड्स की भी सहायता ली थी। समय की लक्ष्मण रेखा के कारण अधिकांश पत्र पढ़े भी न जा सके (जिसकी तालिका इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित है) संगोष्ठी का वातावरण एकेडेमिक अवश्य रहा किन्तु समय की स्वल्पता संगोष्ठी को अपने घेरे में सदा कैद किये रही।

इस अवसर पर वैद्यनाथ प्रतिष्ठान, हमदर्द प्रभृति आयुर्वेदिक, यूनानी प्रतिष्ठानों की ओर से प्रतिनिधियों को बैग, कलेण्डर, डायरी तथा आयुर्वेदिक प्रकाशन की भेंट दी गयी। बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के संयुक्त प्रबन्ध-निदेशक पं० दुर्गा प्र० शर्मा, आयुर्वेदाचार्य स्वयं संगोष्ठी में उपस्थित रहे और संगोष्ठी के प्रतिनिधियों को अपनी देख-रेख में बैद्यनाथ उपहार का वितरण करवाया।



# इण्डियन फार्मास्युटिकल कांग्रेस का ३०वाँ अधिवेशन सम्पन्न

इस वर्ष गत २६ से २८ दिसम्बर तक भारतीय भैषज निर्माण संघ का ३०वाँ वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता स्थित यादवपुर विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुआ। आधुनिक औषध-निर्माण संघ के लगभग १००० वैज्ञानिकों ने इसमें भाग लिया तथा भैषज्य उद्योग से सम्बन्धित सभी अंगों पर वैज्ञानिक गोष्ठियाँ हुईं।

यूनानी एवं आयुर्वेदिक भैषज्य निर्माण सत्र के अंतर्गत चार शोध-पत्र पढ़े गए। इस सत्र की अध्यक्षता चिकित्सा-विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री लक्ष्मीशंकर विश्वनाथ गुरु ने की। प्रोफेसर गुरु ने भी मधुयष्टि का रक्त पर प्रभाव, शीर्षक शोध-पत्र पढ़ा। अरिष्टों का मानकीकरण, रत्न, उपरत्नों की शुद्धता की वैज्ञानिक पहचान पर भी शोधपत्र पढ़े गए।

स्मरणीय है कि प्रोफेसर गुरु इस सत्र के तृतीय बार अध्यक्ष चुने गए थे।

प्रोफेसर डा० गुरु ने आयुर्वेदिक औषधियों के शुद्ध निर्माण पर विशेष जोर दिया तथा वैज्ञानिकों को आह्वान किया कि वे अपने वैज्ञानिक शोधों द्वारा इनका मानकीकरण करें।

बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के औषध-निर्माण विभाग के श्री आर० के० गुप्त एवं श्री वी० के० गुहा भी उपस्थित थे।

# अन्तरराष्ट्रीय लब्धप्रतिष्ठ भारतविद्, शोधकर्त्ता, पुरातत्ववेत्ता एवं भाषाविद्

# डा० एरियन रोसू

## का बैद्यनाथ प्रतिष्ठान में भव्य स्वागत

( कार्यालय पर्यवेक्षक द्वारा )

आयुर्वेद-जगत् के सुप्रसिद्ध नेता एवं श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के संयुक्त प्रबन्ध निदेशक, आयुर्वेद-चक्रवर्ती, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्वान प्राध्यापक डा० ज्योतिर्मित्र के पत्र से जब यह ज्ञात हुआ कि रोम्या रोलां, पिकासो एवं जीन पॉल सात्र के देश के प्रसिद्ध विद्वान आयुर्वेदीय शोध के सिलसिले में पटना दो दिनों के लिए पधार रहे हैं एवं 'भवन' का अतिथि बनना चाहते हैं, तो उनके उल्लास का पारावार नहीं रहा। उन्होंने डा० रोषू का पटना में भव्य स्वागत करने का निश्चय किया।

कार्यक्रम के अनुसार १३ जनवरी की रात में ११ बजे डा० रोषू अमृतसर मेल से पटना पहुंचे। स्टेशन पर 'सचित्र आयुर्वेद' के सम्पादक श्री श्रीकांत शास्त्री, श्री विमल चन्द्र झा एवं श्री विनय कुमार ने डा० रोषू का बैद्यनाथ प्रतिष्ठान की ओर से भव्य स्वागत किया एवं पुष्पमालाओं से लाद दिया। स्टेशन से वे होटल अप्सरा ले जाये गये।

X X X

१४ जनवरी को प्रातः ६.३० बजे ही डा० रोषू ने नालन्दा, पावापुरी एवं राजगृह के लिए कार से प्रस्थान किया। साथ में सर्वश्री श्रीकांत शास्त्री, रामेश्वर दयाल जायसवाल एवं विमलचन्द्र झा थे। लगभग ९-३० बजे नालन्दा पहुंच गये। नालन्दा के खण्डहरों एवं अवशेषों को देखकर बरबस प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्वर्ण-युग की याद आ जाती है। प्राचीन गौरवमय इतिहास को याद करके हमें अपने ऊपर गौरव होता है कि हमारी संस्कृति भी एक जमाने में उन्नत अवस्था में थी एवं विद्या-बुद्धि में सम्पूर्ण विश्व हमारा लोहा मानता था। नालन्दा विश्वविद्यालय संसार-प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था। लगभग १० हजार छात्र विश्व के विभिन्न भागों से जंगलों, पहाड़ों को लांघते हुए नालन्दा पढ़ने के लिए आते थे। इस विश्वविद्यालय की एक विशेषता यह थी कि सभी छात्र एक ही छात्रावास में रहते थे एवं प्रत्येक छात्र के लिए अलग-अलग कमरे थे। पुरातत्ववेत्ता एवं भारतविद् होने के कारण डा० रोषू ने खण्डहरों एवं अवशेषों का काफी दिलचस्पी के साथ निरीक्षण किया। उनके पास एक किताब थी जिसमें नालन्दा के खण्डहरों का विस्तृत विवरण था। खण्डहरों को देखने के पश्चात् डा० रोषू ने पाली संस्थान के निदेशक प्रोफेसर उपासक से भेंट की। उन्होंने बताया कि नालन्दा आने का मूल उद्देश्य यह था कि पाली भाषा में "आयुर्वेद के मनोवैज्ञानिक पहलुओं" से सम्बन्धित साहित्य मिल सकता है अथवा नहीं ? प्रोफेसर उपासक से विचार-विमर्श करने के पश्चात् वे पाली संस्थान गये एवं वहाँ पुस्तकालय का निरीक्षण किया। पुस्तकों का विशाल संग्रह देख कर वे अत्यन्त प्रभावित हुए। पाली संस्थान देखने के पश्चात् वे राजगृह गये। वहाँ भी उन्होंने ऐतिहासिक स्थानों को देखा। उसके पश्चात् पावापुरी स्थित प्रसिद्ध जैन मन्दिर को देखते हुए पटना लगभग ६.३० बजे सायं वापस चले आये।

X X X

१५ जनवरी को १० बजे दिन में डा० रोषू श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, पटना के प्रांगण में पहुंचे। प्रतिष्ठान के संयुक्त प्रबन्ध निदेशक, पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा ने आयुर्वेद जगत् एवं प्रतिष्ठान की ओर से डा० रोषू का शानदार स्वागत किया। मान्यवर शर्मा जी के साथ डा० रोषू ने प्रतिष्ठान के प्रत्येक विभाग का निरीक्षण किया। उन्हें आशा नहीं थी कि आयुर्वेदीय औषधियों का निर्माण भी आधुनिक तरीकों से हो सकता है। वे प्रतिष्ठान को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। डा० रोषू के सम्मान में प्रतिष्ठान की ओर से एक पत्रकार-गोष्ठी का आयोजन भी प्रतिष्ठान के प्रांगण में किया गया था। पत्रकार-गोष्ठी में पटना के द्ध विद्वान, सामाजिक कार्यकर्त्ता

आयुर्वेदज्ञ एवं स्थानीय दैनिकों के सभी पत्रकार उपस्थित थे। सर्वप्रथम प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य ने डा० रोषू का स्वागत करते हुए उनका परिचय उपस्थित विद्वानों को दिया। 'भवन' की ओर से उन्हें रेशमी वस्त्र में लपेटकर वैद्यनाथ प्रकाशनों का एक सेट, एवं रामनामी अग वस्त्रम्, एक पाग उपहार-स्वरूप दिया गया—जिसको डा० रोषू ने उल्लासपूर्वक ग्रहण किया। पटना विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति तथा बिहार ग्रन्थ अकादमी के अध्यक्ष आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने विद्वान 'अतिथि' का स्वागत करते हुए प्रतिष्ठान के सं० प्र० निदेशक, आयुर्वेद-चक्रवर्ती पं० दुर्गा प्रसाद जी शर्मा की विदेशों में आयुर्वेद का प्रचार-प्रसार करने एवं आयुर्वेद को समय और स्थान की सीमा से बाहर ले जाने के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस अवसर पर बिहार हिन्दी प्रगति समिति के अध्यक्ष कविवर पं० रामदयाल पाण्डेय, पं० सुरेशदत्त शर्मा, ज्योतिषाचार्य पं० विष्णुकान्त झा, श्री बलराम दूबे एवं अन्य महानुभावों ने डा० रोषू का स्वागत किया। सभा की अध्यक्षता आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य रामरक्ष पाठक ने की। धन्यवाद-ज्ञापन करते हुए 'सचित्र आयुर्वेद' के सम्पादक श्री श्रीकान्त शास्त्री ने भारतीय संस्कृति की गौरव-गाथा पर प्रकाश डाला एवं डा० रोषू को बधाई दी कि सुदूर रूमानिया में जन्म लेने एवं कला पारखियों की सांस्कृतिक-नगरी, पेरिस में बसने के उपरान्त भी वे प्राच्य विद्या की सभी विधाओं मे दिलचस्पी ले रहे हैं एवं अपने अनुसंधान के सिलसिले में अपने देश से हजारों मील दूर हिन्दुस्तान आये हुए हैं।

पेरिस विश्वविद्यालय में लगभग १५ वर्ष से आयुर्वेद के मनोदैहिक पहलुओं पर अनुसन्धान कर रहे डा० एरियन रोषू ने आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा के साथ पत्रकार-गोष्ठी में, इस प्रश्न पर सहमति व्यक्त की कि आयुर्वेद मात्र औषधियों का शास्त्र नहीं है, बल्कि यह जीवन का विज्ञान है। विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य अपने को कैसे स्वस्थ रख सकता है, साफ एव स्वस्थ अर्थात् स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास कैसे हो सकता है एवं अन्त में निर्वाण की प्राप्ति कैसे हो सकती है—इसकी शिक्षा आयुर्वेद देता है। डा० रोषू ने स्वीकार किया कि आयुर्वेद के मनोदैहिक पहलुओं के सम्बन्ध में आज जो पश्चिमी चिकित्सा-पद्धति अनुसन्धान कर रही है, उसे आज से हजारों वर्ष पूर्व आयुर्वेद ने पता लगा लिया था और यही कारण है कि पश्चिम विशेषकर फ्रांस इस ओर आकृष्ट हो रहा है।

डा० रोषू वास्तव में सरस्वती के वरद् पुत्र हैं। विदेश में जन्म लेने के बावजूद डा० रोषू भारतीय संस्कृति के जीते-जागते प्रतिरूप प्रतीत होते हैं। व्यवहार, भाषा, चरित्र, विद्वत्ता एवं रहन-सहन में सादगी की दृष्टि से वे पूर्णत: भारतीय मालूम होते हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति उनका मस्तिष्क दुराग्रह-रहित, मन निर्लिप्त तथा भावनापूर्ण हृदय सांस्कृतिक संस्कारों से पुष्ट तथा चिन्तन काफी गहरा है। अपनी ज्ञान-पिपासा की शान्ति के लिए वे आर्यावर्त के खण्डहरों, शहरों, विश्वविद्यालयों, अनुसन्धान संस्थानों एवं प्रसिद्ध पुस्तकालयों की खाक छान रहे हैं। अपने छह मास के प्रवास में वे दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के प्रसिद्ध पुस्तकालय, ऐतिहासिक अवशेषों के निरीक्षण के पश्चात् वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी आये थे। वहां उन्होंने गंगा तट पर रहने वाले पण्डितों से लेकर चिकित्सा-विज्ञान संस्थान के प्रसिद्ध विद्वान, डा० ज्योतिर्मित्र, डा० प्रियव्रत शर्मा, डा० पी० जे० देशपाण्डे, संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राचार्य प्रभृति लोगों से भेंट की। वहां से वे पटना आये एवं पटना से उन्होंने गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा स्थापित शान्तिनिकेतन विश्वविद्यालय के लिए १५ जनवरी की रात में अमृतसर मेल से प्रस्थान किया। वहां वे शिक्षकों एवं छात्रों के मध्य भाषण देंगे। वहां से वे कलकत्ता, मद्रास, पांडीचेरी, केरल आदि विभिन्न स्थानों में अपनी ज्ञान-पिपासा की शान्ति के लिए जायेंगे एवं मार्च '७९ में स्वदेश लौट जायेंगे।

पाटलिपुत्र की इस प्राचीन नगरी में डा० रोषू का व्यस्त कार्यक्रम रहा। नालन्दा, पावापुरी, राजगृह के अलावा वे खुदाबक्श लाइब्रेरी, जायसवाल रिसर्च इन्स्टीचूट गये एवं शाम को 'भवन' के सं० प्र० निदेशक, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद जी शर्मा के साथ राज्यपाल से भेंट की।

सरस्वती के ऐसे साधकों की साधना एवं तपश्चर्या से मानवता निहाल होती है और हमारा सांस्कृतिक जीवन समृद्ध होता है। डा० रोषू अपनी ज्ञान-साधना में पूर्ण सफल हों, यही हमारी शुभ कामना है।

# विद्वत् वैद्य परिषद, दिल्ली

## धन्वन्तरि पूजन एवं वृक्षारोपण-समारोह

इस वर्ष विद्वत् वैद्य परिषद्, दिल्ली के तत्वावधान में परिषद् का वार्षिकोत्सव एवं जयन्ती-महोत्सव ११ से २१ अक्टूबर तक स्वास्थ्य मास के रूप में मनाया गया। परिषद् का अधिवेशन मारवाड़ी औषधालय में सम्पन्न हुआ। अधिवेशन में विद्वत् परिषद् का नाम आयुर्वेद परिषद् में परिवर्तित कर दिया गया। परिषद् की हीरक जयन्ती अप्रेल १९७९ में मनाने का निश्चय किया गया। उस अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन, गोष्ठी का आयोजन एवं प्रतिष्ठित विद्वानों का सम्मान करने का भी निर्णय हुआ।

२१ अक्टूबर को अशोक होटल (दिल्ली) में धन्वतरि जयन्ती का उद्घाटन मारीशस के उद्योग मन्त्री श्री दयानन्द वसन्त राव ने किया और समारोह की अध्यक्षता डा० राम प्रकाश (हिन्दी एडवाइजर) ने की। मंगलाचरण कुमारी रत्नम् ने किया। वैद्य जगदीश प्रसाद शर्मा ने परिषद् की ओर से धन्वन्तरि कलश और रुद्राक्ष श्री दयानंद वसन्त राव को भेंट किया।

मारीशस के उद्योग मन्त्री श्री दयानन्द वसन्त राव ने इस अवसर पर अपने भाषण में कहा कि मारीशस में आयुर्वेद संस्थान खुलने जा रहा है और विश्व आयुर्वेद महासम्मेलन करने की भी योजना है।

२९ अक्टूबर को प्रधान मन्त्री श्री मोरार जी देसाई के निवास स्थान पर वृक्षारोपण समारोह सम्पन्न हुआ। श्री देसाई ने अपने सारगर्भित-भाषण में कहा कि आयुर्वेद की उन्नति आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर ही हो सकती है और आयुर्वेद का विकास आयुर्वेदज्ञों के द्वारा ही हो सकता है। सरकार तो केवल बाधा ही दूर कर सकती है। प्रधान मन्त्री ने कहा कि मिश्रित प्रणाली आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति के लिए घातक है। प्रधान मन्त्री के साथ दिल्ली के प्रसिद्ध वैद्यों ने भी वृक्षारोपण किया।

इसी दिन चक्रपाणि आयुर्वेद भवन, अहिंसा आयुर्वेद भवन, अहिंसा आयुर्वेद महाविद्यालय, तथा नेपाली दूतावास में विशेष आयोजन हुए। नेपाली दूतावास में धन्वन्तरि पूजन हुआ। भारत स्थित नेपाली राजदूत श्री वेदानन्द झा ने पूजन में विशेष अभिरुचि ली। नेपाली राजदूत महोदय ने समुपस्थित महानुभावों का स्वागत करते हुए कहा कि भारत और नेपाल सांस्कृतिक दृष्टि से अभिन्न है और आयुर्वेद की दृष्टि से दोनों देश एक जैसा है। वनस्पतियों का प्राचुर्य भारत-नेपाल दोनों ही देशों में है। समारोह में निम्नांकित संकल्प किये गये :—

(१) पांच लाख औषध द्रव्यों का वृक्षारोपण।
(२) निःशुल्क रोगी-परीक्षण।
(३) श्रमदान यज्ञ।
(४) परिवार कल्याण-गोष्ठी।
(५) मद्य निषेध-गोष्ठी।

इसी अवसर पर निम्नांकित विशेषज्ञ विद्वानों को प्राणाचार्य की सम्मानोपाधियाँ दी गयीं :—

(१) डा० कृष्णदत्त भारद्वाज, एम० डी० हृदय-विशेषज्ञ,
(२) कविराज खजानचन्द जी, बी० ए०, दिल्ली
(३) भिषक्रत्न कवि० कपूर जी, बम्बई
(४) श्री जनार्दन भट्ट, आयुर्वेदाचार्य काठमांडू (नेपाल)
(५) श्री गोपालकृष्ण शास्त्री, छपरा (बिहार)

नेपाली दूतावास में वृक्षारोपण भी किया गया।

परिषद् के महामन्त्री श्री राजेन्द्र अवस्थी जी ने धन्यवाद-ज्ञापन किया।



धन्वन्तरि जयन्ती के शुभावसर पर प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई द्वारा वृक्षारोपण। प्रधान मंत्री के निवास स्थान पर वैद्यराज पं० जगदीश प्र० शर्मा मंत्रोच्चारण कर रहे हैं।



आयुर्वेद विद्वत् परिषद् द्वारा आयोजित धन्वन्तरि जयन्ती-समारोह के उद्घाटन के अवसर पर मारीशस के उद्योग मन्त्री श्री दयानन्द वसन्त राव को अशोक होटल के कक्ष में वैद्य जगदीश प्र० शर्मा रुद्राक्ष की माला एवं अमृत कलश की भेंट देते हुए।



दिल्ली स्थित नेपाली दूतावास में अनुष्ठित धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव में नेपाली राजदूत श्री वेदानन्द जी पूजन करते हुए। चित्र में कविराज खजानचन्द जी तथा वैद्य जगदीश प्र० शर्मा परिलक्षित हैं।

# पाठकों के पत्र

## एक स्पष्टीकरण

श्रीमान् सम्पादक महोदय, सचित्र आयुर्वेद,
जय आयुर्वेद

'सचित्र आयुर्वेद' आयुर्वेद की उच्च कोटि के वैज्ञानिक एवं गवेषणापूर्ण लेखों की प्रसिद्ध पत्रिका है, जिस का आयुर्वेद जगत् में अपना स्थान है। किन्तु नवम्बर, ७८ के अंक में प्रकाशित एक वक्तव्य को देखकर मुझे आश्चर्य-मिश्रित खेद हुआ। उक्त वक्तव्य के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण देना आवश्यक समझ कर अपना वक्तव्य भेज रहा हूं। इसको स्थान देकर अनुगृहीत करें। 'सचित्र आयुर्वेद' में एक लेख श्री कात्यायन शास्त्री के नाम से छपा है। इस लेख में दिल्ली के आयुर्वेदिक कालेजों के प्रबंधादि विषय को लेकर प्रच्छन्न एवं व्यक्तिगत आक्षेप किये गये हैं और भ्रान्त धारणा फैलाने का कुत्सित प्रयत्न किया गया है। परन्तु वस्तुतः वे व्यक्तिगत आक्षेप नहीं अपितु आयुर्वेद के कर्मठ सेवक वर्ग पर ही सीधा प्रहार है। यद्यपि वर्तमान में दिल्ली के इन कालेजों के प्रबन्धादि से मेरा कोई सीधा सम्पर्क नहीं है फिर भी मैं मानता हूं इसकी स्थापना में मेरा पूर्ण सहयोग रहा है। इसीलिये स्पष्टीकरण के लिए मुझे विवश होना पड़ा।

कुछ वर्ष पूर्व कुछ शरारती तत्वों के षड्यन्त्र से निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के केन्द्रीय महाविद्यालय (दिल्ली) को बहुत क्षति पहुची थी और अध्ययनाध्यापन अस्तव्यस्त हो गया था। ऐसी स्थिति में विद्यापीठ अधिकारियों ने सर्वसम्मति से निर्णय किया था कि महाविद्यालय को किसी दूसरे स्थान पर ले जाया जाय और विश्व अहिंसा संघ की अनुमति से उसके अहिंसा भवन, शंकर रोड, नई दिल्ली में नि० भा० आ० वि० के महाविद्यालय को धन्वन्तरि भवन, पंजाबीबाग से स्थानान्तरित कर दिया गया। इससे पूर्व कृष्ण नगर (दिल्ली) में भी एक आयुर्वेद महाविद्यालय स्थापित किया गया था। इन दोनों महाविद्यालयों में नि० भा० आ० वि० के पाठ्यक्रम के अनुसार ही शिक्षा एवं परीक्षा होती थी। इन दोनों महाविद्यालयों के अपने-अपने भवन हैं, प्रत्येक श्रेणी को पढ़ाने के लिये अलग-अलग कमरे हैं। चिकित्सा के अभ्यासार्थ औषधालय आदि भी हैं। चिकित्सोपकरण एवं पठन-पाठन की सुव्यवस्था है, तथा उच्चकोटि के प्राच्य-पाश्चात्य शैली के भारतविख्यात विज्ञ-विद्वान अध्यापक हैं। ऐसे अध्यापक वर्ग पर कोई भी शिक्षण-संस्था गर्व कर सकती है। यदि किसी महानुभाव को इनकी विद्वत्ता; योग्यता में सन्देह हो तो वह आकर स्वयं साक्षात्कार करके अपने को सन्तुष्ट कर सकते हैं।

इसी प्रकार यदि महाविद्यालयों की प्रवन्ध-व्यवस्था के विषय में कोई सन्देह हो तो वह भी प्रत्यक्ष निरीक्षण-परीक्षण द्वारा दूर हो सकता है। ये महाविद्यालय न किसी की जेब में हैं और न किसी की बैठक या कमरे में हैं और नहीं इनका प्रबन्ध किसी एक व्यक्ति के हाथ में है। इनकी अपनी-अपनी प्रबन्ध समितियां हैं और ये दिल्ली प्रशासन से मान्यता-प्राप्त संस्थाओं के रूप में चल रहे हैं।

अब हम ऐसे भ्रम फैलाने वालों का परिचय भी प्रस्तुत कर देते हैं। आयुर्वेद के नाम से रोटी खाने वाले (परन्तु छिपकर उसी की जड़ पर कुठाराघात करने वाले और वैद्य कहलाने में भी शर्म अनुभव करने वाले डाक्टर नामधारी पर वस्तुतः न वैद्य न डाक्टर) सरकार से आयुर्वेद के नाम से मिलने वाले लाभ के लिये लम्बे हाथ बढ़ाने वाले परन्तु छद्मवेश में आयुर्वेद के शत्रु, ये षड्यन्त्रकारी यद्यपि सम्पूर्ण भारत में फैले हुए हैं, फिर भी किसी-किसी स्थान पर ये विशेष मुखर हैं और अपना स्वरूप एवं नंगा नाच दिखाते रहते हैं।

इन्हीं लोगों ने अपने एजेन्टों द्वारा आयुर्वेद विद्यापीठ के केन्द्रीय महाविद्यालय (दिल्ली) के छात्रों को गलत प्रचार करके भड़काया, हड़ताल करवायी; हुड़दंग मचवाया और पठन-पाठन में विघ्न उपस्थित कर महाविद्यालय को अपार क्षति पहुंचाई। इन्होंने ही षड्यंत्र करके दिल्ली के आयुर्वेद विद्यालयों के छात्रों के शवच्छेदन प्रैक्टिकल के प्रबन्ध में बाधा उपस्थित की। इन्होंने ही स्थानीय तिबिया कालेज और जामिया मिलिया में शवच्छेदन बन्द करवाया जिससे बाध्य होकर गुरुकुल कांगड़ी और रोहतक में शवच्छेदन की व्यवस्था करानी पड़ी। वहां भी इन

लोगों ने बाधा उपस्थित करने के प्रयत्न किये परन्तु सफल न हो सके। विद्यापीठ को दिल्ली में सरकारी मान्यता मिलने पर शवच्छेदनागार बनाये जाने पर शव-उपलब्धि में भी रोड़े अटकाये गये। दिल्ली में विद्यापीठ स्नातकों का रजिस्ट्रेशन चालू करने में भी बाधा उपस्थित की गई परन्तु सफलता न मिली, इसके अतिरिक्त विद्यापीठ के उन स्नातकों को भी हटाने के लिये षड्यंत्र रचा गया जो दिल्ली नगर निगम में चिकित्साधिकारी के रूप में लगे हुए हैं। परन्तु वहाँ भी इन्हें सफलता नहीं मिली। आयुर्वेद महाविद्यालयों के छात्रों को भड़का कर एक बार पुनः हड़ताल और हुड़दंग मचवाने का षड्यंत्र रचा गया, परन्तु, दिल्ली प्रशासन की दूरदर्शिता से परीक्षा बोर्ड बन जाने पर वह भी विफल हो गया। जब छात्रों की पठन-पाठन की सुव्यवस्था हुई तो फिर इनकी आंखों में किर-किरी शुरू हो गई और इन्हें इनकी ईर्ष्याग्नि फिर से जला रही है कि हाय दिल्ली में विद्यापीठ की मान्यता क्यों हो गई? विद्यापीठ के छात्र सीधे बी० एम० बी० एस० में क्यों लिये गये? इन विद्यालयों को नवीन प्रवेशकी अनुमति क्यों मिल गई? और जो कार्य धन्वन्तरि भवन पंजाबी बाग में न हो सका इन विद्यालयों में ही कैसे हो गया? अतः अब ये लोग इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि इन विद्यालयों में जो कर्मठ व्यक्ति अपनी शक्ति इनकी उन्नति में लगा रहे हैं वे ऐसे असत्य एवं भ्रामक लांछनों से विक्षुब्ध होकर अपनी इस कर्मण्यता से पीछे हटकर सर्वथा निराश होकर बैठ जायेंगे। ये गैर जिम्मे-दार लोग यह आरोप लगा रहे हैं कि इस वर्ष इन महा-विद्यालयों में जो छात्र भर्त्ती किये गये हैं उनसे धन लिया गया है।

इस विषय में हमारा स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

२७ सितम्बर, १९७७ को केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय के तत्वावधान में विद्यापीठ के अधिकारियों की बैठक में, जिसमें पं० शिवशर्मा जी और मैं भी उपस्थित था, यह निर्णय हुआ था कि स्वास्थ्य मन्त्रालय के अधीन केन्द्रीय परीक्षा बोर्ड अथवा राज्य परीक्षा बोर्ड भारतीय चिकित्सा परिषद् के पाठ्यक्रमानुसार छात्रोंकी परीक्षा लेगा। तदनु-सार पंजाब, दिल्ली, मध्यप्रदेश की सरकारों ने विद्यापीठ से सम्बद्ध आयुर्वेद महाविद्यालयों को मान्यता प्रदान कर दी परन्तु उत्तर प्रदेश में षड्यंत्रकारियों के षड्यंत्र के कारण मान्यता मिलने में कठिनाई हो रही है।

दिल्ली प्रशासन ने मान्यता की यह शर्त रखी थी कि भारतीय चिकित्सा परिषद् के पाठ्यक्रमानुसार परीक्षा ली जा रही है इसलिये जब तक वर्तमान अध्ययनरत छात्र अपना पाठ्यक्रम पूरा न कर लें तब तक इनके लिए पूरी व्यवस्था इन्हीं संस्थाओं को करनी पड़ेगी। यह भी निर्देश हुआ था कि १९७८ में प्रविष्ट नूतन छात्रों के पठन-पाठन आदि का प्रबन्ध भी सम्बन्धित संस्थाओं को ही करना पड़ेगा। नूतन प्रवेश के समय महाविद्यालय प्रबन्धकों ने दिल्ली प्रशासन को स्पष्ट कर दिया था कि उक्त महाविद्यालय विद्यापीठ कार्यक्रम के अनुसार चालू किये गये थे और उसी के अनुरूप व्यवस्था थी। परिषद् का पाठ्यक्रम चालू करने के लिये बहुत धन की आवश्यकता होगी। और यह आवश्यकता सरकारी सहायता के बिना पूरी न हो सकेगी। भवन-निर्माण आदि के लिये भी पुष्कल धन-राशि अपेक्षित है। सरकारी सहायता के अभाव में सम्पन्न छात्रों के अभिभावकों से सहयोग सहा-यता लेना अनिवार्य होगा। अन्य राज्यों में भी निजी प्रबंध में चलने वाली संस्थायें भी ऐसा ही करती हैं। इसी पृष्ठभूमि में इन महाविद्यालयों में प्रविष्ट होने वाले कुछ छात्रों के अभिभावकों ने प्रवेश के बाद दान दिया है। ऐसी मुझे जानकारी मिली है कि दानदाताओं को दान-राशि की रसीदें दी गई हैं तथा जो धन प्राप्त हुआ है उसका बाकायदा हिसाब रखा गया है जिसका निरीक्षण कोई भी कर सकता है। इस धन से प्रवेश परीक्षा निकाय तथा उसके सदस्यों का कोई सम्बन्ध नहीं रहा। व्यक्ति-गत रूप से मैं स्वयं इसका विरोधी रहा हूं। इन महा-विद्यालयों के निरीक्षण के लिये केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के मन्त्री, नेतागण और पत्रकार समय-समय पर पधारते रहते हैं और अपनी सम्मतियां विद्यालयों की निरीक्षण-पुस्तिका में अंकित करते रहते हैं। उनके प्रशंसा-वाक्य रजिस्टरों में देखे जा सकते हैं।

असत्य एव भ्रामक प्रचारों से आयुर्वेद-जगत, समाज और देश का अनेक बार अहित हुआ है और हो रहा है। इसीलिए उपर्युक्त स्पष्टीकरण देना आवश्यक हुआ।

**—वैद्य जगदीश प्रसाद शर्मा, दिल्ली**

# सरकारी अधिसूचनाएँ

BANARAS HINDU UNIVERSITY
Office of the Registrar
(Administration)
Varanasi-5.
Dated : December 2, 1978,

## NOTIFICATION

In exercise of power conferred upon him under Sub-Section 4 of section 17 of the B H. U. Act, the President of India in his capacity as the Visitor of the B. H. U. has been pleased to approve the amendment to annexure to Statute 25 (1) of the Statutes of the University for creation of a separate Department of Rasa Shastra in the Faculty of Indian Medicine.

The departments of Studies under the Faculty of Indian Medicine will now be as under

DEPARTMENT OF

1. Ayurveda,
2. Basic Principles.
3. Dravya Guna,
4. Kaya Chikitsa
5. Prasuti Tantra,
6. Shalya Shalakya,
7. Medicinal Chemistry,
8. Rasa Shastra,

Sd/—
Dy. Registrar (Admin).

No. R/GAD/I-79 of date

---

BANARAS HINDU UNIVERSITY
Office of the Registrar
(Administration)
Varanasi-221005

No. R/GAD/I-78(ii)/ December 23, 1978

## NOTIFICATION

In exercise of power conferred upon him under Statute 25 (4), (3), the Vice-Chancellor has been pleased to appoint Prof. R. S. Singh as Head of the Department of Rasa Shastra in the Faculty of Indian Medicine for a period of two years with immediate effect.

SINGH Sd/—Illegible
Dy. Registrar (Admin)

No. R/GAD/I.78(ii)/4146 of date

COPY forwarded for information and necessary action to :

1. The Directors of Institutes, B. H. U.
2. The Deans of Faculties, B. H. U.
3. The Heads of Departments/Offices, B.H.U.
4. The Principals of Colleges, B. H. U.
5. Prof, R.S. Singh, Deptt. of Rasa Shastra. Faculty of Indian Medicine, B. H. U.
6. The Deputy Registrar (Academic), B H.U.

Sd/—Illegible
Dy. Registrar (Admin)

---

तार : हिन्दमेड

दूरभाष
५२८६१२ : सचिव
५२२७७२ : कार्यालय

भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद
१-ई/६, स्वामी रामतीर्थ नगर
नई दिल्ली—११००५५

एफ० संख्या ८-४-/७७-पंजीयन दिनांक २७ दिस०

सेवा में,

भारतीय चिकित्सा के राज्य मंडलों के समस्त निबंधक।

विषय—केन्द्रीय परिषद् द्वारा भारतीय चिकित्सा के चिकित्साभ्यासियों के सीधे पंजीयन का प्रारम्भ उस पर कार्रवाई।

महोदय,

मुझे उपर्युक्त विषय पर इस कार्यालय के पत्रांक ८-४/७७ पंजीयन। दिनांक २६-४-७८ की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने और यह कहने का निदेश हुआ है कि केन्द्रीय परिषद् को विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों से अनेक प्रतिवेदन प्राप्त हो रहे हैं कि भारतीय चिकित्सा के राज्य मंडल उन चिकित्साभ्यासियों का पंजीयन नहीं कर रहे हैं जिनकी अर्हताएं भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् अधिनियम, १९७० की धारा १४ के अधीन मान्य हैं जबकि वस्तुस्थिति यह है कि केन्द्रीय सरकार की अधिसूचना संख्या एफ-३-३/७१—ए० ई० दिनांक १० अगस्त, १९७० द्वारा कथित धारा १५ अगस्त, १९७१ से लागू है। पंजीयन नहीं किए जाने के कारण उन्हें उनके चिकित्साभ्यास और राज्य में रोजगार - प्राप्ति के अधिकार से वंचित किया जा रहा है।

इन चिकित्साभ्यासियों की कठिनाइयों को कम करने के लिए केन्द्रीय परिषद् ने निर्णय लिया है कि राज्य मंडलों से इस पत्र की प्राप्ति से एक माह के अन्दर ऐसे चिकित्साभ्यासियों का पंजीयन करने का अनुरोध किया जाय अन्यथा भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् अधिनियम १९७० की धारा २५ के अधीन केन्द्रीय परिषद् सीधा पंजीयन आरम्भ कर देगी। परिषद् राज्य मंडलों से प्राप्त सूचना अनुसार अपना केन्द्रीय रजिस्टर संवर्धित करना एवं संशोधित करना जारी रखेगी।

भवदीय
सतीशचन्द्र शर्मा
निबंधक एवं सचिव

प्रति सूचना एवं आवश्यक कार्रवाई हेतु प्रेषित—

१. पं० शिव शर्मा, अध्यक्ष, भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, बहारिस्तान। बोमनजी पेटिट मार्ग, कबाला हिल्स, बम्बई-४०००३६।
२. कविराज ए० मजुमदार, उपाध्यक्ष (आयु०) भारतीय चिकित्सा केंद्रीय परिषद्, बी०-२२१, चितरजन पार्क, कालका जी, नई दिल्ली-११००१९।
३. डा० हकीम एस० खलीफथ्थुल्लाह, उपाध्यक्ष (यूनानी) भारतीय चिकित्सा केंद्रीय परिषद्, ७५, पायक्रोफ्ट्स मार्ग, मद्रास-६००००५।
४. डा० ए० आनन्द कुमार, उपाध्यक्ष (सिद्ध) भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, १४, राघवइया मार्ग, त्यागराजनगर, मद्रास-६०००१७।
५. केन्द्रीय परिषद् के समस्त सदस्यगण।
६. समस्त राज्यों के स्वास्थ्य सचिव।
७. समस्त राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों के भारतीय चिकित्सा-पद्धति के निदेशक।
८. आयुर्वेद/यूनानी/सिद्ध की प्रगामी पत्रिकाओं के समस्त सम्पादक।
९. सचिव, भारत सरकार, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय (स्वास्थ्य विभाग) निर्माण भवन, नई दिल्ली को उनके पत्रांक वी० २६०२५/२८/७८-ए० ई० दिनांक २-१२-७८ के सन्दर्भ में।

सतीशचन्द्र शर्मा
निबंधक एवं सचिव

(पत्र संख्या ८,४/७७-रजि० दिनांक १५-१२-७८ का हिंदी अनुवाद।)

(कंवर)




## बाल-वर्ष गोष्ठी

गत १२ जनवरी, ७९ को राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय बवियाड़, नैनीताल में 'बाल-वर्ष' का प्रारम्भ बच्चों की अपार भीड़ एवं उनकी किलकारियों के मध्य धूम-धामसे प्रभारी चिकित्साधिकारी डा० कृष्णानन्द मिश्र के द्वारा मनाया गया। सर्वप्रथम डा० मिश्र ने आगन्तुक बच्चों का स्वास्थ्य-परीक्षण किया। तदनन्तर उन्हें उपयुक्त औषधियाँ प्रदान की। बच्चों को 'सुधा-पानक' शर्वत पिलाया। शनैः-शनैः थोड़ी ही देर में चिकित्सालय पर बच्चों का अपार बाल-समुदाय एकत्र हो गया। कुछ माताएं नवजात शिशुओं को भी लायीं थीं जो बहुरंगे परिधानों से सजे थे। ये बच्चे किलकारियाँ दे-दे 'बाल-वर्ष' के उपलक्ष में अपने हाथ उठा-उठाकर अपनी सहमति प्रकट करते हुए 'विश्व-स्वास्थ्य-संगठन' व स्वदेश के इस पुनीत-पावन 'बाल-वर्ष' के मनाये जाने के लक्ष्य से प्रभावित हो असीम आमोदानुभूति प्राप्त कर रहे थे। बार-बार नवजात शिशुओं के द्वारा अपनी रसना को बाहर निकालना उनके द्वारा सुधा-पानक की सार्थकता एवं और मांग प्रस्तुत करते हुए सबको आह्लादित कर सबके स्वास्थ्य लाभ हेतु उत्प्रेरक बन रहा था।

इस अवसर पर बच्चों के स्वास्थ्य एवं वृद्धि हेतु वालरस, शक्तिभस्म, सुधा-पानक, चातुर्भद्र चूर्ण आदि अनेक औषधियाँ चिकित्सालय द्वारा निःशुल्क वितरित की गयीं। प्रभारी चिकित्साधिकारी डा० मिश्र ने 'बाल-वर्ष' मनाये जाने के विषय में बताते हुए अभिभावकों एवं बच्चों से शीत प्रकोप से बचते हुए युक्ताहारविहार एवं निरापद आयुर्वेदिक औषधियों का सेवन कर स्वयं में रोग प्रतिरोधक क्षमता का प्रादुर्भाव करने की सलाह दी।

अन्त में प्रभारी चिकित्साधिकारी महोदय ने अपने कर्मचारियों सहित चिकित्सालय-भवनपति की वयोवृद्ध जननी (८५ वर्ष) की आकस्मिक किन्तु सुखद इहलीला समाप्ति पर शोक-संवेदना प्रकट करते हुए उनके शोक-संतप्त परिवार को धैर्य एव मृतात्मा की शान्ति-प्राप्ति हेतु जगन्नियन्ता जगदीश्वर से प्रार्थना करते हुए संक्षिप्त गोष्ठी का समापन किया।

स्मरणीय है कि इस बाल-वर्ष की मनायी जाने वाली गोष्ठी की अध्यक्षता पं० कीतिवल्लभ के नवजात शिशु की—पीठासीन हो—किलकारियों एवं बजाती हुई तालियों द्वारा की गयी जो अपने-आप में अनोखी रही। गोष्ठी के समापन पर्यन्त सर्वत्र प्रसन्नता का वातावरण बना रहा।

### मध्य प्रदेश राजपत्रित आयुर्वेद अधिकारी संघ

प्रदेशाध्यक्ष/म. प्र. राजपत्रित आयुर्वेद अधिकारी सघ की अध्यक्षता में कार्यकारिणी की बैठक हुई जिसमे छत्तीसगढ़ शासकीय आयुर्वेद चिकित्सक संघ के अध्यक्ष एवं महामंत्री भी सम्मिलित हुये। जिसमें दोनों संघ के एकीकरण की संभावनाओं पर गहनता से विचार किया गया।

मंत्री स्तरीय चर्चाओं में प्रदेशाध्यक्ष डा. बी. एम. बोहरे के साथ संघ के प्रान्तीय संयोजक डा. सिद्ध गोपाल शुक्ल 'पुरोहित' लाइजन आफीसर तथा अन्यान्य पदाधिकारियों ने भाग लिया।

दिनांक २९ एवं ३० दिसम्बर को आयोजित प्रान्तीय कार्यकारिणी की बैठक में कार्यकारिणी के समस्त संभागीय एवं जिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा मंत्री एवं सचिव स्तरीय वार्ताओं के लिये विभिन्न समस्याओं एवं संभावनाओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया। प्रान्ताध्यक्ष के परामर्श से कार्यकारिणी द्वारा डा. राजेश पाठक को म. प्र. का प्रचार सचिव नियुक्त किया गया। कार्यकारिणी में निम्न आमन्त्रित सदस्यों ने अपने प्रस्ताव एवं विचार रखे। डा. नरेन्द्र, डा. ओ. पी. पाठक, जे. पी. चौधरी, डा. राजेश शुक्ला, डा. श्याम सरावगी, डा. एच. सी. एल जड़िया, डा. बी. के. अग्रवाल, डा. भी.पी. साहू, डा. बलराम गर्ग, डा. सड़ैया, डा. मेहरोत्रा, डा. आर. पी. शर्मा, डा. चतुर्वेदी, डा. आर. सी. गुप्त, डा. एम. डी. गुप्त डा. बाझल डा. खान।

डा. राजेश पाठक, प्रचार सचिव,
मध्य प्रदेश राजपत्रित आयु. अधिकारी संघ

## स्वास्थ्य मन्त्री की शासकीयआयुर्वेद अधिकारियों से वार्ता

म. प्र. राजपत्रित आयुर्वेद अधिकारियों एवं छत्तीसगढ़ आयुर्वेद चिकित्सक संघ की कार्यकारिणी की बैठक तारीख २९-३० दिसम्बर को सम्पन्न हुई। संघों ने अपनी समस्याओं के समाधान हेतु प्रदेश के मुख्यमन्त्री, लोक निर्माण मन्त्री, श्रम मंत्री, खाद्य मन्त्री, एवं श्री यादूक रजवानी एवं केन्द्रीय नागरिक एवं उड्डयन मन्त्री श्री कौशिक जी को अपने मांगपत्र प्रस्तुत कर चर्चा की।

तारीख २-१-७९ को माननीय स्वास्थ्य मन्त्री श्री शीतला सहाय जी से संघों के सभी सम्भागीय प्रतिनिधियों से सौहार्दपूर्ण वार्ता संपन्न हुई। मन्त्री महोदय को संघ ने आयुर्वेद के रचनात्मक विकास हेतु तन-मन एवं पूर्ण निष्ठा से कार्य करने का वचन दिया तथा संघ ने भी मंत्री महोदय से एलोपैथी के समकक्ष वेतन एवं सुविधायें प्रदान करने का भी निवेदन किया। जैसा कि उत्तर प्रदेश एवं विहार शासन ने किया है मन्त्री महोदय ने संघ को आश्वस्त किया कि प्राथमिकता के आधार पर औषधालय भवन निर्माण एवं चिकित्सक निवास स्थल एवं आयुर्वेद अधिकारियों को परिवार कल्याण के शल्यकर्म हेतु प्रशिक्षित ए. एन. एम. एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन के माध्यम से प्राप्त औषधियां : रेक्सीन की सुविधा प्रदान की जायेगी।

माननीय राज्य स्वास्थ्य मंत्री डा. परशुराम साहू से भी संघों के सदस्य मिले। डा. साहू ने चिकित्सकों की समस्याओं को ध्यानपूर्वक सुना एवं समस्या पर व्यक्तिगत रूप से चर्चा कर समाधान किया, उन्होंने प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर आयुर्वेद चिकित्सकों को नियुक्ति देने हेतु संघ को आश्वस्त किया। ग्रामीण स्तर के आयुर्वेदिक औषधालयों को एन्टोस्नेकमेनम को प्रदान करने के लिए तथा आहार-पोषण कार्यक्रम, संक्रामक रोग की रोकथाम से संबंधित औषधियों, उपकरणों, जन समुदाय के हित को ध्यान में रखते हुए निर्देश दिये हैं।

संचालक स्तर के सभी भागों के बारे में संचालक आयुर्वेद को बुलाकर निराकरण हेतु मौखिक आदेश दिए तथा शासन स्तर की सभी समस्याओं को सहानुभूतिपूर्वक सुना एवं इनके निराकरण हेतु पूर्ण आश्वासन दिया।

## राजकीय आयु० एवं यूनानी कम्पाउन्डर संघ, मेरठ क्षेत्र

दिनांक ८-१२-७८ को श्रीमान क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी मेरठ के कार्यालय में आम बैठक सम्पन्न हुई जिसमें क्षेत्रीय कम्पाउन्डर संघ की ओर से उन समस्त बुलन्दशहर जिले के कम्पाउन्डर बन्धुओं को भावभीनी विदाई दी गई जो आगामी माहसे अलीगढ़ क्षेत्र से सम्बन्धित होने जा रहे हैं। इसके बाद संघ की मांगों का एक प्रार्थना-पत्र श्रीमान क्षे० आयु० अधिकारी को देने के उपरान्त जलपान के साथ बैठक का समापन हुआ।

## नि० भा० विद्यापीठ के अध्यक्ष श्री धर्मदत्त जी वैद्य की प्रेस विज्ञप्ति

विगत ३ दशकों में विज्ञान ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कल्पनातीत उन्नति की है। आधुनिक चिकित्सा-पद्धति ने अनेक रोगों पर आशुगुणकारी औषधियों की खोज की है जिससे रोगों पर नियंत्रण भी हुआ है, किन्तु आज इन आधुनिक औषधियों के प्रयोग से मानव शरीर पर होने वाली दूषित प्रक्रिया एक समस्या बन गई है और यह विषय वैज्ञानिकों के लिये विचारणीय है। अन्य अनेक कारणों के साथ इन औषधियों का दुष्प्रभाव भी मनुष्य की अकाल मृत्यु का कारण हो सकता है। यह सत्य है कि मानव के जीवन की रक्षा महत्वपूर्ण है, किन्तु जीवन हानि के कारण की खोज करना भी वैज्ञानिकों का कार्य है। आयुर्वेद विज्ञान का प्रादुर्भाव समाज को निरोगी और स्वस्थ रखने के सिद्धान्त पर आधारित है। चिकित्सा का तात्पर्य कदापि यह नहीं हो सकता कि रोग पैदा होने पर औषध देकर उसे अच्छा किया जाय। वास्तविक चिकित्सा-शास्त्र वही हो सकता है जिससे मनुष्य जीवन की रक्षा हो सके; इसीलिये इस शास्त्र को आयुर्वेद कहा गया है। आयुर्वेद का अभिप्राय है, जीवन का ज्ञान, जीवन-सम्बन्धी जानकारी। जो मनुष्य को स्वस्थ रख सके वही सच्ची चिकित्सा पद्धति हो सकती है जो मनुष्य को क्या करना है, क्या नहीं करना है। क्या खाना है, कैसे खाना, क्या नहीं खाना है। किस मौसम, ऋतु में दिन और रात्रि में किस प्रकार की दिनचर्या करना है।

औषधियां रासायनिक होती हैं इसे हम जड़ी-बूटियों सेभी प्राप्त कर सकते हैं और अन्य रासायनिक प्रक्रिया से

थी, किन्तु आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति पिछले सैकड़ों वर्षों से राज्याश्रय न पाने के कारण पिछड़ गई और उसका अन्वेषण कार्य अवरुद्ध हो गया और आज भी शासन चिकित्सा-पद्धति की विशेषता और महानता को स्वीकार करने में संकोच करता है। यही कारण है कि इस पद्धति को योजना आयोग में अभी तक स्थान प्राप्त नहीं हो सका है। आयुर्वेद चिकित्सकों को बुद्धिजीवियों के सहयोग से संगठित होकर इसके लिए प्रयास करना होगा तभी राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति में इसको स्थान प्राप्त हो सकता है।

### नरदेवी (काठमांडू) आयुर्वेद अस्पताल में ५० बेड का उद्घाटन

काठमांडू १९७८ दिसम्बर दिनांक ३० (२०३५ पौष १५ गत) नेपाल के श्री ५ महाराजाधिराज सरकार वीरेन्द्र वीरविक्रम शाहदेव के ३४ वाँ शुभ-जन्मोत्सव के उपलक्ष में काठमांडू राजधानी के नरदेवी स्थित आयुर्वेद चिकित्सालय में माननीय स्वास्थ्य राज्यमन्त्री श्री पद्म-सुन्दर लावती ने एक समारोह के बीच २५ शय्या भवन का उद्घाटन किया। इस चिकित्सालय में पहले थी २५ शय्या, अब २५ शय्या समेत जमा ५० शय्या का आयुर्वेद चिकित्सालय हो गया।

उद्घाटन करते हुये राज्यमन्त्री महोदय ने कहा कि आयुर्वेद चिकित्सा अपनी मौलिकता के कारण सफल चिकित्सा पद्धति है। अतएव इस चिकित्सा-प्रणाली के विकास और प्रगति के लिए सरकार एक अलग ही आयुर्वेद विभाग की स्थापना करने का विचार कर रही है।

राष्ट्रीय पंचायत के सदस्य तथा सामाजिक समिति के उपसभापति श्रीनरेन्द्र बहादुर के सभापतित्व में समारोह का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

स्वास्थ्य सेवा विभाग के महानिर्देशक डा० श्री लक्ष्मण पांडेय ने नेपाल जैसे कम आय वाले देश की जनता के लिए आयुर्वेद चिकित्सक बहुत उपयोगी बताते हुए आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली के विकास करने के लिए ठोस कार्यक्रम की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया।

डा० श्री लोकेन्द्रमान सिंह ने आयुर्वेद-चिकित्सकों के गुणस्तर वृद्धि के लिए आयुर्वेदीय शिक्षा के गुणस्तर में भी वृद्धि करना आवश्यक बताते हुये आयुर्वेद को सक्षम बनाने पर बल दिया।

आयुर्वेद चिकित्सालय के प्रमुख वरिष्ठ चिकित्सा-अधिकारी कविराज श्री चन्द्रानन्द राजवैद्य ने स्वागत भाषण करते हुए कहा कि विक्रम सम्वत् १९७४ साल में ४शय्या से प्रारम्भ हुए इस चिकित्सालय में अब ५०शय्या होने से इस क्षेत्र में कार्यरत होनेवाले सभी को प्रेरणा मिली है। हर्षित होना स्वाभाविक है।

आयुर्वेद शाखा के वरिष्ठ आयुर्वेद अधिकृत कवि-राज श्री कृष्णकान्त अधिकारी ने धन्यवाद-ज्ञापन किया।

समारोह मंगलमय वेद पाठ के साथ शुरू हुआ और समारोह में आयुर्वेदिक चिकित्सकों एवं आमन्त्रित वर्गों तथा सरकारी उच्च कर्मचारियों की अच्छी सख्या उप-स्थित थी। उद्घाटन कार्यक्रमों के बाद आयुर्वेद चिकि-त्सालय का माननीय राज्यमन्त्री तथा आमन्त्रित महोदय ने निरीक्षण किया। तदनन्तर जलपान के साथ समा-रोह का विसर्जन हुआ।

### आयुर्वेदीय सर्वेक्षण-टीम

निदेशक, आयुर्वेदिक एवं यूनानी सेवाय उ० प्र० लखनऊ के आदेशानुसार सर्वश्री नारायणदत्त पाठक, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक यूनानी अधिकारी, टिहरी-वृत नरेन्द्रनगर, डा० सर्वदेव उपाध्याय, रीडर, कायचिकित्सा, डा० देवेन्द्रशास्त्री, प्रवक्ता, काय-चिकित्सा, ऋषिकुल राजकीय आयु० कालेज हरिद्वार तथा डा० जाह्नवी प्रसाद जोशी, चिकित्सा-धिकारी, राजकीय चिकित्सालय, अखोड़ी, टिहरी-गड़वाल की आयुर्वेदिक टीम सूअर के मांस खाने से हुए रोगों के सम्बन्ध में दिनांक ६-१-७९ व ७-१-७९ को ग्राम नेल्डा, कफलोग, पटूरी में क्रमशः सात, चौबीस, दस विषाक्त भोजन के रोगियों का आयुर्वेदिक पद्धति से परी-क्षण किया तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा बतलाई गई; रोगियों को ऋषिकुल राजकीय आयु० चि० हरिद्वार में प्रवेश हेतु परामर्श दिया गया जिससे अधिकांश लोग सहमत हो गए। सभी विषाक्त भोजन करने वाले रोगियों की चिकित्सा हेतु श्री रघुनन्दन सिंह त्यागी, चिकित्सा-धिकारी मदन-नेगी को प्रतिनियुक्ति किया गया है—वे रोगियों के निरीक्षण करते समय उपस्थित थे तथा जिला-परिषद के सदस्य श्री दयाल सिंह राणा, ग्राम प्रधान नेल्डा टीम के साथ रहे।

### अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन

दिनांक २४-१२-७८ को प्रातः ११ बजे अखिल

भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक परिषद् के अध्यक्ष प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद जी की अध्यक्षता में गांधी स्मारक निधि, राजघाट, नई दिल्ली में हुई।

आगामी अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन के लिए आए निमन्त्रण पर विचार होकर यह निर्णय लिया गया कि 'सम्मेलन २३-२४-२५ मार्च, १९७९ को उड़ीसा प्रान्त के सम्बलपुर के स्थान पर किया जाए। परिषद् के क्षेत्रीय मंत्री स्वामी साधनानन्दजी महाराज जो पिछले कई वर्षों से स्थान-स्थान पर प्राकृतिक चिकित्सा शिविरों द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार कर रहे हैं, ने सम्मेलन की व्यवस्था के लिए विशेष उत्साह दिखाया।

परिषद् द्वारा संचालित प्राकृतिक चिकित्सा की परीक्षाएं जो कुछ कारणों से स्थगित कर दी गयी थी, उनके सम्बन्ध में दिनांक २३ दिसम्बर को डा० हीरालाल जी संयोजक द्वारा बुलाई गयी परीक्षा समिति की रिपोर्ट पेश की गयी और निर्णय लिया गया कि परीक्षाएं वर्ष में दो बार मास जून एवं दिसम्बर में नियमित रूप से सम्पन्न की जाएं। जून में होने वाली परीक्षाओं की तारीखों की सूचना तथा परीक्षा बोर्ड के सदस्यों के नामों का विवरण जल्दी ही प्रकाशित करा दिया जायगा।

राजस्थान सरकार द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा को मान्यता दिये जाने पर सन्तोष व्यक्त करते हुए अन्य राज्य सरकारों एवं केन्द्रीय सरकार से भी शीघ्र मान्यता देने की मांग की गयी।

**वैद्य पं० रामगोपाल जी शास्त्री के निधन पर शोकसंवेदना**

दिनांक २४-१२-७८ को श्री वैद्य पं० मोहन लाल चतुर्वेदी के निवास स्थान, ७०, गांधी मार्ग, (मध्य प्रदेश) में आयोजित वैद्य-हकीम परिषद्, दतिया की विशेष बैठक में बुन्देलखण्ड वैद्य-हकीम परिषद्, झांसी के अध्यक्ष तथा सुप्रसिद्ध स्वतन्त्रता-संग्राम सेनानी श्री वैद्यराज पं० रामगोपाल जी शास्त्री के आकस्मिक निधन पर श्री वैद्यराज घनश्यामदास जी दुबे की अध्यक्षता में शोकसभा आयोजित कर दिवंगत आत्मा की शांति एवं सद्गति प्रदान करने हेतु दो मिनट का मौन रख कर ईश्वर से प्रार्थना की गई। बैठक में श्री वैद्यराज मोहन लाल चतुर्वेदी ने श्री वैद्य पं० रामगोपाल जी शास्त्री द्वारा कांग्रेस पार्टी के माध्यम से राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आंदोलन में किये गये महत्वपूर्ण क्रांतिकारी सहयोग के बारे में जानकारी देते हुए स्वातन्त्र्योत्तर काल में की गई महत्वपूर्ण आयुर्वेद एवं समाज सेवा के बारे में निष्ठावान एवं त्यागी व्यक्तित्व के रूप में परिचय दिया। बाद में विलम्ब से पधार कर वैद्यनाथ प्रतिष्ठान के संचालक श्री वैद्यराज पं० रामनारायण जी शर्मा ने वैद्य श्रीयुत पं० रामगोपाल जी शास्त्री के आदर्शों एवं जीवन-दर्शन से परिचित कराया। बैठक की कार्यवाही के अन्त में एक शोक प्रस्ताव पारित कर स्वर्गीय शास्त्री जी के परिवारजनों को इस दुःखद घड़ी में धैर्य प्रदान करने हेतु सम्वेदना प्रकट की गई।

इस बैठक में जिले के समस्त गण्यमान्य एवं अशासकीय प्रतिष्ठित वैद्य-हकीम एवं डाक्टर सम्मिलित थे। ज्ञातव्य है कि स्वर्गीय वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री मध्य प्रदेश के सम्भागीय आयुर्वेद-अधिकारी एवं प्रख्यात चिकित्सक डा० रामकृष्ण त्रिवेदी के पूज्य पिता जी थे।

**आयुर्वेद कम्पाउन्डर संघ पिथौरागढ़ की क्षेत्रीय बैठक**

दिनांक ६-१२-७८ को पिथौरागढ़ क्षेत्र के आयुर्वेद कंपाउंडरों की बैठक में निम्न प्रस्ताव पारित किये गये :—

१—एलोपैथिक कम्पाउन्डरों की भाँति आयुर्वेदिक कम्पाउन्डरों को भी फार्मासीस्ट घोषित किया जाय, तथा सलेक्शन ग्रेड दिया जाये।

२—आवासीय भत्ता १०% दिया जाये।

३—वेतन की असंगति का यह संघ घोर आपत्ति करता है।

४—चिकित्सालय कर्मचारियों की किसी भी प्रकार की शिकायत पर बिना पूर्व जांच किये कोई निर्णय न लिया जाय।

५—जिन कम्पाउन्डरों को ३ वर्ष से ज्यादा हो गये हैं, उन्हें स्थायी कर दिया जाये।

६—पिछला आय-व्यय का हिसाब निम्नलिखित रहा :—

| वर्ष | आय | व्यय | शेष |
|---|---|---|---|
| ७७-७८ | २२०.०० | ३६.८०= | १०३.२० पै० |

शेष धनराशि कोषाध्यक्ष के पास गयी है।

## क्षेत्रीय राजकीय आयु० एवं यूनानी चिकित्सा सेवा संघ की बैठक

दि० ६-१२-७८ को क्षेत्रीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा सेवा संघ पिथौरागढ़ की बैठक श्री श्याम सुन्दर त्रिपाठी (अध्यक्ष, क्षेत्रीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा सेवा संघ पिथौरागढ़) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। बैठक में संघ के मन्त्री, उपमन्त्री तथा कार्यकारिणी के एक सदस्य के स्थानान्तरण के कारण रिक्त पदों हेतु निम्नांकित रूप में सर्वसम्मति से चुनाव किया गया—

१. मन्त्री—श्री प्रेमशंकर पांडेय, चिकित्साधिकारी, रा० आ० चि० जौरासी।

२. उपमन्त्री—श्री इन्दुरमण दीक्षित, चिकित्साधिकारी, रा० आ० चि० अलगड़ा।

३. कार्यकारिणी के सदस्य—श्री राजेन्द्र सिंह, चिकित्साधिकारी, रा० आ० चि० थल।

बैठक में चुनाव के अतिरिक्त आयुर्वेद के उत्थान से सम्बन्धित अनेक प्रस्ताव पारित किये गये। इनमें आयुर्वेद विभाग की आचार संहिता बनाये जाने, पिथौरागढ़ जनपद में राजकीय चिकित्सालय के भवनों में स्थायी जलव्यवस्था करने, घोषित आवासीय भत्ते को यथाशीघ्र लागू किये जाने तथा पिथौरागढ़ नगर में एक आयुर्वेद का २५ शय्याओं का चिकित्सालय स्थापित करने हेतु राज्य सरकार से मांग की गयी। बैठक में अतिरिक्त निदेशक एवं राज्य परिवार कल्याण अधिकारी द्वारा आयुर्वेदीय स्नातकों पर नसबन्दी आपरेशन के लिये प्रतिबन्ध लगाए जाने का विरोध किया गया तथा इस प्रतिबन्ध को निरस्त करने की राज्य सरकार से मांग की गयी।

## जिला वैद्य सम्मेलन, सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश) वार्षिक चुनाव

अध्यक्ष श्री हरिहरनाथ गर्ग, ए० एम० एम० एस०, उपाध्यक्ष श्री मातावदल द्विवेदी, आयुर्वेदमहामहोपाध्याय, मन्त्री श्री गुरुचरण वरनवाल, आयुर्वेदाचार्य; उपमन्त्री श्री शत्रुघ्नदास वरनवाल वैद्य, कोषाध्यक्ष श्री विष्णुचन्द्र मिश्र, आयुर्वेद शास्त्री, लेखापरीक्षक श्री सत्यप्रकाश सतसंगी ए० बी० एम० एस०, सदस्य कार्यकारिणी पं० रामलषण मिश्र वैद्य, आयुर्वेदाचार्य, पं० रामदेव मिश्र वैद्य, पं० कृष्णानन्द चतुर्वेदी वैद्य, पं० छेदी प्रसाद तिवारी वैद्याचार्य, पं० मक्खनलाल वरनवाल वैद्य।

## बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र झांसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि. द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय एवं स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, झांसी में माह अक्टूबर सन् १९७८ में कुल ६९४९ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई, जिसमें १५०५ है। प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार से है।

वातज ज्वर १९९, पित्तज ज्वर १२४, कफज ज्वर ५, जीर्ण ज्वर १, विषम ज्वर ४५, प्रसूत ज्वर १७, प्रतिश्याय १४४, कृमि १७, वातातिसार ११, रक्तातिसार १२, आमातिसार ५०, ज्वरातिसार १०, बालातिसार १३, गृहणी १, वातज कास ८८, कफज कास ४४, तमक श्वास २, क्षुद्र श्वास १०, अग्निमांद्य-६, आमाजीर्ण २४, विष्टब्धाजीर्ण १, विवंध १०, वातोदर शूल २, शिरः शूल १५, पार्श्व शूल १३, संधिवात ५, कटिशूल ९, उरःशूल १, वात व्याधि ३१, गृध्रसीवात ४, विश्वाची २, छर्दि १, अम्लपित्त ७, शीतपित्त ७, रक्तपित्त ५, स्फोट १, शोथ ७, विद्रधि ३, व्रण ११६, पामा १, कण्डू ३३, विचर्चिका १९, दद्रु ९, गर्भ रोग १४, आघात ७, अर्श ५, रक्तार्श ३, प्रमेह १२, मूत्रकृच्छ्र ४, बहु मूत्र १, रक्त प्रदर १६, श्वेत प्रदर ३८, रक्ताल्पता ६, कर्ण शूल ८, कर्ण स्राव ३, दन्त शूल ९, नेत्र रोग ८, मुखपाक ४०, भ्रम ३१, दाह ३, उरःक्षत २, दन्तोभेद १६, पिड़िका ६८, युवानपिड़िका २, विपादिका २, यकृत वृद्धि २, अश्मरी ३, आनाह ४, अग्निदग्ध १, बाल शोष १, पाण्डु ३, वाधिर्य १, योनि कण्डू १, क्षीरालसक ३, हृदय दौर्बल्य २, मधुमेह १, उपदंश २, सद्यःव्रण १, स्नायु दौर्बल्य १, कुल योग ६९४९।

### श्री ५ को सरकार
### स्वास्थ्य मन्त्रालय स्वास्थ्य सेवा विभाग
### आयुर्वेद चिकित्सालय, नरदेवी, काठमांडू (नेपाल)

२०३५ साल में कार्तिक महिने में निःशुल्क सेवा प्राप्त रोगियों का विवरण

(क) नवीन तथा पुराने रोगियों की कुल संख्या २,७८२

(ख) २०३५ साल महीने में उपचारार्थ आए हुए रोगी १,८७०

(१) पुरुष रोगी-संख्या १,०२२

(२) महिला रोगी-संख्या ८४८

(३) बालक रोगी-संख्या : स्त्री ६८ पुः १०६ = २०७

जिसमें निम्न विभागों से निःशुल्क उपचार (सेवा) किया गया है।

(१) काय चिकित्सा विभाग से उपचार किया गया १,११२

(२) शल्य-शालाक्य विभाग से उपचार किया गया ७५७

**पुनरागत रोगियों का विवरण**

(ग) पुनरागत उपचारार्थ आए हुए रोगियों की संख्या १,११३

(१) काय चिकित्सा विभाग से उपचार किया गया ७७२

(२) शल्य-शालाक्य विभाग से उपचार किया गया ३४१

**अन्तरंग विभाग में प्रविष्ट रोगियों का विवरण**

(घ) प्रविष्ट रोगियों की कुल संख्या ४०

(१) गत महीने से उपचार किए गए रोगी ७

(२) वर्तमान प्रविष्ट रोगी-संख्या ३१

(३) पूर्ण स्वास्थ्य लाभ किए गए रोगी १३

(४) कुछ कम लाभ प्राप्त रोगी-संख्या ५

(५) स्वेच्छा से निकले हुए रोगियों की संख्या २

(६) चिकित्साधीनस्थ रोगी-संख्या २०

(७) मृत्यु संख्या ×

**वैद्यमण्डल (रजि) अमृतसर की चुनाव-सूचना**

वैद्यमण्डल (रजि०) अमृतसर के चुनाव में १९७९ के लिये निम्न पदाधिकारी सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए।

प्रधान—वैद्य श्री जनकराज जी बाहरी; वरिष्ठ उप-प्रधान—वैद्य श्री विप्र बन्धु जी, उपप्रधान—वैद्यश्री देवराज जी शर्मा तथा वैद्य श्री जगदीश प्रसाद सिंह जी।

महामन्त्री—वैद्य श्री राजाराम जी शास्त्री।

मंत्री—वैद्य श्री कांति मोहन जी पाठक तथा वैद्य श्री प्रेम प्रकाश जी।

कोषाध्यक्ष—वैद्य श्री मनोहर सिंह जी।

आय-व्यय निरीक्षक---वैद्य श्री सन्तराम जी डोगरा।

**श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय, नागपुर**

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ग्रेट नाग रोड नागपुर द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, बाकर रोड, नागपुर में माह दिसम्बर, सन् १९७८ में ६९३१ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गयी जिसमें ६८८ रोगी नये आये। रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है।

ज्वर ८६, कृमि ज्वर१, शीत ज्वर ६, जीर्ण ज्वर २,अतिसार ६, अर्श ८, अग्निमान्द्य ५८, अजीर्ण ११, क्रिमि ३६, पाण्डु ६, रक्त विकार ३, रर्जा १, कास ६१, हिक्का कासज्वर २०, श्वास १३, वमन ३, दाह १०, वातव्याधि ४१, अर्दित १, गृध्रसी १, वातकुष्ठ १२, आमवात ३, उदरशूल २, उदावर्त ११, प्रमेह २, यकृदाल्युदर १, शोथ २९, आन्त्र वृद्धि ११, ग्रंथि शोथ ६, व्रण ५, उपदंश २, पामा दद्रु ५१, शीतपित्त १, अम्लपित्त ४, मुख रोग ६, दन्त रोग ९, कण्ठ रोग १, कर्ण रोग ८, प्रतिश्याय ५८, नेत्ररोग ३, शिरःशूल ८; प्रदर १४, सूतिका १, बहुमूत्र १४, गुदभ्रंश २, कटिशूल ३, विवन्ध दौर्बल्य ३६, पित्त विकार ५ और अनिद्रा १।

**श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय, पटना**

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० पटना के निर्माण केन्द्र के अन्तर्गत स्वास्थ्य-रक्षा-केंद्र एवं धर्मार्थ चिकित्सालय में माह दिसम्बर सन् १९७८ में कुल १०२४ रोगी आए। जिनमें नये २२२ रोगी तथा १००२ रोगी पुराने आए।

जिनके विवरण निम्नांकित हैं—

ज्वरातिसार ७२, आमातिसार १५, चर्मरोग ६०, कर्ण स्राव १६, कासश्वास २०, विबन्ध १०, प्रदर ७, क्रमि १०, जलोदर २, बालरोग १०।

**श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, झांसी**

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय एवं स्वास्थ्य-रक्षा-केंद्र झांसी में माह नवम्बर सन् १९७८ में कुल ५८९८ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई जिसमें नवीन रोगी ११६९ है प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार से है।

वातज ज्वर १५३, पित्तज ज्वर ६७, कफज ज्वर १, जीर्ण ज्वर ६, विषम ज्वर ६२, प्रसूत ज्वर २६, प्रतिश्याय १०७, कृमि रोग १७, वातातिसार १५, रक्तातिसार ९, आमातिसार ७, बालातिसार १४, ग्रहणी २, वातज कास ७६, कफज कास ५४, तमक श्वास १, क्षुद्र श्वास १५, अग्निमांद्य ७, आमाजीर्ण २२, विबंध १२, वातोदर शूल २६, पित्तोदर शूल १, शिरःशूल ३४, पार्श्व शूल ८, संधिवात ३ कटिशूल १५, वात व्याधि २९, गृध्रसी वात ११, विश्वाची ४, जलोदर १, शीतपित्त ६,

रक्त पित्त १, शोथ ६, विद्रधि १, व्रण ५०, पामा १, कण्डू ३३, विचर्चिका १०, दद्रु ४, गर्भ रोग ११, आघात् २, अर्श ४, रक्तार्श ४, प्रमेह १३, मूत्र कृच्छ्र १७, रक्त प्रदर १२, श्वेत प्रदर ११, रक्तालपत्ता ४, कर्ण शूल ५, कर्ण स्राव ४, दन्त शूल १४, नेत्र रोग १२, मुखपाक ४१, भ्रम १२, दाह ६, उरःक्षत २, पीनस १, पिड़िका ४०, हिक्का ६, उपदंश १, अग्निदग्ध ४, युवानपिड़िका २, अर्द्धावभेदक १, आनाह १, दंतोत्पाटन ९, रजकृच्छ्र २, पाण्डु २, अण्डकोष वृद्धि १, क्षीरालसक २, स्नायु दौर्बल्य १, विदारिका २, कु० कास २, यकृत वृद्धि १, हृदय दौर्बल्य १, खालित्य १, विपादिका ३, गण्डमाला १। नवीन ११६९, ४७२९। मासिक योग ५८९८।

**प्रोफेसर डा० एरिआँन र सू**

परिस विश्व विद्यालय के प्रोफेसर, सुप्रसिद्ध भाषाविद्, पुरातत्ववेत्ता एव आयुर्वेद अनुसंधानकर्त्ता डा० एरिआँन रोसू जो गत सितम्बर माह '७८ से ही अपने अनुसंधान के क्रम में भारत आए हुए हैं। गत १३ जनवरी को पटना आये। १५ जनवरी की रात में पटना से उन्होंने शांति निकेतन के लिए प्रस्थान किया। शांति निकेतन (बंगाल) से वे मद्रास गए, वहाँ वे २५ जनवरी से ५ फरवरी तक रहेंगे। ५ फरवरी को वे पांडीचेरी जायेंगे, जहाँ वे २५ फरवरी तक रहेंगे। उनका पता फ्रेंच इन्स्टीट्यूट आफ इण्डोलाजी पो० बाक्स ३३, पाण्डोचेरी—६०५००१ है।

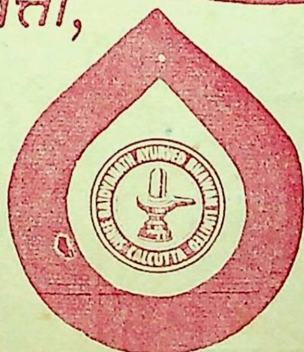
फोन - 53647
53592
53048

TELEX : 22-316 SBAB—IN

सदैव व्यवहार करें




शुद्धता, गुणवत्ता,



स्वास्थ्य एवं शक्ति के लिए

देशी दवाओं का
सबसे बड़ा
निर्माता एवं निर्यातक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर, नैनी (इलाहाबाद)

सर्वाधिकारी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की ओर से श्रीकान्त शास्त्री द्वारा [illegible] प्रेस, लोदीपुर, पटना-८०००० में मुद्रित तथा उनके ही द्वारा बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-८००००१ से प्रकाशित।

# सचित्र आयुर्वेद

मार्च, १९७९

पेशकोवा

# SACHITRA AYURVED

समुद्र इव गम्भीरं नैव शक्यं चिकित्सितम् ।
वक्तुं निरविशेषेण श्लोकानाम युतैरपि ॥
सहस्त्रैरपि वा प्रोक्तमर्थमल्पमतिर्नरः ः
तर्कग्रन्थार्थरहितो नैव गृह्णात्यपण्डितः ॥

आशय यह है कि चिकित्सा-शास्त्र समुद्र के समान गम्भार अर्थात् अथाह है। उस समुद्र के जल को माप कर या तौल कर बताना जिस प्रकार सम्भव नहीं, उसी प्रकार सहस्त्रों या अयुत संख्यक श्लोकों द्वारा आयुर्वेदीय चिकित्सा का वर्णन शक्य नहीं। इतना ही नहीं, अपितु सहस्त्रों या अयुत संख्यक श्लोकों द्वारा प्रोक्त चिकित्सा (के सूत्रों या सिद्धांतों) को तर्कशास्त्र के विषयों से अनभिज्ञ अल्पमति एवं खण्डित पुरुष समझ भी नहीं सकता, अर्थात् उसके लिए चिकित्सा का विषय बुद्धिगम्य नहीं हो सकता।

—महर्षि सुश्रुत


प्रकाशक

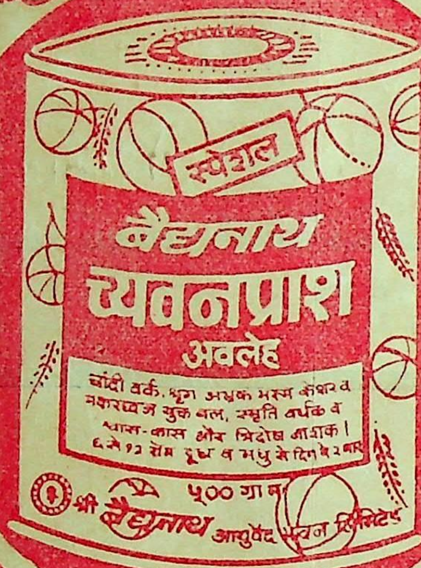
बैद्यनाथ






श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि॰

हर परिवार में
सबका मनचाहा
आदर्श आयुर्वेदिक टॉनिक







# बैद्यनाथ

## स्पेशल च्यवनप्राश

चांदी वर्क, केशर व
मकरध्वज युक्त
शुद्ध घी में
तैयार किया हुआ



# उत्तर प्रदेश क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारियों से नम्र निवेदन

आयुर्वेदिक एवं यूनानी सेवा निदेशक, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के पत्रांक ५८।३१३।५५ सामान्य, दिनांक ११-८-७८ के अनुसार गत वर्ष १९७६-७७ एवं १९७७-७८ के बिल का भुगतान क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारियों द्वारा किये जाने का निर्णय किया गया है और इससे आप सभी महानुभाव अवगत हैं।

निदेशक महोदय के आदेशानुसार उक्तावधि के लिए 'सचित्र आयुर्वेद' का बिल अलग-अलग आप महानुभावों की सेवा में हम भेज चुके हैं और बिल-पेमेण्ट हेतु हमारा पत्राचार जारी है। चूंकि हमारे स्मरण-पत्र का समुचित उत्तर समय पर नहीं मिल पाता है या कहीं-कहीं से बिल्कुल ही नहीं मिलता है इसको ध्यान में रखते हुए 'सचित्र आयुर्वेद' के माध्यम से हम अनुरोध करेंगे कि आप अपने-अपने बिलों का पेमेन्ट यथा-शीघ्र करवाकर आयुर्वेद-प्रेम का परिचय देंगे।

व्यवस्थापक
**सचित्र आयुर्वेद**
बैद्यनाथ भवन रोड,
पटना-८०००१

# सचित्र आयुर्वेद

□

संरक्षक :
आयुर्वेद-चक्रवर्ती,
आयुर्वेद-शिरोमणि
प्राणाचार्य
**पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा**
आयुर्वेदाचार्य

□

परामर्शदाता :
आयुर्वेद-बृहस्पति
आचार्य रामरक्ष पाठक

□

सम्पादक :
श्रीकान्त शास्त्री, एम. ए.

## विषय-सूची




वार्षिक मूल्य १० रु०] [एक प्रति १ रुपया

Registered with the Registrar of Newspapers for India Under R. N. 2277/73
आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होने वाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्माथसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष—३१ | पटना, मार्च, १९७९ | अंक—९

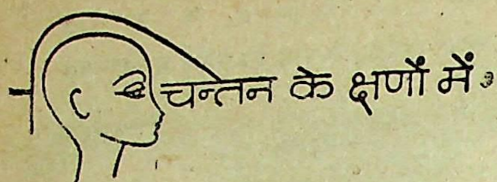
# बाल कल्याण-संबंधी राष्ट्रीय क्रियाकलाप

भारत सरकार इस वर्ष के दौरान बाल-मृत्यु दर में पांच प्रतिशत की कमी लाने के लिए प्रयास कर रही है। सितम्बर 78 से फरवरी 79 के दौरान 50 लाख बच्चों और 1979 में एक करोड़ बच्चों को रोग-निरोधक टीके आदि लगाये जायेंगे। परम्परागत 50,000 दाइयों को प्रशिक्षित किया जा चुका है और अन्तरराष्ट्रीय बाल वर्ष में और 100,000 दाइयाँ प्रशिक्षित कर दी जायेंगी। इसी प्रकार 53,000 सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता प्रशिक्षित किये जा चुके हैं और आगामी वर्ष में 90,000 और प्रशिक्षित कर दिये जायेंगे।

प्राथमिक शिक्षा और प्रौढ़ साक्षरता को भी व्यापक बनाने के लिए काफी प्रयास किये जा रहे हैं। अनाथ बच्चों की देखभाल के लिये बाल-गृह बनाये जा रहे हैं जिनमें बच्चों की देखभाल पारिवारिक वातावरण में की जाती है। इन सभी कार्यक्रमों को स्वयंसेवी संगठनों के सहयोग से लागू किया जा रहा है। राष्ट्रीय बाल बोर्ड ने अन्तरराष्ट्रीय कार्य योजना को स्वीकृति दे दी है। प्रधान मन्त्री इस बोर्ड के अध्यक्ष हैं। यह बोर्ड भारत का राष्ट्रीय अन्तरराष्ट्रीय बाल-वर्ष आयोग है।

बच्चों से सम्बद्ध राष्ट्रीय योजना में विभिन्न क्षेत्रों के लिये ये उपाय तथा क्रियाकलाप शामिल हैं। स्वास्थ्य एवं पोषण, शिक्षा, समाज कल्याण तथा कानून बनाना। इसके अलावा इसमें वातावरणीय स्वच्छता, सुरक्षित पेय जल की आपूर्ति और प्राथमिक एवं सामुदायिक शिक्षा भी शामिल हैं।

—




# आयुर्वेद शिक्षा की स्थिति

आयुर्वेद अपने-आप सम्पूर्ण विज्ञान है। विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा-प्रणाली होने के अतिरिक्त भारतवर्ष की जनता की अधिकतम सेवा अनादिकाल से आज तक यह विद्या करती आ रही है। संसार की सभी चिकित्सा-प्रणालियों ने इससे बहुत कुछ सीखा है, यह इतिहास-सिद्ध है। अपने व्यापक और गहन सिद्धान्तों की दृढ़ता के कारण देश और काल के परिवर्त्तनों के अनुरूप नये-नये रोगों की नयी-नयी चिकित्साएं आविष्कृत करने में इस विद्या ने अपनी अनुपम क्षमता प्रदर्शित की है। यह ध्यान रखना चाहिए कि अपने मूलभूत सिद्धान्तों पर दृढ़ रहते हुए आयुर्वेद ने सदा इसमें सफलता प्राप्त की है। सन् १९६२ में केन्द्रीय सरकार ने गुजरात के तत्कालीन स्वास्थ्य मन्त्री श्री मोहनलाल व्यास की अध्यक्षता में आयुर्वेद पाठ्यक्रम के लिए एक समिति नियुक्त की थी। बड़े गम्भीर विचार-विमर्श के पश्चात् उस समिति ने अपना विस्तृत, शोधपूर्ण, विद्वत्तापूर्ण तथा प्रमाण परिपुष्ट प्रतिवेदन किया था, जिसके साथ आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा भी दी गयी थी। देश के सारे वैद्य समाज ने उसे अब तक की सारी सरकारी समितियों की अपेक्षा अत्यधिक विचारपूर्ण तथा स्वीकार्य समझा। सरकार ने उसी पाठ्यक्रम को सारे देश में लागू करने का प्रस्ताव किया।

दुख की बात है कि उस पाठ्यक्रम के अखिल भारतीय स्तर पर लागू होने का समय आ ही पाया था कि उसमें पुनः परिवर्त्तनों की मांगे (मिश्रवादियों की ओर से) सामने आने लगीं। यद्यपि ये मांगें किन्हीं गम्भीर शास्त्रीय या वैज्ञानिक आधारों पर आधारित नहीं थीं, तथापि केन्द्रीय परिषद् ने अन्य अनेक दबावों को हलका करने के लिए आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में तथाकथित 'आवश्यक' एलोपैथी के अंश भी सम्मिलित कर लिए हैं। यद्यपि, व्यास समिति के अत्यन्त शुद्ध-वैज्ञानिक इस सिद्धान्त कि—'अन्य विषय ऐसे ही जोड़े जाएं जो आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों के अविरुद्ध हों' का भी पालन ठीक नहीं हुआ है, तथापि उतने के पश्चात् भी मिश्रवादियों को संतोष नहीं होता। यह अत्यन्त खेद की बात है।

आयुर्वेद में इस प्रकार के मिश्रण का (जिसे 'समन्वय' कहना अत्यन्त अशास्त्रीय, अवैज्ञानिक तथा अयुक्तियुक्त है, और जो वस्तुतः सांकर्य ही है) अब तक का अनुभव नितान्त कटु रहा है। इससे हमारे आयुर्वेद की महती परम्परा के सम्पूर्ण लोप का भय उपस्थित है। इससे जो चिकित्सक निकलते हैं, वे आयुर्वेदिक चिकित्सा का जनता के लिये प्रयोग न करके, एलोपैथिक पाठ्यक्रम में पिछले दरवाजे से प्रवेश के लिए प्रयत्नशील रहते हैं और एलोपैथी से ही चिकित्सा करते हैं। विपरीत इसके, जो कुछ लोग शुद्ध शास्त्रीय आयुर्वेद का अध्ययन तथा चिकित्सा करना भी चाहते हैं, उनके मार्ग में बाधा उपस्थित होती है। शुद्ध एलोपैथी को छोड़ जनता, उन्हें एलोपैथी के लिए नहीं चुनती, न इन मिश्र चिकित्सकों को वह आयुर्वेद के लिए भी पसन्द करती है। इस प्रकार इनकी स्थिति 'न घर के न घाट के' की रहती है।

(महासम्मेलन पत्रिका से साभार)

## सम्पादकीय

### आयुर्वेद के प्रति आस्थावान बनें

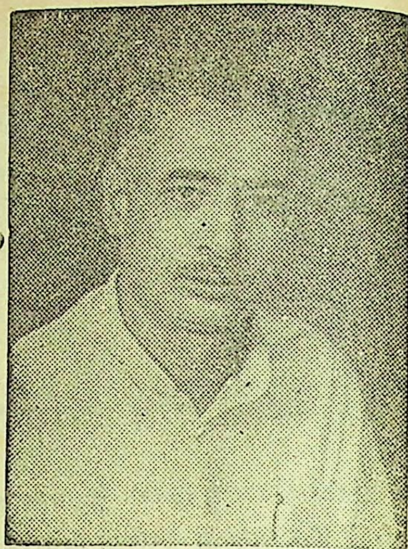
इन्द्रप्रस्थवैद्य सभा दिल्ली के तत्वावधान में मानस व्याधियों के सम्बन्ध में अनुष्ठित विचार-गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए प्रधान मंत्री श्री मोरार जी देसाई ने कहा कि दुर्भाग्यवश आयुर्वेद चिकित्सक भी आधुनिक डाक्टरों की राह पर चल रहे हैं और उनका भी मात्र द्रव्योपार्जन ही उद्देश्य बनता जा रहा है। आयुर्वेदोन्नयन की दिशा में यह प्रवृत्ति बाधक बन सकती है। प्रधान मंत्री ने आगे कहा कि मेरी आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा में निष्ठा है और आयुर्वेद का आधार प्राकृतिक चिकित्सा ही है। फिर भी मेरी मान्यता है कि मात्र एक ही चिकित्सा-पद्धति का प्रचलन देश में नहीं होना चाहिए। विविध धर्मों, मजहबों की तरह विविध चिकित्सा-पद्धतियां भी साथ-साथ चल सकती हैं—सह अस्तित्व के आधार पर आयुर्वेदेतर पद्धतियां भी चल सकती हैं। प्रधान मंत्री ने पुनः कहा कि इस सचाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने अन्य चिकित्सा-पद्धतियों की तुलना में, जहां तक शल्य चिकित्सा (सर्जरी) का सम्बन्ध है, काफी उन्नति की है और तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो अन्य चिकित्सा-पद्धतियां आधुनिक चिकित्सा से बहुत पीछे रह गयीं। निश्चय ही आयुर्वेदज्ञों को आगे बढ़ना है और आधुनिक चिकित्सा के साथ कदम मिलाकर चलना है—तभी ऐसी गोष्ठियों की उपयोगिता प्रमाणित हो सकेगी। एलोपैथी दवाओं के सन्दर्भ में प्रधान मंत्री ने आगे कहा कि एलोपैथी दवाएं शीघ्र लाभ तो पहुंचाती हैं किन्तु रोगी पर अपना बुरा असर भी छोड़ जाती हैं—चिकित्सोपरांत रोगी महीनों एलोपैथी औषधि जन्य प्रतिक्रिया से पीड़ित रहता है। इसलिए एलोपैथी दवाओं को सर्वथा निर्दोष—विकार रहित कैसे माना जाय। यह चिकित्सा खर्चीली होती है, सो अलग। ऐसी स्थिति में आयुर्वेद के लिए भविष्य उज्ज्वल हो सकता है, यदि आयुर्वेद-सेवी एक 'मिशन' को लेकर सेवाभावी बनें और मात्र द्रव्योपार्जन ही अपना लक्ष्य न बनावें।

मानस व्याधियों के सम्बन्ध में प्रधान मन्त्री ने कहा कि आज की सामाजिक - आर्थिक व्यवस्था ऐसी है कि समाज के अन्दर रहने वाले ९५ प्रतिशत लोग मानसिक दृष्टि से असन्तुलित कहे जा सकते हैं और लोग मानसिक सन्तुलन को क्रमशः खोते चले जा रहे हैं। इस स्थिति में मात्र चिकित्सा ही सुधार नही ला सकती। इसके लिए आत्मसंयम तथा आयुर्वेद में वर्णित स्वस्थवृत्त के नियमों का अनुपालन बहुत हद तक आवश्यक है। आधुनिक चिकित्सा की शॉक थेरापी (Shock Therapy) सर्वथा अक्षम सिद्ध हो रही है। मानसिक तनाव एवं कुण्ठाग्रस्त जीवन में आयुर्वेद बहुत कुछ सन्तुलन ला सकेगा, ऐसी आशा है।

प्रधान मन्त्री श्री देसाई अपनी स्पष्टवादिता के लिए सुख्यात हैं और आयुर्वेद के प्रति निष्ठावान हैं। इसलिए आयुर्वेद प्रगति की दौड़ में पीछे न रहे, इस बात की चेतावनी भी समय-समय पर वे देते रहते हैं जो अत्यन्त स्वाभाविक भी है। यदि आयुर्वेद-सेवी आधुनिक चिकित्सा के चाकचिक्य से अभिभूत न होकर अपनी पद्धति के प्रति दृढ़ आस्थावान होकर उसके उन्नयन की दिशा में निरन्तर चेष्टाशील रहें और आयुर्वेद में अन्तर्निहित क्षमता को उजागर करने के प्रति संकल्पी बनें तो अवश्यमेव आयुर्वेद के दिन फिरें और वह लोक दृष्टि में पूर्णतया समादृत हो सके। जैसा कि प्रधानमन्त्री ने बताया यह काम द्रव्योपार्जन की प्रवृत्ति से हटकर शास्त्रोन्नयन की भद्रभावना से भावित हुए बिना संभव न होगा।

# पेशकोवो ग्रामीण चिकित्सालय एवं आयुर्वेद

आयुर्वेद-चक्रवर्ती, आयुर्वेदशिरोमणि, प्राणाचार्य
पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य,
संयुक्त प्रबन्ध-निदेशक, श्रीबैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०



मैं १९४८ ई० में संयुक्त राष्ट्रसंघ एवं विश्व-स्वास्थ्य-संगठन द्वारा पारित इस प्रस्ताव से सहमत हूँ कि "स्वास्थ्य का अधिकार मानव अधिकारों में एक मूल अधिकार है और इसे सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए।" मैं इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए दिन-रात चिन्तित रहता हूँ। भारत के घोर देहातों से लेकर विश्व के प्रसिद्ध शहरों तक, अफ्रीका के अविकसित राष्ट्रों से लेकर विकसित राष्ट्रों तक मैं आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार के लिए कठिन यात्राएं करता-रहता हूँ। यात्राएं मैं मात्र पर्यटन के लिए नहीं करता। यात्राएँ इसलिए मैं करता हूँ कि मेरा दृढ़ विश्वास है कि आयुर्वेद जो प्राचीन भारत की अमूल्य थाती है, आज आधुनिक युग में भी यह पीड़ित मानव-समुदाय की सेवा करने में उतना ही सक्षम है, जितना पहले था। हम भारतीयों के लिए खासकर आयुर्वेद-प्रेमियों के लिए यह गौरव की बात है कि आयुर्वेद में ऐसे भयानक एवं अज्ञात रोगों के लक्षण एवं निदान मौजूद हैं जो ऐलोपैथी में अभी भी नहीं हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दिनों में यह पूर्णतः उपेक्षित रहने के कारण विश्व के पीड़ित मानवों की उतनी सेवा नहीं कर सका जितना इसे करना चाहिए था। यह हमारे लिए गौरव की बात है कि विदेशी दासता से मुक्ति के पश्चात् हमारा देश भी आयुर्वेद को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास जोरों से कर रहा है। मुझे खुशी है कि हमारा प्रतिष्ठान, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० भी विश्व के पीड़ित मानवों की सेवा के लिए कटिबद्ध है एवं आयुर्वेद का दिव्य सन्देश घर-घर पहुँचा रहा है। श्रीलंका से सोवियत संघ तक, इण्डोनेशिया से प० जर्मनी तक शुद्ध आयुर्वेदीय औषधियों का निर्यात करके वहाँ के दुखी निवासियों की सेवा हमारा प्रतिष्ठान कर रहा है।

आज विश्व के तमाम राष्ट्रों—चाहे वे अविकसित, अर्द्ध-विकसित, विकासशील अथवा विकसित राष्ट्र हों, के समक्ष वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य की समस्या काफी गम्भीर है: आधुनिक चिकित्सा-पद्धति काफी खर्चीली होने के कारण अविकसित, अर्द्ध-विकसित एवं विकासशील राष्ट्र पूंजी के अभाव में स्वास्थ्य-समस्या का समाधान नहीं कर पाते हैं, लेकिन विकसित राष्ट्र भी आधुनिक चिकित्सा-पद्धति की खामियों के कारण स्वास्थ्य-समस्या का समाधान नहीं कर पा रहे हैं। इस सन्दर्भ में आलमा-आता घोषणा-पत्र की यह टिप्पणी काफी सामयिक है कि आधुनिक स्वास्थ्य सेवा केवल चिकित्सकों को संतोष प्रदान करती है, मरीजों को नहीं। आधुनिक औषधियों के चिकित्सालय रोगों के राजमहल हैं। वे मात्र अपूर्ण सेवा कर पाते हैं।' विश्व स्वास्थ्य संगठन के महानिदेशक, डा० एच० माइलेर एवं यूनिसेफ के कार्यपालक निदेशक श्री हेनरी आर० लेबोइस्से के इस प्रस्ताव का आलमा-आता अधिवेशन ने अनुमोदन किया है कि "एक ऐसी योजना बनायी जाय कि विश्व के तमाम लोगों के स्वास्थ्य का स्तर २००० वर्ष तक काफी ऊंचा उठाया जाय एवं सभी को स्वीकार हो। मेरा विश्वास है कि आयुर्वेद ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के जरिये डा० माइलेर एवं श्री लेबोइस्से के प्रस्ताव को कार्यान्वित कर सकता है।

मेरी कल्पना है कि विश्व के तमाम ग्रामीण चिकित्सालय सोवियत संघ के पेशकोवो चिकित्सालय की तरह हो जाय। गत वर्ष मैं सोवियत संघ की यात्रा पर था। वहाँ मुझे पेशकोवो चिकित्सालय के सम्बन्ध में जानकारी

मिली। वास्तव में यह आदर्श ग्रामीण चिकित्सालय है। मैं इस चिकित्सालय के कार्य-कलापों से काफी प्रभावित हुआ हूँ। पेशकोवो सोवियत संघ के एक गाँव का नाम है। यह गांव सोवियत संघ के यूरोपीय भाग के दक्षिण में रोस्तोव क्षेत्र में स्थित है। इस ग्रामीण चिकित्सालय में लगभग २५ शय्यायें हैं, किन्तु अधिकांश शय्याएं खाली रहती हैं। इसका कारण यह है कि ग्रामीण चिकित्सक निरोधक कार्य करने में पहल करते हैं। उनका विश्वास है कि रोग-निवारण सुन्दर स्वास्थ्य की नींव है। प्रति वर्ष सभी ग्रामीणों के स्वास्थ्य की जांच चिकित्सक करते हैं। विशेषज्ञों से विचार-विमर्श, एक्स-रे-परीक्षा एवं अन्य आवश्यक जांच भी वार्षिक जांच में शामिल हैं। किसी भी रोग का लक्षण मालूम होते ही, उसकी चिकित्सा प्रारम्भ कर दी जाती है। ऐसा अवसर कम ही आता है जब किसी भी मरीज को जिला अथवा क्षेत्रीय चिकित्सालय में विशेषज्ञों के पास चिकित्सार्थ भेजा जाता हो। अधिकांश मरीज ग्रामीण चिकित्सालय में ही स्वस्थ हो जाते हैं।

१९१७ ई० में सोवियतों के सत्ता में आने के पश्चात् वहां के सविधान में संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र के अनुरूप स्वास्थ्य का अधिकार सभी देशवासियों को दिया गया है। पेशकोवो चिकित्सालय इसका ज्वलन्त प्रमाण है। चिकित्सालय के चिकित्सक काफी योग्य हैं। इसमें सभी रोगों के विशेषज्ञ कार्य करते हैं। दाई हो अथवा नर्स हों अथवा चिकित्सक हों—सभी चिकित्सा विज्ञान संस्थान के स्नातक होते हैं। बहिरंग विभाग के रोगियों के लिए स्वागत-कक्ष हैं एवं यह चिकित्सालय की निचली मंजिल पर स्थित हैं। बच्चों को रोग-निरोधक सूइयां घर पर दी जातीं हैं। जब माँ बच्चा जनने के पश्चात् घर पहुंच जाती है, तो घर पर बच्चे को टीके लगाये जाते हैं।

सोवियत संघ में सुदूर पहाड़ों पर बसे गांवों तक जहां मात्र दो-चार घर हैं, फ्लाईंग एम्बुलेन्स भेजकर वहां के निवासियों की भी सेवा की जाती है। ऐसा ही एक गाँव है जिसका नाम तँगा है।

यद्यपि सोवियत संघ का शासन तथा सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था विश्व के अन्य देशों की तुलना में पर्याप्त भिन्न है फिर भी चिकित्सा क्षेत्र में उसने जो प्रगति की है; वह अद्वितीय एवं काफी प्रशंसनीय है। कहना नहीं होगा कि सोवियत संघ में स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति इंग्लैंड एवं अमरिका से भी ज्यादा खर्च होता है। सभी नागरिकों को मुफ्त चिकित्सा प्रदान की जाती है एवं कर्मचारियों को भी चिकित्सा की अवधि में अनुपस्थित रहने का पूर्ण वेतन मिलता है। यद्यपि हमारे देश में अभी यह सम्भव नहीं है, फिर भी भारत सरकार इतना तो कर ही सकती है कि बजट में आयुर्वेद के लिए अधिक-से-अधिक धनराशि आबंटित करे।

कहना नहीं होगा कि आयुर्वेदीय औषधियां जनप्रिय होने के साथ-साथ काफी सस्ती हैं। ये औषधियां आलमा आता घोषणा-पत्र की तरह मरीज को बुनियादी तौर पर निरोग करती हैं, न कि मात्र चिकित्सक को संतुष्ट करतीं हैं। हिन्दुस्तान के ग्रामीण चिकित्सालय का स्वरूप पेशकोवो ग्रामीण चिकित्सालय की तरह बदलने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय बजट में से जो रकम आबंटित की जाय उससे सभी लोगों को औषधियां सुलभ हो सके और यह केवल आयुर्वेद से सम्भव है। मैं विश्वास करता हूं कि भारत सरकार, विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र संघ, यूनिसेफ एवं आलमा-आता घोषणा-पत्र को कार्यान्वित करने के लिए मेरे सुझाव पर अमल करने की दिशा में कदम उठावेगी। ★

---

# आयुर्वेद के विद्वानों का समादर

गत मास १८ जनवरी को गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय के सप्तम दीक्षान्त समारोह के अवसर पर तमिलनाडु और हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के चुने हुए आयुर्वेद विद्वानों को भट्टो जी मेमोरियल आयुर्वेद रिसर्च ट्रस्ट की ओर से स्वर्ण पदक देकर सम्मानित किया गया। स्वर्ण पदक का वितरण गुजरात के मुख्य मंत्री श्री बाबूभाई पटेल ने किया।

जिन विद्वानों को सम्मानित किया गया, उनके नाम इस प्रकार हैं—

सर्वश्री जे जोसेफ शांस (भेषज विज्ञानाध्यक्ष, स्नातकोत्तर केन्द्र, राजकीय आयुर्वेद कालेज, तिरुनेलवेली, ह्वी. वेंकटराघवन, टी. शेषगिरि राव, कंचन श्रीनिवास एण्ड के. जानकी, के. कुप्पुराजन, एस. एस. राजगोपालन, आर. रेवाठी.—ये सभी डा. लक्ष्मीपति रिसर्च यूनिट, मद्रास से सम्बन्धित हैं।

हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के निम्नलिखित विद्वानों को भी सम्मानित किया गया। सर्वश्री जे. के. ओझा, पी. वी. शर्मा, एच. एस. वाजपेयी, डा. जी. सी. प्रसाद तथा पी. जे. देशपांडे।

रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर्स (सेण्ट्रल) रूल्स, १९५६ के ८ व नियम के अन्तर्गत ( सचित्र आयुर्वेद ) मासिक पत्रिका के स्वामित्व एवं अन्य विषयों के सम्बन्ध में विवरण ।

फ—४

| | | |
|---|---|---|
| १- प्रकाशन का स्थान | : | बैद्यनाथ भवन रोड, पटना—१ |
| २. प्रकाशन का अधिक्रम | : | प्रतिमास |
| ३. मुद्रक का नाम | : | श्रीकांत शास्त्री, निमित्त स्वत्वाधिकारी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० |
| राष्ट्रीयता | : | भारतीय |
| पता | : | बैद्यनाथ भवन रोड, पटना—१ |
| ५. सम्पादक का नाम | : | श्रीकान्त शास्त्री, एम० ए. |
| पता | : | बैद्यनाथ भवन रोड, पटना—१ |
| ६. उन शेयर होल्डरों के नाम | : | १. स्व. पं. रामदयाल जोशी, ग्राम-कांसली, पो.-कोटपुतली, जि.-जयपुर |
| और पते, जिनके पास | : | २. पं. रामनारायण शर्मा वैद्य, १ गुप्तालेन, कलकत्ता-६ |
| कुल पूंजी के १ प्रतिशत | : | ३. श्रीमती भूरी देवी, जोशी वाटिका, चिड़ैयाटांड, पटना-१ |
| से अधिक के शेयर हैं। | : | ४. श्री हीरालाल शर्मा, हीरालाल रामेश्वर प्रसाद, पो.-ओलनगंज: जौनपुर |
| | : | ५. श्री वनवारी लाल शर्मा, १५६/सी. महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-७ |
| | : | ६. शिवनारायण एंग्लो संस्कृत विद्यालय, कांसली, पो.-कोटपुतली, जयपुर |
| | : | ७. श्रीमती विमला देवी शर्मा, राष्ट्रदूत प्रेस, जयपुर |
| | : | ८. श्री घनश्याम दास ज्योतिषी, मु. पो.-प्रागपुरा, जि.-जयपुर |
| | : | ९. शिवशक्ति प्रेस (प्रा.) लि. नागपुर |
| | : | १०. श्रीमती सुशीलादेवी शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१ |
| | : | ११. श्री शिवलाल शर्मा, पुरानी मंडी, नारनौल—१ |
| | : | १२. श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१ |
| | : | १३. श्री रामावतार शर्मा, १७८, अपरचितपुर रोड, कलकत्ता-३ |
| | : | १४. श्री रमाकांत शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१ |
| | : | १५. श्रीमती कमलादेवी शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पठना-१ |
| | : | १६. श्री हजारीलाल शर्मा, १७८, अपरचितपुर रोड, कलकत्ता-३ |
| | : | १७. श्री राजेश्वर प्रसाद शर्मा, राष्ट्रदूत प्रेस, जयपुर |
| | : | १८. श्री विश्वनाथ शर्मा, गुसांईपुरा, झांसी |
| | : | १९. श्री वृजेन्द्र कुमार शर्मा, गुसांईपुरा, झांसी |
| | : | २०. श्री शिवनाथ शर्मा, महाल, नागपुर |
| | : | २१. श्री रामकृष्ण शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१ |
| | : | २२. श्रीमती स्नेहलता देवी शर्मा, गुसांईपुरा, झांसी |
| | : | २३. श्री सुरेश कुमार शर्मा, गुसांईपुरा, झांसी |
| | : | २४. श्री रमेश कुमार शर्मा, गुसांईपुरा, झांसी |
| | : | २५. श्री राकेश कुमार शर्मा, राष्ट्रदूत प्रेस, जयपुर |
| | : | २६. श्री प्रमोद कुमार शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१ |
| | : | २७. श्रीमती मंजु शर्मा, १७८, अपरचितपुर रोड, कलकत्ता-३ |
| | : | २८. श्रीमती रश्मि शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१ |

मैं श्रीकान्त शास्त्री घोषित करता हूं कि ऊपर दिये गये सभी विवरण, जहां तक मैं जानता हूं तथा मेरा विश्वास है, सत्य है ।

प्रकाशक का हस्ताक्षर—श्रीकान्त शास्त्री, ८-२-७९

# निदान-चिकित्सा हस्तामलक
## ( छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा)

# श्वास और हिक्का

वैद्य रणजितराय देसाई

वमनार्थ मदनफल आयुर्वेद में श्रेष्ठ कहा गया है। एतदर्थ, मदनफल-पिप्पली (मदनफल के बीज, जो कवच के अन्दर एक पिण्ड के रूप में रहते हैं) चतुर्थांश सैन्धव (अभावे सामुद्र) लवण मिला ½ तोला मात्रा में सुखोष्ण जल के अनुपान से दी जाती है। अधिक अच्छा प्रकार यह है—एक फल का चूर्ण २॥ तोला (१ आउन्स) जल में एक घण्टा भिगो, पत्थर के खल्व में घोट, वस्त्रपूत कर, उसमें मधु और सैन्धव संयुक्त कर निरन्न कोष्ठ पिला दें। एक घण्टे में इससे एक-दो अच्छे वमन होते हैं। कभी-कभी वमन के अनन्तर विरेचन भी होते हैं। (देखिए : वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य कृत द्रव्यगुण विज्ञान, उत्तरार्ध—वैद्यनाथ प्रकाशन—द्वितीय खण्ड)।

बालकों के ज्वर-सहित या ज्वर-रहित कास-श्वास में भी उत्तम योग वयोऽनुरूप एक से दो वल्ल (१ वल्ल = ३ गुञ्ज) किंवा पूर्व-निर्दिष्ट कंकुष्ठ एक वल्ल एकाकी अथवा वमन-विरेचन दोनों करा कफ, मल और वात की विशुद्धि कर रोग को शांत करता है। हमारी ओर मध्य गुजरात के नडियाद के वैद्य जगन्नाथ जी की 'वराध की दवा' बच्चों के ज्वर-सहित वा ज्वर-रहित श्वास-कास में घर-घर में प्रचलित है। यह भी वमन, विरेचन अथवा उभय कर्म करा कफादि की शुद्धि द्वारा तत्काल स्वस्थता लाती है। ज्वर हो तो वह भी इन कर्मों द्वारा निवृत्त होता है। इसमें प्रधान द्रव्य जयपाल कहा जाता है।

सामान्यतः, वमन कराने के पूर्व दोष के उत्क्लेशार्थ—उसे ऊर्ध्वामाशय में लाने के निमित्त स्नेहन कराने का विधान है। परन्तु बालकों में इसकी आवश्यकता होती नहीं; कारण वे नित्य स्तन्य का सेवन करते होने से सदैव स्निग्ध ही होते हैं। इस विषय में काश्यप-वचन है—स्निग्धा एव सदा बाला नित्यं क्षीर निषेवणात्।

वमन के पूर्व स्नेहन तथा कफ-वृद्धि न करने से विशेषतया अपतर्पण (पोषण का अभाव—मालन्यूट्रिशन) आदि से पीड़ित पुरुषों—भिक्षु आदि—में रक्तष्ठीवन (कास के वेग में कफ के साथ रक्त की प्रवृत्ति—हिमोप्टिसिस) किंवा रक्तच्छर्दि (आमाशय से रक्त प्रवृत्ति—हिमेटेमेसिस) होना संभव है। स्नेहन एवं कफ-विवर्धन से प्राणवह तथा अन्नवह स्रोतों में मार्दव (स्थितिस्थापकता) आती है, जिससे इन स्रोतों में स्थित केशिकाओं पर तनाव होकर उनके विदीर्ण होने और फलस्वरूप रक्तस्राव होने की भीति रहती नहीं। उधर आमाशय, में वृद्धि को प्राप्त कफ की विद्यमानतावश आमाशय की कला और तदन्तर्गत केशिकाओं का खिंचाव तथा तज्जन्य विदरण-पूर्वक रक्तस्रुति होना संभव नहीं रहता। आमाशय रिक्त होने की स्थिति में वमन द्रव्य के योग से आमाशय की दीवालों पर आकुञ्चन का दुष्परिणाम हो कर उक्तरीत्या रक्तस्राव होने की आशंका रहा करती है। उल्लिखित पुरुषों में रक्तष्ठीवन अथवा रक्तच्छर्दि होने के मूल में यह भी स्थिति होने की संभावना की जा सकती है कि, पुष्टि के अभाववश इन स्त्री-पुरुषों की रोग प्रतीकार शक्ति क्षीण होने से, अथ च इनके यक्ष्मा के संक्रमण के अनुरूप वातावरण में निवासवश ये पहले से ही राजयक्ष्माक्रांत हों और वमन देने के पूर्व उनकी अवाम्यता का निदान न हो पाया हो। रक्तच्छर्दि की उल्लिखित सम्प्राप्ति होने के अतिरिक्त ऊर्ध्वामाशय में शोथ, तत्रत्य सिराकौटिल्य (वेरिकोसिस) आदि स्थितियों की पूर्व-विद्यमानता होने की संभावना भी नकारा नहीं जा सकती। रक्त की छर्दि या ष्ठीवन होने के अनन्तर उल्लिखित रोगों के अस्तित्व के प्रति चिकित्सक की दृष्टि जाए और वे सम्यक् परीक्षा प्राचीन—अर्वाचीन मत से कराएं तो इन रोगों के पूर्व-विद्यमान होने का निदान होता है। यह

भी हो सकता है कि, ये रोग वमन के पूर्व विद्यमान न हों, परन्तु रक्तष्ठीवन के मूलभूत उरःक्षत की परिणति यक्ष्मा में कालान्तर में हो जाए। एतावता; अवाम्य होने पर भी इन्हें कराया गया यह वमन एक प्रकार से यक्ष्मा, उरःक्षत तथा क्षयज कास की कारण-माला में निर्दिष्ट 'साहस' ही समझा जाना चाहिए।

ऊपर मदनफल को लवण-युक्त करके देने का विधान किया है। इसके अतिरिक्त, योग्य भी वामक द्रव्य देने पर भी धारित समय में वमन का वेग न हो तो थोड़े-थोड़े अन्तर से सुखोष्ण लवण-जल देने की परिपाटी है। इसमें स्थिति यह होती है कि, वमन कर्म में दिए गए लवण के आमाशय में प्रवेशवश आमाशय में तथा उसके मण्डलों में स्थित रस-रक्त में घनत्व का परिमाण असमान हो जाता है—आमाशय में अधिक और रस-रक्त में न्यून। इस असमतुला के निवारणार्थ भौतिकी (फिजिक्स; बायो-फिजिक्स) के नियमानुसार रस-रक्तान्तर्गत अब्धातु आकृष्ट हो आमाशय की ओर तावत्कालपर्यन्त प्रवाहित होता रहता है, जब तक दोनों ओर घनत्व की मात्रा समानता को प्राप्त न हो जाए। इस व्यवस्था को 'ऑस्मोसिस' कहा जाता है। इसके परिणाम रूप में ऊर्ध्वामाशय में द्रवत्व का आधिक्य हो जाने से वामक द्रव्य की क्रिया से हुए आकुञ्चन का प्रभाव आमाशय के अन्तर्गत केशिका आदि पर न होकर इस द्रव पर होता है। लवण लेखन होने से आमाशय में चिपटे कफ को विलीन और चल करने में ('लिक्विफाई' करने में) भी सहायक होता है। इसी से वमन-कर्म में लवण के व्यवहार की परम्परा है। यों, चरक ने वमनोपग द्रव्यों में इसकी गणना की नहीं है। लवण के गुण-कर्मों में भी लवण के इस सागुण्य का वैसा निर्देश उपलब्ध नहीं होता।

स्वेदों के प्रकरण में निर्दिष्ट नाडी-स्वेद 'स्टीम बाथ' इस अंग्रेजी नाम से प्रसिद्ध है। इस लेखमाला में जिसका विवरण पहले किया जा चुका है, तथा जिसके विवरण को निदान-चिकित्सा हस्तामलक के द्वितीय खण्ड (वैद्यनाथ प्रकाशन) में उद्धृत भी किया जा चुका है, वह 'साउना बाथ' भी नाडीस्वेद के स्थान पर व्यवहार में लाया जा सकता है। जैसा कि, इस विवरण में कह आए हैं, अब तो यह साउना स्वेद भारत में भी प्रचलित हो गया है।[१]

**अवलेह आदि का भी प्रयोजन-कफ-शुद्धि**—ऊपर कह आए हैं कि, हिक्का-श्वासपीड़ित पुरुष में कफ की मात्रा विशेष हो तथापि वह दुर्बल हो तो उसे वमन (या अन्य संशोधन) कराना निषिद्ध है। इसी प्रकार कफ का प्रमाण अल्प हो तो भी वमन का निषेध किया गया है। इन स्थितियों में, तथा वमन कराने के अनन्तर योजना-पूर्वक सशेष रखे गए कफ का शोधन अवलेह, धूमपान आदि कफहर (एक्सपेक्टोरेंट) उपचारों की योजना द्वारा करना चाहिए। इनका प्रयोजन भी कफ की शुद्धि द्वारा प्राणापान के गमनागमन के मार्ग को स्वच्छ करना ही है। तथा हि, अवलेहादि के पाठ देकर उनकी फलश्रुति दर्शाते चरक और वाग्भट कहते हैं—

**एते हि कफ संरुद्ध गति प्राण प्रकोपजाः।**
**तस्मात्तन्मार्ग शुद्ध्यर्थं देया लेहा न निष्कफे॥**
**उदीर्यते भृशतरं मार्गरोधाद्वहज्जलम्।**
**यथा तथाऽनिलस्तस्य मार्गं नित्यं विशोधयेत्॥**

—च० चि० १८।१२०, १२२

[ प्रथम पद्य के चतुर्थ चरण में वाग्भट-वचन इस प्रकार है—**ऊर्ध्वाधः शोधनं हितम्**—अ० हृ० चि० ४।८। शेष समान है। ]

तात्पर्य, हिक्का और श्वास के (सभी प्रकार) कफ द्वारा मार्गावरोध (आवरण) होने से प्रकोप को प्राप्त प्राणवायु के कारण संप्राप्त होते हैं, अतः (उल्लिखित परिस्थितियों में) उसके मार्ग के विशोधनार्थ लेह्य औषधों का सेवन कराना चाहिए। परन्तु, ये रोग सकफ, अन्य शब्दों में कफवृद्धिजन्य हों तभी उनकी योजना की जानी चाहिए। कफ का कोप न हो तब नहीं। उपमा द्वारा इस विधान की विशदता करते आचार्य द्वय कहते हैं—जिस प्रकार किसी जल-प्रवाह के मार्ग में कहीं कोई अन्त-

---

१. स्वेदन-सम्बन्धी सविस्तर ज्ञान-संपादनार्थ देखिए: सु० चि० ३२; च० सू० १४; अ० स० सू० २६; अ० हृ० सू० १७; काश्यप-संहिता अ. २६; आयुर्वेदीय पञ्चकर्म-विज्ञान (वैद्यनाथ प्रकाशन; इस विषय के और कर्म में सुप्रवीण वैद्य श्री हरिदास श्रीधर कस्तुरे-कृत) तथा सक्षेपतः ज्ञानार्थ देखिए—गुरुवर्य वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्यकृत द्रव्यगुण विज्ञान, उत्तरार्ध, प्रथम खण्ड (परिभाषा खण्ड) पृ. १४०-१४२।

राय उपस्थित हो जाए तो जल उस स्थल पर असाधारण बल से उछलता है, तद्वत् वायु भी अपने संचरण के मार्ग में (कफकृत) अवरोध आ जाने से क्षुभित और प्रकुपित होता हुआ हिक्का और श्वास के वेगों को उत्पन्न करता है। अतः, उसके मार्गों को नित्य विशुद्ध करते रहना चाहिए।

वाग्भट के ऊपर दिए वचन में वायु के कफ कृत मार्गावरण से हिक्का-श्वास की संप्राप्ति का उल्लेख कर संप्राप्ति-भंगपूर्वक रोगोपशमनार्थ ऊर्ध्व और अधः संशोधन, अन्य शब्दों में वमन एवं विरेचन, का विधान किया गया है। इनमें वमन द्वारा संप्राप्ति-भंग का स्वरूप तो ऊपर स्पष्ट किया है। शेष विरेचन द्वारा प्राण वायु के संचार में बाधक कफ की विशुद्धि कैसे हो सकती है, यह स्पष्टता-पेक्षी विषय है। होता यह है कि, कफ की पोषक प्रभूत सामग्री को लिए हुए रस-रक्त पक्वाशय में जाता है तो संचित पुरीष के पीडनवश स्थानीय कफोत्पादक ग्रन्थियां (म्युकस ग्लैण्ड्स) ऐसे इस रस-रक्त के ग्रहणार्थ तथा कफ को उत्पन्न कर उसके निर्हरणार्थ फूल नहीं सकतीं। अतः इस कफ-जनक सामग्री का संभार लेकर रस-रक्त वापस शरीर में चले जाते हैं। प्राणवह स्रोतों में—श्वासपथ में—वैसा अवरोध विद्यमान न होने से ये रस-रक्त इन स्रोतों में पहुंचते हैं तो कफोत्पादक ग्रन्थियाँ निर्विघ्न एवं निसर्गतः अधिक मात्रा में कफ की उत्पत्ति करती हुई प्राण वायु के संचरण में बाधा उपस्थित करती हैं। उपर्युक्त अर्थात् आगे कहे अनुसार पुरीष के निर्हरण के अति वायु और कफ के भी निर्हरण में क्षम—विरेचन देने से उपरिनिर्दिष्ट विकृति लुप्त हो जाती है और इस मार्ग से कफ के निर्हरण का मार्ग प्रशस्त हो जाने से प्राणवह स्रोतों में भी उतने अंश में लाघव आता है।

इस संप्राप्ति में यह भी स्थिति होती है कि, पक्वाशय में अवरुद्ध वायु अधोमार्ग से निर्हृत न हो, सर्वांग में प्रसृत होता हुआ प्राणवह स्रोतों में पहुंचता है तो अपने संकोचन के स्वभाव से कफजनक ग्रन्थियों को संकुचित करता है, जिससे कफ अभीप्सित मात्रा में बनता नहीं, और उसका निर्गमन होता नहीं। मल, वायु और कफ का अनुलोमन करने वाले अधोभागहर (विरेचन) द्रव्यों की योजना से उक्त संप्राप्ति का भंग होकर श्वास के वेगों की शान्ति होती है।

विरेचन द्वारा प्राणवह स्रोतों में स्थित प्रवृद्ध कफ में इस प्रकार अल्पता आने का अर्थ प्राकृत जन यह समझते हैं, कि वैद्यराज ने छाती में संचित कफ को मल-मार्ग से बाहर निकाल दिया। परन्तु छाती से मलद्वार की दिशा में जाने के लिए ऐसा कोई मार्ग तो है नहीं; अतः उल्लिखित व्याख्या ही स्वीकार्य प्रतीत होती है। कई बार कोई चिकित्सक भी छाती में संचित कफ को मलमार्ग से निकालने की बात करते हैं। वह चिन्त्य है।

**अस्वेदनीय आतुर** :[1] भाव मिश्र ने हिक्का और श्वास में स्वेदन का विधान करते हुए 'प्रायः' शब्द का व्यवहार किया है। चरक तथा वाग्भट्ट ने इस विषय का विस्तृत विवेचन किया है। पञ्चकर्म के प्रकरण में सामान्यतः अस्वेद्य स्त्री-पुरुषों का निर्देश हो ही गया है। तथापि, पुनः चित्त आकृष्ट करने के प्रयोजनवश इस विषय का पुनर्निरूपण इन तन्त्रकारों ने किया है। वे कहते हैं—पित्त प्रकोप से पीडित, दाह-पीडित, रक्त की मात्रा जिनमें अतिशय हो ऐसे रोगी, जिनमें प्रकृत्या स्वेद की अति प्रवृत्ति होती हो ऐसे रुग्ण, जिनके धातु तथा (तदाश्रित) त्रिविध बल क्षीण हों ऐसे एवं जो रुक्ष हों, जो पित्त प्रकृति हों ऐसे व्यक्ति तथा सगर्भा स्त्री को (स्पष्ट कारणों से) स्वेदन न कराना चाहिए। (देखते हैं, ऐसे रोगियों की छाती पर एंटिफ्लोजिस्टीन आदि निर्दोष प्रतीत होने वाले लेपों की पतली भी तह लगाई जाए तो रोगी थोड़ी ही देर में अति संत्रस्त होकर 'त्राहि त्राहि' पुकार उठता है।) इन अस्वेद्य रुग्णों को भी स्वेदन देना आवश्यक और अभिलषित तो होता ही है और वह कराना भी चाहिए।[2] यह स्वेदन रोगी सहन न कर सके तथापि मृदु स्वरूप का तथा (कुछ ही) क्षण के लिए करना उपयुक्त होता है। तथाहि: इन्हें सितोपला और क्षीर इन पित्त-शामक द्रव्यों से संयुक्त सुखोष्ण स्नेहों का परिषेक (धारा छोड़ना या सिंचन), उत्कारिका अथवा उपनाह इनसे उर तथा

---

१. च० चि० १७।८२-८७; अ० हृ० चि० १४-१७।

२. वाग्भट्ट का मूल वचन है : **अवश्यं स्वेदनीयानामस्वेद्यानामपि क्षणम्। स्वेदयेत्...।** इस वचन पर अरुण दत्त की टीका वाग्भट्ट के वक्तव्य को विशद करने वाली है, स्वेद्यानां [illegible] त्ववश्यं निर्भयं स्वेदयेत्। अस्वेद्यानां च समयम्; यद्यपि न सहते तथापि क्षणमेकं स्वेदयेत्।

कण्ठ पर स्वेद दें। अथवा, तिल, अतसी, माष, गोधूम-चूर्ण (गेहूं का आटा), वातघ्न स्नेह (सर्षप तैल प्रभृति), अम्ल तथा दुग्धों से साधित उत्कारिका (लप्सी-तुल्य शिथिल स्वरूप की कल्पना, रोटिका—अरुणदत्त) एवं स्वेदाधिगोक्त भेषजों से साधित उपनाहों से क्षणमात्र स्वेदन उर और कण्ठ पर करें।

श्वास और हिक्का साम हों—उनके साथ आम विकार भी हों, एवं तरुण ज्वर हो तो आमदोषनाशक उपचार करें। अर्थात्, रूक्ष स्वेद, लङ्घन, पाचन एवं उचित हो तो लवण-जल से वमन कराएं। श्लेष्महर वमन-विरेचन के अतियोगवश (दोषों की अति शुद्धि के परिणामस्वरूप हुए धातुक्षय के कारण) अथवा रोग की प्रकृति ही वात-प्रधान हो तो, वातघ्न (वातघ्न औषधों से सिद्ध) न अति शीत और न अति उष्ण मांसरस आदि आहार-कल्पनाओं तथा अभ्यङ्गों का उपयोग करें। साथ उदावर्त्त तथा आध्मान हों तो मातुलुङ्ग (बिजौरा), अम्लवेतस,[3] हिंगु, पीलु एवं बिडलवण से संस्कारित आहार दें। (पीलु छोटा और बड़ा दो प्रकार के वृक्ष के आकार-भेद से होता है। इसके बीज का तेल जीर्ण संधिवात में मालिश के लिये प्रयुक्त हुआ करता है। इससे इस वनौषधि की वातघ्नता सिद्ध है। उक्त तैल इस ओर 'खांस्वण का तेल' नाम से उपलब्ध होता है)।

**कफहर लेहादि** - चरकादि तन्त्रकर्त्ताओं ने अवाम्य रोगियों में कफ के निर्हरणार्थ तथा वमनोत्तर शेष रखे गए कफ की शुद्धि के हेतु कतिपय मुष्टि-योग लिखे हैं। वे सांप्रत व्यवसाय में व्यवहृत नहीं होते; तथापि आयुर्वेद के नव-सर्जन की इस वेला में सुश्री वैद्यजन इन्हें लक्ष्य रख इन्हें प्रयोग में लाकर इनके गुण-अवगुण की परीक्षा कर सकें तो आयुर्वेद का संवर्धन तो होगा ही, रुग्ण जन-समाज का भी कल्याण हो सकता है। ततः, इन कल्पों को यहाँ उद्धृत करना उपयुक्त माना है। शास्त्रोक्त चिकित्सा-सूत्रों तथा उपचारों के इस प्रकरण के अनन्तर संप्रति सद्वैद्यों द्वारा प्रयुक्त कल्पों का निर्देश किया जाएगा। प्रथम चरकोक्त कल्प लें।

हिक्का-श्वास पीड़ित पुरुष तृषित हो तो (सामान्य जल के स्थान पर) दशमूल-क्वाथ अथवा देवदारु-क्वाथ अथवा मदिरा का सेवन करें। (वर्तमान में सुलभ होने से और कानून के बन्धन को दृष्टि में रखते हुए दशमूलारिष्ट या द्राक्षारिष्ट-सदृश संधान-कल्पों का व्यवहार मदिरा के स्थान पर किया जा सकता है। कनकासव का तो प्रचार है ही। परन्तु उससे श्वास के मूल में रही स्तब्धता भले लुप्त हो, परन्तु कनक-धत्तूर के द्रव-शोषक स्वभाव के कारण इस आसव से कफ के शुष्क होकर लीन और स्तब्ध हो जाने की संभावना अवश्य रहती है। अतः, इसके साथ कफ की शुद्धि करने वाले योगों की योजना उचित ठहरती है।)

पाठा, मधुरसा (मूर्वा), रास्ना, सरल तथा देवदारु को स्वच्छ धो, जर्जर (जौकुट) करके सुरा के मण्ड (ऊपर के द्रव) में रखें। पश्चात्, उसमें थोड़ा लवण डाल कर अर्धाञ्जलि-प्रमाण यह द्रव आतुर को पिलाएं। हिक्का और श्वास की शान्ति होगी।

हिङ्गु, सौवर्चल, कोल (बदर), लज्जालु, पिप्पली तथा बला—इन्हें मातुलुङ्ग के रस में पीसकर अथवा इनका सूक्ष्म चूर्ण आरनाल (कांजिक) में आलोडित कर रोगी को उसका पान कराएं। (यह योग देने में सुलभ है। उल्लिखित अनुपान सुलभ न हों तो किसी उपयुक्त आसव या अरिष्ट का पान कराएं। चूर्ण प्रथम सुखोष्ण जल के साथ दें, पश्चात् आसवारिष्ट दें)।

सौवर्चल, शुण्ठी, भार्गी इनमें द्विगुण शर्करा मिश्रित कर उष्ण जल से सेवन कराएं। हिक्का और श्वास (के वेग) इससे शान्त होते हैं।

भार्गी और शुण्ठी अथवा कृष्ण मरिच और यवक्षार अथवा आस्फोता (जंगली मल्लिका—मोतिया; गुजराती में मोगरा), दारुहरिद्रा, चित्रक तथा मूर्वा का चूर्ण (सुखोष्ण) जल के अनुपान से दें।

मधूलिका (छोटा गेहूं—चक्रपाणि), तुगाक्षीरी, शुंठी तथा पिप्पली इनकी घृत में (भूंजकर) बनाई उत्कारिका (राब) पित्त के अनुबन्ध से युक्त हिक्का-श्वास में हितावह है।

---

३. अम्लवेतस नाम से उपलब्ध होने वाली वेणी-सदृश गुंथी हुई वनस्पति रेवंद चीनी की सुखाई हुई शाखाएं होती हैं। वास्तविक अम्लवेतस नींबू की जाति का फल होता है जो जंबीरी नींबू-तुल्य परन्तु उससे बड़ा और अति अम्ल होता है।

सेह तथा शशक का मांस और सेह (शल्लक) का रुधिर पिप्पली और घृत में सिद्ध कर वायु के अनुबन्ध-युक्त हिक्का-श्वास में उपयोगी है। (स्पष्ट है कि, यह योग कोई शिकारी अथवा उनका लाभ ले सकें ऐसे रुग्ण ही ले सकते हैं। संभव है, वन्य प्राणियों के संरक्षण के कानून के अनुसार इसमें कुछ बाधा हो)।

सूर्यमुखी का स्वरस, दुग्ध और घृत त्रिकटु-युक्त कर देना और तदनन्तर शालिधान्य का सेवन करना वात-पित्त-प्रधान हिक्का-श्वास में गुणकर होते हैं।

शिरीष के पुष्पों का स्वरस, अथवा सप्तपर्ण का स्वरस पिप्पली और मधु के साथ देना कफ-पित्त प्रधान हिक्का-श्वास का शमन करते हैं।

मधुक (यष्टीमधु), पिप्पलीमूल, गुड, गौ (गाय-बैल) तथा अश्व के ताजे पुरीष का रस घृत-मधु समेत देने से कास, श्वास, हिक्का और अभिष्यन्द (द्रवप्राय कफ का ष्ठीवन या नासाद्वार से श्रुति) में हितकर होता है।

खर (गर्दभ), अश्व, उष्ट्र, शूकर, मेष (मेंढा) अथवा हाथी इनमें किसी के भी ताजे पुरीष का रस मधु-मिश्रित कर प्रचुर-कफयुक्त हिक्का-श्वास में सेवनीय हैं। (यह तथा ऐसे ही घृणा-जनक योग रुग्ण को ज्ञान न हो इस प्रकार देने की सावधानी बरतनी होगी)।

अश्वगन्धा का क्षार, मयूरपिच्छकोनाल अथवा सेह का शकल (मत्स्य के शकल—अंगरेजी स्केल, त्वचा के ऊपर स्थित कांटे) इनमें किसी को मधु और घृत के साथ चाटें। (नाल या शकल का चूर्ण, मसी अथवा भस्म इनमें कौन कल्पना ली जाए यह तंत्रकार ने स्पष्ट नहीं किया है। इनका चूर्ण बनाना दुष्कर तो होगा ही। अतः, कदाचित् मसी या भस्म का ग्रहण उपयुक्त होगा।)

श्वावित् (सेह), जाण्डक (मरुदेश का एक प्राणी, जो पीठ पर संकुचित होता है—चक्रपाणि; पाठान्तर—रोहक, जाहक !), चाष (नीलकण्ठ-नामक पक्षी), अथवा कुरर (पक्षि-विशेष)—इनके रोम अथवा शृङ्ग वाले, एक खुर वाले अश्व आदि अथवा दो खुरोंवाले हरिणादि पशुओं के चर्म, अस्थि तथा खुर—इन समस्त द्रव्यों को एक साथ अथवा पृथक्-पृथक् भस्म-रूप करके घृत और मधु सहित प्राशन से दारुण कास, श्वास तथा हिक्का नष्ट होते हैं।

इन कल्पों के सेवन से वायु के संचरण मार्गों के अव-रोध तथा तत्पूर्वक प्रकोप के कारणभूत कफ की शुद्धि होती है। अतः, इनका सेवन कफाधिक श्वासादि में ही करना चाहिए, कफहीनों में नहीं। इस प्रकार कफ-शुद्धि द्वारा हिक्का-श्वास-कास पर क्रिया करने वाले कल्पों का उल्लेख कर चरक ने निम्न उपयोगी कल्प पृथक् दिए हैं।

शटी (कचूर), चोरक[1], जीवन्तीमूल, त्वक् (दाल-चीनी), मुस्ता, पुष्करमूल, तुलसीपत्र, तामलकी (भूम्या-मलकी) एला, पिप्पली, अगुरु, शुण्ठी और सुगन्ध बाला—प्रत्येक एक-एक भाग, सितोपला आठ भाग—इनका चूर्ण बना उसका पान, भोजन, लेह आदि के रूप में प्रयोग तमक श्वास एवं हिक्का में हितावह होता है।

**मुक्ताद्यचूर्ण** : पाठोक्त द्रव्यों को देखते यह चूर्ण पित्त प्रधान हिक्का-श्वास-कास पर विशेष उपयोगी प्रतीत होता है। इसका पाठ यह है—मुक्ता, प्रवाल, वैदूर्य (इनकी पिष्टि), शङ्ख, स्फटिक, अञ्जन, ससार (स्फटिक-चक्र-पाणि) गन्धक, काच, अर्क (आक की जड़), सूक्ष्म एला, सौवर्चल, सैन्धव, ताम्र की अयस्कृति (संप्रति 'भस्म), लोह की अयस्कृति (युग-प्रभावतः भस्म), रौप्य की अयस्कृति (प्रचलित होने से भस्म), सौगन्धिक (माणिक्य-भेद—चक्र-पाणि), सीसक (सौवीराञ्जन) पाठान्तर में—कसेरुक; (इस नाम का किंचित् नील-पीत मणि—चक्रपाणि), जाती-फल, शण-बीज, अपामार्ग के बीज इनका सूक्ष्म चूर्ण बना एक तोला की मात्रा में विषम प्रमाणगृहीत घृत-मधु के साथ चाटने से हिक्का, श्वास और कास शीघ्र ही काबू में आते हैं। इसका अञ्जन करने से तिमिर, काच, नीलिका, पुष्प (फूली), तमोदर्शन, मल्य (नेत्र में दूषिका—मल—आना, पाठान्तर में पिल्ल-संज्ञक नेत्र-रोग), कण्डू, नेत्रा-भिष्यन्द और अर्म (टेरीजियम)—ये रोग विनष्ट होते हैं।

धातुओं की भस्मों की अपेक्षया रसशास्त्र के आवि-र्भाव के पूर्व संहिता-काल में प्रचलित अयस्कृतियाँ सेन्द्रिय समास (आर्गेनिक कंपाउण्ड्स) होने से शरीरावयवों के भी सेन्द्रिय होने के कारण अधिक स्वीकार्य होती हैं, यह इस ग्रन्थमाला में अनेक बार कह आए हैं। उनका प्रचार

१. काश्मीरज एक पौधा, जिसे उस ओर 'चुरा' या 'चोरा' कहा जाता है। यह सुगन्धि, दीपन-पाचन, उत्ते-जक एवं अजीर्ण तथा विबन्ध में हितावह होता है। सुश्रुत ने एलादिगण में इसकी गणना की है।

होना अभीष्ट है। निर्माण भी उनका सुगमतर होता है, यह इनके पक्ष में अन्य युक्ति है। अब चरकोक्त अन्य योगों पर दृष्टिपात करें।

शटी (कचूरा), पुष्करमूल तथा आमलों का चूर्ण मधु-सहित चाटें। अथवा काललोह (लोह, मतान्तरानुसार तीक्ष्ण लोह-चक्रपाणि) का चूर्ण (अयस्कृति, प्रचलित प्रथा के अनुसार भस्म, अथवा लोह-चूर्ण-बुरादा या छिलके को जबू स्वरस या त्रिफला-क्वाथ में रख कर बनाया कल्प)[1] का इसी प्रकार मधु से सेवन करें। यहाँ सूचित पुष्करमूल तथा कुष्ठ श्वास रोग में—विशेषतः तमक श्वास में—सविशेष उपयोगी होते हैं। मुक्ताद्य चूर्ण में पठित ताम्र तथा लोह और इस योग में आया काललोह विशेषतः पाण्डुरोगज श्वास में हितावह होना संभाव्य है। भारत में पाण्डुरोग (एनीमिआ) अयस्-आयर्न-के हीन योग (आयर्नडेफीशेन्सी) से होता है, यह अनुसन्धानों का निष्कर्ष है।

सितोपला, तामलकी (भुंइ आंवला), द्राक्षा, गौ तथा अश्व के ताजे पुरीष का रस, गुड और शुण्ठी को को चाटें तथा इसी का नस्य लें।

लशुन अथवा पलांडु (प्याज) अथवा गृञ्जनक (रक्त-पलाण्डु—चक्रपाणि; श्वेत पलांडु को निघण्टुकार क्षीर पलाण्डु कहते हैं; कोई लेखक गृञ्जनक का अर्थ गाजर और कोई शलगम भी करते हैं)—इनके कन्द का नस्य दें अथवा नारी-स्तन्य में चन्दन को घिस कर उसका नस्य दें।

सुसोष्ण घृत-मण्ड पर लवण बुरक कर अथवा लाक्षा के क्वाथ में मक्षिका की विष्ठा मिला उसका नस्य दें। (अन्धेरे स्थानों पर लटकती रस्सियों पर मक्खियाँ बैठतीं और मलोत्सर्ग करती हैं। आवश्यकता होने पर इन रस्सियों को अंगुष्ठ एवं तर्जनी के मध्य पकड़ ऊपर से नीचे की ओर दबाने से मक्षिकाओं की विष्ठा अंगुलियों में लगी प्राप्त की जाती है। यह विष्ठा छर्दि में भी हितावह कही गई है। प्रयुक्त भी होती है)।

स्त्री-स्तन्य, घृत तथा जीवनीय द्रव्यों से साधित घृत-पान एवं नस्य रूप में लेने से हिक्का तत्काल बैठ जाती है।

दुग्ध को शर्करा और मधु-मिश्रित कर क्रमशः उष्ण और शीत कर पान तथा नस्य के रूप में उपयोग करने से भी हिक्का का शमन होता है। (चक्रपाणि कहते हैं कि—मधु को उष्ण करने अथवा उष्ण-स्पर्श द्रव्यों के साथ लेना निषिद्ध होने से दुग्ध को उष्ण करके लेना हो तो उसमें मधु का निक्षेप करना न चाहिए)।

हिक्का के शामक उपचारों का सविशेष निर्देश करते संहिताकार आगे कहते हैं—विरेचन द्रव्यों से साधित घृत अथवा आमलकी और कपित्थ के पृथक् पृथक् रस पिप्पली और मधु-मिश्रित करके सेवन कराने से हिक्का के वेग सपदि शांत होते हैं। अथवा, इस प्रयोजन से लाजा (खील), (बदरी आदि वृक्षों की) लाक्षा, मधु, द्राक्षा, पिप्पली और अश्व के ताजे पुरीष का रस मिश्रित कर चटाएं। अथवा, बदरीफल (उसका गुठली निकाला अंश)। मधु, द्राक्षा, पिप्पली और शुण्ठी एकत्र कर उनका सेवन कराएं।

अब लोक-व्यवहार में भी प्रचलित एवं आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र में भी निरूपित एक अद्रव्य चिकित्सा का उल्लेख करते चरकमुनि कहते हैं : रोगी का ध्यान न हो ऐसी स्थिति में सहसा उसके मुख पर शीत जल का प्रहार अथवा मस्तक पर शीत जल की धारा छोड़ना, सहसा त्रास देना (यथा, उसका ध्यान न हो इस प्रकार उसके शरीर में अचानक सुई चुभोना, आँखों की ओर सहसा हथेली ले जाना आदि), उसे सहसा—अकस्मात्—चकित कर देना, इसी प्रकार अकस्मात् भयभीत कर देना, मिथ्या कारण उपस्थित कर क्रुद्ध, हर्षित, प्रीतिमान् या उद्विग्न (घबराहट से युक्त) कर देना—इन क्रियाओं से हिक्का के वेग प्रच्युत होते हैं। इन कर्मों में प्राणायाम की भी गणना है। पश्चिम में प्राणायाम सदृश एक क्रिया प्रचलित है। इसमें संकरे मुख वाले पात्र पर अथवा मुख आ सके इतने छिद्र वाले प्लास्टिक के गुब्बारे या कागज की थैली पर मुख रखकर हिक्कार्त रोगी को सतत फूंक मारने को कहा जाता है। प्राणायाम तथा इन विधियों से क्षुभित हुए श्वास-पुद्ग पर प्रभाव होकर उसकी क्रिया

---

१. इन कल्पों को लोहमयी शलाका से अहोरात्र में अनेक बार हिलाते रहना चाहिए, यतः लोह-चूर्ण द्रव-द्रव्य के सम्पर्क में सम्पूर्णतः आता रहे। पुराना द्रव शुष्क होने पर नया द्रव डालते रहना चाहिए।

सम होने से हिक्का के वेग संप्राप्ति भंगपूर्वक शान्ति को प्राप्त होते हैं। शेष क्रियाओं द्वारा प्रतिक्षिप्त क्रिया (रिफ्लेक्स एक्शन) होकर वेगों का शमन होता है।

चिकित्सा-शास्त्र के इतिहास में हिक्का के एक रोगी का रिकार्ड है। सात वर्ष से क्षण मात्र विराम न लेता हिक्का से वह पीड़ित था। एक दिन वह मोटर में जा रहा था कि, अकस्मात् उसकी मोटर एक वृक्ष से जा टकराई। और सहसा उसके मुख से दो चीखें एक के पीछे दूसरी निकलीं—पहली भयवश और दूसरी उल्लासवश, जिसका कारण उसको हुई यह प्रतीति थी कि, इस क्षण उसे हिक्का का वेग हुआ नहीं। वेगोपशान्ति का कारण सहसा उदित हुआ प्राण-भय था। इसके अनन्तर उसकी सात वर्ष से चली आई हिक्का सदा के लिए शान्त हो गयी।

जैसाकि पहले शास्त्राधार के अनुसार कह आए हैं, पुनः घूंट-घूंट करके पानी पीना या बलात् थूक उत्पन्न करके निगलने की भी हिक्का के शमनार्थ प्रथा है।

सभी रोगों की चिकित्सा के विविध उपक्रमों में प्रथम और प्रधान निदान-परिवर्जन (एवं अर्थापत्ति से हित आहारादि के सेवन) के प्रति इस प्रकरण में भी अङ्गुलि-निर्देश करते संहिताकार कहते हैं—हिक्का और श्वास की उत्पत्ति में जिन निदानों का उल्लेख किया गया है, इन रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को उनसे मुक्ति प्राप्त करने के हेतु उनका (उन निदानों का) परित्याग करना चाहिए।

परिस्थिति-विशेष में सिद्ध घृतों का विधान करते तन्त्रकर्ता कहते हैं—(अन्य किसी व्याधि से पीड़ित) पुरुषों में अनुबन्ध रूप में श्वास और हिक्का हो जाएं, इनके उर, कण्ठ और तालु शुष्क हों—इनमें शोष होने का रोगियों को अनुभव हो—अथच वे प्रकृत्या रुक्ष शरीर वाले हों तो उन्हें विभिन्न सिद्ध घृतों का सेवन कराएं। इन घृतों के पाठादि निम्न हैं।

**तेजोवत्यादि घृत :** तेजोवती (चव्य), हरीतकी, कुष्ठ, कटुकी, यवानी, पुष्करमूल, पलाश, चित्रकमूल, शटी (कचूर), सौवर्चल, तामलकी, (भूम्यामलकी), सैन्धव, बिल्वमज्जा, तालीशपत्र, जीवन्ती, वचा-प्रत्येक १-१ कर्ष, हिङ्गु एक शाण (पाव तोला), घृत एक प्रस्थ (५०० ग्राम), जल चार गुणा ले स्नेहपाक-विधि से पाक करें। शक्त्यनुसार इसका सेवन करने से हिक्का, श्वास, शोथ, वात-विकार, अर्श, ग्रहणी, हृद्रोग और पार्श्वशूल शान्ति को प्राप्त होते हैं।

इस पाठ में आए सौवर्चल और सैन्धव की क्रिया इस प्रकरण में पहले दर्शा आए हैं। पुष्करमूल तथा कुष्ठ श्वास रोग में विशिष्ट हैं, यह भी कहा जा चुका है। यवानी के विषय में अधिक विवेचन आगे एक मुष्टियोग (टोटका, घरेलू उपचार) के निर्देश के प्रकरण में किया जाएगा।

**मनःशिलादि घृत :** मनःशिला, सर्जरस ( राल ), लाक्षा, हरिद्रा, पद्मकाष्ठ, मंजिष्ठा, इलायची—प्रत्येक एक-एक कर्ष तथा घृत एक प्रस्थ ले साधित घृत भी हिक्का-श्वास में हितावह है। मनःशिला (तथा हरिताल) सोमल के समास (यौगिक) हैं। सोमल तथा उसके ये दोनों समास श्वासरोग में विशिष्ट हैं। इनका भी अधिक विचार आगे यथावसर करेंगे।

जीवनीय-सिद्ध घृत मधु-मिश्रित कर सेवन करना भी हिक्का-श्वास का प्रशमन करता है।

**त्र्यूषणाद्यघृतः** कास-चिकित्साधिकार में पठित (च. चि १८।१९-४२) यह घृत श्वास और हिक्का में भी प्रशस्त है। इसका पाठ—त्रिकटु, त्रिफला, द्राक्षा, गम्भारी, परुषक (फालसा), दोनों पाठा (राजपाठा, लघु-पाठा,), देवदारु, ऋद्धि कपिकच्छू, चित्रकमूल, शटी ब्राह्मी (पाठान्तर में कण्टकारी), तामलकी, मेदा, काक-नासा, शतावरी, गोक्षुर, विदारी-इन प्रत्येक एक-एक कर्ष ले उनका कल्क, घृत एक प्रस्थ, दुग्ध चतुर्गुण इनका यथाविधि बनाया घृत कास, ज्वर, गुल्म, अरुचि, प्लीह-वृद्धि, शिरोरुजा, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कामला, अर्श, वात-विकार, अष्ठीला, उरःक्षत, शोथ और क्षय के निवारण में प्रशस्ततम है।

**वासाघृतः** गुल्म चिकित्साधिकारोक्त ( च. चि. ५।१२६-२७) वासाघृत को भी श्वास-हिक्काधिकार में चरक ने स्मरण किया है। इसके निर्माणार्थ मूल-सहित वासा कल्क अष्टगुण मिला अष्टमांश शेष क्वाथ करें। पश्चात् इस में वासा-पुष्पों के कल्क का प्रक्षेप कर घृत बनाएं। शीत होने पर मधु-सहित सेवन करने से यह घृत पैत्तिक गुल्म, रक्त पित्त, ज्वर, श्वास और हृद्रोगों का शमन करता है। वासा-सिद्ध होने से यह घृत पित्त-प्रधान

श्वासादि विकारों में हितकर होगा। चरक ने प्रकरणान्तर में कथित दाधिक घृत का भी यहां अतिदेश किया है।

विविध यूष: कण्टकारी, बिल्वमज्जा, कर्कटशृङ्गी, धमासा, गोक्षुर[1], गुडूची, कुलत्थ और चित्रकमूल—इनका कुलत्थ-यूषविधान से क्वाथ बना, वस्त्रपूत कर पिप्पली और घृत में भूंज कर, मात्रावत् शुण्ठी और लवण-मिश्रित कर इस यूष का भोजन में उपयोग हितावह है। रास्ना, बला, लघु पञ्चमूल, मुग्द और चित्रकमूल इनका विधिवत् मुग्द-यूष बना उसे भोजन में व्यवहार में लाएं। मातुलुङ्ग (बिजौरे), निम्ब और कुलक (पटोल, यह तिक्त ही लिया जाता है)—इनके कोमल पत्र, मुग्द तथा त्रिकटु का यूष बना उसमें अपामार्ग आदि के क्षार मिला उसका सेवन भोजन में करें। शिग्रु (सहेंजना), मरिच, लवण तथा क्षार इनसे बनाया यूष हिक्का और श्वास रोग का नाश करता है। कासमर्द के पत्तों अथवा शोभाञ्जन अथवा शुष्क मूली का यूष हिक्का और श्वास को दूर करता है। दही, त्रिकटु और घृत-सहित बनाया बैंगन का यूष भी इन रोगों में गुणकारी है। पुराने (एक वर्ष के) शालिधान्य, षष्टिक (सांठी, चावल), गोधूम और यव इन धान्यों, हिङ्गु, सौवर्चल, धान्यक, बिड लवण, पुष्करमूल, चित्रकमूल तथा कर्कटशृङ्गी—इनसे साधित यवागू (यथा योग्य मण्ड, पेया आदि में कोई) श्वास और हिक्का से पीड़ित स्त्री-पुरुषों को दें। दशमूल, शटी, रास्ना, पिप्पलीमूल, पुष्करमूल, कर्कटशृंगी, तामलकी, भार्गी, गुडूची, शुण्ठी तथा जल लेकर विधिपूर्वक बनायी यवागू अथवा इनका कलाय (अर्धावशेष क्वाथ) हिक्का, श्वास, कास, हृद्ग्रह (हृदय-प्रदेश पर जकड़ाहट) तथा पार्श्वशूल के शमनार्थ प्रशस्त हैं। एवं पुष्करमूल, शटी, त्रिकटु, मातुलुङ्ग, अम्लवेतस, घृत, बिडलवण तथा हिंगु को (इनके कषाय आदि) अन्नपान में उपयोग में लाएं।

प्रचलित हिक्का-श्वासहर योगों की विद्यमानता में भी अप्रचलित इन कल्पों के उद्धरण का कुछ हेतु ऊपर बता आए हैं। अन्य हेतु यह भी है कि, स्पष्ट कारणों से सुवर्णघटित कल्प (यथा श्वासचिन्तामणि रस), अन्य धातुओं से निर्मित कल्प एवं विभिन्न अवलेह तो महार्घ एवं सामान्यतया संपन्न व्यक्तियों की भी पहुंच के बाहर हो गए हैं, अधिकांश वनौषधियां प्राय: देशावर से आयात होने से उनसे बनाई जानेवाली औषधियां भी अतीव महंगी हो गई हैं। ऐसी स्थिति में प्राय: समीपवर्ती वन-उपवन में सुलभ उक्त वनस्पतियों से निर्मित कल्प उपयोग में लाना अल्प-वित्त रुग्णों की भी रोग-मुक्ति में व्यवहार में लाया जा सके, इस हेतु इनके प्रति संकेत करना उचित माना है।

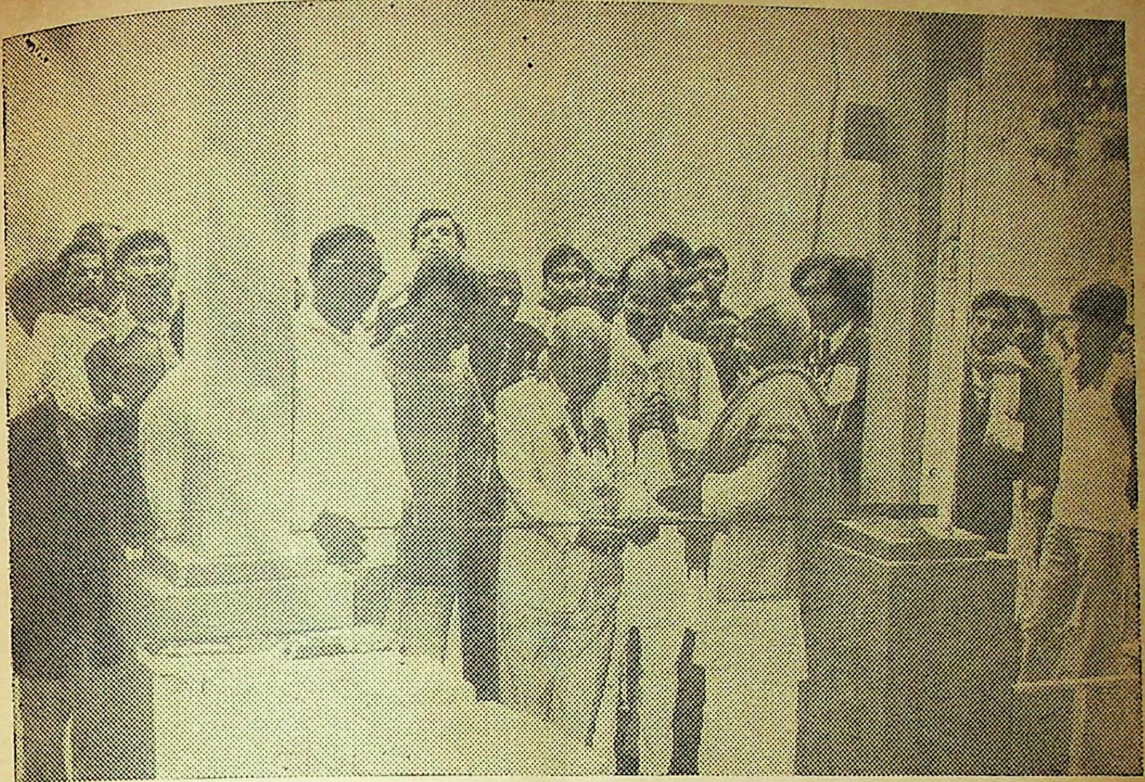
(सावशेष)

## २. आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम और संस्कृत

संस्कृत भाषा एक विषय के रूप में आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम का अनिवार्य अङ्ग है। इसमें प्रयोजन यह कहा जाता है और वह यथार्थ भी है, इसमें शंका नहीं, कि आयुर्वेद के मूल ग्रन्थों को स्वयं अध्ययन कर समझने के लिए इतना संस्कृत भाषा का ज्ञान भी उपयोगी होगा। आज से कुछ ही काल पूर्व आयुर्वेद का शिक्षण आरम्भ करने के पूर्व विद्यार्थी जितना संस्कृत का ज्ञान अर्जित करके आते थे वह तो अब स्मृति शेष ही हो चुका है।

---

१. गोक्षुर यों तो प्रसिद्ध वनौषधि है। परन्तु आचार्य बापालाल भाई ने अपने 'निघण्टु आदर्श' तथा 'वृद्धत्रयी की वनस्पतियां' पुस्तक में इसके विषय में जो मीमांसा की है, वह विचारणीय है। गोक्षुर के दो भेद प्रसिद्ध हैं—छोटा और बड़ा। इनमें बड़ा रसायन-वाजीकरण विधियों में तथा औषधोपचार में मूल-सहित सारा छोटा गोखरु उपयोग में लाया जाना चाहिए। इसका एक पर्याय 'त्रिकण्टक' है। परन्तु दोनों प्रकार के गोक्षुरों के फल में तीन नहीं, किंतु चार से छ: कांटे होते हैं। त्रिकण्टक और गोक्षुर (गाय-बैल के खुर-सदृश) ये दोनों संज्ञाएं इन गोखरुओं की नहीं, परन्तु गुजराती में जिसे 'वींछुडो' कहते हैं तथा जिसका लेटिन नाम Martynia annuna Linn है उस पर अक्षरश: घटित होती हैं। यह वस्तु लक्ष्य में रखते हुए आचार्य बापालाल भाई के गुरु स्व० अमृतलाल भाई 'वींछुडो' को गोक्षुर मानते थे। उन्होंने इसकी धन रसक्रियाओं का मूत्रल प्रभाव भी देखा था। गोक्षुर का एक पर्याय 'नृत्यकुण्डल' है। वह भी इस 'वींछुड़ा' के वक्र फल पर घटित होता है। 'गोखरु कलान' नामक गोक्षुर का तृतीय भेद भी है। यह सिंधी नाम है। इसके हिंदी नाम गोखरु, छोटा अंगारा तथा शंखेश्वर; मराठी नाम शंकेश्वर, गुजराती नाम गाडरियुं तथा वनस्पतिशास्त्रीय नाम Xamthicum strumarium Linn है।



भारत सोवियत सांस्कृतिक संघ की विहार शाखा के अधिवेशन में आयोजित वैद्य प्रदर्शनी का कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्व विद्यालय के उप कुलपति डा. रामकरण शर्मा उद्घाटन करते हुए।




कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्व विद्यालय दरभंगा में आयोजित बैद्यनाथ प्रदर्शनी के उद्घाटनोत्सव का एक दृश्य। बैद्यनाथ कर्मियोंके बीच में डा. आर. के. शर्मा (उपकुलपति, संस्कृत विश्वविद्यालय) परिलक्षित हो रहे हैं।

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में संस्कृत को दिए गए इस उचित स्थान के विषय में दो-एक मुद्दे विचारणीय हैं। प्रथम तो आयुर्वेद के मूल ग्रन्थों का स्वयं अध्ययन कर उसमें से कुछ नवनीत प्राप्त करना विकट-सा हो गया है। स्थिति यह है कि, इन दिनों मूल ग्रन्थ ही अलभ्य हो गए हैं। निर्णय सागर आदि प्रेसों में चरक, सुश्रुत, वाग्भट, माधव निदान, शार्ङ्गधर संहिता इत्यादि ग्रन्थ प्राचीन टीकाओं सहित अथवा मूलमात्र किसी समय मुद्रित और सुलभ होते थे। परन्तु इनके वाचक अल्पसंख्यक होने से इनके विक्रय में कितने ही दशक बीत जाते थे। परिणामस्वरूप इनके मुद्रण में लगाई गई पूंजी अनुत्पादक रूप में स्थगित रहती थी। अतः प्रकाशकों का आयुर्वेद के प्रति प्रीतिजनित उत्साह मन्द, मन्दतर और मन्दतम् होता गया। वाचकों को जानकर हार्दिक खेद होगा कि, सभी विषयों के प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के मुद्रण और प्रकाशन के कारण समस्त विश्व में विख्यात निर्णयसागर प्रेस अब बन्द हो गया है। अन्य प्रकाशक ऐसे ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ आगे नहीं आ रहे। ऐसी स्थिति में प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थ (यथा, गुरुवर्य वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य द्वारा अपने व्यय से प्रकाशित आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला के ग्रन्थ) अब सुलभ नहीं रहे। प्रश्न यह उपस्थित हो गया है कि, स्वयं मूल ग्रन्थों के स्वाध्याय के अभिलाषी, उत्साही विद्यार्थियों के हाथ में कौन-से ग्रन्थ अर्पित किये जायं? यह दुरवस्था हो, तो आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में संस्कृत का विषय रूप में समावेश भी क्या पुनः विचारणा का पात्र नहीं हो गया है?

तात्पर्य, सांप्रत काल में प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थों के प्रकाशन का कार्य प्रथम स्थान रखता है। उसके बिना केवल संस्कृत का विषय रूप में पाठ्यक्रम में समावेश घोड़े को गाड़ी के आगे न जोत कर गाड़ी को घोड़े के आगे रखने जैसा विषम कार्य कहा जायगा। यह कार्य सम्पन्न हो सके एतदर्थ आयुर्वेद को किसी 'भामाशाह' की प्रतीक्षा करनी होगी। साथ ही, अपने जीवन की बलि देकर इन ग्रन्थों के संपादनार्थ आचार्य यादवजी भाई, पराडकर शास्त्री (निर्णयसागरीय अष्टाङ्ग हृदय के सम्पादक) आदि विद्वानों की उपलब्धि करनी होगी।

स्वयं संस्कृत का पाठ्यक्रम भी पुनः विचारणापेक्षी है। स्नातक विद्यार्थी का मूल ग्रन्थों में प्रवेश अल्प आयास से हो सके एतदर्थ, संस्कृत विषय के पाठ्य ग्रन्थों में मूल वचन आयुर्वेद के ही ग्रन्थों और उनकी टीकाओं से संकलित करना अधिक अच्छा रहेगा। इन दिनों प्रचलित रघुवंश, नीतिशतक आदि की अपेक्षया ऐसे ग्रन्थ निश्चित ही अधिक उपकारक सिद्ध हो सकते हैं। बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के प्रकाशन विभाग ने यही दृष्टि रखते हुए 'आयुर्वेदीय हितोपदेश' का मुद्रण एवं प्रकाशन किया है।

संस्कृत के प्रवर्तमान पाठ्यक्रमों में न्याय, वैशेषिक, सांख्य आदि प्राचीन दर्शनों के ग्रन्थों को भी स्थान दिया गया है। यह भी वैसा ही विचारणीय है। कारण, आयुर्वेद में संज्ञाएं दर्शनों की ही होते हुए भी विस्तार में तो अपने ही अन्य दर्शनों से भिन्न सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। न्याय आदि दर्शन आयुर्वेदीय दर्शनों के समझने में लेशमात्र सहायक सिद्ध नहीं हो सकते। उलटे अपनी दुरुहता के कारण आयुर्वेद के नये विद्यार्थी के मानस में पाठ्यक्रम के प्रति उद्वेग ही उत्पन्न करते हैं। आयुर्वेद के दार्शनिक सिद्धान्तों का अध्यापन भी स्वयं आयुर्वेद के मूल ग्रन्थों से संकलन करके ही करना श्रेयस्कर होगा। इससे अगली कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले अन्य विषयों को समझने की भूमिका भी तय्यार हो जाती है। यह सब दृष्टि-समक्ष रखते हुए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद-भवन के प्रकाशन-विभाग ने ही 'आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान' का भी प्रकाशन किया है। आयुर्वेद के दार्शनिक सिद्धान्तों को आयुर्वेद के ग्रन्थों से ही समझने के इस प्रस्ताव में यह भी एक युक्ति है कि, कई विद्वानों का यह प्रबल मन्तव्य है कि, दार्शनिक सिद्धान्त दर्शनों से आयुर्वेद में नहीं आये, प्रत्युत आयुर्वेद से दर्शनों में गये हैं।

# चरकोक्त महाकषायों का वर्गीकरण

आचार्य प्रियव्रत शर्मा
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चरक संहिता सूत्र स्थान का प्रारम्भ भेषजचतुष्क से हुआ है। इसके अन्तिम (चतुर्थ) अध्याय में पंचाशत् (५०) महाकषायों का उल्लेख किया गया है। यह वस्तुतः द्रव्यों का कर्मानुसार वर्गीकरण है। समान गुण एवं कर्म वाले भेषज द्रव्यों को एक वर्ग में रखा गया है। प्रत्येक गण में दस द्रव्य हैं जिन्हें 'कषाय' की संज्ञा दी गई है। किन्तु साथ ही आचार्य ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह संख्या सीमित नहीं है प्रत्युत उदाहरणार्थ है जिसके आधार पर अन्य अनेक तत्सम द्रव्यों का समावेश उन वर्गों में किया जा सकता है। यहां आचार्य ने यह भी बतलाया है कि भेषज् द्रव्यों का एकल (Single drug) रूप में तथा यौगिक (Compound formulation) रूप में आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। एकल तथा यौगिक प्रयोगों के लिये क्रमशः 'कषाय'[1] तथा 'महाकषाय' पदों का प्रयोग किया गया है। अनेक समान गुणकर्मयुक्त द्रव्यों को एक साथ मिला कर किस प्रकार योगों की कल्पना की जा सकती है यही बतलाने के लिये (उदाहरणार्थ) महाकषायों का निरूपण किया गया है। इस प्रकार महाकषाय एक कार्य संपादक अनेक द्रव्यों का समुच्चय है।[2] वस्तुतः 'दस' संख्या 'दिशानिर्देश' के लिये प्रयुक्त होती है। दिशायें दस हैं अतः 'दस' संख्या उनकी प्रतीक है। प्राचीन वाङ्मय में किसी विषय का प्रतिपादन करने के बाद अन्त में 'इतिदिक्' लिखने की परम्परा रही है। उसका अभिप्राय भी यही है कि इतना दिशानिर्देश के लिये पर्याप्त है।

प्रत्येक महाकषाय में जो द्रव्य हैं उनमें गुण-सामान्य का विश्लेषण कर उस आधार पर अन्य तत्सम द्रव्यों का समावेश उस वर्ग में कर सकते हैं। उदाहरण के लिए जीवनीय गण में जीवक-ऋषभक आदि द्रव्य स्निग्ध शीत-मधुर गुणयुक्त हैं, अतः इस आधार पर इन गुणों से युक्त अन्य द्रव्य (द्राक्षा, विदारी, दुग्ध आदि) भी इस गण में स्थान पाने के योग्य हैं। चक्रपाणि ने अपनी टीका में इस तथ्य का विवेचन किया है।[3] इसी प्रकार नवीन कर्मों के आधार पर नये कषायों एवं महाकषायों की भी कल्पना की जा सकती है। चक्रपाणि ने अतिसारहर महाकषाय की कल्पना की है।[4] चरक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि पञ्चाशत् महाकषायों का उल्लेख अनतिसंक्षेप विस्तर शैली के कारण किया गया है जिसका अभिप्राय इतना ही है कि मन्दबुद्धि जन चाहें तो इतने ही से व्यवहार कर सफलता प्राप्त कर सकते हैं और बुद्धिमान् विद्वद्वर्ग इसे और विकसित कर ज्ञान एवं अनुसंधान का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।[5]

चरक ने इस पचास महाकषायों को यों ही क्रमानुसार न लिखकर पुनः इनके वर्ग निर्धारित किये हैं जो इस प्रकार हैं :—

---

१. 'तत्र जीवकादयः प्रत्येकं पञ्चकषायशतानामेकैकद्रव्यरूपाणां लक्षणस्वरूपा भवन्ति'
—(च. सू. ४/१९, चक्र.)
'एकैकद्रव्यरूपाणि पञ्चकषायशतानि भवन्ति'
—(च. सू. ४/८, चक्र.)

२. एतेनान्यान्यपि महाकषायाणि वातप्रशमनपित्तप्रशमनादीन्येककार्यसंपादकानेकद्रव्यमयानि भवन्तीति सूचयति —(च. सू. ४/८, चक्र.)

३. जीवकादयोहि स्निग्ध-शीत-मधुर-दृष्यत्वादिगुणयुक्ताः सन्तो जीवनं कुर्वन्तीति भूयो दर्शनादवधार्य तद्गुणयुक्तेऽन्यत्रापि द्राक्षापयोविदार्यादौ तज्जातीयत्वेन जीवनानीत्यनुभिमते। —(च. सू. ४/२०, चक्र.)

४. यथा जीवकादीनामेकजीवनकार्यकर्तृत्वेन महाकषायत्वं, तद्वत् पाठासमगाप्रभृतीना मप्यतीसारहराणामतीसारहरमहाकषायत्वम्। —(च. सू. ४/२०, चक्र.)

५. मन्दानां व्यवहाराय बुधानां बुद्धिवृद्धये।
पञ्चाशत्को ह्ययं वर्गः कषायाणामुदाहृतः॥
(च. सू. ४/२८)

१. जीवनीय, बृंहणीय आदि (६)
२. बल्य, वर्ण्य आदि (४)
३. तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न आदि (६)
४. स्तन्यजनन, स्तन्यशोधन आदि (४)
५. स्नेहोपग, स्वेदोपग आदि (७)
६. छर्दिनिग्रहण, तृष्णानिग्रहण आदि (३)
७. पुरीषसंग्रहणीय, पुरीषविरजनीय आदि (५)
८. कासहर, श्वासहर आदि (५)
९. दाहप्रशमन, शीतप्रशमन आदि (५)
१०. शोणितस्थापन, वेदनास्थापन आदि (५)

प्रस्तुत लेख में विशेष रूप से विचारणीय प्रश्न यह है कि महाकषायों को पुनः उपर्युक्त दस वर्गों में व्यवस्थित करने का आधार क्या है ?

पहली बात तो यह हो सकती है कि जैसे महाकषायों में द्रव्यों की दस संख्या दिशानिर्देशार्थ है उसी प्रकार इन वर्गों की दस संख्या भी दिङ्मात्र निर्देश मानी जा सकती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ऐसे अन्य भी वर्ग बनाये जा सकते हैं जिनके अनुसार इन महाकषायों की व्यवस्था की जाय।

यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त प्रत्येक वर्ग में निर्दिष्ट पदों की रचना-शैली विशिष्ट है यथा, प्रथम वर्ग में सभी पद 'ईय' प्रत्ययान्त हैं—जीवनीय, बृंहणीय आदि। इसी प्रकार द्वितीय वर्ग में सभी पद 'य' प्रत्ययान्त हैं—बल्य-वर्ण्य आदि। चक्रपाणि ने इस वैशिष्ट्य को देख कर यह निष्कर्ष निकाला कि शब्दवैचित्र्य के द्वारा ग्रन्थ को पुष्कलाभिधान बनाना ही इसका उद्देश्य है यद्यपि विशिष्ट अर्थ की ओर भी उनका संकेत है।[1] संभवतः वह उसके मूल तक नहीं पहुंच सके।

किन्तु शब्दवैचित्र्य दिखलाने के लिये ही आचार्य चरक ने यह सभारम्भ रचा है यह बात हृदयंगम नहीं होती। वस्तुतः इसके पीछे विशिष्ट अर्थ भी होना चाहिये। इसी अर्थ पर विचार करना है। इस दृष्टि से अब प्रत्येक वर्ग की क्रमशः परीक्षा करें।

१. प्रथम वर्ग में छः महाकषाय हैं—जीवनीय, बृंहणीय, लेखनीय, भेदनीय, सन्धानीय और दीपनीय। ये सभी पद कर्मपरक हैं और इस प्रकार ये महाकषाय क्रमशः जीवन, बृंहण, लेखन, भेदन, सन्धान तथा दीपन कर्मों के साधक हैं। इस आधार पर कर्मपरक अन्य महाकषायों की कल्पना भी की जा सकती है, यथा, पाचनीय, स्तम्भनीय आदि।

२. द्वितीय वर्ग में चार महाकषाय हैं—बल्य, वीर्य, कण्ठ्य और हृद्य। इनमें दो शरीर के भाव हैं और दो शरीर के अवयव हैं। इस प्रकार शरीर के विशिष्ट अवयवों तथा भावों के लिए उपयोगी कर्मों का इस वर्ग में निर्देश है। सूक्ष्मता से देखें तो इस वर्ग के दो विभाग हो सकते हैं :—

(क) बल्य, वर्ण्य (शरीरभाव)

(ख) कण्ठ्य, हृद्य (शरीरावयव)

पहले विभाग में वृष्य, मेध्य आदि तथा दूसरे विभाग में शीर्षण्य, त्वच्य आदि महाकषायों की कल्पना की जा सकती है।

३. तृतीय वर्ग में तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, क्रिमिघ्न और विषघ्न ये छः महाकषाय हैं। यह वर्ग वस्तुतः त्रिविध रोगमार्ग से सम्बन्धित है। सूक्ष्मता से देखें तो तीनों रोग-मार्गों के अनुसार इसे भी तीन विभागों में बाँट सकते हैं :—

(क) तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न-अभ्यन्तर रोगमार्ग (कोष्ठ)।

(ख) कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न-मध्यम रोगमार्ग (रक्तादि धातु, त्वक्)।

(ग) क्रिमिघ्न, विषघ्न-मध्यम रोगमार्ग (मर्म, अस्थि, सन्धि)।

तृप्ति कफज एवं आमज विकार हैं जिसका सम्बन्ध आमाशय से है, अर्श गुदगत विकार है। इस प्रकार महास्रोत के आदि तथा अन्तिम भाग में स्थित विकारों का उल्लेख करने से समस्त महास्रोत का ग्रहण हो जाता है। द्वितीय विभाग में कुष्ठ और कण्डू को नष्ट करने वाले भेषजद्रव्य आते हैं। ये विकार रक्तादि धातुओं तथा त्वचा में आश्रित होते हैं। विष मर्मस्थानों पर आक्रमण करते हैं जिससे मृत्यु होती है, ये सन्धिशैथिल्य भी उत्पन्न करते हैं (विकाशी)। क्रिमि भी अस्थियों आदि का भक्षण करते हैं तथा मर्मस्थानों को आक्रांत करते हैं। इसी प्रकार इन

---

१. 'अत्र च षट्कादिः महाकषायाणां परिच्छेदः कस्यचिदर्थस्यानुगमेन बोद्धव्यः।'

'एतच्च ईय प्रत्ययान्तत्वादिना बहुभेदकथनं वैचित्र्येण ग्रन्थस्य पुष्कलाभिधानताकरणार्थम्'। (च. सू. ४/८ चक्र.)

रोगमार्गों से सम्बद्ध अन्य कर्मों एवं तत्परक महाकषायों की कल्पना की जा सकती है।

४. चतुर्थ वर्ग में स्तन्य और शुक्र से सम्बद्ध कर्म हैं—स्तन्यजनन-स्तनशोधन, शुक्रजनन तथा शुक्रशोधन। उनका क्षय होने पर जनन और अन्य दुष्टि होने पर शोधन द्रव्यों का प्रयोग होता है। यह वर्ग वस्तुतः धातुओं और उपधातुओं से सम्बद्ध हैं जिसके प्रतिनिधि यहाँ क्रमशः शुक्र एवं स्तन्य हैं। शुक्र एवं स्तन्य का साथ-साथ उल्लेख करने का कारण एक तो यह है कि दोनों पुरुष की उत्पत्ति और विकास में महत्वपूर्ण साधन हैं और दूसरा यह, कि दोनों के स्वतः उत्पत्ति, विकास तथा निर्गम में घनिष्ठ समानता है।[१] इसी प्रकार आर्त्तवजनन, आर्त्तवशोधन, रक्तजनन, रक्तशोधन आदि महाकषायों की कल्पना की जा सकती है।

५. पंचम वर्ग में पञ्चकर्म से संबन्धित महाकषाय हैं। इनमें दो पूर्वकर्म के हैं—स्नेहोपग तथा स्वेदोपग, जो क्रमशः स्नेहन कर्मों में उपयोगी होते हैं। शेष पांच—वमनोपग, विरेचनोपग, आस्थापनोपग, अनुवासनोपग तथा शिरोविरेचनोपग-प्रधान कर्मों से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार यह वर्ग मुख्यतः संशोधनात्मक है।

६. षष्ठ वर्ग में तीन ही महाकषाय हैं—छर्दिनिग्रहण, तृष्णानिग्रहण तथा हिक्कानिग्रहण। छर्दि, तृष्णा और हिक्का मुख्यतः उदान वायु के विकार हैं और इनके वेग आते हैं। इनके केन्द्र मस्तिष्क में स्थित हैं जिनके क्षोभ से इन वेगों का उदीरण होता है। ऐसे वेगयुक्त विकारों को रोकने के लिये 'निग्रहण' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'संग्रहण' शब्द बिलकुल न रोक मात्रा में कमी करने का द्योतक है। यही 'निग्रहण' और संग्रहण' में अन्तर है। बिलकुल रोक देना निग्रहण और कमी ला देना संग्रहण है।

७. सप्तम वर्ग में मलों से सम्बन्धित कर्म हैं। पुरीष और मूत्र प्रमुख मल हैं। इनके सन्दर्भ में पांच महाकषायों का निर्देश है—पुरीष संग्रहणीय, पुरीषविरजनीय, मूत्रसंग्रहणीय, मूत्रविरजनीय और मूत्रविरेचनीय। विरेचन का अन्यत्र उल्लेख होने के कारण यहाँ 'पुरीषविरेचनीय' छोड़ दिया। इसी प्रकार 'स्वेदन' का भी अन्यत्र (च० सू० १४) उल्लेख होने के कारण स्वेद-सम्बन्धी कर्मों का उल्लेख यहां नहीं किया।[१]

८. अष्टमवर्ग में पांच महाकषाय हैं—कासहर-श्वासहर, शोथहर, ज्वरहर और श्रमहर। यह सामान्य विकारों का वर्ग है। इसमें विभिन्न स्रोतों में होने वाले तथा सर्वाङ्गग एवं एकांगग विकारों का समावेश है। उपर्युक्त पांचों में से कास, श्वास प्राणवह स्रोतों के विकार हैं, ज्वर और श्रम सर्वांगिग विकार हैं तथा शोथ सर्वांगिग और एकांगग दोनों है। इसी प्रकार प्रमेहहर, यक्ष्महर आदि महाकषायों की कल्पना की जाती है।

९. नवम वर्ग में पांच महाकषाय हैं—दाहप्रशमन, शीतप्रशमन, उदर्दप्रशमन, अंगमर्दप्रशमन और शूलप्रशमन। ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट होगा कि ये सभी लक्षण हैं, अतः लाक्षणिक व्यथा का शमन करने वाले कर्म इसमें समाविष्ट हैं। 'उदर्द' यहां पर शीतपित्त का भेद नहीं है अपितु महारोगाध्याय में पठित एक वात विकार है[२] जिसमें सम्भवतः अंगों में विशेष पीड़ा होती है (उत्कृष्टः अर्दः पीड़ा यस्मिन् स उदर्दः)। इसी प्रकार प्रलापप्रशमन, अनिद्राप्रशमन आदि महाकषायों की कल्पना की जा सकती है।

१०. दशम वर्ग में भी पांच महाकषाय हैं—शोणितस्थापन, वेदनास्थापन, संज्ञास्थापन, प्रज्ञास्थापन और वयःस्थापन। 'स्थापन' का अर्थ है उसे प्राकृत स्थिति में बनाये रखना और यदि इस स्थिति से विचलित हो तो उसे पुनः प्राकृत स्थिति में ले आना। उपर्युक्त पांच महाकषायों में शोणित, वेदना, संज्ञा, प्रज्ञा और वयस् इन पांच शरीर भावों के सन्दर्भ में 'स्थापन' का प्रयोग हुआ है। ये पांचों भाव ऐसे हैं जो निमित्त कारणों से प्राकृत स्थिति से विचलित हो जाते हैं। आघात लगने से रक्त निकलने लगता है। अनेक कारणों से संज्ञा

---

१. देखें—च० चि० २/४६-४९, सु० नि० १०/१६-२१

१. 'स्वेदापनयन' के लिए आर्ष शब्द 'स्तम्भन' है। देखें च० सू० २२/३२-३३

२. चक्रपाणि ने इसका उल्लेख किया है किन्तु आधुनिक ग्रंथों में यह पाठ नहीं मिलता। सम्भवतः ऐसा पाठदोष या लिपिदोष के कारण हुआ है। चक्रपाणिसंमत पाठ ठीक प्रतीत होता है। आश्चर्य है कि फिर भी चक्रपाणि चरकोक्त अभिप्राय को नहीं पकड़ सके।

नष्ट हो जाती है आदि। इस आधार पर प्रज्ञास्थापन आदि महाकषायों की कल्पना की जा सकती है।

अब इस विवरण के बाद पुनः व्याकरण की दृष्टि से प्रत्ययों और धातुओं के प्रयोग पर विचार करें।

१. प्रथम और द्वितीय वर्गों में क्रमशः 'ईय' तथा 'य' प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है जो 'हितकर' अर्थ में हैं। यथा, जीवन कर्म के लिये हितकर जीवनीय, बल के लिये हितकर बल्य आदि।

२. 'उपग' शब्द 'सहायक' के अर्थ में है यथा स्नेहोपग का अर्थ होगा स्नेहकर्म में सहायक। 'जनन' और 'शोधन' शब्दों को पहले स्पष्ट किया जा चुका है। मात्रात्मक (quantitative) क्षयज विकृतियों में जनन तथा गुणात्मक (qualitative) विकृतियों में शोधन का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार 'विरेचनीय' मल को बाहर निकाल कर आशय को रिक्त करने के अर्थ में है। 'निग्रहण' बिलकुल रोक देना तथा 'संग्रहणीय' मात्रा में कमी लाने का द्योतक है। 'संग्रहणीय' के लिये 'सांग्राहिक' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। आजकल इसी अर्थ में 'स्तम्भन' शब्द का प्रयोग होता है यद्यपि उसका प्राचीन मूल अर्थ भिन्न है। 'विरजनीय' शब्द पुरीष तथा मूत्र में विद्यमान विविध रोगों (वर्णविकारों) को दूर करने के अर्थ में है। 'स्थापन' शब्द, जैसा ऊपर कहा गया है, शरीर भावों को प्राकृत स्थिति में रखने तथा चलित होने पर उनको रोक कर पुनः स्थिति में लाने का द्योतक है। लक्षणों को शान्त करने के लिये 'प्रशमन' तथा रोगों को दूर करने के लिये 'घ्न' या 'हर' का प्रयोग हुआ है तथा अर्शोघ्न, कासहर आदि। और 'घ्न' 'हर' में भी सूक्ष्म भेद कर तो 'घ्न' 'हर' की अपेक्षा अधिक उग्रता का द्योतक है। आंगिकविकृतियों (यथा अर्श), जन्तुओं (यथा क्रिमि) आदि को नष्ट करने तथा विष के प्रभाव को नष्ट करने के लिये 'घ्न' का प्रयोग हुआ। सामान्यतः व्याधियों को दूर करने के लिए 'हर' का प्रयोग होता है।

अब महाकषायों के संदर्भ में चक्रपाणि की भ्रान्तियों पर विचार करें।

१. 'जीवनीय' शब्द का अर्थ इस प्रसंग में चक्रपाणि ने 'आयुष्य' किया है जब कि अन्यत्र (सू २६) इसका अर्थसंज्ञा स्थापन के रूप में किया है।[1] ये दोनों ही अर्थ ठीक नहीं हैं। वस्तुतः 'जीवनीय' वह है जो जीवनी शक्ति (vitality) को बढ़ावे। इसका कुल प्रभाव आगे चल कर 'आयुष्य' के रूप में हो यह बात अलग है।

२. 'पुरीषविरजनीय' आदि में 'विरजनीय' शब्द का 'दोषसम्बन्धनिरासा' अर्थ किया है।[2] यद्यपि यह सही है कि दोषसम्बन्ध से ही पुरीष तथा मूत्र में विविध वर्ण उत्पन्न होते हैं तथापि इसे स्पष्ट करना आवश्यक था। रोगोत्पत्ति में पित्त की मुख्य भूमिका होती है, कृष्ण वर्ण में वायु का भी योग होता है। इसका कोई संकेत नहीं है। इसके अतिरिक्त, 'रागनिरास' का किंचित भी उल्लेख नहीं किया जो इसका मुख्यार्थ है। वस्तुतः 'दोषसम्बन्धनिरास' के स्थान पर 'दोषसम्बन्धरागनिरास' ऐसा होना चाहिये।

३. 'स्थापना' महाकषायों की व्याख्या में बड़ी खींचतान की गयी है। 'शोषितस्थान' की व्याख्या की गई है—'जो दुष्ट रक्त की दुष्टि को दूर कर रक्त को प्राकृत स्थिति में लावें।'[1] वस्तुतः इसमें इतनी खींचतान की कोई आवश्यकता नहीं। इसका सीधा अर्थ है कि जो रक्त को स्थिर रखे, बाहर न निकलने दे और यदि निकले तो उसे रोक दे। इसे सामान्य भाषा में 'रक्तरोधक (Haemestatic) कह सकते हैं। ये द्रव्य रक्त की प्राकृत स्कन्दनशक्ति को बनाये रखते हैं और रक्तस्राव की स्थिति में रक्त को रोकने में उपयोगी होते हैं। इसी प्रकार 'वेदनास्थापना' का अर्थ किया है,—'जो वेदना होने पर उसे नष्ट कर शरीर को प्राकृत स्थिति में लावें।'[2] यह भी खींचतान का अर्थ है। इसका वास्तविक अर्थ है जो

---

१. 'जीवनीयशब्देनेहायुष्यत्वमभिप्रेतम्'
'मूर्च्छितस्य संज्ञाजनकत्वेन जीवनीयत्वम्'
'जीवन अभिघातादिमूर्च्छितस्य जीवनः'
(च. सू. २६)

२. पुरीषस्य विरजनीयं दोषसंबन्धनिरासं करोतीति पुरीषविरजनीयः।

१. 'शोषितस्य दुष्टस्य दुष्टिमपहृत्य प्रकृतौ शोणितं स्थापयतीति शोणितस्थापनम्'।

२. 'वेदनायां संभूतायां तां निहत्य शरीरं प्रकृतौ स्थापयतीति वेदनास्थापनम्'।

'वेदना को स्थापित करे।' यहाँ 'वेदना' शब्द 'पीड़ा' के लिये न होकर 'स्पर्शसंज्ञा' (Sensation) के लिए है। यदि किसी कारण से (कुष्ठ, रक्तविकार, वातव्याधि आदि) में स्पर्शसज्ञाराहित्य हो जाय तो उसे पुनः प्राकृत स्थिति में लाना इसका कार्य है। आधुनिक शब्दों में वेदनास्थापन पीड़ा शामक (Analgesic) न होकर 'स्पर्श-संज्ञास्थापन (Aesthetic) है।[3] 'संज्ञास्थापन' में 'संज्ञा' शब्द सामान्य चेतना (general consciousness) के लिये है। संज्ञानाश (बेहोशी) होने पर ये उपयोगी होते हैं। चक्रापाणि ने 'वेदनास्थापन' तथा 'शोषितस्थापन' में जो 'निहत्य' लगाकर व्याख्या की है यदि उसीके अनुसार 'संज्ञास्थापन' की जाय तो अनर्थ हो जाय। 'प्रजास्थापन' वस्तुतः गर्भस्थापन है जिनका इसी रूप में अन्यत्र वर्णन है (च. शा. ८/२०)। ये गर्भपात को रोकते हैं। इसी प्रकार 'वयःस्थापन आयु को स्थिर रखते हैं, ढलने नहीं देते।

४. चक्रपाणि ने 'सन्धानीय' का अर्थ 'संग्रहण' किया है[4] जबकि उसका वस्तुतः अर्थ 'क्षतयोजनीय' होना चाहिये। टूटे या कटे भागों को जोड़ना सन्धानीय है और किसी स्राव को कम करना संग्रहण है।

**सारांश २**

आर्ष ग्रन्थों के वर्णनों का रहस्य हृदयंगम करने के लिये निरन्तर चिन्तन-मनन करते रहना चाहिये तथा टीकाओं का अन्धानुसरण न कर उनकी तर्कसंगत परीक्षा कर हेयोपादेय का निर्णय कर तदनुसार तथ्यों का त्याग या ग्रहण करना चाहिये। टीकाकार की भ्रान्तियों से बच कर मूल आर्षग्रन्थ का आधार लेकर चलना श्रेयस्कर है।

---

३. चरक ने इसी अर्थ में 'वेदना' शब्द का प्रयोग किया है—स्पर्शनेन्द्रियसंस्पर्शः स्पर्शो मानस एव च। द्विविधः सुखदुःखानां वेदनानां प्रवर्त्तकः ॥ (च. शा. १/१३३)

४. 'सन्धानीयः संग्रहणः सामान्येन'—(चक्र., च.सु.४/९)।






# रूद्रवन्ती ! अमरनाथ क्षेत्र में

डा० नित्यानन्द पाठक
जी. ए. एम. एस, एम. एस. एम.
वनौषधि सर्वेक्षण एकक,
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, जम्मू

'सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्रयमिदं जगत'

नागार्जुन ने पारद के लिए यह संकल्प अभिव्यक्त किया है कि रस के सिद्ध कर लेने पर मनुष्य अजर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। यानी रस के सिद्ध होने पर इसमें इतनी शक्ति आ जाती है जिससे वह सब कुछ कर सकने में सक्षम होता है। उसी तरह की अभिव्यक्ति शास्त्रकारों ने रूद्रवन्ती के विषय में प्रकट की है। एक तरफ रसायनाचार्यों ने इसकी दिव्य औषधियों में गणना की है तथा इसका प्रयोग पारद बंधन और लोहवाद में किया है तो दूसरी ओर चिकित्सा-शास्त्रियों ने देह स्थिरता के लिए रसायन प्रयोग में तथा अनेक रोगों के निवारण के लिए औषध के रूप में किया है। इन दोनों बातों में कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई तो तथ्य है ही।

रूद्रवन्ती के विषय में अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी, अलग-अलग सम्मति प्रकट की है। मुख्य रूप से इसकी पहचान, उत्पत्ति स्थान और गुण-कर्म के विषय में निम्न संदर्भ उपलब्ध होते हैं।

**१. पहचान के संदर्भ में**

(१) चण पत्र समं पत्राम्
(२) क्षुपं चैव अम्लकम्
(३) शिशिरे जल विन्दूनाम, स्रवन्तीतिरूदन्तिका
(राजनिघंटु)

**२. उत्पत्ति-स्थान के विषय में**

(1) गिरिकन्दर दुर्गेषु
(2) पुण्य क्षेत्रेषु सर्वेषु
(3) देवतायतनेषु च

**३. गुण-कर्म के लिए**

(1) कटु, तिक्त, उष्ण
(2) क्षय, कृमि, रक्तपित्त, कफ, श्वास, मेह
(3) रसायन
(राज निघंटु)

उत्पत्ति स्थान को ध्यान में रखते हुए अमरनाथ क्षेत्र उन्हीं पुण्य क्षेत्रों में एक है। यहाँ तक पहुंचने के लिये अनेक दुर्गम घाटियों के बीहड़ रास्ते तय करने पड़ते हैं। इसकी तीसरी बात 'देवतायतनेषु च' उपलब्धि के विषय में बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह इंगित करता है कि इसकी उपलब्धि बहुत ही कम है और यह यत्न से ही किसी-किसी को उपलब्ध होती है।

पहचान के विषय में जिन बातों का उल्लेख किया गया है उनमें से प्रमुख हैं :—

(क) चण पत्र समं पत्रम् :—इसके पत्र चने के समान हैं।
(ख) क्षुपं :—यह कोई क्षुप जातीय वनस्पति है।
(ग) अम्लकम् :—यह अम्लरस युक्त होता है।
(घ) शिशिरे :—यह बात समय के विषय में संकेत करती है कि यह वनस्पति शिशिर ऋतु में उत्पन्न होती हैं।
(च) जल विन्दुनाम :—जलविन्दु का होना।
(छ) स्रवन्तीति :—इसके नीचे नमी होने का संकेत करता है।

उपर्युक्त सभी लक्षणों में जल बिन्दु का होना कई और बातों की ओर इशारा करता है :—

1. इस तरह के लक्षण रोमश पत्रों पर अधिक देखे जाते हैं।
2. शिशिर ऋतु में ठंढ इतनी होती है कि जिससे वायु में स्थित वाष्पकण जमकर पत्रों पर एकत्रित हो जाते हैं।
3. रोमश, सघन पत्र एवं हवा में आर्द्रता होने के कारण इसके नीचे का भाग पूरी तरह सूख नहीं पाता है। इसलिये इसके नीचे का भाग गोल होता है।

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त एक वनस्पति प्रकाश में आयी है जिसका उपयोग अनेक संन्यासियों द्वारा रूद्रवन्ती के रूप में किया जाता है। वह वनस्पति अमरनाथ के रास्ते में शेषनाग से कुछ किलोमीटर पूर्व पहाड़ी ढलानों पर देखने को मिलती है। जमीन पर सटी होने के कारण नजदीक से देखने पर यह दिखाई पड़ती है।

**वानस्पतिक विवरण**

वानस्पतिक नाम—Oxytropis thomsoni Benth.

वानस्पतिक कुल—Leguminosae

**सामान्य परिचय**—यह काण्ड रहित पौधा है। पत्रक—धूसर हरिताभ, औसतन संकीर्ण 3/4 ईंच लम्बा। आखिर की तुलना में न अधिक सघन और न अधिक रेशमी। अनुपर्ण—भल्लाकार 1/2 ईंच लम्बा। पुष्पवृंत—सामान्यरूप से ऊपरी शिखरों पर 1/24 से 1/12 ईंच। सहपत्र छोटे रेखाकार। पुष्पकोष—1/4-3/8 ईंच कृष्ण और रेशमी रोयें से ढके होते हैं। दन्त—पक्षाकार नली के निचले लम्बाई के समान। कोष—तिर्यगाकार, वेलनाकार, एक कोष्ठकी। बीज 4 6 कुछ श्वेत रोम से ढके होते हैं। पुष्प—अधिकतर पीत—कभी-कभी बैंगनी रंग के होते हैं।

उत्पत्ति-स्थान एवं बताये गये परिचय बोधक वानस्पतिक लक्षणों के चिह्न इस वनस्पति में अधिक देखने को मिलते हैं। क्योंकि यह एक क्षुप जातीय वनस्पति है। पत्र चने के पत्ते के समान हैं। पत्र रोमश और सघन होने के कारण इस पर जल बिन्दु पड़े रहते हैं। क्योंकि चिकने पत्तों पर जल बिन्दु स्थिर नहीं रह पाता है। इस क्षेत्र के वातावरण में अधिक नमी होने के साथ-साथ ठंढक इतनी अधिक होती है जिसके कारण भूमि पूरी तरह सूख नहीं पाती है, इसलिए इस क्षुप के नीचे आर्द्रता का होना स्वाभाविक ही है। इस क्षेत्र में शिशिर ऋतु में बर्फ पूरी तरह पिघल भी नहीं पाती है जिससे हवा में अधिक जलीयांश होता है। इस वनस्पति में Oxalic acid की मात्रा अधिक होने के कारण यह अम्लता लिए है।

उपर्युक्त उत्पत्ति-स्थान एवं लक्षणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शास्त्रों में बताई गयी रूद्रवन्ती यह हो सकती है। भविष्य में इस वनस्पति के ऊपर गुण-कर्मात्मक अध्ययन किये जायं तो चिकित्सा जगत को कुछ ठोस परिणाम मिल सकते हैं।

**कृतज्ञता ज्ञापन**—लेखक भारतीय चिकित्सा-पद्धति एवं होम्योपैथी की केन्द्रीय अनुसंधान परिषद के निदेशक तथा बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, पटना के निदेशक के प्रति विशेष कृतज्ञ है जिनके आर्थिक सहयोग से इस क्षेत्र में सर्वेक्षण का कार्य किया जा सका है।

## अमृत तुल्य औषधि
# बाल धातुर्भद्रिका
## (एक चिकित्सीय अध्ययन रिपोर्ताज)

वैद्य कृष्ण गोपाल गुप्त,
प्रभारी अधिकारी, राजकीय आयुर्वेद औषधालय बाडी,
(धौलपुर) राज०
भिषगाचार्य, आयुर्वेद-वाचस्पति, M. Sc. A.,
M. A., M. S., A. R. S. H. (London)

आयुर्वेद चिकित्सा-शास्त्र में बाल रोगों के लिये पृथक् से ही एक अंग कौमार भृत्य के नाम से है। बालक प्रकृति की बहुत ही सुन्दर देन है। परन्तु यह मूक प्राणी अपनी व्यथा को शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता है। केवल अभिभावक के द्वारा बताये गये लक्षणों एवं बालक में पाये जाने वाले परिवर्तनों को देख कर ही चिकित्सक को निदान एवं चिकित्सा करनी होती है।

प्रायः शिशुओं में ज्वर, कास, छर्दि, ज्वरातिसार श्वसनक ज्वर आदि व्याधियाँ सामान्य रूप से होती रहती हैं। मैं राजकीय औषधालय में चिकित्साधिकारी के पद पर कार्यरत हूं एवं इस रूप में मुझे हजारों शिशु रोगियों को देखने-समझने का अवसर प्राप्त हुआ है। शिशुओं के सामान्य रोगों में मुझे भैषज्य रत्नावली के अन्तर्गत प्राप्त योग बाल चातुर्भद्रिका के प्रयोग करने से काफी अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ है।

बाल चातुर्भद्रिका के विषय में भैषज्य रत्नावली में निम्न प्रकार वर्णन है—

**घनकृष्णारुणाश्रृङ्गी चूर्णं क्षौद्रेण सयुतम्।**
**शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं श्वासकास वमीहरम्॥**

(भैषज्य रत्नावली बाल रोगाधिकार)-

मोथा, पिंप्पली, अतीस, काकड़ासींगी। इनके चूर्णों को सुपरिमाण में मिलाकर मधु के साथ सेवन कराने से शिशुओं के ज्वरातिसार, श्वास, कास तथा छर्दि आदि रोग नष्ट होते हैं।

यदि बाल चातुर्भद्रिका में प्रयुक्त प्रत्येक द्रव्य का पृथक् पृथक् गुणों की विवेचना की जाये तो भाव प्रकाश निघण्टु के अनुसार निम्न व्याख्या का वर्णन प्राप्त होता है।

नागरमोथा (Cyperus Rotondus)

**मुस्तकं न स्त्रियां मुस्तं त्रिषु वारिद नामकम्।**
**कुरु विन्दोऽपरो भद्र मुस्तो नागर मुस्तकः॥**
**मुस्तं हिमं कटु ग्राहि तिक्तं दीपन पाचनम्।**
**कषायं कफ पित्तास्यतृड़ ज्वररुचि जन्तुजित्॥**
**अनूपदेशे यज्जातं मुस्तकं तत् प्रशस्यते।**
**तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं नरं नागर मुस्तकम्।**

अर्थात्—मुस्तक, मुस्त और जितने भी मेघ के पर्याय हैं अर्थात् वालेय, परिपेलव, कुरुविन्द, अम्बुवाह, अम्बुभृत, तडित्वान् वारिवाह, वलाहक तोयद, तोयधर इत्यादि सभी नागरमोथा के नाम हैं।

यह चरपरा, शीतल, ग्राही, कटु, दीपन, पाचन, कषाय और कफ पित्त, रुधिर विकार, तृषा, ज्वर, अरुचि, तथा कृमिनाशक है। जो मोथा आनूप देश में उत्पन्न होता है उन सब में भी नागरमोथा उत्तम है।

पिप्पली—(Piper Longum)

**पिप्पली मागधी कृष्णा वैदेही चपला कणा।**
**उपकुल्योषणा शौण्डी कोलास्यान्ती क्षणतण्डुला॥**
**पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाका रसायनी।**
**अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्म हरीलघु॥**
**पिप्पली रेचनी हन्ति श्वासकासोदर ज्वरान्।**
**कुष्ठप्रमेह गुल्मार्शः प्लीह शूलाम मारुतान्।**
**आर्द्रा कफ प्रदा स्निग्धा शीतला मधुरा गुरुः।**
**पित्त प्रशमनी सातु शुल्का पित्तप्रकोपनी।**
**पिप्पली मधु संयुक्ता मेदःकफ विनाशनी।**
**श्वास कास ज्वर हरी वृ या मेधाग्निवर्धनी॥**
**जीर्ण ज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुड़ पिप्पली:**
**कासा जीर्णरुचिश्वास हृत्पाण्डु कृमि रोगनुत्॥**
**द्विगुणः पिप्पली चूर्णाद् गुडोऽत्र भिषजां मतः।**

**अर्थात्**—पिप्पली, मागधी, कृष्णा, वैदेही, चपला, कणा, उपकुल्या, ऊष्णा, शौण्डी, कोला, तीक्ष्ण तण्डुला आदि ये पिप्पली के संस्कृत नाम है।

**गुण—**

पिप्पली अग्नि को तीव्र करने वाली वीर्य को बढ़ाने वाली, पाक में मधुर, रसायन, शीतवीर्य, चरपरी, वात तथा कफ को बढ़ाने वाली, हल्की रेचक, श्वास, कास, उदर, ज्वर, कोढ़, प्रमेह, गुल्म, बवासीर, प्लीहा, फूल तथा आमवात को नष्ट करने वाली है।

**हरीपीपल**—कफ कारक, स्निग्ध, शीतल भारी, मधुर एवं पित्तशामक है। यदि वह सूख जाती है तो पित्तकारक हो जाती है। मधु के साथ पीपल खाने से उदर रोग मेद तथा कफ को हरने वाली है और वीर्य-वर्धक हो जाती है। बुद्धि और अग्नि को बढ़ाती है तथा श्वास, कास एवं ज्वर को हरने वाली है। जीर्ण ज्वर में तथा मन्दाग्नि में पीपल गुड़ के साथ खाने से लाभकारी है। गुड़ के साथ खाने से ही कास-अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदय के रोग, पाण्डुरोग एवं कृमि रोग नष्ट हो जाते हैं। पिप्पली के साथ गुड़ की मात्रा पीपल से दुगनी होनी चाहिए।

**अतीस**—(Aconitum Heterophyllum) :—

**विषात्वतिविषा विश्वाशृंगी प्रतिविषारुणा ।**
**शुक्लकन्दा चोपविषा भङ्गुरा घुण वल्लभा ॥**
**विषासोष्णा कटुस्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत् ।**
**कफ पित्तातिसारामविषकासवमिंक्रिमीन् ॥**

**नाम**—विषा, अतिविषा, विश्वा, शृंगी, प्रतिविषा, अरुणा, शुक्लकन्दा, उपविषा, भगुरा, घुणवल्लभा, ये अतीस के सस्कृत नाम हैं।

**गुण**—अतीस, गर्म चरपरा, कडुवा, पाचन, उदराग्नि, को प्रदीप्त करने वाली, तथा कफ-पित्त, अतिसार, आम-विष, कास वमन, और कृमि रोग नाशक है।

**कर्कटशृंगी** (Gymenema sylvestre)—

**मेषशृंगी विषाणां स्यान्मेष वल्लयाज शृंगिका ।**
**मेषशृंगी रसे तिक्ता वातला श्वास कास हृत् ।**
**रुक्षा पाके कटुतिक्ता व्रण श्लेष्माक्षि शूलनुत् ॥**
**मेषशृंगी फलं तिक्तं कुष्ठमेहकफप्रणुत् ॥**
**दीपनं स्त्रंसन कास कृमिव्रण विषापहम् ॥**

**अर्थात्**—मेषशृंगी, विषाणी, मेषवल्ली अजशृंगिका, ये मेढ़ाशृंगी या कर्कटशृंगी के संस्कृत नाम हैं—

**गुण**—कर्कटशृंगी रस में कड़वी वातकारक रुखी पाक में चरपरी तथा श्वास-कास व्रण कफ तथा नेत्र शूल को नष्ट करती है।

इस प्रकार से हमने देखा कि नागरमोथा, पिप्पली, अतीस एवं काकड़ाशृंगी ये चारो पृथक-पृथक साधारण परन्तु महत्वपूर्ण औषध हैं जो संयोग के कारण पृथक-पृथक गुणयुक्त होने के बाद भी एक साथ मिल कर शिशुओं के लिये अमृत तुल्य औषधि योग बन जाती है।

मैंने इस औषधि का प्रयोग १०६२ बालकों पर किया जिसका परिणाम आश्चर्यजनक रूप से लाभप्रद मिला जो विभिन्न तालिकाओं के अवलोकन से ज्ञात हो सकता है। साधारण ज्वर कास में (कफयुक्त) मैंने इस औषधि का प्रयोग किया जो निम्न तालिका से स्पष्ट होगा—

## तालिका नं०-१

| वय | बालक | बालिका | योग | लाभ | प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|---|
| १ माह से १ वर्ष तक | ५४ | ५६ | ११० | ९९ | ९०% |
| १ वर्ष से १½ वर्ष तक | ३६ | ४४ | ८० | ६५ | ८२% लगभग |
| १½ वर्ष से २ वर्ष तक | २४ | ३१ | ५७ | ५० | ८७% लगभग |
| | | | २४७ | २३४ | |

इस प्रकार २४७ शिशुओं में से २२४ शिशुओं को वयानुसार १ रत्ती से ८ रत्ती तक की मात्रा में औषधि प्रयोग कराया गया एवं लाभ प्राप्त किया। शेष २३ शिशुओं को आंशिक लाभ प्राप्त हुआ। औषधि का प्रयोग मधु के साथ एवं छोटे शिशुओं में मां के दूध से कराया गया। औषधि का प्रयोग दिन में तीन बार कराया गया एवं रोगी शिशु को २ दिन से लेकर ५ दिन तक अवधि में लाभ हुआ और पूर्ण लाभ हुआ।

**ज्वरातिसार पर प्रयोग**

बाल चातुर्भद्रिका का ज्वरातिसार से पीड़ित शिशुओं पर किया गया। ये शिशु प्रायः १००°c से १०३°c तक ज्वर तथा साथ में हरे-पीले एवं आमयुक्त विभिन्न रोगियों को अतिसार था। अतिसार में औषध प्रयोग प्रायः मां के दूध से अथवा तुलसी स्वरस या विल्लपत्र स्वरस के साथ किया गया। साथ में उष्णोदक भी पिलाया गया एवं आशातीत लाभ मिला जो निम्न तालिका से स्पष्ट है—

## तालिका नं० २

| वयानुसार | बालक | बालिका | योग | लाभ | प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|---|
| १ माह से एक वर्ष तक | ३९ | ५१ | ९० | ९० | शत प्रतिशत |
| एक वर्ष से १½ वर्ष तक | ३५ | ४५ | ८० | ६० | ७५% |
| १½ वर्ष से २ वर्ष तक | ५० | ५५ | १०५ | ८३ | ८०% |
| | | | २७५ | २३३ | |

इस प्रकार २७५ शिशुओं में से २३३ शिशुओं को लाभ प्राप्त हुआ एवं ४२ बच्चों को भी आंशिक लाभ हुआ। इस तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि यह औषधि ज्वरातिसार में अधिक गुणकारी है। १ मास से एक वर्ष तक की आयु में तो रोगी शिशु को शतप्रतिशत लाभ मिला। आमदोष का पाचन हुआ एवं ज्वर निर्मूल हो गया।

**कास रोग में प्रयोग**

शिशुओं की खांसी बड़ी कष्टदायक होती है। बच्चे का मुंह खाँसते-खाँसते लाल हो जाता है। कफ अटका-सा महसूस होता है। बच्चा रोता है। और सारा शरीर ऐंठ जाता है। ऐसी स्थिति में बाल चातुर्भद्रिका का प्रयोग राम-वाण सिद्ध हुआ है। प्रथम मात्रा से ही बच्चे की खाँसी के वेग कम हो गये एवं ६ से ८ मात्रा में अर्थात् २ से तीन दिन में बच्चा अच्छी तरह से श्वास लेने लग गया। रात को व दिन में भी बच्चा सोने लग गया। और ७ दिन में शिशु पूर्व स्वस्थ हो गया। मैंने इस औषधि का प्रयोग जितने शिशुओं पर किया वह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है—

## तालिका नं० ३

| आयु के अनुसार | बालक | बालिका | योग | लाभ | प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|---|
| ३ माह से एक वर्ष तक | १०१ | ४९ | १५० | १२० | ८०% |
| १ वर्ष से १½ वर्ष तक | ८४ | ४६ | १३० | १२४ | ८०% |
| १½ वर्ष से २ वर्ष तक | १५ | २५ | ४० | २० | ५०% |
| | | | ३२० | २६४ | |

इस प्रकार हमने देखा कि ३२० रोगियों में से २७५ रोगियों को पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ और शेष ५६ रोगियों को आंशिक लाभ प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस साधारण से लगने वाले योग से आशा से अधिक लाभ प्राप्त हुआ। कास में रोगी शिशु को पूर्ण लाभ तुरत ही हो जाता है। कफज कास एवं कुकर कास में भी रोगी को पूर्णलाभ प्राप्त हुआ। कुकुर कास में औषध का प्रयोग तुलसी स्वरस एवं अदरक स्वरस एवं मधु के साथ २ से ८ रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार कराया गया।

**छर्दि में प्रयोग**

छर्दि प्रायः शिशुओं को अपच के कारण होती है अथवा कास के भयंकर तम वेग के कारण होती है। इस औषधालय में प्रायः छर्दि के रोगी सर्दी लगने के कारण अथवा अपच के कारण ही आये। जिसमें सर्वप्रथम रोगी को जन्मघुटी देकर उदर का शोधन कराया गया। उसके बाद बाल चातुर्भद्रिका की २ से ६ रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार प्रयोग कराया गया। अनुपम के रूप में मधु का प्रयोग कराया गया। और यह देख कर आश्चर्य हुआ कि प्रायः प्रत्येक रोगी को प्रथम दिन अथवा दूसरे दिन ही लाभ प्राप्त हुआ। दिन में तीन चार बार उष्णोदक का भी सेवन कराया गया। एक शिशु को दूध को फाड़कर उसका केवल जल ही पिलाया गया। काफी अच्छा लाभ प्राप्त हुआ। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है—

इस प्रकार २२० रोगियों में से २०८ रोगियों को लाभ प्राप्त हुआ। और एक से दो दिन में ही लाभ हुआ।

इस प्रकार से कुल १०६२ शिशु रोगियों के विभिन्न रोगों पर केवल बाल चातुर्भद्रिका का प्रयोग किया गया एवं ९२९ रोगियों पर पूर्ण लाभ प्राप्त किया गया। साधारण से लगने वाले इस औषधि योग से आशातीत लाभ मिला। मैं समझता हूं इससे अच्छा परिणाम किसी भी औषध योग का स्वतन्त्र रूप से नहीं आ सकता है। औषधि रामबाण सिद्ध हुई है।

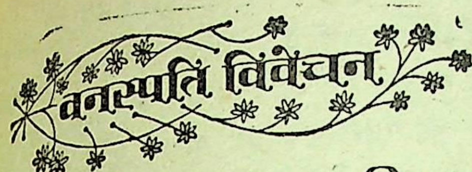
मेरा आयुर्वेद के सभी चिकित्सकों से अनुरोध है, इस प्रकार से स्वतन्त्र एक योग की परीक्षा की जाय तो जनता में आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास पैदा किया जा सकता है और स्वयं चिकित्सक यश प्राप्त कर सकता है। आज इस ऐन्टीवायटिक के युग में चिकित्सक जहां अबोध बालकों को औषधि रूप में भयंकर विष का प्रयोग करा रहे हैं वहां पर इस तरह के योग बच्चों को अमृततुल्य सिद्ध हो रहे हैं। सिर्फ आवश्यकता श्रद्धा व विश्वास के साथ अनुपान-भेद से आवश्यकतानुसार औषधि का प्रयोग कराने की है।

आशा है इस प्रायोगिक अध्ययन से चिकित्सक समाज का कुछ भला होगा और नन्हें राष्ट्र के भावी कर्णधारों को धीमे जहर (ऐन्टीवायटिक औषधियों) के प्रयोग से बचाना सम्भव होगा। तभी मेरा प्रयास सफल माना जायेगा।

यह नितान्त सत्य है कि शीघ्र लाभ की आशा से कभी भयंकर परिणाम निकलते हैं इसलिये चिकित्सक के धैर्य की भावना बनानी चाहिए और शास्त्रों का मन्थन कर इस प्रकार के योग निकालकर प्रयोग करने चाहिए।

**तालिका नं० ४**

| वयानुसार | बालक | बालिका | योग | लाभ | प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|---|
| ३ माह से १ वर्ष तक | ४६ | ५४ | १०० | १०० | १००% |
| १ वर्ष से १½ वर्ष तक | ३४ | ३६ | ८० | ७८ | ९८½% |
| १½ वर्ष से २ वर्ष तक | १८ | २२ | ४० | ३० | ७५% |
| | | | २२० | २०८ | |




# हरीत की

डा० डी० एन० द्विवेदी
आयुर्वेदाचार्य (बी० ए०, एम० एस०)
मेडिकल आफिसर इन्चार्ज, आ० चिकित्सालय
बमस्यूं, अल्मोड़ा

**प्रस्तावना**

आयुर्वेद चिकित्सा में त्रिफला का श्रेष्ठ स्थान है। उसमें हरीतकी का प्रमुख स्थान है।

**त्रिफला के प्रकार**

महती त्रिफला :—हरड़, बहेड़ा, आंवला

स्वल्प त्रिफला :—गम्भारी, खजूर (किसी के मत से द्राक्षा) तथा फालसा के फल ॥

भाव प्रकाश मत से हरड़, बहेड़ा, आंवला तीनों को समप्रमाण में ग्रहण किया है जबकि शार्ङ्गधर में हरड़ एक, बहेड़े दो, आंवलों को चार मिलाकर ग्रहण किया है ! सुश्रुत ने तीनों को समप्रमाण में लेने को कहा है !

हरड़ : Terminalia Chebula.
बहेड़ा : Terminalia Belerica.
आंवला : Phyllanthus Emblica.

**हरड़**

**अवतरण क्रम**

अश्विनी कुमारों ने एक बार भगवान दक्ष प्रजापति से हरड़ का अवतरण पूछने पर बताया : पूर्वकाल में इन्द्र के अमृतपान करते समय एक बूंद पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस स्थान से ही सात प्रकार की दिव्य गुणवाली हरीतकी उत्पन्न हुई ॥

**नाम**

हरीतकी (हरी), अभया (भयरहित), पथ्या (हित-कारिणी), कायस्था (शरीरधारक), पूतना (पवित्र-कारिणी), अमृता (अमृततुल्य), हैमवती (हिमालय पर होने वाली), अव्यथा (व्यथानाशक), चेतकी (चेतन करने वाली), श्रेयसी (श्रेष्ठ), शिवा (कल्याणकारी) व्यःस्था (आयु-स्थापक), विजय (रोगों को जीतने वाली), जीवंती (जीवनदायिनी) रोहिणी (रोपणी)—ये सब हरड़ के संस्कृत नाम हैं !

**भाषाभेद से नाम**

हिन्दी—हरड़, हर्र, हर्रे। बंगला—हर्त्तकी। को०—कोशाल।
मराठी—हर्त्तकी। गु०—हरड़े। क०—अजिलेय। तै०—करक्काय।
ता०—कड़के। द्र० कलरा। फा० हलैले, कलां-जीरे, जवी अस्कर।
अरबी—एहलीलज ले०-Terminalia Chebula।

**विशेष**

स्वाद—कषैला। हानिप्रद—यकृत को। हानिनिवारक वस्तु-शहद, बादाम का तेल। अभाव—काबली हरड़॥

**हरड़ की जातियाँ**

विजया रोहणी चैव पूतना चामृताभया।
जीवन्ती चेतकी चेति पथ्यायाः सात जातयः॥

१. विजया २. रोहिणी ३. पूतना ४. अमृता ५. अभया ६. जीवन्ती ७. चेतकी : ये हरीतकी की सात जातियां हैं॥

**जाति-भेद से लक्षण**

१. विजया :—लौकी की तरह गोल।
२. रोहिणी :—साधारण गोलाई लिये हो।
३. पूतना :—बड़ी गुठली हो परन्तु छोटी एवं कम गूदा हो।
४. अमृता :—अधिक गूदा वाली।
५. अभया :—पांच रेखाओं से युक्त।
६. जीवन्ती :—सोने की तरह पीले रंग की।
७. चेतकी :—तीन रेखाओं से युक्त।

**जाति-भेद से लक्षण**

विजया हरड़ सम्पूर्ण रोगों में उत्तम है। रोहिणी व्रणों के भरने में उत्तम है। लेप के लिये पूतना और शरीर शोधनार्थ अमृता हितकारी है। अभया नेत्रों के लिये प्रशस्त है, जीवन्ती सब रोगों को हरने वाली है। चूर्ण बनाने में चेतकी हरड़ प्रशस्त है।

**विशेष** :—चेतकी हरड़ दो प्रकार की होती है :—

कृष्ण, श्वेत—सफेद प्रायः छह अंगुल लम्बी होती है और काली एक अंगुल लम्बी होती है ! ये हरड़ चार प्रकारों से अपने प्रभाव द्वारा दस्त लाती हैं ! कोई हरड़ खाने से, कोई सूंघने से, कोई स्पर्श मात्र से और कोई देखने मात्र से ही अपने-अपने प्रभाव द्वारा रेचन (दस्त) कराती है। चेतकी हरड़ के वृक्ष की छाया में जाने वाले मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग आदि जीव शीघ्र ही मलत्याग कर देते हैं ! उत्तम चेतकी हरड़ को हाथ में जब मनुष्य धारण करते हैं तब वह अपने प्रभाव से बड़े वेग के साथ दस्त लाती है। अतः राजा, सुकुमार पुरुष दुर्बल व औषधि खाने से द्वेष रखने वाले पुरुषों को चेतकी हरड़ हितकारी वा सुखपूर्वक दस्त लाने वाली है। इन सातों किस्म की हरीतकी में विजया हरड़ सर्वोत्तम है, क्योंकि यह सब जगह प्राप्त होती है, सब रोगों में हितकारी है और इसका सुखपूर्वक प्रयोग भी किया जा सकता है।

**परिचय**

हरड़ के वृक्ष अधिकतर जाङ्गल प्रदेशों में तथा ५००० फुट की ऊंचाई तक के पार्वत्य प्रदेशों में पाये जाते हैं। इसके पत्ते महुवा के पत्तों से मिलते-जुलते किन्तु पतले व लम्बे होते हैं। **पत्रोदर**—चिकना, हरित वर्ण का पत्र पृष्ठ हल्का पीलापन लिये हुए कोमल होता है। किनारे तरंगायित होते हैं। बीच-बीच में नसें उभरी हुई होती हैं। पत्रवृन्त ½ से १ इंच लम्बा, प्रारम्भ में मोटा व अन्त भाग कुछ पतला होता है। पत्ते लम्बा में ६ से १० इंच तक, चौड़ाई में ½ के ३/२ इंच तक व नोकदार होते हैं। तना मजबूत व सारवान होता है। ऊंचाई पेड़ों की १०० से २७५ फुट तक होती है। **पुष्पकाल**—वसन्त के आते ही पतझड़ होकर नये हरे कोमल पत्ते निकल आते हैं। शिशिर व हेमन्त ऋतु में मंजरी आने लगती है। मंजरियों से एक भीनी गन्ध निकला करती है। कुछ दिनों के बाद इसमें नई कलियाँ निकल जाती हैं। कार्तिक में फल स्पष्ट दिखते हैं। बैशाख में काम लेने योग्य हो जाते हैं। **द्वितीय जाति के वृक्ष**—ये वृक्ष वसन्तागम पर पुष्पित होते हैं, तथा ग्रीष्मागम तक पुष्ट हो जाते हैं। इस समय फलों से लदे हुए वृक्ष की शोभा अपूर्व होती है। **फल**—कच्चे रहने पर हरे और स्वाद में अधिक कसैले कुछ कटु होते हैं। पक जाने पर इनका रंग सुर्खीमायल पीलापन लिये हुए होता है। **स्थान**—जंगल, पार्वत्य वा समतल भूमि में सर्वत्र होता है। विशेषतया उस भूमि में अधिक होता है, जिसमें चूने का भाग अधिक हो वा कुछ रेतीला हो। यू० पी० के जांगल क्षेत्र में जो लाइन कि नेपाल माला, पीलीभीत होती हुई गोरखपुर इत्यादि प्रदेशों को जाती है, अधिक पाये जाते हैं। माला क्षेत्र के मुई ब्रांच में इसके पेड़ अत्यधिक परिमाण में हैं तथा हर किस्म के हैं, एक-एक छटाक वजन तक की हरीतकी यहां मिलती है। प्राचीन निघंटुकारों के मत से सातों किस्म की हरीतकी भिन्न-भिन्न प्रदेशों में पाई जाती है। **यथा**—विन्ध्याचल पर्वत पर विजया, हिमालय में चेतकी, सिन्ध में पूतना, रोहिणी व विजया झांसी के पास, त्रिठूर, चम्पारन में अभया और सूरत में जीवन्ती नामक हरड़ पैदा होती थी और प्रशस्त मानी जाती थी।

**संहिताओं में मतभेद :**

निघंटुकारों ने हरीतकी सात प्रकार की लिखी है। धन्वन्तरीय निघंटु इन बातों को स्वीकार नहीं करता है !

संहिताओं में चरक और सुश्रुत दो प्रमुख हैं। गुणभेद से दोनों एक हैं। सुश्रुत ने विरेचक फलों में हरीतकी का पाठ दिया है। चरक ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, कासघ्न, अर्शोघ्न और पजास्थापक वर्ग में पाठ किया हैं। सात भेद सर्वत्र पाया जाता है। किन्तु पाश्चात्य निघंटुकारों की सम्मतियाँ कुछ भिन्न-भिन्न है जिसका कारण सातों किस्म की हरीतकियों का अप्राप्य हो जाना ही है। भाव मिश्र के समय तक भी २ तोला वजन तक की हरीतकी उत्कृष्ट मानकर औषधार्थ प्रयुक्त होती थी किन्तु अब आधा तोला से १ तोला वजन की साधारण हरड़ पाई जाती है' आजकल अधिकतर जो हरड़ पाई जाती है वह छोटी काली 'जंगीहरड़' के नाल से प्रसिद्ध है। भावमिश्र की 'कृष्णा त्वेकांगुला मता' से बिल्कुल मिलती-जुलती है।

अतः 'चूर्णार्थे चेतकी शस्ता' के अनुसार वैद्यगण इसे ही अधिकतर प्रयोग में लाते हैं।

### हरीतकी के गुण

हरीतकी में लवण रस के अतिरिक्त पांचों रस (मधुर, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल) पाये जाते हैं, विशेषतया कसैली है। यह रुखी-गरम, उदराग्निवर्द्धक, बुद्धि को हितकारी, मधुर पाक वाली, आयु को बढ़ाने वाली नेत्रों को हितकारी, हल्की आयुवर्द्धक, शरीर को पुष्ट करने वाली और वायु को शांत करने वाली है। यह श्वास, कास, प्रमेह, बवासीर, कुष्ठ, सूजन, उदररोग, क्रिमिरोग, स्वर-भंग, ग्रहणी विबंध, विषम ज्वर, गुल्म, आध्मान, व्रण, वमन, हिचकी, कण्ठ और हृदय के रोग कामला, शूल, आनाह, प्लीहा व यकृत के रोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात रोगों को दूर करती है।

हरीतकी मधुरतिक्त और कसैली होने से पित्त को कटुतिक्त व कसैली होने से कफ को और अम्ल होने से वात को हरने वाली है। इस प्रकार यह भी दोषहर है।

शंका—कटु व अम्ल होने से पित्त को तथा कटु व कसैली होने से वात को प्रकुपित करना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होता है। प्रजापति द्वारा शंका का निवारण हो जाता है—प्रभाव ही दोष दूर करने के लिये पर्याप्त हैं अतः दोषहर स्वभाव होने के कारण यह दोष-प्रकोप नहीं करती है।

### उदाहरण

जैसे आमला और बड़हल यह दोनों आशयभेद से साम्यावस्था में रहकर भी गुणों के आशयभेद से भिन्न-भिन्न कार्य (आमला त्रिदोषहर व बड़हल दोष-प्रकोपक) करते है इसी प्रकार हरड़ में उपर्युक्त रस रह कर भी दोष-प्रकोपक नहीं होते हैं।

### विशेष

हरीतकी की मज्जा में मधुर रस, इसकी नाड़ियों में खट्टा रस, वृन्त में तिक्त (कटुवा) रस, छाल में कटु रस और गुठली में कसैला-सा होता है।

### उत्तम हरड़

जो हरड़ नई, चिकनी, छनी, गोल तथा भारी हो और जल में डालने से डूब जावे वह उत्तम हरड़ व गुण-कारक होती है।

### विशेष गुण

चबा कर खाई हरड़ अग्नि को बढ़ाती है पीस कर खाई हुई साफ दस्त लाती है। उबाल कर खाई गई दस्त बन्द करती है और भून कर खाई गई तीनों दोषों को नष्ट करती है भोजन के साथ खाई हुई हरड़ बुद्धि, बल तथा इन्द्रियों को प्रसन्न करती है वात, पित्त, कफ, को नष्ट करती है, मलमूत्रादि विकारों को निकालने वाली होती है। भोजन के अन्त में खाई हुई हरड़ मिथ्या अन्नपान से होने वाले वातपित्त व कफ के सब विकारों को शीघ्र दूर करती है।

### ऋतुओं में हरड़ सेवन-विधि

जो रसायनार्थ हरड़ का सेवन करना चाहते हों उन्हें वर्षा ऋतु में नमक से, शरत में शक्कर से, हेमन्त में सोंठ से, शिशिर में पीपल के साथ, वसन्त में मधु के साथ और ग्रीष्म में गुड़ के साथ हरड़ का सेवन करना चाहिये।

### दोष-भेद से

कफदोष में नमक के साथ पित्त में शक्कर के साथ वात विकारों में घृत के साथ एवं गुड़ के साथ लेने पर सब दोषों को दूर करती है।

### हरड़ सेवन के अयोग्य

जो मनुष्य मार्ग चलने से थका हो, बलरहित हो, रुक्ष हो, कृश हो, जो लघन करने से कृश हो गया हो, अधिक पित्त वाला, जिसका रक्त निकाला गया हो, गर्भिणी स्त्री इनको हरड़ का सेवन नहीं करना चाहिए।

### पाश्चात्य वर्णन

हरड़ के अन्दर ४५% टैनिक एसिड इसके अतिरिक्त गैलिक एसिड कुछ भूरे रंग का पदार्थ और म्यूसिलेज अधिक रहते हैं। इसमें चेबुलेनिक एसिड प्रधान वस्तु है। जो इसके पानी में क्वथित होते वक्त टैनिक और गैलिक एसिड में परिणित हो जाती है।

**गुण, प्रयोग**

रेचक, कषाय (Astringent) और रसायन है।

डा० एन्सली—मुख और कण्ठ प्रदेश की श्लेष्मकला के क्षत (Aphthal) में हरीतकी बहुत उपयुक्त है।

डा० वारिंग—५ ६ हरीतकी के खाने के ४.५ दस्त आकर उदर रोग में बड़ा उपकार मिलता है।

**मात्रा**—क्वाथ २/२' से ५ तो०

चूर्ण=१ से ४ मासे

त्वकचूर्ण=१ से ६ मासे तक

---

# अम्लपित्त रोग : निदान एवं चिकित्सा

डा० रघुनन्दन शर्मा,
बी.एस.सी., बी.ए एम.एम.एस., चिकित्साधिकारी,
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, धर्मपुर, देहरादून

परिचय—इस रोग का वर्णन मुख्य रूप से माधव निदान में मिलता है। वृहत्त्रयी में अम्लपित्त नाम से पृथक रूप से कोई अध्याय नहीं मिलता है। न्यूनाधिक रूप में काश्यप संहिता में भी इस रोग का वर्णन मिलता है। इस रोग की उत्पत्ति के सन्दर्भ में वर्णन करते हुये काश्यप संहिता में लिखा है कि जिस प्रकार दही के पात्र में से दही निकाल लेने पर उसी पात्र में फिर दुग्ध डाला जाय तो पूर्व में रहे हुये दही के अंश मात्र से सारा दुग्ध दही में परिवर्तित हो जाता है। ठीक इसी प्रकार पित्त-संचय की स्थिति में रोगी जिह्वा के वशीभूत होकर जब अम्ल, गुरु, विदाही आदि द्रव्यों का सेवन करता है तो परिणामस्वरूप, खाया हुआ अन्न शुक्त भाव को प्राप्त कर लेता है। इसी से उत्पन्न अवस्था को अम्लपित्त नाम से जाना जाता है।

महर्षि चरक ने चरक संहिता के ग्रहणी प्रकरण में अजीर्ण की अवस्था का वर्णन करते समय अम्ल पित्त की उत्पत्ति पर समुचित प्रकाश डाला है। अभोजन, अति-भोजन, विषमाशन प्रभृति कारणों से अग्नि दुष्ट हो जाती है। और

दुष्यत्यग्निः सदुष्टोऽन्नं न तत्पचति लध्वपि।
अपच्यमानं शुक्तत्वं यात्यन्नं विषतां च तत्॥
च. चि. १५/४३

इस प्रकार उत्पन्न यह अन्न विष पित्त के साथ मिलकर अन्य पित्त रोगों के साथ अम्ल पित्त की उत्पत्ति का भी कारण बनता है।

घोरं अन्न विषं च तत्।
संसृज्य मानं पित्तेन दाहं तृष्णां मुखामयान्।
जनयत्यम्लपित्तं च पित्तजांश्चापरान् गदान्॥
च. चि. १५/४६

निदान—अम्ल पित्त निम्नलिखित कारणों के द्वारा उत्पन्न हो सकता है।

१. आहार—विरुद्ध भोजन (प्रकृति विरुद्ध अथवा काल विरुद्ध), विकृत भोजन, अध्यशन, अम्ल और विदाही द्रव्यों का अधिक प्रयोग, मद्य का प्रयोग, गुरु और अभिष्यन्दि पदार्थ जैसे दही, अत्युष्ण, स्निग्ध एवं मधुर पदार्थों का अधिक प्रयोग तथा पित्त प्रकोपक समस्त आहार का सेवन अम्ल पित्त रोग को उत्पन्न कर सकता है।

२. विहार—उपवास, अधिक रात्रि जागरण, भोजन के तुरत बाद नदी या तालाब में स्नान, भोजन के पश्चात् अधिक जल पीना, भोजन के पश्चात् अधिक दिवा स्वप्न, मल-मूत्र आदि के वेगों का धारण करना, मानसिक विकार, कतिपय औषधियां, जैसे मल्ल, ताम्र आदि के योगों का अधिक सेवन।

सम्प्राप्ति—निदान की उपस्थिति होने पर अग्नि मन्द हो जाती है। उसके पश्चात् भी पित्त प्रकोपक आहार-विहार के सेवन से पित्त विदग्धावस्था को प्राप्त होकर अन्य दोषों के सहयोग से अम्लपित्त को उत्पन्न करता है।

भेद—अम्ल पित्त दो प्रकार का होता है।

१. परतंत्र अम्ल पित्त।
२. स्वतंत्र अम्ल पित्त।

किसी व्याधि, जैसे ग्रहणी, अजीर्ण आदि के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होने वाले अम्ल पित्त को परतन्त्र कहते हैं। तथा स्वयं अपने कारणों द्वारा उत्पन्न अम्ल पित्त स्वतंत्र कहलाता है। स्वतंत्र अम्लपित्त में मानसिक कारण प्रमुख होते हैं।

मार्गानुसार भेद—मार्गों के अनुसार अचार्यों ने अम्ल पित्त को तीन प्रकार का बताया है।

१. अधोग, २. ऊर्ध्वग, ३. उभयग,

**लक्षण**

**सामान्य लक्षण**—अम्लपित्त के सामान्य लक्षणों में अविपाक, क्लम उत्क्लेश, तिक्ताम्लोद्गार, गौरव, हृत्कंठ-

दाह और अरुचि प्रमुख हैं। इनमें से भी तिक्ताम्लोद्गार उत्क्लेश और हृत्कंठदाह अधिकतम रोगियों में पाये जाते हैं।

इन लक्षणों के अतिरिक्त विड्भेद, शिरोवेदना, आध्मान, अंगसाद और लोम हर्ष आदि लक्षण भी पाये जाते हैं।

**भेदानुसार लक्षण**

**अधोग अम्लपित्त**—तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम एवं मोह तथा गुद्मार्ग द्वारा दूषित पित्त का त्याग होता है। कभी-कभी हृल्लास कोठ अग्निमांद्य रोमहर्ष पसीना एवं अंगों में पीलापन भी होता है।

**ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त**—इसमें वमन मुख्य लक्षण होता है। हरी, पीली, नीली, काली, अत्यन्त लाल, अत्यन्त खट्टी, मांस के धोवन की तरह अत्यन्त लसदार, स्वच्छ, कफमिश्रित तथा अनेक प्रकार के रस से युक्त वमन होता है। तिक्ताम्ल रसयुक्त वमन एवं उद्गार भोजन के पहले या विपाक काल में अथवा पचने के बाद होते हैं।

कफ का अनुबन्ध होने के कारण ऊर्ध्वग अम्ल पित्त की अवस्था में कण्डु, मण्डल, शरीर में पिडकाओं की उत्पत्ति, भीषण अरुचि आदि लक्षण होते हैं।

**उभयग अम्लपित्त**—इसमें उपर्युक्त दोनों के मिले-जुले लक्षण पाये जाते हैं।

**दोषानुसार लक्षण**—अम्ल पित्त में वात और कफ के संसर्ग से कुछ विशेष लक्षण होते हैं जो निम्नलिखित हैं—

**वात के संसर्ग से**—कम्प, प्रलाप, चुनचुनाहट, अवसाद, उदर, पीड़ा, आँखों के आगे अन्धेरा छा जाना, चक्कर, बदहोशी एवं रोमांच आदि लक्षण होते हैं।

**कफ के संसर्ग से**—कफ निष्ठीवन, शरीर गौरव, अंग जाड्य, अरुचि, शीत, वमन, आलेप, अग्नि और बल का क्षीण होना, कण्डु और निद्राधिक्य होता है।

**वात कफ के संसर्ग से**—वात और कफ दोनों के संसर्ग से उपर्युक्त दोनों के सम्मिलित लक्षण परिलक्षित होते हैं।

**सापेक्ष निदान**—इस रोग का निदान करते समय निम्नलिखित रोगों के साथ इसके अन्तर को हमेशा ध्यान में रखना चाहिये।

१. **विदग्धाजीर्ण**—सधूम उद्गार, व्याधि नवीन और वमन की अनुपस्थिति होती है।

२. **पैत्तिक अतिसार**—इस के लक्षण अधोग अम्लपित्त से मिलते हैं। इस रोग में अतिसार का इतिहास प्रारम्भ से तथा मुख्य रूप से होता है। जबकि अम्ल पित्त में अतिसार अन्य लक्षणों के बाद और गौण रूप में होता है।

३. **पैत्तिकछर्दि**—उद्गार की अनुपस्थिति, रोग की नवीनता और कारणों की भिन्नता से इसे ऊर्ध्वग अम्लपित्त से अलग किया जा सकता है।

४. **कृमि रोग**—हृत्कण्ठ दाह और तिक्ताम्लोद्गार का न होना कृमि रोग को अम्ल पित्त (अधोग अम्ल पित्त) से अलग करता है।

**साध्यासाध्यता**

अम्लपित्त की साध्यासाध्यता का उल्लेख करते हुये माधव निदान में कहा गया है, कि :—

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात् संसाध्यते नवः।
चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित्॥
मा० नि०

अर्थात्—नवीन अम्ल पित्त यत्नपूर्वक चिकित्सा द्वारा साध्य होता है। पुराना होने पर याप्य हो जाता है तथा किसी-किसी रोगी में पुराना अम्लपित्त कष्टसाध्य भी होता है।

**असाध्य लक्षण**—ज्वर, विशेष-अतिसार, पाण्डुता, उदरशूल, शोथ, अरूचि, अत्यधिक भ्रम और धातु क्षय की स्थिति मे अम्ल पित्त असाध्य बताया गया है।

**चिकित्सा**

निम्न लिखित योगों में से रोगी के बलाबल, दोषों की अवस्था एवं रोग की स्थिति के अनुसार उचित औषधि उचित मात्रा में व्यवहार करते हैं।

**एकौषधि चिकित्सा**—आमलकी, गुडूचि, मधुयष्टि, शतावरी, अभया, विभीतक, पटोलपत्र तथा साधारणतया पित्तशामक, कषाय, मधुर और तिक्त रस प्रधान द्रव्यों का सेवन करना चाहिये।

**सामान्य योग**

१. १० ग्राम त्रिफला चूर्ण का कल्क बनाकर लौह पात्र में अन्दर की ओर लेप कर देना चाहिए। रात्रि-पर्यन्त रखा रहने के उपरान्त प्रातःकाल मिश्री और मधु मिला कर प्रयोग करना चाहिये।

२. त्रिफला-शीत-कषाय—६ ग्राम त्रिफला का चूर्ण रात्रिपर्यन्त जल में भीगने देना चाहिये। प्रातःकाल मसल कर छान कर मधु और शर्करा मिला कर इसका सेवन करना चाहिये। इसे अनुपान के रूप में भी सफलता-पूर्वक प्रयोग कर सकते हैं।

३. पटोलादि क्वाथ—
४. वासादशांग क्वाथ। } इनका प्रयोग भी औषधि एवं अनुपान के रूप में किया जाता है।

चूर्ण—
१. आमलकी चूर्ण,
२. अविपत्तिकर चूर्ण (भै. र.),
३. त्रिफला चूर्ण,

खण्ड—
१. खण्ड कूष्माण्ड,
२. नारिकेल खण्ड,

रसयोग—
१. अम्ल पित्तान्तक लौह (भै. र.),
२. कामदुधायोग (र. यो. सा.),
३. लीलाविलास रस, (भै. र.),
४. सूत शेखर रस (र. यो. सा.),
५. धात्री लौह (भै. र.),
६. त्रिफला मन्डूर (भै र)

भस्म—
१. अभ्रक भस्म,
२. शंख भस्म,
३. वराट भस्म,
४. प्रवाल पिष्टी

आसवारिष्ट—
१. पुनर्नवारिष्ट
२. कुमार्यासव,

पथ्य

शाकहारी—सर्वोत्तम पथ्य दुग्ध, विशेषतया गाय और बकरी का दुग्ध। मूंग की दाल, पुरातन शालि, पुराना गेहूं, जौ का आटा, करेला, परवल, लौकी, तरोई, अनार, अंगूर, किशमिश, नारियल की गिरी या पानी तथा जौ का पानी हितकर है।

मांसाहारी—असंस्कृत जांगल मांस।

विहार—समय से भोजन करना और अधिक काल तक भूखा न रहना।

अपथ्य—सभी प्रकार के उत्तेजक, तीक्ष्ण खट्टे पदार्थ, गुरु, विदाही, अन्नपान, यथामद्य, दही, कांजी, आदि अपथ्य हैं तथा निदान में वर्जित समस्त आहार-विहार अम्ल पित्त के रोगी के लिये अहितकर है।

**अम्ल पित्त में सामान्य औषध व्यवस्था-पत्र**

१. स्वर्ण सूतशेखर रस—१, डेसी ग्राम,
धात्री लौह २, डेसी ग्राम,
कामदुधायोग २, डेसी ग्राम,

१ × ३ मात्रा प्रातः दोपहर, सायं मधु के साथ।

२. नारिकेल खण्ड—६ ग्राम/ १ × २ मात्रा, प्रातः एवं सायं काल दूध से।

३. अविपत्तिकर चूर्ण—६ ग्राम/ १ मात्रा रात्रि में सोते समय त्रिफला शीत कषाय अथवा वासा दशांग क्वाथ के साथ।

# शिशु स्वास्थ्य

## शिशु आहार—क्या, कब, क्यों और कैसे !

डा० (श्रीमती) चन्द्रप्रभा शुक्ला,
रीडर ललितहरि राजकीय आयुर्वेदिक कालेज
एवं आतुरालय, पीलीभीत

प्राणियों में स्तनयुक्त प्राणियों का एक बड़ा भारी विभाग है। इस विभाग में प्राणियों का पोषण बचपन में स्तन्य अर्थात् दूध से होता है। मनुष्य जाति सस्तन प्राणि-वर्ग में से है इसलिए दूध मनुष्य के लिये जातिसात्म्य हैं अर्थात जन्म से ही हितकर होता है। सात्म्य वस्तु वह हो सकती है जिसका संगठन शरीर के संगठन के साथ मिलना है। दूध एक ऐसा पदार्थ है जिसका संगठन शरीर संगठन के साथ पूर्णतया मिल जाता है परन्तु केवल संगठन से सात्म्यता का विचार पूरा नहीं हो सकता। अत: उस वस्तु की भौतिक स्थिति और प्रचनीयता का भी प्रश्न सामने आता है। दूध पानी के समान पतला होने के कारण प्रथम दिन का बालक भी सेवन कर सकता है तथा तद्गत प्रोटीन आदि अवयव इस प्रकार सूक्ष्मकणों के रूप में उसमें मिले हुये होते हैं कि उनके पाचन में बालक के पचन संस्थान को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता। अत: दूध सब दृष्टि से विचार करने पर बालक के लिये सात्म्य होता है।

दुग्ध, प्राय: मधुर, स्निग्ध तथा शीतल होता है। दुग्ध स्तनों के लिये हितकर अर्थात (दुग्ध को बढ़ाने वाला होता) है। यह तृप्ति करने वाला, माँस को बढ़ाने वाला, पुष्ट करने वाला जीवन शक्ति अर्थात (Vitality) को बढ़ाने वाला, श्रमहर अर्थात थकावट को हरने वाला वृष्य (वीर्यवर्धक) मनस्कर (मन को प्रसन्न करने वाला), श्वास एवं कास (खांसी) को नष्ट करने वाला माना गया है। दूध रक्त-पित्त को नष्ट करता है। विहत अर्थात चोट या घाव को भरता है अथवा भग्न को जोड़ने वाला है। दूध सम्पूर्ण प्राणियों के लिए सात्म्य है। शमन तथा शोधन करने वाला है। तृष्णा अर्थात पिपासा को मिटाता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है। क्षीण पुरुषों के लिए तथा क्षत (घाव) में श्रेष्ठ माना गया है, पाण्डुरोग, अम्लपित्त, शोष (राज्ययक्ष्मा) अथवा देह का सूखना, गुल्म, उदररोग, अतिसार (दस्त), ज्वर, दाह (जलन) तथा श्वयथु (शोथ) में दुग्ध का विधान है। योनि दोष, शुक्र दोष अर्थात वीर्यदोष, मूत्र रोग तथा प्रदर आदि रोगों में एवं पुरीष के ग्रथित होने पर (जब मल गांठ की तरह आता हो) और वात किंवा पित्त के लिये दूध पथ्य है। नस्य, आलेप, अवगाहन, वमन, आस्थापन, विरेचन तथा स्नेहन कर्म इन सब में दूध का प्रयोग होता है। दुग्ध अनेक प्रकार की औषधियों के रस का सार भाग है अत: मनुष्य के प्राणों को धारण करने वाला, भारी, मधुर, गाढ़ा, शीतल, चिकना, श्लक्षण; कुछ विरेचक और मृदु होता है। इन्हीं गुणों के कारण दूध सर्वप्राणियों के लिये सात्म्य होता है।

शास्त्रों में नवजात शिशु को सर्वप्रथम मधु, घृत के साथ (असमान-मात्रा में मिला कर) देने का विधान बताया गया है तत्पश्चात् शिशु जन्म के आठ घण्टे बाद माता के स्तन को उष्ण जल से धोकर तथा उसके अग्र भाग को साफ कर के दो-चार बून्द दूध निकाल देने का विधान बताया गया है। पहले तीन दिनों तक माता के स्तनों से गहरे पीले रंग का स्राव निकलता है जिसे चिकित्सा-जगत में Colostrum के नाम से तथा लोक भाषा में खीस के नाम से जाना जाता है। यह Colostrum अधिकतर उच्च प्रकार के प्रोटीन तथा लवण से युक्त होता है तथा गरम करने पर या स्वत: जम जाता है (अर्थात ठोस आकार का हो जाता है) माँ के स्तनों में तीसरे दिन शुद्ध स्तन्य का संचार होता है। स्त्री का दुग्ध

रस में मधुर, अनुरस में कषाय, शीत प्रकृति, नस्य तथा आश्च्योतन कर्म में हितकर होता है । जीवनीय शक्ति Vitality को बढ़ाने वाला, लघु और पाचकाग्नि दीपक होता है ।

## तालिका नं0-१

| क्रम सं० | दूध का संगठन | मां का दूध | गाय का दूध |
|---|---|---|---|
| 1. | पानी | 88% | 87.6% |
| 2. | प्रोटीन | 1% | 3.3% |
| 3. | नमक व अन्य धातु | .1% | .7% |
| 4. | चिकनाई | 3.9% | 3.6% |
| 5. | शक्कर और निशास्ता | 7% | 4.8% |
| 6. | कैलशियम | .12% | .12% |
| 7. | फास्फोरस | .01% | .09% |
| 8. | आयरन | .2% | .2% |
| 9. | गर्मी और ताकत की डिग्रियां 100 ग्राम में :— | | |
| 1. | विटामिन-ए | 67 I.U. | 65 I. U. |
| | | 28 | 180 |
| 2. | विटामिन-बी$_1$ | | 51 |
| | विटामिन-बी$_2$ | | .1 |
| | विटामिन-सी | | 2 |

## तालिका नं0-२

| क्रम सं० | दूध के प्रकार | प्रोटीन ग्राम प्रतिशत | लैक्टोज ग्राम प्रतिशत | चिकनाई ग्राम प्रतिशत | ऐश ग्राम प्रतिशत | कैलशियम ग्राम प्र० |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | कोलोस्ट्रम (स्त्री) | 8.5 | 3.5 | 2.5 | .37 | 0.25 |
| 2. | मा का दूध 1 माह के अंत में 65 Kcal/100 एम० एल० | 1.2-2.0 | 6.5-8 | 3.0-5.0 | 0.18 | 0.03 |
| 3. | गाय का दूध 56 Kcal/100 एम० एल० | 3.5 | 4.75 | 3.5 | 0.75 | 0.14 |

## तालिका नं० ३

| क्रम सं० | माँ का (स्त्री) दुग्ध | गौ दुग्ध |
|---|---|---|
| 1. | माता का दूध प्रकृति ने उसके शिशु के लिये ही उत्पन्न किया है अतः वह शरीर तापक्रम पर ही शिशु को मिल जाता है। | |
| 2. | माता का दूध सीधा बालक के शरीर में चला जाता है अतः अदूषित स्थिति में बालक को मिलता है अतः जीवाणु रहित होता है। | |
| 3. | माता के शरीर में अनेक रोगों के लिये जो क्षमता होती है उसका अंश स्तन्य के द्वारा बालक को मिलता है अतः रोग प्रतिरोध-क्षमता शिशु में स्तन्य द्वारा उत्पन्न होती है। | |
| 4. | माता के दूध की पौष्टिकता अप्रतिहत होती है क्योंकि बालक के शरीर में स्वाभाविक स्थिति में जाता है। | |
| 5. | प्रोटीन | |
| | अ—Lactalbumine माता के दूध में दुगना होता है। | गाय के दूध में कुछ प्रोटीन की राशि दुगनी होती है। |
| | ब—Caseinogen की राशि मां के दूध में 1/7 होती है। | गाय के दूध में Caseinogen की मात्रा मां के दूध की अपेक्षा 6 गुनी अधिक होती है। यह पचने में भारी होती है। |
| | स—माता के दूध में उपरोक्त दोनों प्रोटीनों का अनुपात 2:1 का होता है। | |
| 6. | दुग्ध शर्करा माता के दूध में दुगनी होती है अतः मां का दूध अधिक मीठा होता है और शिशु इसे चाव से पीता है। | |
| 7. | माता के दूध की प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। | गाय के दूध की प्रतिक्रिया अम्ल होती है। |
| 8. | स्नेह की मात्रा दोनों में बराबर होती है। माता के दूध का स्नेह गौ के दूध स्नेह की अपेक्षा अधिक सूक्ष्मकणों के रूप में दूध में रहती है अतः माता के दूध का स्नेह सुपाच्य और सुशोष्य रहता है। | |
| 9. | खनिज द्रव्य मां के दूध में कम होते हैं। | गाय के दूध में खनिज द्रव्य अधिक होते हैं। |

उपरोक्त तीनों तालिकाओं पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति ने शिशु के पोषणार्थ ही माता के स्तनों में दुग्ध को प्रवाहित किया है। आधुनिक काल में रसायन शास्त्र की उन्नति होने के कारण भिन्न-भिन्न प्राणियों के दूध का पृथक्करण होने लगा है अतः यह सिद्ध है कि यद्यपि दूध का सामान्य संगठन एक है फिर भी उसके अवयवों की मात्रा प्रत्येक प्राणी के दूध में भिन्न-भिन्न है। प्रकृति ने यह अवयव मात्रा भिन्नता प्रत्येक जाति के प्राणी की आवश्यकता में भिन्न होने के कारण रखी है अतः माता के दूध के अभाव में अथवा प्रयोग करने के पूर्व इस अवयव-भिन्नता को दूर करना पड़ता है और तब वह बालक के प्रयोग के अनुरूप होता है। यह अवयव-भिन्नता निम्न प्रकार से दूर की जा सकती है।

माँ के दूध में कुछ दोष ऐसे होते हैं जो कठिनता से दूर किये जा सकते हैं। प्रथम चार भेद जो ऊपर तालिका में प्रदर्शित किये गये हैं ऐसे ही भेद हैं अन्त के चार भेद निम्न प्रकार से दूर किये जा सकते हैं।

१. जल मिश्रण (Dilution)—शिशु की आयु को देखते हुए गाय के दूध को माता के दूध के समान बनाकर देने का विधान है। गाय के दूध में प्रोटीन की मात्रा अधिक है। अतः प्रारम्भ में १ भाग दूध और ३ भाग पानी मिला कर देने का विधान है। धीरे-धीरे शिशु की आयु बढ़ने पर पानी की मात्रा कम करते जाना चाहिये। सदैव गाय के दूध को माता के दूध के समान बनाकर देने का विधान है।

२. गाय का दूध आमाशय में कठिन रूप से जम जाता है इसको दूर करने के लिये दूध के साथ सोडियम साइटेट १ औंस दूध में १ ग्रेन के प्रमाण में मिलाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त चूने का पानी (Lime water) जौ का यूष, चावल का पानी, इत्यादि अन्य द्रव्य भी मिलाये जा सकते हैं। इन सब में उत्तम सोडियम साइट्रेट है।

३. गाय के दूध में जीवाणु बहुत होते हैं। अतः उबाल कर देने का विधान है। एक बार उबाल देकर दूध उतार ले।

४. दूध की शर्करा माता के दूध में गाय की अपेक्षा दुगुनी होती है। गाय के दूध में पानी मिलाने से दुग्ध शर्करा और भी कम हो जाती है। अतः जल मिश्रण करने पर वह और भी कम हो जाती है। अतः गाय के दूध को माता के दूध के समान बनाने के लिये सर्वप्रथम तो उसे पानी मिलाकर उबालना चाहिए। फिर माता के दूध के समान बनाने की दृष्टि से उसमें चीनी मिलाकर माँ के दूध के समान ही मीठा बनाकर देना चाहिये। मीठा होने से दूध सुपाच्य और सुशोष्य हो जाता है। जल मिश्रण करने से खनिज द्रव्य भी कम हो जाते हैं और गाय के दूध की गुरुता कम हो जाती है अतः रसायन, रक्तपित्तहारक, जीवनीय तथा वातपित्तनाशक होता है।

**दुग्ध की मात्रा :**

जब तक बालक माता या धात्री का दूध पीता है तब तक मात्रा का उतना सवाल नहीं उठता परन्तु जब माँ का दूध दिया जाता है तब मात्रा का अधिक विचार रखना पड़ता है। मात्रा का विचार दो प्रकार से करना पड़ता है।

१—प्रत्येक समय की मात्रा।

२—दिन रात की मात्रा।

## तालिका नं०-४

| क्रम सं० | दिन | माह | बालक के जठर की समाई औंस में | बालक के दूध पिलाने के समय का अन्तर | कुल कितनी बार दूध देना चाहिये |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | 1 | | 1 औंस | पैदा होने के 8 घन्टे बाद प्रारम्भ करें। | 6 बार |
| 2. | 14 | | 2 ,, | 4-4 घन्टे पर | 8 बार |
| 3. | 30 | 1 | $2\frac{1}{2}$ ,, | 2-2 घन्टे पर | 10 बार |
| 4. | 90 | 3 | $4\frac{1}{2}$ ,, | $2\frac{1}{2}$ ,, ,, | 8 बार |
| 5. | 120 | 4 | 5 ,, | 3 ,, ,, | 7 ,, |
| 6. | 150 | 5 | $5\frac{1}{2}$ ,, | ,, ,, ,, | ,, ,, |
| 7. | 180 | 6 | 6 ,, | $3\frac{1}{2}$ ,, ,, | 6 ,, |
| 8. | 210 | 7 | $6\frac{1}{2}$ ,, | 4 ,, ,, | 5 ,, |
| 9. | 240 | 8 | 7 ,, | 4 ,, ,, | 5 ,, |
| 10, | 270 | 9 | $7\frac{1}{2}$ ,, | 4 ,, ,, | 5 ,, |
| 11. | 300 | 10 | 8 ,, | 4 ,, ,, | 5 ,, |
| 12. | 330 | 11 | $8\frac{1}{2}$ ,, | 4 ,, ,, | 5 ,, |
| 13. | 360 | 12 | 9 ,, | 4 ,, ,, | 5 ,, |

उपरोक्त तालिका पर एक दृष्टि डालने से यह विदित होता है कि प्रारम्भ में शिशु को देर-देर से दूध पिलाया गया है तथा २४ घंटों में भी कुल दूध पिलाने की संख्या भी आगे की अपेक्षा कम है उसका एक मात्र कारण यह है कि प्रारम्भ में बालक अधिक देर तक सोता है। वाह्य वातावरण की चहल-पहल तथा माता के प्यार-दुलार से तथा उम्र में बढ़ने वाला होने के कारण बाद में वह पहले की अपेक्षा अधिक जागता है। अतः १ माह का हो जाने पर अन्तर कम कर दिया है और कुल संख्या भी अधिक कर दी गई है। पुनः दूसरे माह से उस पर नियंत्रण भी कर लिया गया है। शिशु की पाचन शक्ति देख कर और उसका उपचय देख कर उसमें न्यूनाधिक कर सकते हैं। अन्तिम बार दूध १० बजे रात्रि में दे ताकि माता और शिशु रात्रि में पूर्ण विश्राम ले सकें। प्रातःकाल उठने पर ही पुनः दुग्ध पान करायें।

माता बालक को कब तक स्तन्यपान कराये ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। दूध शिशु के जीवन भर का आहार नहीं है। बाल्यावस्था में एक साल तक वह पूर्ण आहार होता है। उसके पश्चात् कुछ काल तक वह आंशिक आहार होता है। तत्पश्चात वह गौणाहार होता है। बाल्यावस्था में अन्न सेवन न करने का कारण पचन संस्थान का अन्न सेवन और पचन करने की असामर्थ्य है। असामर्थ्य अधिकतर दाँतों के न होने से होता है और जब दांत आने लगते हैं तो धीरे-धीरे बालक को अन्न का कुछ अंश दिया जाता है और दूध की राशि कम की जाती है। दन्तोभेद का साधारण काल ९ माह का होता है अतः बालक की आयु नौ माहीने की होने पर उसको स्तनपान से दूर करना चाहिए। अधिक-से-अधिक एक वर्ष की आयु के पश्चात् स्तन पान किसी भी अवस्था में नहीं कराना चाहिये। पाश्चात्य विद्वान भी आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से सात्म्य रखते हैं।

गौ का धारोष्ण दुग्ध अमृत के समान गुणकारी है किन्तु इसके विपरीत अर्थात् बहुत देर से निकाला हुआ दूध विष के समान हो जाता है यदि उसी धारोष्ण दुग्ध को अधिक देर औटाकर शीत करके पिया जाये तो बृंहण कार्य करता है। यदि धारोष्ण दुग्ध न मिल सके तो उबाल कर ही पीना चाहिए। कुछ काल तक निकाल कर रक्खे कच्चे दूध में वायुमण्डल की गैसें, धूल-कण तथा सूक्ष्म जीवाणु प्रविष्ट हो जाते हैं। उबले हुए दूध में जलअंश कम हो जाता है। दुग्ध शर्करा का कुछ अंश जल

जाता है। प्रोटीन विघटित हो जाते हैं । सेन्द्रिय फास-फोरस निरन्द्रिय रूप में हो जाता है। चूने और मैग्नी-शियम के लवण अवक्षिप्त हो जाते हैं। दुग्ध के फर्मेन्ट तथा जीव द्रव्य (Vitamins) के कुछ भागों का नाश हो जाता है अतः धारोष्ण दुग्ध अधिक श्रेष्ठ होता है किन्तु कच्चे दूध को पीने की अपेक्षा उबाला हुआ दूध पीने से दूध के गुण कुछ कम हो जाते हैं किन्तु कच्चे दूध की तरह भयंकर रोग उत्पन्न नहीं करता।

उपरोक्त विवरण से यह सर्वविदित है कि शिशु के लिये स्तन्य का क्या महत्व है। स्तन्याभाव में सर्वप्रथम शिशु को माँ का दुग्ध ही देना चाहिए। यदि किसी कारणवश माँ का दूध न मिल सके या दरिद्रता के कारण उसको प्राप्त न कर सकें तो बकरी का दूध प्रयोग में ला सकते हैं। शिशु की पाचनशक्ति क्षीण होने पर या शिशु के रुग्ण होने पर शास्त्रों में बकरी का दूध शिशु को देने का विधान बताया गया है। बकरी का दूध गाय के दूध के समान गुणों वाला किन्तु विशेषतया शोष (राजयक्ष्मा) के रोगियों के लिये हितकारक, अग्निदीपक, पचने में हल्का, अतिसार में दस्तों को बाधने वाला तथा श्वासकास और रक्तपित्त नाशक है। बकरियों का शरीर स्वभावतः छोटा होता है तथा वे कटु और तिक्त रस वाले वृक्ष तथा वन-स्पतियों के पत्ते खाती हैं एवं अधिक जल नहीं पीती हैं तथा सारे दिन इधर-उधर भ्रमण रूपी व्यायाम करती हैं, अतएव उनका दुग्ध सर्वनाशक है।

माता अथवा धात्री का स्तन्य न मिलने पर बालकों को स्तन्य सात्म्य होने के कारण बकरी का अथवा गौ का दूध स्तन्य पर्याप्ति तक मात्रा के अनुसार देना चाहिए। उपरोक्त वर्णन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची हूँ कि जब किसी भी निमित्त से माता का स्तन्य बन्द हो जाये तो उस समय बच्चे को गौ या बकरी का दूध पिलाना चाहिये। पुनः जब स्तन्य पूर्ववत् आने लगें तो बाहर का दूध देना बन्द कर देना चाहिये। स्त्री चिकित्सक होने के कारण नित्य ही मातायें, बहनें इस प्रकार के प्रश्न करती रहती हैं कि मातृ दुग्ध के अभाव में या दुग्ध अल्पमात्रा में होने पर शिशु को पोषण किस प्रकार किया जाये। सर्वप्रथम तो माता के दूध बढ़ाने के उपाय अपना कर माता का ही दूध बढ़ाया जा सकता है परन्तु यदि चेष्टा करने पर भी यह सम्भव न हो सके तो मिश्रित दुग्ध पान की परम्परा स्तन त्याग काल तक चलाते रहना चाहिये। यहाँ पर संक्षेप में स्तन्यभाव के कारणों पर विचार कर लेना अप्रसंगत न होगा।

**स्तन्यभाव के दो मुख्य कारण होते हैं :**

१—नित्य

२—नैमित्तिक

**१—नित्य कारण** इसके अन्तर्गत माता की मृत्यु प्रधान कारण है। नित्यकारणों के मैं पुनः दो विभाग कर सकती हूँ।

(अ) काम्य

(ब) निषिद्ध

(अ) **काम्य**—जब माता स्वस्थ होने पर भी शिशु को स्तनपान कराना नहीं चाहती तो इस अवस्था को काम्य कहते हैं। अतः नित्यस्वरूप काम्य स्तन्याभाव हो जाता है।

(ब) **निषिद्ध**—जब माता राजयक्ष्मा, कुष्ठ, फिरंग इत्यादि शरीर क्षयकर रोगों से पीड़ित होती हैं तब स्तन्य पान का निषेध होता है अतः यह निषिद्ध नित्य स्तन्या-भाव कहलाता है।

**२—नैमित्तिक**—जब माता शिशु को दूध पिलाती है परन्तु बीच में लंघन, उपवास, ज्वर या अन्य विकारों से पीड़ित होने के कारण दूध नहीं पिला सकती है। इस के स्तन्याभाव को नैमित्तिक स्तन्याभाव कहते हैं। इस अवस्था में दुग्धवर्धकयोगों का प्रयोग माँ को कराया जा सकता है।

# The Promotion & Development of Traditional medicine

*Report of*

## W. H. O. Meeting

**A comprehensive report of world health organisation regarding the promotion & development of Traditional medicine is given below with a view to enlighten our readers. The publication of the report may be prov beneficial to the readers of this journal.**

**Editor.**

**Introduction**

A WHO Meeting on the Promotion and Development of Traditional Medicine was held in Geneva from 28 November to 2 December, 1977. Dr. Ch'en Wen-chieh, Assistant Director-General and Chairman of the Headquarters Working Group on Traditional Medicine, opened the meeting on behalf of the Director-General. He stated that the consultation had been convened in response to the considerable interest evinced in traditional medicine, which had also been expressed in resolution WHO 30.49, adopted by the Thirtieth World Health Assembly in 1977, and in subsequent requests by Member States for technical collaboration in organizing educational and research activities in this field.

The aim of the Meeting was therefore to assemble expert representatives of the major systems of traditional medicine to work together and suggest a plan of action to promote and develop the various aspects of traditional medicine.

The specific objectives were to make practical suggestions on policy guidelines for the provision of materials and techniques, collaboration among different systems of health care, health education of the public, manpower development, organization of health services, the future development of traditional medicine and its utilization, particularly in the national health services, and relevant research.

A major problem for special consideration was the effective collaboration of different paractitioners and their integration into an overall national health care delivery system.

The meeting then proceeded to discuss the theme : 'Promotion and development of traditional medicine' under the following headings :

Traditional medicine in health care.

Reasons for the promotion of traditional medicine.

Utilization of traditional medicine in national health care systems.

Integration of traditional medicine and modern medicine.

Manpower development for traditional medicine.

Research promotion and development in traditional medicine.

Recommendations.

1. TRADITIONAL MEDICINE IN HEALTH CARE.

The Meeting addressed itself to the following questions :

What is traditional medicine ?

What is a health care system ?

How can traditional medicine be linked with health care systems ?

What factors determine the indentification of traditional medicine ?

What kind of policies and practical actions could be adopted to promote traditional medicine ?

1.1, Concepts of traditional medicine and practitioners.

1.1.1. Traditional medicine.

Reference was made to the definition of traditional medicine already attempted by a group of experts from the African Region, convened by the WHO Regional Office for Africa, that met in Brazzaville in 1976. The definition arrived at by the group of experts was as follows :

"...the sum total of all the knowledge and practices, whether explicable or not, used in diagnosis, prevention and elimination of physical, mental or social imbalance and relying exclusively on practical experience and observation handed down from generation to generation, whether verbally or in writing.

"Traditional medicine might also be considered as a solid amalgamation of dynamic medical know-how and ancestral experience.

"Traditional African medicine might also be considered to be the sum total of practices, measures, ingredients and procedures of all kinds, whether material or not, which from time immemorial had enabled the African to guard against disease, to olleviate his sufferings and to cure himself."[1]

Traditional practitioners of Ayurveda define life "as the union of body, senses, mind and soul," and in this context consider "positive health as the blending of physical, mental, social, moral and spiritual welfare."[2] The moral and spiritual aspects are here stressed and thus give new dimension to man and the system of medicine by which he maintains his health.

1. 1. 2. The traditional healer.

The African Regional Office expert group also adopted a definition of the traditional healer, as follows :

"..a person who is recognized by the community in which he lives as competent to provide health care by using vegetable, animal and mineral substances and certain other methods based on the social, cultural and religious background as well as on the know-

1. AFRO Technical Report series, No. 1, 1976 (African traditional medicine. Report of the Regional Expert Committee), PP. 3 4

2. From : Principles and practice of traditional systems of medicine in India (working paper presented by M. A. Razzack to the Meeting).

ledge, attitudes and beliefs that are prevalent in the community regarding physical, mental and social well-being and the causation of disease and disability."[2]

1. 2. Nature, goal and scope of traditional medicine.

The Meeting held that all medicine is modern in so far as it is satisfactorily directed towards the common goal of providing health care, despite the setting in time, place and culture. In this light, it was observed that the essential differences among the various systems of medicine arise not from the difference in the goal of effects, but rather from the cultures of the peoples who practise the different systems. It was further stated that traditional medicine is nothing new, since it has always been an integral part of all human cultures. However, as traditional medicine in some developing countries has tended to stagnate through not exploiting the rapid discoveries of science and technology for its own development, it has kept a slow pace of change in comparison with medicine as practised in the industrialized countries, which keeps abreast of scientific and technological innovations to the extent that it is often exclusively referred to as modern medicine.

It was observed that many professional health personnel had often tended to regard traditional medicine as a practice on the decline and of no importance, and that this was a serious fallacy in so far as culture itself, of which traditional medicine was an integral part, was neither static nor dead.

2. See footnote 1 on the preceding page.

Culture was defined generally as the sum total of the life-style, society patterns, beliefs, attitudes and commonlly accepted organized ways in which a community attempted to solve its life problems.

Cultural change and development take place with the aquisition of new knowledge or with a change in the surroundings of the people, who need to adopt in order to survive or to achieve a new life equilibrium. In this context of cultural evolution, traditional medicine has always developed and preserved its role of providing health care in all communities.

Because contemporary research has been heavily oriented towards medicinal plants, it was stressed that this tendency must not be allowed to continue to give the impression that traditional medicine was limited to the use of medicinal plants exclusively in the health-giving process. It was therefore necessary to keep in focus the wider scope of traditional medicine as experienced in actual practice in the health care systems of various countries. In this way a holistic approach to the study of traditional medicine would be assured and all aspects of research would be covered.

1.3 Some country experiences.

In order to substantiate these concepts some country experiences were presented.

1. 3. 1. SRI LANKA

In Sri Lanka various systems of indigenous medicine are widely practised in rural areas. It was observed that the existence of different systems is conditioned and supported by the vast variation in the ecology of the country and in cultural patterns. The

accumulated wisdom of the people and their experiences constitute the substantive knowledge and skills used in traditional medicine. Over the centuries there has difinitely been some change, albeit gradual.

As a result of the various system of medicine being the major source of health care, there is quite a variety as well as a large number of traditional medicine practitioners at work in the country. Ten thousand practitioners are already registered and 600 more are being considered for registration. The therapeutic scope of the practice is wide and includes preventive, curative, and specialized apects. Most of the traditional systems follow the classical pattern of taking a history, determining the etiological factor complex, making a diagnosis, providing appropriate treatment, following up progress, and offering the appropriate rehabilitative measures.

Perhaps what appeared unique to the various systems of medicine was the nature of the prescriptions, which seem to be highly influenced by geographical factors, by local herbs and a hereditary formulary, and by the local cultural concepts and knowledge of the prevailing diseases and health problems.

The traditional system of medicine in Sri Lanka meets the basic health needs of about 70% of the population. Most of the traditional physicians run their dispensaries in their homes; a few are employed by the Government or by local government authorities as specialist in hospitals. Some 80% of patients live within about 10 kilometres of their dispensaries.

### 1.3.2. SUDAN

The Sudan presentation focused on the psychosocial aspects of traditional medicine. It was reported that traditional medicine is so successful in the Sudan that it is extensively used in the control of neuroses and alcoholism, and as such possesses a potential for research on the treatment and rehabilitation of neurotic reactions, alcoholism and drug dependence. Traditional medicine presents several valuable solutions to the management of culturally linked diseases and other health problems, and the reason for this spectacular success is that it is an integral part of the people's culture and they have deep confidence in it. The methods and techniques employed are at present closely guarded secrets.

### 1.3 3. EGYPT

Some valuable discoveries relating to medicinal plant research were reported.

Ammimajus—A common plant in the fields and waste lands of Egypt—has been shown to contain ammoidin (xantho toxin), ammidin (imperatorin), and majudin (bergatene). The extracts of this plant have been shown to induce pigmentation in idiopathic leukoderma (vitiligo). Ammi visnaga—another perennial plant, used in traditional medicine by the ancient Egyptians in the form of a decoction and as a diuretic to treat renal colic was recently analysed and found to contain the two principles khellin and visnagin. Khellin is useful in the treatment of angina pectoris and whooping cough and in the relief of ureteric and gallbladder spasms. It has been found to contain anthelmintic, antianaphylatic, antiatherosclerotic,

antidiabetic and antilcerogenic properties.

The seeds of Nigella sativa Linn.—known in Arabic as habbetel barakah—are used in folk medicine by the Egyptian people as a diuretic and as a carminative, and the oil expressed from them is used in the treatment of asthma, respiratory distress, and coughs. The active principle, nigellone, has been isolated from the volatile oil fraction and is useful for the treatment of bronchial asthma.

Much research in traditional medicinal plants is widely undertaken in Egypt and the following plants are currently under investigation : Urginea maritima, phytolacca, Euphorbia sp, Glycrrhiza glabra, Cynara seoly mus, and Solaman laciniatum The last-named plant has already been shown to contain alkamines which are steroidal in nature and which can be converted into steroidal hormones. This plant is the main source of solasodine, which is being isolated industrially for the preparation of pregnadienone acetate and used for further synthesis of various hormones.

This research activity in Egypt is undertaken by multidisciplinary teams, including pharacologists, chemists, traditional healers, botanists, and clinicians, and is carried out in the following institutions : departments of pharmacognosy, chemistry, and pharmacology in the different universities; national research centres (Pharmacutical sciences, natural products and pharmacology laboratories); desert institutes; and the horticultural department of the Ministry of Agriculture.

The integration of traditional and modern medicine in the broad fields of reseatch at the university and industrial levels was noted; likewise the application of modern science and technology to traditional medicine.

1.3 4. GHANA.

Reference was made to similar research work in Ghana but mainly in the filed of clinical drug trials. According to Oku Ampofo, Director of the Centre for Scientific Research into plant medicine, Mampong-Akwapim, Ghana

"...the leaves of Elaeophorbia drupifera and Hilleria latifolla, taken in combination with a palm oil soup preparation, act as a filaricide in guinea-worm infestation...Four traditional treatments of herpes zoster are particularly interesting The local application of the flowers of Hoslundla opposita and red cola nut, chewed together and sprayed on the lesion twice a day, often heals it within a fortnight. The local application of guava leaves, ground into paste with kaolin or white clay and piper guineense, twice a day heals infection in about ten days..."

1.3.5. INDIA.

India provided another example of the role of traditional medicine in health care systems. As in Shri Lanka, the integration of traditional medicine into the public health service systems is advancing satisfactorily. Ayurveda, Siddha, Unani and Yoga are now widely adopted through government policy and included in the curricula of several institutions of learning, including universities, colleges of medicine, and secondary and primary schools, as well as in centres for the training of diverse types of health personnel.

There are abut 5000000/- practitioners of traditional medicine in India, and their qualifications range from university doctorates, through certificates awarded in private schools, to skills and knowledge acquired after several years of apprenticeship to established practitioners. There are 108 colleges of indigenous medicine, and a statutory National Central Council directs their activities, controls standards of training, education and practice, and awards recognition status, which is necessary for employment in the public health services.

One major advance in the integration of traditional medicine was the passage of the Drug Act of 1940, which also covers traditional medicaments, demands licensure for practice, and assures the safety and control of drugs produced in India. This integration of the various systems of medicine-indigenous and otherwise—is already institutionalized at the national and state levels, in universities and other training centers, and in the utilization of all types of personnel in health care delivery systems in the rural areas, and in drug manufacturing establishments.

## 2. REASONS FOR THE PROMOTION OF TRADITIONAL MEDICINE.

### 2.1 Intrinsic qualities.

Since traditional medicine has been shown to have intrinsic utility, it should be promoted and its potential developed for the wider use and benefit of mankind. It needs to be evaluated, given due recognition and developed so as to improve its efficacy, safety, availability, and wider application at low cost It is already the people's own health care system and is well accepted by them. It has certain advantages over imported systems of medicine in any setting because, as an integral part of the people's culture, it is particularly effective in solving certain cultural health problems. It can and has freely contributed to scientific and universal medicine. Its recognition, promotion, and development would secure due respect for a people's culture and heritage.

### 2.2. Approach-unique and holistic.

Traditional medicine has a holistic approach-i.e., that of viewing man in his totality within a wide ecological spectrum, and of emphasizing the viewpoint that ill health or disease is brought about by an imbalance, or disequilibrium, of man in his total ecological system and not only by the causative agent and pathogenic evolution.

### 2.3. Operational factor.

These are some of the main reasons why traditional medicine needs to be promoted and developed. Perhaps, from the operational point of view, the most cogent reason for the radical development and promotion of traditional medicine is that it is one of the surest means to achieve total health care coverage of the world population, using acceptable, safe, and economically feasible methods, by the year 2000.

## 3 UTILIZATION OF TRADITIONAL MEDICINE IN NATIONAL HEALTH CARE SYSTEMS.

### 3. 1. Suggested procedure.

1. There is a need to evaluate therapeutic claims in order to select those types of treat-

---

1. Plants that heal. World Health, November, 1977, p. 38.

ment which could be adopted easily for wider public use.

2. Where research in traditional medicaments is already progressing, drugs and medicinal plants which have already been studied could be prepared for public use immediately, and state resources used to promote their production and manufacture.

3. More research should be undertaken to investigate all aspects of traditional medicine to improve methods, techniques, and the composition of traditional medicaments.

4. At the psychological level there is need, first, to collect information on the positive aspects, in order to communicate such knowledge to the political decision-makers and professional personnel employing other systems of medicine, and eventually motivate them to accept and actively participate in the application of traditional medicine in public health care systems.

5. To shorten the duration of this public education process, the Meeting saw the need for an educational revolution in some countries, during which there would be curricular reforms and revision of training programines of medical and other health personnel to respond to the needs of our time.

**3. 2. Guidelines for integrating traditional medicine into primary health care.**

1. Giving recognition to traditional practitioners and incorporating them into community development programmes.

2. Retaining traditional practitioners for appropriate use in primary health care.

3. Acquainting professional health personnel and students of modern systems with the principles of traditional medicine in order to promote dialogue, communication, mutual understanding and eventual integration.

4. Educating the community to believe that the provision of traditional remedies is not second-rate medicine.

5. Cataloguing all medicinal plants in a country or region and disseminating the information thus compiled.

6. Retaining the traditional forms and names of prescriptions whenever traditional medicines are adopted for use in primary health care, and carrying out relevant research into the traditional systems of medicine.

**3. 3 The role of WHO in co-operation with Member States for the promotion and development of traditional medicine.**

The three activities listed below were seen as constituting the principal role of WHO in the promotion and development of traditional medicine for integration into primary health care.

1. Collaboration with Member States in formulating national policies on traditional medicine, as WHO has done in other fields, such as those of drug, cancer, and communicable disease control Such policies would include the following elements :

(a) integration of traditional medicine into primary health care;

(b) training of traditional healers at different levels-e. g., herbalists, bone-setters, and traditional birth attendants;

(c) organization of educational activities;

(d) application of appropriate technology for health improvement with special regard to simplicity, safety and efficiency;

(e) selection of essential traditional medicaments and techniques for use in primary health care;

(f) approval of special techniques for use in public health services—e.g., acupuncture and moxibustion;

(g) promotion and development of basic and applied research in traditional medicine; and

(h) promotion, adoption and application of certain well-known techniques for use in public health programmes-e. g., use of special medicinal plants to control vectors of disease such as Oncomelania in schistosomiasis.

(2) Information transfer among countries: this could be achieved by consultative meetings, seminars, newsletters and other literature, etc.

(3) Promotion of technical co-operation among developing countries (TCDC) and between developed and developing countries.

4. INTEGRATION OF TRADITIONAL AND MODERN MEDICINE

**4. 1. The concept of integration.**

Several countries now consider the concept of integration a reality that could be achieved in the foreseeable future.

Effective integration, like that of the Chinese experience, entails a synthesis of the merits of both the traditional and the so-called "western" or modern systems of medicine through the application of modern scientific knowledge and techiniques. It requires a flexible system capable of accommodating individual skills and varying levels of knowledge and education, an insufficiency of resources, and a diversity of supportive technologies, particularly for primary health care.

In order to achieve this, it is necessary to ensure mutual respect, recognition and collaboration among the practitioners of the various systems concerned.

**4. 2. Country experiences.**

The present theme of integration of traditional and modern medicine is not very different from the preceding one of "traditional medicine in health care" because, while the one stresses the process of integration, the other describes the modus operandi during and after integration in modern health care systems. Where as earlier it was necessary to accept that all systems of medicine have the same goal, it is now necessary to differentiate them as institutions so as to study the mechanisms of synthesis or integration.

The experiences of India and Sri Lanka were again used to demonstrate how integration of western and traditional indigenous systems of medicine could be effected. In both countries traditional systems of medicine have already been recognized, legalized, and well developed as separate systems of practitioners from their national institutions. Later, these practitioners were observed to "borrow" freely from one another when the health situation indicated that such a practice would be advantageous.

The need for integration then arose, and a policy to integrate the knowledge of the various systems was developed. These systems have now been incorporated into syllabi and can be taught in schools, though to a limited extent. As integration, or synthesis has been foreseen to possess several advantages over

the present situation, it has been recommended for wider implementation. Planning for achievement of multidisciplinary research, the teaching of fundamental principles, investigation of drug properties and the testing of hypotheses as a basis for further research.

**4. 3. Approaches to integration.**

It was considered that a cautious approach would have to be adopted to achieve success. The process could begin with basic research on educational systems, together with an investigation of ancient literature, fundamental principles, common drugs in use, principles of diet, problems of environmental hygiene, and other areas which are of interest to all the systems of medicine practised.

Adequate knowledge in these fields having been acquired, the mechanisms of integration could then be worked out for implementation. The initial attempt at integration, for most countries, should be by research and studies in traditional medicine, with a view to assessing its claims and validating them on scientific bases. Once this had been done, acceptability would increase and integration into existing health care systems would be possible and even easy to achieve.

It was observed that the greatest resistance to integration often came from administrative intransigence, and therefore the national political decision-makers would have to be convinced of the need for such action. The concept of integration is certainly not easy.

**4. 4. Fundamental problems of integration.**

Fundamental problems which make integration very difficult, or even impossible in certain settings, were identified as follows:

1. Emphasis on the cultural formulation of traditional medicine.

2. Problems of cultural transplantation and the need for preservation of the cultural heritage in order to avoid cultural alienation.

3. Marked inclination of the systems towards either curative or preventive measures, owing to economic advantages gained in certain settings.

4. Impossibility of integrating certain aspects of traditional medicine based on spiritual, moral or other fundamental principles—e.g., exorcism and special healing arts associated with spiritualism.

5. Commercial motives which control the modes of practice in certain settings.

6. Fundamental differences between the concepts of life, health and disease-concepts upon which the underlying philosophies of the various medicinal systems are founded.

These situations, though apparently incompatible, may, however, complement or supplement each other in solving given health problems.

**4. 5. Advantages of integration.**

Integration was considered worthwhile because of the following advantages : (a) it offers reciprocal benefit to each system : (b) it improves the general health care knowledge for the greater welfare of mankind, especially in view of the inherent possibilities for wider and more efficient population coverage; (c) it enhances the quality of the practitioners as well as increasing their numbers; (d) it promotes the dissemination of knowledge relating to primary health care; and (e) above

all, it offers the best means of achieving the goal of health care for the entire population by the year 2000.

**4. 6. Other obstacles to integration.**

Even where the policy was favourable, certain constraints were still noticeable :

1. Payment of lip-service to the integration process.

2. Fear of the possibly harmful iatrogenic effects of traditional medicine.

3. Doubtful status of the products of integrated training in current social and professional hierarchies.

4. Resistance by intransigent advocates of one or another systems.

5. Fear of litigation, since the legal apparatus tends 4.7. Prerequisites for integration.

Some guiding principles could be applied to most situations to facilitate the integration process. A major constraint is the current lack of information; the results of a preliminary survey and the assembly of factual data validated on modern scientific principles could be used to help to convince decision-makers, professional health personnel, and the population at large of the value of integration, usually through training progrmmes and strategies, such as the development of a common pharmacology to serve as a bridge between the various systems. It would also be necessary to obtain prior guarantee of sociopolitical acceptability and legal recognition in order to gain material and financial support and ensure eventual success. Another prerequisite would be the early establishment of a dialogue among practitioners of the different systems in order to eliminate prejudices and to help them to develop more acceptable attitudes. The demystification of several aspects of medicine would also facilitate communication between practitioners and the general population.

When all these desiderata have been fulfilled, and the merits of each system have been duly appreciated, public educational reforms could be introduced, and efforts made to integrate the products of the schools and training centres concerned into the public services.

**4. 8. Resume on integration.**

In summing up the factors that influence integration, the Meeting considered these factors in the following major contexts :

1. Public pronouncement.
2. Political policy decisions.
3. Professional attitudes.
4. Public sentiment.

The various levels at which action could be taken to control these operative factors are identified below.

**4. 8. 1. International.**

WHO could promote integration by :

1. Encouraging and collaborating with Member States to develop and formulate national policies directed towards integration.

2. Encouraging dialogue between the practitioners of the various systems.

3. Recommending the use of integrated teaching programmes in educational and training systems.

4. Promoting integrated research on traditional medicine.

**4. 8. 2. National.**

At the professional sphere, action could take the form of :

1. Promotion of dialogue,
2. Replacement of existing council or board members with more receptive people who would appreciate the need for change to meet present-day exigencies.
3. Collaboration in integrated research for mutual benefit.

**4. 8. 4. Community (the consumer).**

The use of integrated health services and primary health care should be effected.

## 5. Manpower Development

Manpower development for traditional medicine is vast and complex and requires consideration of the various systems of traditional medicine that are found in different cultural settings in developing countries.

In general it was considered desirable to mobilize the existing manpower categories for maximum utilization, since these workers have justified their existenee by the fulfilment of health care needs in their respective communities. The problem then would be one of orientation to modern concepts of health care delivery systems, validation of their professional claims, further development of their skills and efficiency, and their integration into public health systems, especially, in primary health care. In this respect retraining was considered essential.

However, it was observed that there was a positive indication for the training of new types of health personnel for the practice of traditional medicine and integrated medicine, so that the workers concerned might fulfil the new roles created in the expanded services in primary health care.

As sociopolitical acceptability was necessary for the successful utilization of new types of personnel and the survival of new health care programmes, it was agreed that all efforts should be made during the planning and execution phases of manpower development strategies to ensure that the various manpower categories—both old and new—were socially and politically accepted and publicly supported. The meeting decided to focus on the development of the existing manpower categories, as follows :

—orientation of professional health personnel to relevant systems of traditional medicine,

—orientation of traditional birth attendants, who are a widely known category, to modern maternal and child care,

—training in Ayurveda, Siddha, Unani and Yoga,

—training in Chinese traditional medicine, including acupuncture,

—integrated training of the various types of practitioner,

—consideration of psychosocial and cultural factors in training traditional manpower categories,

—training of instructors and supervisors.

### 5.1 The Cameroonian model

In the study deriving from experience in the United Republic of Cameroon, details were given of the factors which could be considered as major determinants of manpower of development for traditional medicine within the framework of primary health care.

The study took into consideration the sociopolitical climate of the country and indicated the phases of planned strategy to meet the manpower development goals.

Traditional medicine would naturally become the course content of the training programmes, Broad institutional objective were developed as guiding examples and these were further graded and subdivided to demonstrate the teaching units that could be used to achieve the transfer of certain levels of knowledge, for which testimonial certificates and diplomas could be awarded.

Two main options could be adopted in this approach. Formal educational systems could be used, but this had the attendant problems of heavy costs, the recruitment of instructors. and the determination of standards.

The second option was the exploitation and development of the informal traditional structures for the training of traditional medicine personnel. This had the advantage of complete involvement of the community. As the people were already well acquianted with their own systems, there would be no further problems regarding sociopolitical acceptability, utilization of the products such training, and the difficulties of cultural adaptation. The immediate advantage was that training within the traditional settings fulfilled the goals of primary health care as a part of total community development effort and fostered the spirit of self-reliance. The encouragements of traditional medicine practitioners to form clubs and societies for continuing self-education and training was suggested, together with the adoption of modern scientific teaching and learning methods and techniques.

## 5.2 Traditional birth attendants

The second model of developing traditional medicine manpower was the training of traditional birth attendants (TBAs). This is important category, since TBAs deliver about two-thirds of the babies in the world and are creditable sources of communication regarding planned parent-hood, maternal and child care and sexual behaviour. They are found in almost every village and in many urban neighbourhoods in Africa, Asia, and Latin America. They are about the only source of assistance for maternal and child care needs in many rural communities.

TBAs need to be developed so that the following requirements can be met :

—the reorganization of all existing health manpower for coordinated development,

—the provision of appropriate health care personnel for better coverage of deprived populations,

—the development of appropriate programmes and services within the context of primary health care.

The major aim of developing TBAs would be to incorporate them as a resource in the overall strategy of orientating all health programmes to the needs of the people. In some developing countries the use of non-conventional systems of health care will have to be seriously considered in order to reach the goal of total health care coverage by the year 2000.

**5.2.1. Characteritics of TBAs.**

TBAs are often regarded as a major man-power resources for the purposes of primary health care.

In communalistic societies, TBAs are the spontaneous answer to problems in the traditional setting, where people see health and allied problems very differently from the inhabitants of most western and industrialized countries. For instance, in communalistic societies, a wife is married to the family of her husband and to the entire community; a child is born to the family and to the community, not merely to one mother or to one couple. When a pregnant woman is in labour, the anxiety of the entire community is raised. Everyone is concerned about the outcome and offers all possible support. The whole community rejoices if the delivery is successful, and mourns in the case of an unfortunate outcome. "She is our wife; she is our mother; this is our child."

This is the sociopsychological climate in which TBAs function and which gives them relevance and status. Some TBAs have developed such very high levels of skills and have accumulated such a wealth of knowledge of traditional medicine that they now have much to contribute, even to modern obstetrical care.

**5. 2. 2. Problems of acceptance**

In countries where TBAs are recognized, considerable numbers have been trained and used in basic health services during the last 25 years. Such countries include Ghana, Indonesia, Malaysia, Pakistan, Philippines, Sudan and Thailand. The use of TBAs is considered part of the national health development plan. Where they are not yet recognized there is need for a change in health policy to retrain and integrate them. Such a situation calls for the reorientation of training programmes towards traditional medicine. The major problem is one of changing attitudes, and this applies both to the TBAs themselves and to the modern professional health workers, with whom they have to collaborate in a comprehensive health care system. Other problems include change of status and the demand for higher remuneration.

The following principles were suggested as guidelines :

1. Early involvement of TBAs in national health planning.

2. Allaying of existing suspicions.

3. Carrying out of research and studies to assemble information on the role, functions and conditions of TBAs

4. Adaptation of training programmes to functional needs with due consideration of local conditions.

5. Judicious selection of tasks that could effectively be delegated to TBAs and instruction in how to perform them.

6. Avoidance of sophisticated and inappropriate training or any other approach which might alienate them from their cultural setting.

7. Initial consideration of suitable methods of teaching, in view of the fact that TBAs are usually illiterate adults aged between 40 and 60 years. Since TBAs are already health practitioners, some of them might need training which aimed at the elimination of a few harmful practices, but it

would be judicious to conserve their ancient, harmless traditional approaches and practices, for as much as they possess very high cultural and psychological values which the "educated" expatriate may not readily appreciate.

**5. 2. 3. Soms prerequisites for training**

–TBAs need a mixture of formal and information training in their cultural context.

–Professional health workers with whom they have to collaborate also require orientation to ensure adequate support.

–Attention must be paid to the satisfactory training and preparation of supervisory staff to carry on educative supervision for continuous education.

–Teachers engaged in orienting TBAs must be experienced persons with a commanding personality and a practical knowledge of anthropology, adult teaching methodology and psychology.

–The aim should be complete integration of TBAs into community development action, and their training should be aligned with educational programmes for other health services such as maternal and child health, family planning and nutrition.

Although TABs are often spoken of as a phenomenon of developing countries, it is the experience in certain developed communities that there is now an increasing demand for domiciliary midwives for reasons of culture and economic constraints This is one of the main reasons for the enhancement of the role of TBAs in developing countries.

**5.2.4. Preservation of the cultural heritage**

This factor was constantly stressed as a means of ensuring the continuation of the traditional art, of avoiding unnecessary clashes and hostility, especially between the community and the health workers, and of giving time for the gradual and objective study of the inherent and potential qualities and properties of the skills and drugs used by TBAS. A good example was provided by Mexico, where TBAs have traditionally used spiders'webs for dressing the umbilical cord. This was viewed with disdain by "western" doctors as a dirty, harmful practice, but it was later discovered that the saliva of spiders (and the cobwebs themselves) contained antibiotic properties, which had been recognized for years by TABs.

**5. 2. 5. Psychosocial aspects of training TBAs and other traditional medical practitioners**

Much discussion centred on the psychosocial aspects of training, and the content of the practices of traditional medicine were classified as follows :

(1) Aspects of intrinsic and proved worth that could be encouraged and adopted to enrich universal medicine.

(2) Doubtful and unknown aspects of practices yet to be proved of value.

(3) Practices that are known to be dangerous and harmful and should therefore be discontinued.

In such classifications, caution is needed, particularly when procedures and techniques in the third category are considered. Each practice must be carefully studies and understood in its cultural context. The results of experiments initiated by UNESCO & UNICEF on cultural change through the years are

highly relevant to the promotion and development of traditional medicine. This whole programme was primarily concerned with the problem of cultural change, and the methods of approach to the training and integration of various personnel categories should be carefully studied before being applied.

**5. 3. Recommendations on useful approaches.**

(1) It was suggested that community health projects and behavioural sciences, already included in medical and allied curricula (in some cases core subjects), should be the channels through which traditional medicine could be introduced into educational programmes.

(2) Research in traditional medicine should be encouraged so that knowledge of the various aspects could be rapidly acquired.

(3) Studies of a general nature relating to traditional medicine could also be introduced as courses in secondary schools and colleges, in order to teach the subject in a wider cultural context.

**5.4. Evaluation**

Reference was often made to evaluation as a validating programmes, and the use of broad indices of health in evaluating the impact of the services offered by the various practitioners, including TABs, was recommended as a means of determining the effectiveness of the different systems. For instance, one could use maternal mortality, infant mortality, and morbidity rates for specific diseases such as neonatal tetanus to compare the effectiveness of TBAs with that of official basic health services staffed by professional midwives. If the latter services produced lower mortality and morbidity rates among their patients. In one situation, an indication of the valuable work done by the TABAs is the higher promotion of women who prefer home delivery supervised by TBAs, .......even after attending prenatal clinics staffed by professional health personnel.

When it comes to proving with mortality indices the effectiveness of a service, even TBAs would forego certain traditional practices in order to improve the quality of their own services.

**5.5 Guiding principles for policy on the training of traditional medicine manpower.**

There is a need for scientific planning, utilization of modern techniques and methods of management for execution, and a clear definition of objectives for the development of the manpower to meet the needs of the community.

Since manpower categories in traditional medicine must vary according to the nature of the different cultural contexts, it was recommended that each natin should study its own peculiar situation and develop approaches, techniques and methods that would best satisfy its particular needs and solve its local health problems. China and India have developed traditional medicine and trained their various categories of health personnel with considerable success.

**5.6 Institutional training.**

Efforts in the development of various types of health service have created the need for new types of school. In Egypt, for exam-

ple, three institutions were identified : (a) the Institute of Natural Therapy; (b) the Institute of Cultural Heritage; and (c) the Institute of African Studies.

In the USA, Chinese acupuncture has been integrated into the medical system in some states, and courses are now being offered in the State of New York to doctors of medicine.

Manpower development for traditional medicine could therefore take various forms and produce personnel, ranging from graduate practitioners of traditional medicine to those with only limited skills.

**5.7 Suggestions for the removal of obstacles.**

—Popular education by means of journals, such as the November 1977 issue of World Health specially devoted to traditional medicine, should be undertaken at regional and national levels, to share and exchange knowledge in this field of manpower development.

—Co-operation between countries could assist in solving common problems.

—Seminars, conferences, workshops, and the use of mass media could also be used to educate both health workers and the general public on the relevant problems.

The meeting felt that, despite existing obstacles, and the time was opportune for mobilizing all the forces of traditional medicine for primary health care for the benefit of the people. If China could succeed within one generation, then the whole world could likewise achieve some success in providing the entire population with adequate health care services.

## 6. RESEARCH PROMOTION AND DEVELOPMENT.

Research priorities for the promotion and development of traditional medicine would differ for each country and cultural setting. The Meeting therefore decided to study the various approaches by using the case studies described below.

**6.1 Mexican experience**

In Mexico, priority is given to operational work which is oriented towards the validation or invalidation of popular knowledge with the aid of scientific research. This approach permits close collaboration with the traditional healers and their systems of practice, with special attention to medicinal plants already in use in traditional medicine. It permits feedback to the traditional healers themselves and to the community in general. For instance, it reveals any harmful side-effects of medicinal plants so that these can be either eliminated from practice or corrected as the research findings suggest. Experimental pharmacological research is designed to test water extracts, infusions plants etc., as used in traditional medicine, to establish the effectiveness and toxicity, if any, of popular remedies. The compilation of a basic herbal of scientifically tested medicinal plants, with concurrent medical education of the practitioners of traditional medicine, is proposed. The plant material under study depends on priorities related to national health problems and to the most common popular remedies in use.

The Mexican group began operations with the collection and study of national literature on medicinal plants that has accumulated during the last three centuries ("dead information") and then proceeded to study the plants in present-day use ("living information"), the results of which formed the basis of a computerized data bank of Mexican medicinal flora.

Local journals immediately publish the results of experimental and field research findings at several information levels.

The work teams are multidisciplinary, consisting of physicians, sociologists, anthropologists, botanists, chemists, pharmacologists, traditional healers, and other supporting staff. This approach has proved very effective.

**6. 2. Nigerian experience**

Experience from Nigeria suggested the following principles for research in traditional medicine :

—The sociocultural basis of traditional medicine in research should be recognized.

—It was important to achieve collaboration between traditional medicine and modern medicine for expansion, efficiency and integration.

—The occult aspects of traditional medicine were not to be ignored; they were, however, difficult to develop now, especially as such attributes could not be freely transferred.

—More research centres needed to be created, and a multidisciplinary approach was preferred.

—Research in traditional medicine should have as its goal the transfer of results to the traditional healers and the health profession in order to improve the efficiency of services and to eliminate harmful practices.

—Maintenance of traditional medicinal drugs in their original forms of preparation, after scientific validation, was very much to be encouraged.

—Three task forces were recommended at the national level for the collection of information, research and the application of information and research findings for the development of traditional medicine.

**6. 3. Chinese experience**

The Chinese model of applying modern scientific research to the nation's traditional medicine, which includes acupuncture and herbology was highlighted. For example, acupuncture has been used for many centuries, but it has been through scientific research, including the basic modern sciences of anatomy, physiology, biochemistry and electronics, that the mechanisms of function are now better understood and the equipment and techniques have been perfected for the treatment of a wide range of diseases.

One advantage of acupuncture is that it uses simple equipment for service and research and is therefore readily applicable in primary health care. Acupuncture anaesthesia is useful in surgery, including brain and heart surgery, and has also proved effective in paediatric surgery.

The lesson learnt from the Chinese experience is that research on traditional medicine should be geared to the feasibility of promoting and developing that traditional system in a given area, mobilizing scientists

locally and, where necessary, with international collaboration.

**6. 4. Guidelines for research**

Research in traditional medicine in any country should begin with a review of literature on the subject. Contributory fields for exploration are sociology, anthropology, botany, and therapeutics.

**6. 4. 1. Manpower for research**

1. Local workers, including both professional health personnel and traditional healers, scientists, and nonmedical personnel, should form the nucleus for research in traditional medicine.

2. Training programmes should be developed locally and, where necessary, in collaboration with international centres. These training programmes will need experts in a variety of disciplines, emanating from diverse institutions and countries.

3. *A team of experts* consisting of scientists and health workers should be organized to initiate and lend support to projects in various countries, in collaboration with local workers. This team would also serve as a vehicle for the transfer and exchange of scientific techniques.

**6. 4. 2. Research centres.**

With the help of local governments, collaborating centres should be designated and coordinated by international bodies such as WHO to delimit geographical regions and establish scientific priorities in traditional medicine.

**6. 4. 3. Research programmes (e. g., medicinal plant research)**

These programmes should contain the following phases or research components :

1. Literature review and nomenclature.

2. *Priorities in drug plant research.* The priorities should be locally determined in accordance with local disease patterns and public health problems.

3. *Surveys and cultivation of medicinal plants.* Such research is necessary for the continuation of practice and the drug industry. It may involve other investigations such as soil analysis and study of climatic conditions, ecology and related factors.

4. *Processing of medicinal plants.* Procedures of sorting, washing, slicing, drying and storage of medicinal plants are important for current practice, industrial development and conservation of natural sources. In traditional medicine, medicinal plants are customarily water-extracted. Modern pharmaceutical procedures often use sophisticated equipment, chemicals and temperature control for extraction. For analytical research, the application of science and technology is imperative.

5. *Clinical research.* This is necessary for drug trails and validation; it is better organized in association with hospital or treatment centres. Drug trials on animals should be an extension of these studies. It needs to be emphasized that the biological properties of certain medicinal plants should first be tested with the preparations used by traditional healers. The effectiveness of some drugs could be lost when chemical principles are extracted from the crude drugs and then tested. This procedure is mandatory for the screening and verification of drugs derived from traditional medicinal plants.

6. *Basic scientific researeh.* Since the development and promotion of traditional medicine is ultimately aimed at the benefit of humanity as a whole, all relevant professional and scientific points of view should be included in the discussion. However, since most developing countries, where primary health care needs to be promoted, are pressing to achieve target dates, basic scientific research goaded by academic curiosity must be given low priority, partly on account of these countries' meagre resources.

7. *Information centres.* Appropriate mechanisms must be developed for the collection and dissemination of research information to potential users.

**6.5 Some examples of current research projects**

**6 5 1. Evaluation of traditional medicines**

WHO has initiated a research project in which a review of literature assembles information on the evaluation of traditional medicines for their efficacy and safety as determined by evaluation on a scientific basis.[1]

**6 5. 2. The WHO Special programme of Research, Development and Research Training in Human Reproduction**

This WHO programme is involved in the study of indigenous medicinal plants that are used for fertility regulation. A task force has been created and is carrying out research in six centres located respectively in Brazil, Hong Kong, Republic of Korea, Sri Lanka, United Kingdom and USA.

The following activities have been carried out in connection with the preparation of guidelines for the isolation of active compounds from selected plants :

—Designing of sample questionnaires for investigating the field use of indigenous plants for fertility regulation.

—preparation of suitable dosage forms of plant extracts for pharmacological evaluation in animals,

—$LD_{\frac{1}{50}}$ determination of plant extracts,

—evaluation of plant extracts for antifertility effects.

This Special Programme anticipates co-operation with the WHO Working Group on Traditional Medicine in the use of indigenous plants for fertility regulation.

**6. 5. 3. WHO Special programme for Research and Training in Tropical Diseases.**

Another WHO Special Programme—for research on six selected endemic tropical diseases (Maleria, schistosomiasis, filariasis, leprosy, trypanosomiasis, and leishmaniasis)—is investigating the possibility of finding "new tools" for their treatment and control. The diseases in question constitute a serious menace in tropical countries, and it is hoped that traditional and folklore medicine might offer some leads to their control, as well as provide remedies which are cheap and easily available to the people. Collaboration is therefore being sought with the Working Group on Traditional Medicine for research on these specific problems.

---

1. Selected Bibliography on Evaluation of Traditional Medicines for Safety and Efficacy (unpublished document OMH/76.3)

1. The lethal dose for 50% of the experimental animals.

### 6.5.4. Drug dependence.

WHO is also concerned with drug dependence, a serious problem in both the developed and the developing countries. Mention was made of the use of traditional medicine methods to control alcoholism, and the view was expressed that such methods might provide a solution to this problem, It was stated that acupuncture could influence drug dependence states. It was therefore suggested that the Working Group on Traditional Medicine should also focus its attention on the problem of drug dependence.

### 6.5.5 Research on chemotherapy

It was observed that although cancer did not constitute a priority health problem in the tropical countries of Africa and elsewhere for the moment, it will assume an important place when the common communicable diseases, which at present have high priority, are well under control or even eradicated. The generally short life expectancy contributes to the current relatively low cancer incidence, but with improvements in health conditions greater proportions of the population will reach the age when cancer becomes an increasing risk. There are already some cancers exceptionally common in Africans—e.g., primary liver cancer and Burkitt's lymphoma. The interest of the Working Group on Traditional Medicine is being invited on the subject of cancer research. It is possible that there are some traditional remedies which can be developed for the cure of cancer. Collaboration is also being sought for increased research in cancer chemotherapy.

### 6.5.6. Research on rheumatoid arthritis

The successes already achieved by the research groups involved in evaluating the efficacy of traditional medicinal remedies in rheumatoid arthritis in India again confirmed the great potential of traditional medicine in the future of world medicine.

### 6.5 7. Research and other diseases

Successes have been achieved with other health problems, such as cardiovascular diseases, diabetes mellitus, various infectious diseases, burns, acute abdominal ailaments, bone fractures, kidney stones and gallstones.

Similar successes can be expected with other diseases. Work is already in progress with a view to selecting essential traditional medicinal plants and medicaments that could be promoted for wider use in basic health services in countries.

## 7. RECOMMENDATIONS.

In making its recommendations, the Meeting took into consideration the fact that traditional systems of medicine remain the major source of health care for more than two-third of the world's population, and that impressive progress has been made in certain developing countries, such as China and India, through the integration of traditional with western systems, and the application of modern science and technology to the promotion and development of traditional medicine Resolution WHA 30.49, urging interested Govts. to give adequate importance to the utilization of their traditional systems of medicine, was also given due consideration, as were the contents of the Organization's magazine World Health, whose November

1977 issue, as stated earlier, was devoted to the subject of traditional medicine.

The following recommendations were made :

**7. 1. General**

The World Health Organization should use the possible resources at its command to continue to promote and develop traditional medicine. This can be done :

(1) By promoting the formulation and declaration of specific national policies for the encouragement, support and development of traditional systems of medicine indigenous to the Member States, and by undertaking administrative, organizational and budgetary commitments to meet this objective. The elements for such a policy should include the legal recognition of traditional medicine, and the integration of traditional medicine into national comprehensive health care systems, including primary health care.

(2) By establishing a committee of experts which would advise on the programmes of promotion and development of traditional medicine, monitor and co-ordinate research efforts, evaluate programmes for replanning and the proper reorientation of strategies. This committee should be composed of persons specialized in the different areas of traditional medicine from the various WHO regions.

**7. 2. National and international policy support for the promotion of traditional medicine.**

(1) Efforts to promote international co-operation between developed and developing countries, and particularly technical co-operation among developing countries (TCDC), in the field of traditional medicine are essential.

(2) National Governments should favour the policy of integrating traditional medicine into their general comprehensive health care system in order to facilitate the realization of health care goals.

(3) The organizers of the forthcoming International Conference on Primary Health Care, at Alma-Ata, USSR, should consider the importance and necessity of fully utilizing and developing the vast manpower currently existing, in the form of traditional medicine practitioners, in order to make effective health care available to underserved populations.

4. WHO should explore the possibility of convening an international conference on traditional medicine specifically to discuss the utilization of traditional medicine in primary health care systems as a means of helping to fulfil the objective of health care for all people by the year 2000.

**7. 3. Collection and dissemination of information pertaining to traditional medicine.**

Lack of information was considered the greatest initial barrier to assessing the feasibility of national health plan. Organized efforts should therefore be made without further delay to ensure the collection of information and dissemination through :

1. Promotion of collection of basic information by surveys on :

—Traditional medicine personnel categories in practice (census),

—traditional medicine centres or functioning services.

—Utilization of practitioners of traditional medicine in health services.

—diseases known to have been successfully treated by traditional healers,

—traditional medicine drugs, preparations or medicaments, traditional medicine pharmacopoeias,

—determinants of manpower needs for primary health care services,

—collaborating factors and supportive infrastructure for the promotion of traditional medicine,

—literary resources to gather information and compile bibliographies on traditional medicine.

2. Special meetings, such as conferences, seminars and workshops,

3. Publications, such as journals and bibliographies.

**7-4. Educational Programme.**

Following the collection and analysis of the relevant information, educational programmes could be planned and executed with the following aims :

1. To educate the community on new health policy and to enlist its support and co operation.

2. To change the unfavourable attitudes of members of the health and allied professions.

3. To disseminate information on traditional medicine for use and application.

4. To assure the people that the new policies and approaches are in support of the practice of traditional medicine, and that they are aimed at enhancing it for safety, efficacy and wider use at low cost.

5. To assure traditional medicine practitioners that they will be the promoters and dispensers of the new health care system in their own cultural setting.

6. To stress that where traditional medicine drugs have been studied and adverse side-effects (eatrogenic effects)eliminated, the drugs should be produced in the same or similar form for general use.

**7. 5. Application of traditional medicine to primary health care.**

The promotion of traditional medicine in health care services and especially in primary health care should be intensified by :.

1. Application of appropriate technology to health care improvement based on simplicity, safety, efficacy and availability at low cost.

2. Selection of lists of essential plants, drugs, or techniques employed in traditional medicine, for use in public health services and particularly in primary health care.

3. Approval of proved useful methods and techniques, such as acupuncture and Yoga, for use in public health services.

4. Integration of traditional medicine and western medicine in training programmes at various levels.

5. Introduction of traditional medicine into public hospitals, dispensaries and health centres. The functions of traditional medicine practitioners should be carefully co-ordinated to ensure efficiency.

6. Incorporation of self-evaluating mechanisms for continuous evaluation, and feedback in order to improve the techniques or to reorient the programmes whenever necessary.

**7. 6. Manpower development**

Co-ordinated steps should be taken by Members States in collaboration with WHO to promote manpower development in traditional medicine by :

1. Training the various categories of traditional medicine workers (including those with limited skills), such as traditional birth attendants and bone-setters.

2. Encouraging traditional medicine practitioners to form clubs or societies as a means of checking harmful practices, eliminating quacks and charlatans, assuring continuous informal education, cultural loyalty, and the conservation of a high level of professional ethics and practice.

3. Organizing educational activities in traditional medicine either by establishing new training centres or by revising existing curricula to include subjects related to traditional medicine.

Lastly, technical education boards, chairs for traditional medicine in medical schools, and new institutes could be created, and a directorate of traditional medicine could also be set up in health ministries.

**7. 7. Multidisciplinary research programme**

A planned multidisciplinary research programme should be formulated and implemented in collaboration with Member countries, as follows :

1. Operational research on traditional medicine in health care systems.

2. Various aspects of medicinal plant research, such as plant identification, classification, phytochemistry, pharmacology, and laboratory and clinical trials for therapy.

3. Studies in psychosocial and cultural aspects and behavioural patterns.

4. Manpower development and health team training, including development of effective training methods.

5. Role of traditional medicine in other fields of medical research, such as fertility regulation, treatment of infertility, control of tropical endemic diseases, cancer therapy, the care of drug-dependent persons, and the ageing process.

6. Validation of popular traditional medicine therapies.

7. Promotion of research activities on the integration of various systems of medicine.

8. Establishment of national institutes for research into traditional medicine.

Films on Acupuncture Anaesthesia and Chinese Herbology. Two films were shown on developments in traditional medicine in China during the last decade. The following points that emerged were of significance to the Meeting's discussions :

—The importance of applying modern science and technology in research on traditional medicine.

—the extent to which integration of traditional and western medicine could contribute to and even revolutionize health care.

—the tremendous potential for healing possessed by the properties of the plants.

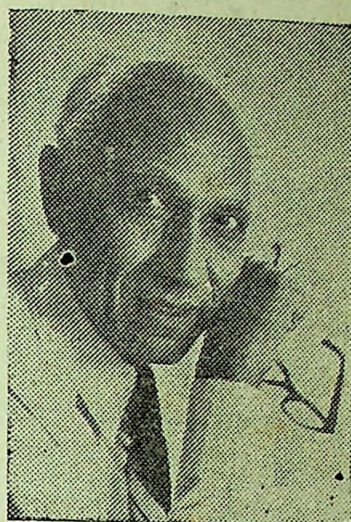
—the importance of teamwork and good team spirit in the organization of basic health services.

—the need to give the health of the rural masses the important place it deserves,

—the need for a spirit of self-reliance in planning total community action programmes for development.

# सामयिक चर्चाएँ

## "सचित्र आयुर्वेद" के लेखक रामेश बेदी पुरस्कृत



भारत सरकार के वन अनुसन्धान संस्थान एवं महाविद्यालय, देहरादून ने वानिकी साहित्य के सम्वर्द्धन के लिए पुस्तकों की प्रतियोगिता आयोजित की थी । इसमें १९७३ से १९७७ तक प्रकाशित पुस्तकों पर पुरस्कार देने के लिए विचार किया गया था । निर्णायक मण्डल ने श्री रमेश बेदी की 'वन्य जीवों का संसार' पुस्तक को सर्वश्रेष्ठ पुस्तक घोषित किया है । वन अनुसन्धान संस्थान के दीक्षांत समारोह में श्री बेदी को पांच हजार रुपये का नकद पुरस्कार दिया गया ।

श्री रमेश बेदी द्वारा लिखित वनस्पतियों के सम्बन्ध में पच्चीस और जीव-जन्तुओं के बारे में बारह पुस्तकें छप चुकी हैं। आयुर्वेद महासम्मेलन, उत्तर प्रदेश सरकार तथा भारत सरकार ने अनेक पुस्तकों पर पुरस्कार प्रदान किये हैं। श्री बेदी इन विषयों पर पत्र-पत्रिकाओं में १९३४ से लेख लिख रहे हैं, रेडियो पर प्रसारित कर रहे हैं और दूरदर्शन पर भी कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। जन-साधारण को इन विषयों की जानकारी देने का उन्होंने स्तुत्य कार्य किया है ।

१९७८ की सरदियों में श्री रामेश बेदी को हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दिल्ली ने एक विशेष समारोह में उनकी वैज्ञानिक विषयों में लेखन की विशिष्ट सेवाओं के कारण सम्मानित किया था ।

श्री रामेश बेदी कुशल फोटोग्राफर हैं, साहसिक पर्यटक हैं, दमदार पर्वतारोही हैं, जीवदया और प्रकृति के संरक्षण के प्रबल समर्थक हैं और आयुर्वेद के उन्नायक हैं। वनस्पतियों की खोज में उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है । आयुर्वेद के प्रमुख अंग वनस्पति-शास्त्र का संदेश देने वे यूनेस्को की ओर से इण्टरनेशनल सिम्पोजियम में कैण्डी (श्रीलंका) गये थे । भूटान में उन्होंने वनस्पति सर्वेक्षण का जो अभूतपूर्व कार्य किया उसका संक्षिप्त विवरण "सचित्र - आयुर्वेद" के प्रेमी पाठकों के समक्ष हमने प्रस्तुत किया है ।

श्री बेदी ने जीव-जन्तुओं पर जो पुस्तकें लिखी हैं, उनमें अधिकतर ऐसे जीव हैं जिनके मांस और वसा आदि पदार्थ आयुर्वेद में काम आते हैं। इन जीवों का परिचय देते हुए श्री बेदी ने इन पदार्थों के चिकित्सा-सम्बन्धी उपयोगों का भी उल्लेख किया है । आयुर्वेद के विद्वानों और छात्रों को जीव-जन्तुओं का सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन पुस्तकों को पढ़ने से लाभ होगा ।

श्री बेदी ने अपनी कृतियों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। 'सचित्र आयुर्वेद' परिवार की ओर से हम उनका अभिनन्दन करते हैं ।

—सम्पादक

# आलोचक की दृष्टि में

**आयुर्वेद आन्वीक्षिकी : सम्पादक-वैद्य प्रभुदत्त शर्मा, वैद्य सत्यनारायण शर्मा, प्रकाशक : राजस्थान आयुर्वेद अनुसन्धान मण्डल, हवामहल, जयपुर-१**

आलोच्य पत्रिका राजस्थान आयुर्वेद अनुसंधान मंडल, जयपुर द्वारा प्रकाशित हुई है। इसका प्रकाशन गत दो वर्षों से हो रहा है। पत्रिका में मुद्रित सामग्री पर एक दृष्टि डालने पर किसी भी विज्ञ वाचक को पत्रिका की उपयोगिता के सम्बन्ध में शंका नहीं हो सकती है। प्राय: सभी लेख अनुसन्धान एवं गवेषणापूर्ण हैं। आयुर्वेदीय अनुसन्धान की गतिविधियों एवं प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में भी पत्रिका में अच्छी सामग्री प्रस्तुत की गयी है। पत्रिका में प्रकाशित कुछ लेख जैसे—अनुसन्धान की अर्वाचीन पद्धति और आयुर्वेद, इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण प्रक्रिया-विषयक वैदिक विवेचन, संक्षिप्त रोग परिचय, A concept of pitta (Jatharagni) प्रभृति उल्लेखनीय हैं। सुधी पाठक इन लेखों के माध्यम से पर्याप्त लाभ उठा सकेंगे। स्वच्छता, शुद्धता की दृष्टि से भी प्रकाशन सराहनीय है। यत्र-तत्र प्रूफ-सम्बन्धी अशुद्धियाँ खटकती हैं। पत्रिका का बहिरंग भी धन्वन्तरि के चित्र सहित सर्वथा आकर्षक कहा जायगा। सम्पादक मण्डल ऐसे सुन्दर प्रकाशन के लिए धन्यवादार्ह है। —शाण्डिल्य

**आयुर्वेद-विकास (कायाकल्प चिकित्सांक) : सम्पादक : शम्भुनाथ बलियासे 'मुकुल', संचालक : डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) प्रा० लि०, ८।३ आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२, मूल्य—सात रुपए।**

डाबर प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र 'आयुर्वेद विकास' का नवम्बर १९७८ अंक 'कायाकल्प चिकित्सांक' के रूप में प्रकाशित हुआ है। डाबर अपनी परम्परा के अनुसार प्रतिवर्ष धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर 'आयुर्वेद सन्देश' का एक विशेषांक प्रकाशित करता है—प्रस्तुत विशेषांक भी उसी परम्परा के अन्तर्गत एक संग्रह योग्य प्रकाशन माना जाना चाहिए।

कहना न होगा कि कायाकल्प आयुर्वेद की अत्यन्त प्राचीन चिकित्सा-विधि है और पुरा काल में कायाकल्प के कितने ही दृष्टान्त मिलते हैं। रसायन के योग जरा-जीर्ण शरीर में तारुण्य जैसी शक्ति एवं ओज उत्पन्न करने में सफल सिद्ध हुए हैं। खेद है कि कायाकल्प चिकित्सा-विधि के चमत्कार परवर्त्ती काल में कम क्या नहीं के बराबर देखने में आए। यदि अनुसंधान द्वारा पुन: इस विशेष चिकित्सा-विधि को सक्षम बनाया जा सके तो निश्चय ही एक बड़ी बात होगी और आयुर्वेद पुन: अपनी लुप्त गरिमा को प्राप्त कर सकेगा है। इस दृष्टि से पुन: इस चिकित्सा विधि के सम्बन्ध में विशेषांक प्रकाशित करके विद्वान संपादक ने एक प्रशंसनीय कार्य किया है।

विशेषांक में कायाकल्प-विषयक अधिकारी विद्वानों के ४४ लेख हैं। ये सारे लेख कायाकल्प चिकित्सा-विधि पर साङ्गोपाङ्ग प्रकाश डालते हैं और तत्सम्बन्धी प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करते हैं—साथ ही आयुर्वेद की इस लुप्तप्राय चिकित्सा-विधि को सुधी पाठकों के समक्ष पुन: उजागर करते हैं। इस सुन्दर प्रकाशन का अवश्य सर्वत्र स्वागत होगा। स्वच्छता, शुद्धता प्रभृति दृष्टियों से भी विशेषांक का प्रकाशन सुन्दर हुआ है।

—शाण्डिल्य

**आपत्कालिक निदान एवं चिकित्सा: लेखक: श्री अनन्तराम शर्मा, प्रकाशक: ऋषिकुल राजकीय आयुर्वेद कालेज, हरिद्वार, मूल्य : २०-००**

प्रस्तुत आलोच्य पुस्तक में आपत्कालीन अवस्थाओं में आयुर्वेद चिकित्सा किस हद तक सक्षम है, के सम्बन्ध में विद्वान लेखक ने सामग्री एकत्रित की है और यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि पुराकाल में आपत्कालीन दशाओं में चिकित्सा की पूरी विधि आयुर्वेदवाङ्मय में मौजूद है। किन्तु इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान समय में आत्ययिक चिकित्सा की दृष्टि से आयुर्वेद चिकित्सक एलोपैथी के चिकित्सकों की तुलना में सर्वथा निरुपाय एवं अक्षम ठहरते हैं। प्राय: ही Emergency में आयुर्वेद चिकित्सक अन्ततोगत्वा एलोपैथी की शरण में रोगी को भेजने के लिए बाध्य हो जाते हैं। किन्तु ऐसी भी बात नहीं है कि आत्ययिक चिकित्सा का आयुर्वेद में वर्णन नहीं है। जैसा

# पाठकों के पत्र

## चिकित्सकों की विधि का पालन क्यों नहीं ?

प्रिय संपादक महोदय, सचित्र आयुर्वेद,

सम्पूर्ण भारतवर्ष में आयुर्वेदिक यूनानी चिकित्सकों से सम्बन्धित विधि पर उचित ढग से ध्यान नहीं दिया जा रहा है, कुछ प्रमुख उपबंध जिन पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है, निम्न प्रकार हैं।

१. भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् अधिनियम १९७० जो संपूर्ण भारतवर्ष के लिए भारतीय चिकित्सा का एक केन्द्रीय रजिस्टर रखे जाने तथा तत्संबन्धी विषयों का, उपबन्ध करने के लिए लागू किया गया है। इस अधिनियम की धारा २५ के अन्तर्गत भारतीय चिकित्सा का केन्द्रीय रजिस्टर तैयार नहीं हो सका है । प्राप्त जानकारी के अनुसार राज्य के बोर्डों द्वारा उनके राज्य रजिस्टर की प्रतिलिपि न भेजे जाने के कारण ही विलम्ब हो रहा है। इस अधिनियम को लागू हुए कई वर्ष हो चुके हैं परन्तु केन्द्रीय रजिस्टर का तैयार न हो पाना विधि का पालन नहीं किया जाना ही कहा जा सकता है । इसी प्रकार इस अधिनियम की धारा २६ के अन्तर्गत चिकित्सकों के संबंध में वृतिक आचरण भी नहीं बने हैं ।

२—लगभग प्रत्येक राज्य के अधिनियम में यह प्रावधान है कि राज्य रजिस्टर का प्रकाशन किया जायेगा तथा मध्य प्रदेश आयुर्वेदिक यूनानी तथा प्राकृतिक चिकित्सक व्यवसायी अधिनियम १९७० के अन्तर्गत बने नियम मध्य प्रदेश आयुर्वेदिक यूनानी तथा प्राकृतिक चिकित्सा व्यवसायी नियम १९७० के नियम ३४ में राज्य के व्यवसायियों की सूची के प्रकाशन के उपबन्ध है एवं अधिनियम के अनुसार यह बोर्ड के गठन के ३ वर्ष के अन्दर हो जाना चाहिए परन्तु यह प्रकाशन नहीं हुआ है । सिर्फ म० प्र० में ही नहीं, अन्य कई राज्य भी रजिस्टर के प्रकाशन में विलम्ब कर रहे हैं । कुछ राज्य, जैसे उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान ने रजिस्टर का प्रकाशन अवश्य किया है ।

३—देश के प्रत्येक राज्य के प्रभावशाली कानून में चिकित्सकों के वृत्तिक आचरण बनाये जाने के उपबन्ध हैं पर वृत्तिक आचरण नहीं बनाये जा रहे हैं। इसी प्रकार अनरजिस्टर्ड चिकित्सकों को चिकित्सा व्यवसाय करने से प्रतिबन्ध के उपबन्ध होने के बावजूद भी इस पर उचित ढंग से ध्यान नहीं दिया जा रहा है। यह खेद की बात है । इस ओर अधिकारियों का ध्यान जाना चाहिए ।

**जहीर मोहम्मद शेख, एडवोकेट,**
सम्पादक चिकित्सक मार्ग दर्शिका, खैरागढ़राज ।
पीन ४९१८८० : (म० प्र०)

---

कि विद्वान लेखक ने लिखा है, आपत्कालिक निदान एवं चिकित्सा-सम्बन्धी प्रसंग आयुर्वेद वाङ्मय में भरे हैं—केवल आवश्यकता है उसे ढ़ूंढ निकालने की। संतोष का विषय है कि इसी दृष्टि से लेखक ने इस ग्रंथ की रचना की है और आयुर्वेद के पाठकों के लिए सुलभ किया है। आशा है, इस ग्रन्थ-रत्न का समुचित स्वागत होगा ।

—शाण्डिल्य

# सरकारी अधिसूचनाएँ

भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्
नई दिल्ली-110055

## केन्द्रीय परिषद् द्वारा भारतीय चिकित्सा के चिकित्साभ्यासियों का सीधा पंजीयन ।

भारत में विभिन्न राज्यों में चिकित्सा-कार्य में रत आयुर्वेद, यूनानी और सिद्ध चिकित्सा-पद्धति के चिकित्साभ्यासियों का भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद अधिनियम, 1970 की अनुसूचियों में सम्मिलित मान्य अर्हताओं के आधार पर सीधा पंजीयन प्रारम्भ करने के लिए केन्द्रीय परिषद् के कार्यालय को निदेश दिया गया है ।

जो चिकित्साभ्यासी स्वयं को केन्द्रीय परिषद् से पंजीकृत कराने के इच्छुक हैं उनसे अनुरोध है कि वे इस आदेश के प्रकाशन की तिथि से 15 दिन के अन्दर विहित प्रपत्र मंगाने के लिए अधोहस्ताक्षरकर्ता को आवेदन करें तथा साथ में स्वयं का पता लिखा हुआ और 55 पैसे का डाक टिकट लगा हुआ 10 x 27 से० मी० साइज का लिफाफा भेजें ।

(सतीश चन्द्र शर्मा)
निबन्धक एवं सचिव
भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्
1-ई/6, स्वामी रामतीर्थ नगर,
नई दिल्ली-110055

CENTRAL COUNCIL OF INDIAN MEDICINE
NEW DELHI–110055

**Direct Registration of Practitioners of Indian Medicine by the Central Council**

The office of the Central Council has been directed to start the direct registration of practitioners of Ayurveda, Unani and Siddha Systems of Medicine practising in different States in India on the basis of recognised qualifications included in the schedules to the I. M. C. C. Act, 1970.

The practitioners who are desirous of getting themselves registered with the Central Council are requested to apply for the prescribed proforma by sending a self-addressed envelope (size 10" × 27" cm) affixing a stamp of 55 paise to the undersigned within 15 days from the date of publication of this order.

(S. C. SHARMA)
Registrar & Secretary
Central Council of Indian Medicine
1E/6 Swami Ram Tirath Nagar,
New Delhi--110055




## अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

### जयपुर में मई में होना निश्चित

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का ५०वाँ अधिवेशन जयपुर में हो रहा है। उसके साथ-साथ राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन का स्वर्ण जयन्ती - महोत्सव भी मनाया जायेगा। इसी अवसर पर स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ का विमोचन राष्ट्र के महान व्यक्ति द्वारा करवाया जायेगा। ग्रन्थ में भारत के उच्च कोटि के विद्वानों के आयुर्वेद विषयक अनुसंधानात्मक लेख होंगे तथा राजस्थान व भारत के वैद्यों का संक्षिप्त जीवन चरित व फोटो भी होंगे। इसी अवसर पर भारत के (राजस्थान के विशिष्ट) वयोवृद्ध वैद्यों का राष्ट्र के महान व्यक्ति द्वारा सम्मान करवाया जायेगा।

अखिल भारतीय आयुर्वेद सेमिनार जिसमें राष्ट्र के उच्च कोटि के आयुर्वेदज्ञ भाग लेंगे, का भी आयोजन इस अवसर पर किया जा रहा है।

उपरोक्त सभी कार्यों को सफल बनाने के लिए वैद्य सीताराम मिश्र, अध्यक्ष राज० प्रदेश वैद्य सम्मेलन, शीघ्र ही कार्यकारिणी की बैठक बुलाकर स्वागतकारिणी समिति की घोषणा करेंगे।

### नाड़ी विज्ञान अनुसन्धान संस्थान का वार्षिकोत्सव

दिनांक १-२-७९ वसन्तपंचमी को नाड़ी विज्ञान अनुसन्धान संस्थान का चौदहवाँ वार्षिक अधिवेशन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के द्रव्य गुण विभागाध्यक्ष एवं आयुर्वेद संकायाध्यक्ष श्री प्रियव्रत शर्मा की अध्यक्षता में मनाया गया।

सर्वप्रथम वैदिक मंगलाचरण श्री मणिराय शर्मा ने किया। संस्थान का वार्षिक विवरण श्रीराम कैलाश जी ने पढ़ा।

संस्थान के अध्यक्ष श्री कैलाशनाथ जैतली ने इस वर्ष "नाड़ी विज्ञान की गतियाँ और उपमा-उपमेय शब्द" नामक शोधपत्र प्रस्तुत किया, इन्होंने इस शोध-पत्र में नाड़ी, उसकी गतियाँ और उसका उद्‌गम स्थल हृदय, धमनी तथा नाड़ी में उपमा उपमेय वाचक शब्दों का मौलिक विवेचन आर्षग्रन्थों के आधार पर किया।

आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रवाचक श्री हरिहरनाथ उपाध्याय ने कहा कि नाड़ी विज्ञान बड़ा ही दुरूह विषय है, उस पर श्री जैतली जी का गंभीर विवेचन स्तुत्य है। समालोचनात्मक विवेचन करते हुए उन्होंने कहा कि हमारे गुरुजी श्री सत्यनारायण शास्त्री जी के त्रिदोषात्मक नाड़ी के अनेक चमत्कार देखे, किन्तु श्री जैतली जी पंचभूतात्मक नाड़ी पर तथा दूतनाड़ी पर भी अनुसंधान-कार्य कर रहे रहे हैं। भगवान् इनको सफलता दें।

श्री ताराशंकर जी वैद्य ने कहा कि काय चिकित्सा में निदान के साधनों में नाड़ी की व्यावहारिकता और श्रेष्ठता चली आ रही है। इसका पठन-पाठन और अनुसन्धान आयुर्वेदिक संस्थाओं में नहीं हो रहा है। इसका मुझे खेद है। श्री जैतली का यह प्रयास बहुत ही प्रशंसनीय है कि इन्होंने छात्रों में भी नाड़ी विज्ञान की परम्परा को कायम रखा है।

नाड़ी-विज्ञान अनुसन्धान के छात्र श्री ओम् प्रकाश मिश्र ने श्री जैतली जी द्वारा प्राप्त ज्ञान को विद्वानों के समक्ष बड़ी मनमोहक शैली में रखा।

अन्त में अध्यक्ष-पद से श्री प्रियव्रत शर्मा ने कहा कि जैतली जी का नाड़ी विज्ञान पर अनवरत चौदह वर्षों का प्रयास सराहनीय है। इनका "नाड़ी-विज्ञान अनुसंधान संस्थान" भारतवर्ष की एकमात्र संस्था है। मैं उनका इस ओर ध्यानाकर्षण करूंगा कि यह विज्ञान व्यक्तिगत सिद्धि, या आध्यात्मिक रहस्य ही न बना रहे अपितु चिकित्सक समाज के लिए इसको सुबोध बनाया जाय जिससे कि इस विज्ञान का प्रचार और प्रसार निरन्तर बढ़ता रहे तभी यह विज्ञान जीवित रहेगा।

समारोह के मुख्य अतिथि सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बदरीनाथ जी शुक्ल अस्वस्थता के कारण उपस्थित न हो सके। इन्होंने अपनी शुभकामना

में कहा कि नाड़ी विज्ञान चिकित्सा-जगत् का श्रेष्ठतम भारतीय विज्ञान है, श्री जैतली का नाड़ी-अनुसंधान श्लाघनीय है।

अन्त में अभ्यागत सज्जनों को श्रीराम कैलाश जी ने धन्यवाद दिया।

## राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद् का तृतीय अधिवेशन

दिनांक २७-२८ जनवरी १९७९ को राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद् का तृतीय अधिवेशन के सुप्रसिद्ध चिकित्सक वैद्य श्री कन्हैया लाल जी मेड़ा की अध्यक्षता में सीकर में सम्पन्न हुआ।

इस अधिवेशन का दि० २७ को उद्घाटन एवं २८ को समापन करते हुए राजस्थान के आयुर्वेद मंत्री श्री भैरव लाल बादल ने राजस्थान में आयुर्वेद के विकास का सर्वतोमुखी आश्वासन दिया।

इस द्विदिवसीय अधिवेशन में राजस्थान के कोने-कोने से सैकड़ों की संख्या में आयुर्वेद के विद्वान पधारे थे। इस अवसर पर स्वस्थवृत्त, रोग विज्ञान एवं द्रव्य गुण की सम्भाषा परिषदों का भी सफल आयोजन हुआ।

विश्व के गम्भीर व जटिल रोग कैंसर, पक्षाघात तथा श्वास रोग पर अनेक विद्वानों ने अपने अनुभव व अनुसन्धान पूर्ण निबन्ध वाचन किये। सम्मेलन स्थल पर एक सुन्दर आयुर्वेद प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। सर्वसम्मति से अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये। निम्न प्रकार निर्वाचन हुआ—कार्यवाहक अध्यक्ष आचार्य नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी एवं प्रधान मन्त्री वैद्य सोहन लाल शर्मा जैन विश्व भारती, लाडनूं तथा अर्थमन्त्री श्री भागीरथ शर्मा, सीकर।

उक्त परिषद् में चिड़ावा में श्वास रोग तथा सुजानगढ़ में कैंसर रोग के सेमिनार शीघ्र लगाने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया।



भूतपूर्व कुलपति. इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं भाषाविद् डा. बाबू राम सक्सेना से इलाहाबाद, विश्वविद्यालय के विजयानगरम हालमें 'डा. आदित्यनाथ झा स्मृति स्वर्णपदक' एवं आयुर्वेद विभूति की उपाधि प्राप्त करते हुए—।

## आयुर्वेद वृहस्पति डा० इन्द्रमोहन झा 'सच्चन' सम्मानित

सच्चन विद्यापीठ एवं आयुर्वेदिक अस्पताल राँटी-मधुबनी, बिहार के संस्थापक एवं दाता डा. श्री इन्द्र मोहन झा 'सच्चन' को उनके आयुर्वेद, मैथिली, मिथिला, समाज एवं साहित्य की महान् सेवा के लिए सुप्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डा० श्री बाबू राम सक्सेना, भूतपूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा गत् २४ दिसम्बर १९७८ को मैथिली एकेडमी, प्रयाग द्वारा आयोजित द्वितीय मैथिली महासम्मेलन के अवसर पर 'डा. आदित्य नाथ झा, स्मृति स्वर्णपदक' एवं 'आयुर्वेद विभूति' की मानद उपाधि से सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया।

ज्ञातव्य है कि डा. सच्चन को उनके शोध प्रबन्ध 'नारी रहस्य' पर गाधी हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग ने डी. लिट. (साहित्य महोपाध्याय) की उपाधि भी प्रदान की है।

## अंतिम वर्ष बी. ए. एम. एस. के छात्रों का विदाई-समारोह सम्पन्न

उदयपुर, दिनांक २१ जनवरी ७९ को बृजफेडरेशन,

आयुर्वेद कालेज उदयपुर के अंतिम वर्ष बी. ए. एम. एस. के छात्रों को भाव-भीनी विदाई प्रदान की गई। समारोह के मुख्य अतिथि श्री राघवेन्द्र सिंह तथा अध्यक्ष डा. प्रेमचन्द्र शर्मा ने विदा होने वाले स्नातकों के उज्ज्वल भविष्य की पुनीत आकांक्षा व्यक्त की। समारोह का आयोजन के. सी. शर्मा ने किया तथा बृज फेडरेशन के अध्यक्ष प्रभुदयाल तिवारी ने धन्यवाद ज्ञापन किया। इसी अवसर पर बृज फेडरेशन के भूतपूर्व अध्यक्ष डा. दीप सिंह व मुख्य-सलाहकार डा. बल्लभ प्रसाद सिंघल ने नव गठित कार्य कारिणी की घोषणा की। तदनुसार-अध्यक्ष प्रभुदयाल तिवारी, उपाध्यक्ष-बिहारी लाल भट्ट, संयोजक—शशिकांत गर्ग, महामंत्री, केदार नाथ पांडेय, सँयुक्त मंत्री-रमेश चन्द्र शर्मा, संगठन मंत्री—सुरेन्द्र पांडेय, सूचना मंत्री शिवकुमार शर्मा कोषाध्यक्ष—बच्चूलाल गुप्ता, सलाहकार मंडल में डा. आर. एन. झा, डा. सी. पी. शर्मा व डा. के. सी. शर्मा को सम्मिलित किया गया।

### गणतन्त्र दिवस पर ध्वजारोहण

आज २६ जनवरी को प्रातः ८॥ बजे गणतन्त्र दिवस के पावन पर्व के उपलक्ष में राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, कलीनगर (पीलीभीत) के भवन पर राष्ट्रध्वज श्री रामनारायण सरपंच द्वारा फहराया गया। वैद्य श्री राम स्वरूप सिंह वर्मा, चिकित्साधिकारी ने राष्ट्रगान गाया जिसे सभी जनों ने समवेत स्वर देते हुए भारत माता का जय-जयकार किया। श्री मेघनाद की ओर से प्रसाद-वितरण हुआ।

१० बजे स्थानीय मांटेसरी स्कूल के बच्चे बाजेगाजे सहित चिकित्सालय पर तिरंगा लिये हुये आये। चिकित्साधिकारी ने बच्चों तथा बाजे वालों को पुरस्कार दिया।

### आयुर्वेदिक एवं यूनानी वैद्यों में क्षोभ

पिछले सप्ताह उदयनारायण सिंह वैद्य की अध्यक्षता में श्री महादुर्गा औषधालय बिल्थरा-रोड में क्षेत्रीय वैद्यों की सभा हुई। जिसमें आयुर्वेद विकास के लिए जनता सरकार को बधाई दी गयी तथा साथ-साथ चिकित्साधिकारी ग्रामीण स्वास्थ्य योजना पर, जिसमें केन्द्रीय सरकार ने आयुर्वेद के चिकित्सकों की नियुक्ति का निर्देश दिया था; लेकिन ऐसा पता चला है कि १६० पदों पर M.B.B.S. की नियुक्ति के आदेश से आयुर्वेद प्रेमियों तथा जनता को बहुत कष्ट है। और स्वास्थ्य मन्त्री श्री कल्याण सिंह से वैद्य मण्डल मांग करता है कि उन पदों पर देशी चिकित्सा-पद्धति के वैद्यों की नियुक्ति की जाय। ग्रामीण जनता की सेवा आयुर्वेद के माध्यम से ही सकती है तथा ८०% जनता की सेवा आज भी गाँवों में देशी चिकित्सा पद्धति द्वारा होती है।

अतः सर्वसम्मति से यह पास हुआ कि चिकित्साधिकारी ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के अन्तर्गत डाक्टरों की तरह वेतनमान तथा अन्य सुविधायें दी जाय जिससे वे सुचारु रूप से जनता की सेवा कर सकें।

### कविराज बालकराम शुक्ल को पत्नी-वियोग

दिनांक १९-१-७९ को बाबा काली कमली वाले आयुर्वेद महाविद्यालय ऋषिकेश के प्रधानाचार्य प्रख्यात वैद्य कविराज श्री बालक राम जी शुक्ल जी की धर्मपत्नी का देहावसान हो गया। उनके पार्थिव शरीर की शव यात्रा में शहर के नागरिक, संस्था के कर्मचारीगण तथा आयुर्वेद महाविद्यालय के विद्यार्थीगण भी सम्मिलित हुए। संस्कार पतित पावनी जाह्नवी के तट पर किया गया और सायं ४-३० बजे आयुर्वेद सेवा-समिति वाली काली कमली वाले के औषध निर्माणशाला में वैद्य सभा ऋषिकेश की ओर से एक शोक सभा की गई, जिसमें उपस्थित सदस्यों ने दो मिनट मौन खड़े होकर दिवंगत आत्मा की शांति के लिए श्रद्धांजलि अर्पित की और शोक-सन्तप्त परिवार को धैर्य प्रदान करने की प्रार्थना भगवान धन्वन्तरि जी से की गई।

### श्री चन्द्रशेखर भट्ट का अभिनन्दन

चूरु जिला आयुर्वेद अधिकारी वैद्यवर्य श्री भट्ट का डूंगरपुर स्थानान्तरण होने पर दिनांक ११ फरवरी, १९७९ को दादू भवन चूरु में जोरदार अभिनन्दन किया गया।

यह आयोजन राजस्थान आयुर्वेद विभागीय चिकित्सक संघ जिला शाखा तथा चूरु जिला वैद्य सभा के संयुक्त तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष वैद्य पं० श्री सीताराम मिश्र, सभापति तथा चूरु के पुलिस अधीक्षक श्री राम सिंह मुख्य अतिथि थे। सम्पूर्ण आयोजन का संयोजक वैद्य श्री मंगतूराम महर्षि, अध्यक्ष चिकित्सक संघ जिला शाखा चूरु ने किया। चूरु जिला वैद्य सभा के अध्यक्ष श्री धनाधीश गोस्वामी ने श्री

भट्ट साहब को अभिनन्दन-पत्र समर्पित किया। वैद्य चिमनलाल शर्मा ने माल्यार्पण किया। वैद्य श्री रामदत्त शर्मा ने विदाई गीत तथा वैद्य श्रीराम कौशिक ने इस विदाई वेला का स्वरूप श्री कृष्ण-गोपिकाओं का चित्रण एक पीपल पत्र पर चित्रित करके प्रस्तुत किया।

समारोह में श्री दुन्नीचंद शर्मा जिला आयुर्वेद अधिकारी बीकानेर, श्रीराम निवास जोशी कार्यवाहक जिला आयुर्वेद अधिकारी चूरु, वैद्य सर्वश्री अर्जुनदेव शास्त्री, ताराचन्द भारद्वाज, ईश्वरदास स्वामी, रामावतार शर्मा, चिरंजीलाल शर्मा, सागरमल आदि ने अपने वक्तव्यों में भट्ट के स्वच्छ प्रशासन, कर्त्तव्यनिष्ठा, अच्छे कार्यकर्ता, कुशल चिकित्सक, उद्भट विद्वत्ता एवं मृदुभाषिता आदि गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अध्यक्ष महोदय ने प्रदेश वैद्य सम्मेलन व अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की ओर से माल्यार्पण करते हुए विदेशों में आयुर्वेद की प्रियता व वैद्यों को संघटित होकर अन्वेषण-कार्य में संलग्न होने की प्रेरणा दी तथा भट्ट साहब की प्रशंसा व उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

इसी अवसर पर विदाई भोज के पश्चात् रात्रि में श्री भट्ट की अध्यक्षता में एक वैद्य गोष्ठी हुई। विषय था—'चिकित्सक के कर्तव्य एवं अधिकार'—विषय की रोचकता गोष्ठी में बैठे सभी वैद्य बन्धु अनुभव कर रहे थे। निचोड़ यह निकाला कि कर्तव्यनिष्ठ व सेवाभावी होने पर अधिकार स्वयं प्राप्त हो ही जाते हैं।

**आयुर्वेद चिकित्सा गांव-गांव में पहुंचाने का प्रयास**

नाथद्वारा, १५ फरवरी। आयुर्वेद राज्य मन्त्री श्री भैरवलाल काला बादल ने कहा कि सरकार आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति के माध्यम से गांव-गांव में चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने के लिए प्रयत्नशील है।

श्री काला बादल कल उदयपुर से ५० किलोमीटर दूर नाथद्वारा के लालबाग में आयोजित एक नेत्र चिकित्सा शिविर के उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि-पद से बोल रहे थे।

आयुर्वेद राज्य मन्त्री ने कहा कि आयुर्वेद चिकित्सा विस्तार की योजना के तहत अगली पंचवर्षीय योजना में प्रत्येक पंचायत क्षेत्र में एक 'अ' श्रेणी का आयुर्वेद औषधालय खोल दिया जायेगा।

शिविर का उद्घाटन उदयपुर जिले के बल्लभनगर तहसील के गांव के एक नेत्रहीन व्यक्ति श्री खेमाजी ने दीप प्रज्ज्वलित कर किया।

इस अवसर पर नाथद्वारा के विधायक, श्री नवनीत पालीवाल ने नाथद्वारा क्षेत्र में चिकित्सा-सुविधा के अभाव की चर्चा की।

शिविर में नेत्रों के आपरेशन के लिये ५०० रोगियों तथा नेत्र चिकित्सा के लिए लगभग ९०० रोगियों का पंजीयन किया जा चुका है।

**उत्तरप्रदेशीय आयुर्वेद सम्मेलन : वार्षिकोत्सव के अवसर पर विचार-गोष्ठी**

उत्तरप्रदेशीय आयुर्वेद सम्मेलन का वार्षिकोत्सव जिला जौनपुर आयुर्वेद सम्मेलन के निमंत्रण पर भारती विद्यापीठ, खेतासराय में सम्पन्न होने जा रहा है। इस अवसर पर आयुर्वेद के मूर्धन्य विद्वानों की एक विचार गोष्ठी का भी आयोजन किया जा रहा है। विचार गोष्ठी में भाग लेने के इच्छुक लोग अपने विद्वत्तापूर्ण लेख प्रेषित कर सकते हैं।

**क्षे० रा० आयु० एवं यूनानी सेवा संघ की बैठक**

क्षेत्रीय आयु. एवं यू. सेवा संघ पिथौरागढ़ की बैठक दि. ६-२-७९ ई. को संघ के अध्यक्ष डा. श्यामसुन्दर त्रिपाठी की अध्यक्षता में हुई। बैठक में क्षेत्रीय रा. आ. चिकित्साधिकारियों की विभिन्न समस्याओं पर विचार किया गया तथा निम्नाङ्कित प्रस्ताव पारित किए गये—

१. क्षेत्रीय शाखा निदेशक महोदय आयु. एवं यूनानी उत्तर प्रदेश से यह आग्रह करती है कि क्षेत्रीय आयु एवं. यू. अधिकारी को चिकित्सालयों के कर्मचारियों की आपत्कालीन व्यवस्था करने का पूर्ण अधिकार दिया जाय तथा निदेशक महोदय उसे स्वीकृति प्रदान करने का कष्ट करें।

२. पिथौरागढ़ जनपद में यजुराली, शेट्टीगांव तथा कुमैया चौड़ के रा. आ. चिकित्सालय ऐसे स्थानों में हैं जिनके सम्पर्क में बहुत ही कम जनसंख्या है। अतः उत्तर प्रदेश सरकार से क्षेत्रीय शाखा अनुरोध करती है कि इन चिकित्सालयों को जनहित को ध्यान में रखते हुए समीपवर्ती तथा अधिक जनसंख्या के सम्पर्क में आने वाले केन्द्रों क्रमशः बांस, मण मांडे तथा छेड़ा में स्थानान्तरित करने पर विचार करें।

३. यह सभा आयु. एवं यूनानी निदेशक, उ. प्र., से अनुरोध करती है कि जनपद के शीत एवं आर्द्र वातावरण को देखते हुए चिकित्सालयों की औषधियों तथा उपकरणों की सुरक्षा की दृष्टि से यथाशीघ्र आलमारियों तथा बक्सों की व्यवस्था करें।

४. क्षेत्रीय आयु. एवं यू. अधिकारी पिथौरागढ़ से यह सभा अनुरोध करती है कि क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा चिकित्साधिकारियों के पत्रों का उत्तर यथाशीघ्र भेजा जाय तथा कार्यालय द्वारा अग्रसारित होने वाले पत्रों की एक प्रति संबंधित चिकित्साधिकारी को भी प्रेषित की जाय।

५. क्षे. आ. एवं यू. अधिकारी से यह आग्रह किया जाता है कि रा. आ, वि. यूबानी-दवानी तथा सेल के कर्मचारियों का वेतन धनादेश (M O) द्वारा भेजा जाय क्योंकि ये चिकित्सालय स्टेट बैंक की किसी भी शाखा से अत्यधिक दूर एवं दुर्गम है।

श्री ५ की सरकार

स्वास्थ्य मन्त्रालय स्वास्थ्य सेवा विभाग

आयुर्वेद चिकित्सालय, नरदेवी (काठमांडू) नेपाल

२०३५ साल में मार्गशीर्ष महीने में निःशुल्क सेवा प्राप्त रोगियों का विवरण

(क) नवीन तथा पुराने रोगियों की कुल संख्या-३,८४६

(ख) २०३५ साल मार्गशीर्ष महीने में उपचारार्थ आये नवीन रोगियों की संख्या-२,३६५

१. पुरुष रोगी संख्या-१,२२०

२. महिला रोगी संख्या-१,१७५

१. बालक रोगी संख्या-स्त्री १४५ पुरुष १२३=१६८

जिसमें निम्न विभागों में निःशुल्क उपचार (सेवा) किया गया है।

१. काय चिकित्सा विभाग से उपचार प्राप्त रोगी संख्या-१,४६१

२. शल्य-शालाक्य विभाग से उपचार प्राप्त रोगी संख्या-८११

(ग) पुनरागत उपचारार्थ आए रोगियों की संख्या-१,४५१

१. काय चिकित्सा विभाग से उपचार प्राप्त रोगी संख्या-६८७

२. शल्य-शालाक्य विभाग से उपचार प्राप्त रोगी संख्या-४६४

अन्तरंग विभाग में प्रविष्ट रोगियों का विवरण

(घ) प्रविष्ट रोगियों की कुल संख्या-५३

१. गत महिने से उपचार प्राप्त रोगी-संख्या-१९

२. वर्तमान प्रविष्ट रोगी-संख्या-३४

३. पूर्ण स्वास्थ्य लाभ प्राप्त रोगी संख्या-२८

४. कुछ कम लाभ प्राप्त रोगी-संख्या-५

५. स्वेच्छा से निकाला रोगियों की संख्या-५

६. चिकित्साधीनस्थ रोगी संख्या-११

७. मृत्यु संख्या-३

श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, नागपुर

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड ग्रेट नाग रोड, नागपुर द्वारा संचालित श्री वैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, वाकर रोड, नागपुर में माह जनवरी सन् १९७९ में ६१२६ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गयी जिनमें ९४४ रोगी नये आये। रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है।

अतिसार ९, अजीर्ण १४, अग्निमांद्य ५३, आमवात ११, अर्श १२, अम्लपित्त १३, अश्मरी १, अरोचक १, अन्त्रवृद्धि १०, अण्डवृद्धि २, आनाह १२, अर्धावभेदक २; अभिघात १, उदरशूल २०, उदावर्त १०, क्रमि ३२; कृमिज्वर ९, कामला १, कास ९२, कास ज्वर ३०, कंठ रोग २, कर्ण रोग ४, कटिशूल ९, गृध्रसी १, ग्रन्थी १, छर्दी वमन ४, ज्वर ८८, जीर्णज्वर ३, दौर्बल्य ४८, दाह १३, दन्त ६, नेत्र ४, परिणामशूल ४, प्रमेह ४, पामा ८१, प्रदर २२, पित्त ४, प्रतिश्याय १०५, बहुमूत्र १०, बालरोग २, मधुमेह १, मुखपाक ८, राजयक्ष्मा ४, विकफ रक्त २, वातव्याधि ३९, व्रण ५, वात शूल ११, श्वास १६, शोथ ३३, शिरःशूल १९, सूतिका ७, शीत-पित्त २, स्वरभंग २, शुक्रमेह १, शितज्वर १०, हिक्का १। कुल जोड़ ९४४।

स्वास्थ्य मन्त्रालय स्वास्थ्य सेवा विभाग,

आयुर्वेद चिकित्सालय, नरदेवी, काठमांडू (नेपाल)

२०३५ साल में पौष महीने में निःशुल्क सेवा किये गये रोगियों का विवरण :—

(क) नवीन तथा पुराने रोगियों की कुल संख्या ४,३६१

(ख) २०३५ साल पौष महीने में उपचारार्थ आये नवीन रोगियों की संख्या—२,५५१

(१) पुरुष रोगी संख्या—१,२४५

(२) महिला रोगी संख्या—१,३०६

(२) बालक रोगी संख्या—स्त्री १५३, पु० १७१ = ३२४

जिसमें निम्न विभागों से निःशुल्क उपचार (सेवा) किया गया।

(१) काय चिकित्सा-विभाग में उपचार किया गया संख्या—१५६३

(२) शल्य शालाक्य विभाग में उपचार किया संख्या—९८८

**पुनरागत रोगियों का विवरण**

(ग) पुनरागत उपचारार्थ आये रोगियों की सं०—१,८१०

(१) काय चिकित्सा-विभाग में उपचार किया गया संख्या—१,१६१

(२) शल्य-शालाक्य विभाग में उपचार किया गया संख्या—६४८

**अन्तरंग विभाग में प्रविष्ट रोगियों का विवरण**

(घ) प्रविष्ट रोगियों की कुल संख्या—५६

(१) गत महीने में उपचार किये गये रोगी सं०—११

(२) वर्तमान प्रविष्ट रोगी संख्या—४५

(३) पूर्ण स्वास्थ्य लाभ किये गये रोगी संख्या—२८

(४) कुछ कम लाभ प्राप्त रोगी संख्या—८

(५) स्वेच्छा से निकसे हुए रोगियों की संख्या—४

(६) चिकित्साधीनस्थ रोगी संख्या—१६

(७) मृत्यु संख्या—०

सर्वाधिकारी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की ओर से श्रीकान्त शास्त्री द्वारा शिवशक्ति प्रेस, लोदीपुर, पटना-८००००१ में मुद्रित तथा उनके ही द्वारा बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-८००००१ से प्रकाशित।

# सचित्र

## SACHITRA AYURVED

# आयुर्वेद

अप्रेल, १६७६

नामन्त्रमक्षरं किञ्चिन्नच द्रव्यमनौषधम्
नायोग्यः पुरुषः कश्चित् प्रयोक्ता एव दुर्लभः ।

अर्थात् विश्व में प्रत्येक अक्षर एक मंत्र है, प्रत्येक द्रव्य औषधि है। प्रत्येक व्यक्ति योग्य है। उनका समुचित प्रयोग करने वाले ही नहीं मिलते।


प्रकाशक

बैद्यनाथ



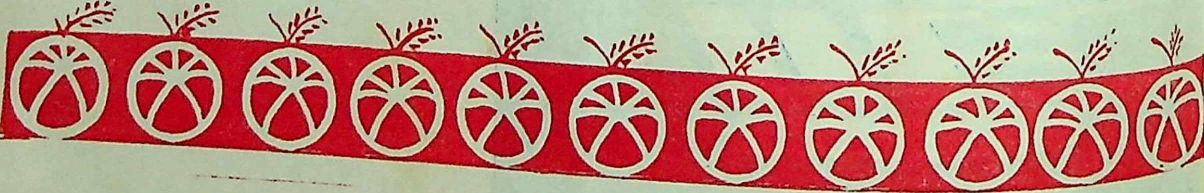

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१


स्पेशल
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अवलेह
५०० ग्राम


SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN LTD.
CALCUTTA





# भारत–श्रीलंका के बीच आयुर्वेद के क्षेत्र में सहयोग

## वैद्य दुर्गाप्रसाद शर्मा द्वारा नये युग का श्रीगणेश

नयी दिल्ली, 20 मार्च। भारत और श्रीलंका के बीच आयुर्वेद चिकित्सा, अनुसंधान एवं औषध - निर्माण क्षेत्र में सहयोग के एक नये युग का शीघ्र ही श्रीगणेश होगा।

यह सूचना यहाँ भारत के ख्याति-प्राप्त व्यक्ति आयुर्वेद-चक्रवर्ती वैद्य दुर्गा प्रसाद शर्मा ने दी। उन्होंने गत 23 फरवरी से 5 मार्च तक श्रीलंका का भ्रमण किया था। उन्होंने बताया कि श्रीलंका में आयुर्वेदिक चिकित्सा का बहुत अधिक प्रभाव है।

सरकार की केंद्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद के सदस्य वैद्य दुर्गाप्रसाद शर्मा ने कहा कि भारत और श्रीलंका के बीच आयुर्वेदिक क्षेत्र में सहयोग के लिये पश्चिमी जर्मनी भी हाथ बटा रहा है। इस सम्बन्ध में अब तक कई बार-बातचीत हो चुकी है।

उन्होंने बताया कि श्रीलंका में नव्वे प्रतिशत जनता आयुर्वेद की चिकित्सा ग्रहण करती है और वहां लगभग दस हजार रजिस्टर्ड वैद्य हैं। उन्होंने कहा कि श्रीलंका में आयुर्वेद के आठों अंग के माध्यम से परम्परागत ढंग से वैद्य चिकित्सा करते हैं, जबकि भारत में उनमें से तीन अंग शालाक्य (आंख, नाक, कान, व गले की चिकित्सा), यान्त्रिक चिकित्सा (भूत विद्या) तथा विष चिकित्सा लुप्त हो गई है।

### सहयोग के प्रस्ताव

श्री शर्मा ने कहा कि इस कमी को दूर करने के लिए हमने निजी तथा संयुक्त क्षेत्र में सहयोग के लिए प्रस्ताव रखे हैं। इन प्रस्तावों पर श्रीलंका में काफी अनुकूल प्रतिक्रिया हुई है।

उन्होंने बताया कि औषध-क्षेत्र के अनुसंधान, उत्पादन तथा निर्माण के क्षेत्र में दो चरणों में कार्य सम्पन्न होगा। पहले चरण में भारत से आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति से सम्बन्धित तकनीकी जानकारी, कच्चा माल तथा प्रशिक्षित कर्मचारी श्रीलंका भेजे जायेंगे और पूंजी श्रीलंका की लगेगी। पश्चिमी जर्मनी भी आवश्यक सहयोग एवं सहायता प्रदान करेगा।

उन्होंने बताया कि दूसरे चरण में श्रीलंका की एक निजी फर्म के सहयोग से वहां के मुक्त क्षेत्र में औषधि-निर्माण करने का उद्योग स्थापित किया जायेगा। इसमें भी पश्चिमी जर्मनी सहयोग देगा। उद्योग के स्थापित होने पर विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं उसकी विभिन्न ऐजेंसियों की मदद से जो उत्पादन होगा, उसमें से चालीस प्रतिशत दवाइयां नेपाल, सिंगापुर तथा मलेशिया को निर्यात की जायेंगी।

श्री शर्मा ने कहा कि उक्त उद्योग में पचास लाख रुपए व्यय होंगे तथा प्रति वर्ष लगभग तीस करोड़ रुपए का उत्पादन हो सकेगा। इस सम्बन्ध में पश्चिमी जर्मनी से एक दल अप्रेल के मध्य में श्रीलंका की यात्रा करेगा। श्री शर्मा भी इस दल के साथ होने वाली वार्ता में भाग लेंगे। आशा है शीघ्र ही इस योजना को अन्तिम रूप दे दिया जायेगा।

### फार्म स्थापित होगा

वैद्य श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा ने कहा कि शीघ्र ही श्रीलं ा में चार सौ एकड़ में एक फार्म स्थापित किया जायगा, जिसमें श्रीलंका में पैदा होने वाली जड़ी-बूटियां उगाई जायेंगी तथा जो वहां नहीं होती उन्हें भारत से ले जाकर उगाया जायेगा।

—

# सचित्र आयुर्वेद



संरक्षक :
आयुर्वेद-चक्रवर्ती,
आयुर्वेद-शिरोमणि
प्राणाचार्य
पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा
आयुर्वेदाचार्य



परामर्शदाता :
आयुर्वेद-बृहस्पति
आचार्य रामरक्ष पाठक



सम्पादक :
श्रीकान्त शास्त्री, एम. ए.


# विषय-सूची




वार्षिक मूल्य १० रु०]  [एक प्रति १ रुपया

# आयुर्वेद-चक्रवर्ती पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा "आयुर्वेद श्रीसूर्य" की सम्मानोपाधि से अलंकृत



'सचित्र आयुर्वेद' के माध्यम से समस्त आयुर्वेद-जगत को यह सूचित करते हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि 'सचित्र आयुर्वेद' के मान्य संरक्षक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के संयुक्त प्रबंध निदेशक तथा आयुर्वेद के उन्नायक, आयुर्वेद-चक्रवर्ती, आयुर्वेदशास्त्र-वाचस्पति, वैद्यरत्न, आयुर्वेद-शिरोमणि, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद जी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य को श्रीलंका की सुप्रसिद्ध एवं सरकार द्वारा सम्मानित आयुर्वेदीय संस्था —समस्त लंकायुर्वेद वैद्य सम्मेलन ने—अभी हाल ही में 'आयुर्वेद-श्रीसूर्य' की गौरवोपाधि से, श्री दुर्गा बाबू द्वारा आयुर्वेद तथा आयुर्वेद-प्रेमी जनता के प्रति की गई निस्पृह एवं त्याग-मूलक सेवाओं को दृष्टिगत करते हुए एक विशेष समारोह का आयोजन करके समादृत किया है। श्रीयुक्त दुर्गा बाबू के इस प्रकार सम्मानित किए जाने से हमारा गौरव एवं मान बढ़ा है—उनके साथ-साथ 'सचित्र आयुर्वेद' परिवार भी उनके यश का अंशी है। हम श्री दुर्गा बाबू के शतायु होने की शुभकामना करते हुए उत्तरोत्तर उनके यश-वर्द्धन-हेतु जगदीश्वर से प्रार्थी हैं।

—सम्पादक

Registered with the Registrar of Newspapers for India Under R. N. 2277/73
आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होने वाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष–३१ | पटना, अप्रेल, १९७९ | अङ्क–१०

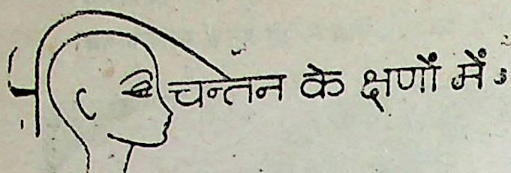
# मानव-स्वास्थ्य और वृक्ष

शताब्दियों से धरती के दुरुपयोग के फलस्वरूप पूरे संसार की मिट्टी अब हीन अवस्था को प्राप्त हो गयी है। मिट्टी की इस हीनता के फलस्वरूप पौधे, पशु तथा मानव के स्वास्थ्य को गहरी क्षति पहुंची है। और, वे तीनों ही रुग्ण हो गये हैं। और, इसका दुष्प्रभाव पूरी मानवीय संस्कृति पर पड़ा है।

इस गम्भीर स्थिति का एक मुख्य कारण वृक्षों का अंधाधुंध काटा जाना और उसके स्थान पर वृक्ष न लगाना है। वृक्षों के इस प्रकार काटे जाने से केवल धरती का कटाव ही नहीं बढ़ा; बल्कि स्वयं प्रकृति के समतौल में गड़बड़ी आयी है।

स्वास्थ्य और जीवन के लिए चार चीजें आवश्यक हैं—(१) आॅक्सीजनयुक्त साफ हवा में गहरी सांसे लेना (२) पर्याप्त शारीरिक व्यायाम (३) प्राकृतिक पूरे अन्न यथा बिना चोकर निकाले आटे और बिना कण निकाले चावल, फल-सब्जी को खूब चबा-चबाकर पर्याप्त मात्रा में खाना तथा (४) शान्त अनुद्वेलित मन। इन चारों को बनाए रखने से मनुष्य यौवनपूर्ण रहता है और उसे अस्वास्थ्य की अवस्था का कभी आभास ही नहीं हो पाता। इनमें से किसी के अभाव में मनुष्य सही जीवन से च्युत हो जाता है और रोग उसके शरीर में जड़ जमाने लगते हैं। यहां जान लेने की बात यह भी है कि एक के अभाव का दुष्प्रभाव शेष तीन पर पड़े बिना नहीं रहता। अतः स्वीकार करने की बात यह है कि पूर्ण स्वास्थ्य के लिये ये चारों ही चीजें अत्यावश्यक हैं। —श्री रा० सी० सहस्रबुद्धे

—




# नशाबंदी—एक समस्या

(संकलित)

**हमारे सार्वजनिक तथा निजी जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार का एक कारण नशा भी है। देश के गरीबों को और गरीब बनाने में इसने काफी योगदान किया है।**

मानव समाज के अभ्युदय के मार्ग में कई बाधाएं आती हैं। नशा समाज में व्याप्त एक ऐसी ही भयंकर बाधा है। इससे नैतिक, मानसिक, शारीरिक तथा आर्थिक पतन होता है। देशवासियों के कल्याण के लिये नशाबंदी की बात एक लम्बे अर्से से चल रही है, और आज तो यह बात समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञों, बुद्धिजीवियों एवं अर्थशास्त्रियों के बीच एक जोरदार बहस का विषय बन चुकी है, क्योंकि प्रधानमंत्री श्री देसाई जी ने चार वर्षों में देश में पूर्ण नशाबंदी का संकल्प किया है।

जरा इतिहास पर भी एक नजर डालें। भगवान महावीर तथा महात्मा बुद्ध ने मदिरा का पूर्ण रूप से विरोध किया और यह स्पष्ट किया कि मद्यपान मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। सम्राट अशोक तथा चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में भी मद्यनिषेध की नीति का बड़ी सफलतापूर्वक पालन किया गया। 399 ई० में चीनी यात्री फाहियान तथा 830 ई० में हुएनसांग ने अपनी भारत यात्रा के पश्चात् लिखा कि भारतवासी न मद्यपान करते हैं और न ही मांस खाते हैं। मुस्लिम सम्राट औरंगजेब मदिरापान के बिल्कुल खिलाफ था।

बीसवीं सदी के शुरू में औद्योगीकरण तथा मशीनीकरण के कारण सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में काफी बदलाव आ चुका था। सबसे पहले 1920 में संयुक्त राज्य अमरीका में नशाबंदी लागू की गई, लेकिन परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण यह प्रयास असफल हो गया और कुछ ही वर्षों में नशाबंदी की बात खत्म हो गयी। विश्व के अन्य देशों में नशाबंदी की दिशा में प्रयास किये गये, परन्तु सफलता नहीं मिल पायी। दूसरे शब्दों में बीसवीं सदी का अब तक का इतिहास नशाबंदी के क्षेत्र में काफी निराशाजनक रहा है।

हमारे देश में नशाबंदी की दिशा में प्रयास 1937 से प्रारंभ हुये। वैसे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही नशाबंदी की बात और जोरों से की जा रही है। हमारा संविधान भी नशाबंदी की बात करता है। महाराष्ट्र राज्य में नशाबंदी का प्रयास हुआ, लेकिन यह प्रयास पूरी तरह असफल रहा। आज भी गुजरात तथा तमिलनाडु राज्यों में पूर्ण नशाबंदी की स्थिति है, लेकिन वहाँ भी इसकी सफलता पर आशंकाएँ व्यक्त की जा रही हैं।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि मात्र कानूनों तथा दबावों से ही पूर्ण नशाबंदी सम्भव नहीं। वास्तव में, हमें नशाबंदी के लिए समस्या की गहराई में जाना होगा और उन कारणों को दूर करना होगा जिनसे लोग नशा करते हैं, सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण में परिस्थितियों के अनुसार बदलाव लाना होगा, शिक्षा का व्यापक प्रसार करना होगा और जन-मानस को नशे की बुराइयों के प्रति जागृत करना होगा। दूसरे शब्दों में, नशे के विरुद्ध एक घृणात्मक वातावरण निर्मित करना होगा, एक तरह का जिहाद छेड़ना होगा, अखबारों, रेडियो, टी० वी० तथा विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से, और प्रशासनिक गतिविधियों में सक्रियता लानी होगी। गुजरात तथा तमिलनाडु में पूर्ण नशाबंदी की असफलता की जड़ में है प्रशासनिक ढिलाई, समझ तथा शिक्षा का अभाव। महात्मा गांधी का भी कहना था कि कानूनी प्रतिबंधात्मक उपायों से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है—शिक्षा तथा समझदारी।

पाकिस्तान में नशाबंदी की सफलता से निश्चय ही हमें प्रोत्साहन मिलेगा। और फिर हमारे देश में दो प्रतिशत लोग ही ऐसे है जो सचमुच शराबी हैं। वास्तव में विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि आज यदि कहीं नशाबंदी संभव है तो वह है भारत में। आज आवश्यकता है व्यावहारिकता की, सक्रियता की, ईमानदारी की तथा कार्य के प्रति गम्भीरता की। तभी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का सपना साकार हो सकेगा।

# सम्पादकीय

## अन्धता—राष्ट्रीय अभिशाप

गत 18 मार्च को विश्व अपंग दिवस मनाया गया। उस अवसर पर अन्य समस्याओं में विश्व और खासकर भारत में बढ़ रही नेत्र-हीनता अथवा अन्धता पर विशेष जोर डाला गया, जो अत्यन्त स्वाभाविक था। सम्प्रति भारत की 65 करोड़ आबादी में से लगभग 90 लाख व्यक्ति अन्धता के शिकार हैं, जिनमें लगभग $2\frac{1}{2}$ लाख बच्चे हैं। यहां यह कथमपि नहीं माना जा सकता कि ये सभी 90 लाख व्यक्ति माँ के गर्भ से ही अन्धे होकर आए थे; बल्कि सचाई यह है कि इनमें से अधिकांश जन्म के बाद ही किन्हीं कारणों से अन्धता के शिकार हुए होंगे। साथ-ही-साथ यह भी नहीं माना जा सकता कि दृष्टिहीनता इन्हीं 90 लाख लोगों तक ही सीमित है और भविष्य में भी सीमित रहेगी। अन्धता की यह समस्या केवल हमारे देश की ही न होकर विश्वव्यापी है, तथापि इस देश में ही जिस अनुपात में यह व्याप्त है, वह पर्याप्त गंभीरता लिए हुए है। इसलिए इस दिशा में गंभीर चिन्तन-मनन तथा शोध की आवश्यकता है।

नेत्र हीनों के लिए भिन्न-भिन्न संस्थाएं अपने-अपने तरीके से कल्याण सहायता-कार्य कर रही हैं।

"नेशनल फेडरेशन आफ द ब्लाइन्ड" के तत्वावधान में आयोजित एक विचार-गोष्ठी ने अन्धता से अभिशप्त लोगों के लिए कतिपय सुझाव प्रस्तुत किए थे, जिनमें शिक्षा, सामाजिक पुनर्वास, रोजगार तथा कानून थे। इनमें सबसे महत्वपूर्ण सुझाव है, जन साधारण के मन में दृष्टिहीनों के प्रति सम्मानपूर्ण एवं रचनात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करने की आवश्यकता।

अस्तु, दृष्टिहीनता को रोकने, नेत्रों को पहुंचनेवाली हानि से बचाने तथा जनता के कमजोर वर्ग की नेत्र-सुरक्षा के लिए आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए नेत्र-चिकित्सा-सम्बन्धी राष्ट्रीय सेना की स्थापना निःसन्देह इस दिशा में एक क्रान्तिकारी कदम होगी। मोटे तौर पर यह कहें कि ऐसे प्रयासों से मानव जाति को अन्धता के अभिशाप से मुक्त किया जा सकता है।

1979 को अन्तरराष्ट्रीय बाल वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। इसके लिए प्रशासनिक तथा अप्रशासनिक स्तरों पर बहुत व्यापक कार्यक्रम बनाये गये हैं—विशेषतः शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त दूरदर्शी कार्यक्रमों की व्यवस्था की गयी है। उनमें नेत्रहीन बालकों के लिए विशेष गुंजायश रखी जाए और भविष्य में कोई नेत्रहीन जन्म न ले ऐसा विशेष लक्ष्य रखा जाए, तो वह कितना सुखद होगा। सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की है कि दृष्टि-हीनों के प्रति समाज का दृष्टिकोण सम्मानजनक एवं रचनात्मक हो और जिन कारणों से, जिनमें दरिद्रता-जन्य पोषक तत्वों का अभाव भी है, को दूर करने की दिशा में समाज और सरकार का सहयोगमूलक प्रयास हो—मानना होगा कि जीवन-स्तर के ऊँचे होने पर अन्धता की बाढ़ को कुछ हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। राष्ट्र की विपन्नता दूर हो और सम्पन्नता आवे—यह हमारी कामना है।

---

## कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी की विदेश यात्रा

कविराज पुरुषोत्तम देव मुलतानी भू० पू० उपनिदेशक (आयुर्वेद) आंध्र प्रदेश 29 मार्च को अमेरिका व यूरोप की विदेश यात्रा पर जा चुके हैं। 'आयुर्विज्ञान संस्थान' वाशिंगटन यूनिवर्सिटी एवं सौथ उलिनाय यूनिवर्सिटी में 'आयुर्वेद' पर भाषण देने के लिए आपको निमंत्रण मिले हैं।

गत वर्ष सौथ उलिनाय विश्वविद्यालय के आयु-विज्ञान संस्थान के 6 डाक्टरों का एक दल आयुर्वेद के अध्ययन के लिए भारत आया था। तभी से उन विद्वानों के साथ कविराज जी का पत्र-व्यवहार जारी था। कविराज जी की इस यात्रा के दौरान भारतीय व अमेरिका आयु-विज्ञान संस्थानों के संयुक्त आयुर्वेदीय अनुसंधान की समस्याओं पर गहराई से विचार होगा। कविराज जी जुलाई के अन्त तक भारत लौटेंगे।



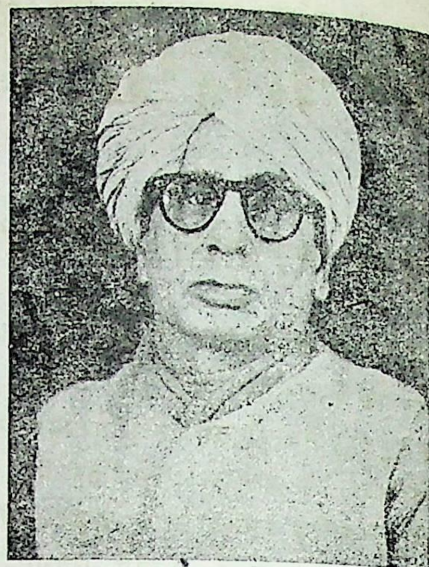
## स्व० डा० पी० एम० मेहता

निश्चय ही यह बड़े परिताप की बात हुई कि स्वनामधन्य, डाक्टर प्राणजीवन माणिकचन्द मेहता का बम्बई में गत 15 मार्च को देहावसान हो गया। डाक्टर मेहता आयुर्वेद जगत में सर्वथा वरेण्य एवं महर्षितुल्य थे। उन्होंने आयुर्वेद को प्राणवान एवं सजीव बनाने की दिशा में जो अदम्य उत्साह एवं प्रयास आजीवन जारी रखा, वह अन्य आयुर्वेद-सेवियों के लिए आदर्श-स्वरूप एवं प्रेरक कहा जा सकता है। मूलतः एलोपैथ होते हुए भी डा० मेहता आयुर्वेद के प्रति इतने श्रद्धालु हुए कि आयुर्वेद उनके मन-प्राण में समा गया था। डा० मेहता द्वारा आयुर्वेद के मूल ग्रन्थ चरक का अंग्रेजी अनुवाद विश्व को उनकी विशेष देन कहा जायगा। जामनगर स्थित आयुर्वेद विश्वविद्यालय उनकी विशेष स्मृति हैं। अतः ऐसे देवर्षि श्री मेहता जी का अभाव समस्त आयुर्वेद जगत आज गंभीरतापूर्वक महसूस कर रहा है।

डा० मेहता वैद्य समाज के लिए सदैव प्रेरणा के स्रोत रहे। उन्होंने आयुर्वेदीय अनुसंधान को नयी दिशा देने का प्रयास किया।

डा० मेहता का 'सचित्र आयुर्वेद' के जन्मकाल से ही बैद्यनाथ प्रतिष्ठान से संबंध रहा और आजीवन अपने तर्कपूर्ण एवं गम्भीर विचार

( शेष पृष्ठ 868 पर )



## स्व० वैद्य मूलचन्द्र बहड़

भारत के सुप्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ, पीयूषपाणि चिकित्सक, वैद्यवर्य श्रीमूलचन्द्रजी बहड़ का दिनांक 24 फरवरी 79 को श्री भगवन्नारायण स्मरण करते हुये 82 वर्ष की अवस्था में लक्ष्मणगढ़ (राजस्थान) में स्वर्गवास हो गया। स्व० वैद्यजी स्थानीय श्रीऋषिकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के 40 वर्षों तक प्राचार्य एवं बाद में निदेशक पद पर रहे। बीच में 3 वर्ष मारवाड़ी अस्पताल वाराणसी में आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष एवं दो वर्ष नादगांव सार्वजनिक आयुर्वेदिक चिकित्सालय में प्रधान चिकित्साधिकारी रहे। स्व० वैद्यजी का जन्म सन् 1897 में सिरसा में हुआ था। उन्होंने अनेक गुरुकुलों में अपने ऋषिकल्प गुरुओं की सेवा कर विद्यायें ग्रहण की और बाद में स्व० वैद्य चक्रचूड़ामणि श्री मणीरामजी महाराज से रामगढ़ में आयुर्वेद की सांगोंपांग शिक्षा ग्रहण की और सहाध्यायी वैद्यनाथभवन के श्री रामनारायणजी के साथ उनके सुयोग्य शिष्यों में गिने गये। आयुर्वेद महासम्मेलन से स्वर्ण पदक प्राप्त किया एवं अनेक आयुर्वेद संस्थाओं से सम्मानित हुये। अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की कार्य समिति के सदस्य, जिला वैद्य सभा के अध्यक्ष, साहित्य परिषद् के सभापति एवं अनेक सम्मेलनादि के अध्यक्ष निर्वाचित हुये। श्रीऋषिकुल में इनसे पढ़े हजारों योग्य शिष्य आज कुशल चिकित्सक, शासक एवं आयुर्वेद विद्वान के रूप में जनता जनार्दन की सेवा में संलग्न हैं।

( शेष पृष्ठ 868 पर )

*Reproduced from Reader's Digest**

# Contribution of Ayurveda And Other Indian Systems of Medicine

By
**Pandit Shiv Sharma**



# आयुर्वेद तथा अन्य देशीय चिकित्सा-प्रणालियों का दान

लेखक :
**पण्डित शिव शर्मा**

### A Sceptic Relents

"At least for India the use of Ayurvedic physicians is essential to provide health care for rural masses"—Dr. Rolland J. Folse, quoted in the latest issue of ASPECTS (Vol II, No. 2), official organ of the Southern Illinois University School of Medicine.

The magazine labels Dr. Folse, Professor and Chairman, Department of Surgery, SIU, as "The team's chief sceptic." 'Team' here refers to a study group of six doctors who visited India early this year.

The project co-ordinator, Dr. Glen W. Davidson, Chairman, Department of Medical Humanities and Professor and Chief of Thanatology, Department of Psychiatry, went

* The combined circulation of Reader's Digest in different editions is 300,000,000 which is the largest in the world. The present article was written for the magazine at its own request.

### अविश्वासी का विद्रव

"भारतवर्ष के ग्रामीण जनसमूह की स्वास्थ्य - रक्षा के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सकों का उपयोग अनिवार्य है"—डा० रौलैंड फोल्स, सदर्न इलिनॉय यूनिवर्सिटी के चिकित्सा विभाग के मुखपत्र, आस्पैक्ट्स (भाग २, अंक २) में।

मुखपत्र ने डाक्टर फोल्स, अध्यक्ष, शल्य विभाग (एस० ई० यू०) को "दल का मुख्य अविश्वासी" कहा है। "दल" का अभिप्राय यहाँ उन ६ डाक्टरों से है जो इस वर्ष आरम्भ में (अमरीका से) आयुर्वेद के अध्ययन के लिए भारत आए थे।

दल के नेता, डा० ग्लेन डेविडसन, मानविकी तथा मृत्यु विज्ञान विभागों के अध्यक्ष तो और भी अधिक कह गए : **'आयुर्वेद की सुक्रमबद्ध प्रणाली और सहज विशेषताओं का अमरीकी चिकित्सक-संप्रदाय पर प्रभाव पड़कर रहेगा।** आयुर्वेद के संपूर्णात्मक सिद्धांत का विशेष महत्व

* रीडर्स डाइजेस्ट के विभिन्न संस्करणों का सम्मिलित परिचलन ३ करोड़ है जो विश्व में सब पत्रों से अधिक है। प्रस्तुत लेख पत्र द्वारा प्रार्थना किये जाने पर लिखा गया।

further : "The systematic approach and inherent features of Ayurveda *will have an impact on the medical profession in America*......The 'wholistic' concept of Ayurveda......is of particular significance. *Ayurveda can help solve many health problems of primary medical care in the west.*"

है। **पश्चिम संसार की प्राथमिक चिकित्सा सेवा की अनेक स्वास्थ्य सम्बन्धी गुत्थियां सुलझाने में आयुर्वेद समर्थ सहायक हो सकता है।'**

Asked "Why Ayurveda ?" he replied "The SIU has investigated medical systems in other parts of the world but have found Ayurveda to be the *most systematic*—Times of India, February 13, 1978.

"आयुर्वेद ही क्यों ?" यह पूछा जाने पर डा० डेविडसन ने उत्तर दिया "स० इ० यूनिवर्सिटी ने दुनिया भर की चिकित्सा-प्रणालियों को परखा परन्तु आयुर्वेदिक पद्धति की क्रमबद्धता सबसे उत्कृष्ट पाई गई।" टाइम्स आफ इंडिया, १३ फरवरी, १९७८।

**Unbiased Study**

The beginnings of Ayurveda merge with pre-historic antiquity. Tradition attributes its genesis to Brahma, the Creator.

These statements on the world's oldest medicine come in 1978, from the vanguard of modern medicine. These scientists came to India not as tourists but as investigators deputed by an American university for an on-the-spot and in-depth study of the Ayurvedic potentials. Their earnestness, receptibility and intellectual honesty were outstanding. They admitted, as their studies progressed, the mounting erosion of their earlier prejudices. No investigation could be more unbiased.

Ayurveda is a unique bridge between science and religion, reason and faith, medication and meditation, body and soul and moderns and ancients. It is difficult to decide, after studying its texts, whether it is a human creation or a divine revelation. Its values have an element of eternity. Its theoretical perfection and practical application are staggering considering its hoary origins.

**निष्पक्ष अध्ययन**

आयुर्वेद का आरम्भ धुंधले प्रागैतिहासिक अतीत में खोया हुआ है। परम्परा के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में विश्वस्रष्टा ब्रह्मा ने ही आयुर्वेद की भी रचना की।

इस संसार की सबसे पुरानी पद्धति पर यह वक्तव्य इस समय (१९७८) के आधुनिक चिकित्सा के अग्रणी विद्वद्वर्ग द्वारा दिये गए हैं। यह वैज्ञानिक भारत में पर्यटन के लिए नहीं आए थे। इन्हें तो एक अमरीकन विश्वविद्यालय ने आयुर्वेदिक संभावनाओं के गंभीर और निकटतम अध्ययन के लिए भेजा था। इनकी लगन, तत्वग्राह्यता और बौद्धिक सत्य-निष्ठा बेजोड़ थी। जैसे जैसे उनका अध्ययन आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे वे स्वीकार करते गए कि उनके पूर्वग्रह क्रमशः नष्ट होते जा रहे हैं। कोई खोज भी इससे अधिक निष्पक्ष नहीं हो सकती थी।

विज्ञान और धर्म, तर्क और विश्वास, औषध और ध्यान, शरीर और आत्मा तथा प्राचीनों और अर्वाचीनों के मध्य में आयुर्वेद एक विलक्षण सेतुबंध है। इसके ग्रंथों के अध्ययन के पश्चात् यह निर्णय देना कठिन है कि यह मनुष्य की रचना है या ईश्वर प्रदत्त विज्ञान। इसकी अर्हताओं में अनंत का तत्व विद्यमान है। इसकी सैद्धांतिक सम्पूर्णता और व्यावहारिक प्रयोगोत्कृष्टता, इसके अनादि प्रायः आरम्भ को देखते हुए, कल्पनातीत प्रतीत होते हैं।

Ayurveda can be easily divided into its two 'scientific' and 'cultural-cum-spiritual' facets. You can't separate the ubiquitous magic component of the ancient Egyptian medicine from its medical ministrations. But it is easy to separate the institution of prayer from the Ayurvedic prescription. The benefits of prayer can be utilized for the believer and of medication for the atheist, as both the techniques are potent healers in their respective spheres of influence.

आयुर्वेद के दो चेहरे आसानी से अलग-अलग देखे जा सकते हैं—एक वैज्ञानिक और दूसरा सांस्कृतिक-आध्यात्मिक। उदाहरणार्थ अन्य प्राचीन चिकित्सा-प्रणाली, मिश्रीय चिकित्सा में जादू-टोने को औषध व्यवस्था से पृथक् करना सर्वथा असंभव है। परन्तु आयुर्वेद की चिकित्सा-व्यवस्था को पूजा-प्रार्थना आदि से पृथक् रखना नितांत सरल है। ईश्वर प्रार्थना का लाभ आस्तिक के हित के लिए प्रयुक्त हो सकता है और केवल औषधोपचार नास्तिक के हित के लिए, क्योंकि दोनों प्रविधियां अपने-अपने क्षेत्र में परम लाभप्रद तत्व सिद्ध हुई हैं।

### Practical & Mundane

This facility enables the physician to deal exclusively with the practical and the mundane aspects of Ayurveda in exploiting its benefit-potential for mass medicare in India.

Here let us introduce the two sister sciences, Unani and Siddha, always bracketed with Ayurveda by the Government and the public when referring to "Indian" or "Indigenous" medicine. Unani was developed during the 8th century A. D. by the Caliphs of Baghdad when Greek and Sanskrit medical works were translated into Arabic under the patronage of Harun-Al-Rashid and Al-Mansur. Siddha may be considered as the Tamil version of Ayurveda. The three systems are similar in their approach to health and disease.

Ayurveda has tended the inhabitants of India through milleniums of their existence, and commands by far the largest contact with the masses. Next comes Unani which became popular during the Moghul rule in India. Siddha is popu ar in the South, particularly in Tamil Nadu.

### व्यावहारिक तथा इहलौकिक

उपर्युक्त सुविधा, भारत के बृहत्सामूहिक चिकित्सा साहाय्य के हित में आयुर्वेद की व्यावहारिक तथा इहलौकिक उत्कृष्टता की लाभ शक्यता के पूर्ण विदोहन में, चिकित्सक के लिए विशेष लाभप्रद सिद्ध होगी।

यहां दो अन्य चिकित्सा-प्रणालियों का समावेश भी होना चाहिए, यूनानी और सिद्ध का, जिन्हें सरकार और जनता दोनों ही भारतीय अथवा देशीय 'चिकित्सा के अंग मानती हैं। यूनानी की नींव बगदाद के खलीफाओं ने आठवीं शताब्दी में डाली जब कि हारूं-अल-रसीद और अलमंसूर के संरक्षण में संस्कृत और ग्रीक चिकित्सा-ग्रंथों का अरबी अनुवाद किया गया। सिद्ध चिकित्सा को तो आयुर्वेद का ही तामिल स्वरूप समझना चाहिए। सिद्धांतः यह तीन पद्धतियां समान हैं। स्वास्थ्य और व्याधि की विवेचन प्रणाली में भी इनमें समानता है।

आयुर्वेद सहस्राब्दों से भारतवासियों की सेवा कर रहा है। इस देश के विराटतम जनसमूह का संपर्क इसे प्राप्त है। इससे उतरकर यूनानी, जो मुगल राज्य में लोकप्रिय हुई, का स्थान है। सिद्ध चिकित्सा दक्षिण में, विशेषतया तामिलनाडू में, लोकप्रिय है।

The British left Ayurveda in unsympathetic hands. The first Health Minister of independent India predicted extinction of all non-allopathic ("unscientific") systems of medicine within a decade after the departure of the British. Other powerful figures believed that the modern medicine had assimilated all that was useful in other systems which need no longer exist in a free and progressive India. But the weighty support of Mr. Morarji Desai, Babu Jagjivan Ram and Mr. Gulzarilal Nanda and other like-minded associates of Mahatma Gandhi, along with the hold of the Indian systems on the people of India, sustained them during the more active phase of its opponents' struggle to abolish them. Gradually, the support, not only from the rural masses but also from the enlightened urban quarters gathered momentum. Today, Ayurveda is not only strong in India but is poised for a break- through into the most advanced countries like USA, Japan and West Germany where Ayurvedic activities are steadily on the increase.

**The Progress**

Some idea of the progress the Indian medicine has made since Independence can be had from the mounting Plan allotments. The first 5-Year Plan provided only Rs. 37.5 lakhs (3.75 millions) for the development of Indian medicine. In the current Plan the allotment has risen to Rs. 60 crores (600 millions). The magnitude of difference between these two figures indicates the distance the Indian systems have travelled between 1947 and 1978.

जब अंग्रेज गए तो आयुर्वेद को विरोधी हाथों में छोड़ गए। स्वतंत्र भारत की प्रथम स्वास्थ्य मंत्रिणी ने यह भविष्यवाणी की कि अंग्रेजों के जाने के बाद स्वतंत्र भारत में एलोपैथी से इतर (अवैज्ञानिक) सब चिकित्सा पद्धतियाँ कुछ ही वर्षों में लुप्त हो जाएंगी। अन्य सशक्त व्यक्तियों ने दावा किया कि सभी चिकित्सा-पद्धतियों का सम्पूर्ण उपयोगी अंग एलोपैथी ने आत्मसात् कर लिया है, इसलिए स्वतंत्र और प्रगतिशील भारत में अन्य पद्धतियों के जीवित रहने का कोई काम नहीं। परन्तु श्री मोरारजी देसाई, बाबू जगजीवन राम, श्री गुलजारी लाल नन्दा तथा समान दृष्टिकोण रखने वाले गांधी जी के अन्य अनुयाइयों के प्रबल समर्थन ने और साथ ही भारत की जनता पर भारतीय चिकित्सा की कड़ी पकड़ने, आयुर्वेद विरोधियों के विकट संघर्ष के सक्रिय काल में इस चिकित्सा को जीवित रखा। धीरे-धीरे ग्रामीण-जन समूह का ही नहीं, बुद्धिजीवी नागरिक क्षेत्रों का समर्थन भी बल पकड़ता चला गया। आज, आयुर्वेद भारत में ही सशक्त नहीं, अमरीका, जापान और पश्चिम जर्मनी जैसे सर्वाग्रणी देशों, जहां आयुर्वेदिक गतिविधियाँ उत्तरोत्तर बृद्धिशील हो रही है, में भी प्रगति के मार्ग की सब बाधाओं का निराकरण करने पर तुला हुआ है।

**प्रगति**

स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय से अब तक आयुर्वेद ने कितनी प्रगति की है, इसका कुछ अनुमान पंचवर्षीय योजनाओं के प्राविधानों से किया जा सकता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में भारतीय चिकित्सा के विकास के लिए केवल 37½ लाख रुपये रखे गये थे। वर्तमान योजना में यह राशि बढ़कर 60 करोड़ रुपये हो गई है। इन दोनों राशियों में जो विराट अन्तर है वह उस महती दूरी का प्रतीक है जो आयुर्वेद ने 1947 और 1948 के बीच तय की है।

**Statistics**

According to the latest figures supplied by the Registrar of the Central Council of Indian Medicine, a statutory autonomous body, enjoying, within its own domain, the same status and powers as the Indian Medical Council in the allopathic field, there are at present 271814 names of indigenous medical practitioners on the official registers maintained by various States. Of these the Ayurvedic practitioners number 223230, the Unani 30456 and the Siddha 18128.

These figures preclude countless unregistered and unenlisted practitioners. It is a problem to meet the flood of letters coming from indigenous practitioners who claim, sometimes with good reasons, to qualify for inclusion in the first or the second category. Even if we accept the probable existence of only one practitioner per village in India, the number of these physicians will be an additional 7 lakhs (0 7 million). Thus the total number of the indigenous physicians serving the people of India (population : December, 1977 : 625.180 millions) is around one million.

Besides, India's folk medicine is closely related to Ayurveda. Some of the village elders, grannies, etc., who act as physicians in the absence of the professionals, think and speak the Ayurvedic language and prescribe Ayurvedic remedies even if what they practise goes by the name of folk medicine. In no other country is the folk medicine so akin to the official medicine as in India and the Government of India has, through a Government Gazette notification, declared the Indian

**आंकड़े**

केन्द्रीय देशीय चिकित्सा परिषद् जो संसद निर्मित एक स्वायत्त संस्था है और अपने क्षेत्र में जिसके स्तर और अधिकार वही हैं जो इन्डियन मैडिकल कौंसिल के डाक्टरी क्षेत्र में हैं, के रजिस्ट्रार से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार विभिन्न राज्यों में शासनों द्वारा पंजीकृत देशी चिकित्सकों की संख्या 271814 है। इनमें वैद्यों की संख्या 223230, हकीमों की 30456 और सिद्धों की संख्या 18128 है।

वे लाखों चिकित्सक इन आंकड़ों से बाहर हैं जो अभी पंजीकृत (रजिस्टर्ड) अथवा अनुसूचित (एनलिस्टेड) नहीं हैं। ऐसे देशी चिकित्सकों, जो कभी-कभी अच्छी युक्तियों के साथ, प्रथम या दूसरी श्रेणी में प्रवेश पाने की पात्रता का दावा करते हैं, की संख्या इतनी बड़ी है कि उनके प्रतिवेदनों की बाढ़ का सामना करना एक कठिन समस्या है। यदि हम यह भी स्वीकार करें कि भारत के प्रत्येक ग्राम में एक चिकित्सक होगा तो भी ऐसे चिकित्सकों की संख्या 7 लाख और बढ़ जाती है। इस प्रकार भारत की जनसंख्या (दिसम्बर 1977 में 625,000,000 से ऊपर) का उपचार करने वाले चिकित्सकों की संख्या लगभग 10 लाख हो जाती है।

इसके अतिरिक्त भारत की घरेलू चिकित्सा का आयुर्वेद के साथ निकट सम्बन्ध है। ग्रामों में वृद्ध पुरुष और स्त्रियां जो चिकित्सकों के अभाव में उपचार संभालते हैं, आयुर्वेदिक भाषा में ही विचार करते हैं और वही भाषा बोलते हैं। चाहे जो दवादारु वे करते हैं वह घरेलू चिकित्सा ही कहलाती है। किसी अन्य देश की परम्परा में घरेलू चिकित्सा अधिकृत चिकित्सा के इतनी निकट नहीं जितनी कि भारत में। और भारतीय सरकार ने राजपत्रीय विज्ञप्ति द्वारा आयुर्वेद को राज्यीय चिकित्सा भी घोषित कर दिया है, जिससे राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवाओं में इसे वही स्थान प्राप्त हो गया है जो ऐलोपैथी को

medicine as a state medicine having the same status in national health services as allopathy. If these persons were counted as practising physicians which, in fact, they virtually are, the number of people rendering indigenous medical service to the people will rise steeply.

That these 'non-physician' physicians command respect even among sophisticated urban areas was amply demonstrated in the premier city of Bombay when, during the recent epidemic of infective hepatitis resulting in wide spread break-out of jaundice, the long queues in front of the houses of persons distributing free folk medicines for the cure of jaundice clearly reflected the popularity and the *manifest* excellent curative value of the remedies which proved singularly free from side-effects.

Hundreds of Ayurvedic teaching institutions which could not maintain the minimum standards laid down by the Central Council had to close down. The Council recognises only those institutions which are affiliated with the established universities. Today the number of such recognised institutions in the whole of India is 97.

The number of hospitals and dispensaries is as follows :—Ayurvedic hospitals 223; Ayurvedic dispensaries 8464; Unani hospitals 13; Unani dispensaries 573; Sinda dispensaries 425.

Fortyone universities in India have their faculties, departments, *ad hoc* committes or boards of studies of Indian medicine to maintain the standards of training and education under the over-all supervision of the Central

प्राप्त है। यदि इन व्यक्तियों की गणना भी चिकित्सा करने वालों में की जाए, जो कि प्राय: हैं ही, तो देशीय चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा करने वालों की संख्या बहुत बढ़ जाती है।

इन 'अनधिकारी' चिकित्सकों को फैशनेबल नागरिक क्षेत्रों में भी कितना मान प्राप्त है, इसका प्रचुर प्रदर्शन सर्वश्रेष्ठ नगरी बम्बई में ही हो गया जब औपसर्गिक यकृत्प्रदाह के कारण महामारी के रूप में कामला चारों ओर फैल रही थी और उसकी घरेलू दवाएं निःशुल्क बांटने वालों के निवास स्थलों के सामने रोगियों की भारी भीड़ लगी रहती थी। यह उन औषधों के लोकप्रिय तथा लाभदायक होने का स्पष्ट प्रमाण था। यह औषधें सर्वथा निर्विकारी भी सिद्ध हुईं।

सैंकड़ों ऐसे आयुर्वेद विद्यालयों को, जो परिषद् द्वारा निर्धारित मानदंडों का पालन नहीं कर सके, बन्द हो जाना पड़ा। परिषद् केवल उन्हीं संस्थाओं को मान्यता देती है जो प्रामाणिक विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध हैं। आज भारत में ऐसी मान्यता प्राप्त संस्थाओं की संख्या 97 है।

आतुरालयों और औषधालयों की संख्या इस प्रकार है :—आयुर्वेदिक आतुरालय 223, औषधालय 8464, यूनानी आतुरालय 13, औषधालय 573, सिद्ध औषधालय मात्र 425।

भारत में 41 विश्वविद्यालयों में देशी चिकित्सा के अधिकाय, विभाग, समितियां, परिषदें आदि हैं जो केन्द्रीय परिषद् के नीचे शिक्षण-प्रशिक्षण के मानदंडों को स्थिर रखने का कार्य करती हैं। इस समय मैट्रिक के बाद 7½ वर्ष तथा इंटर (आयुर्वेदिक ग्रुप) के बाद 5½ वर्ष का

Council. There is now a uniform course of $7\frac{1}{2}$ years after matriculation or $5\frac{1}{2}$ years after the Intermediate (Ayurvedic group). The Council has extended recognition to post graduate studies in 15 Ayurvedic, 2 Unani and 2 Siddha colleges.

एक ही पाठ्यक्रम सम्पूर्ण देश में अनिवार्य रूप से प्रचलित है। 15 आयुर्वेदिक, 2 यूनानी और 2 सिद्ध कालिजों में केन्द्रीय परिषद् ने स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम भी मान्य कर लिया है।

The Gujarat State has the unique distinction of establishing the Gujarat Ayurveda University.

एकमात्र गुजरात राज्य को यह श्रेय है कि उसने गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की है।

### Research

Two autonomous bodies, Central Council for Research in Ayurveda and Siddha and Central Council for Research in Unani have been constituted this year after the winding up of the 20 years old body, the Central Council of Research in Indian Medicine and Homoeopathy, which used to deal collectively with all the Indian systems including yoga, nature cure and homoeopathy. They have their own councils now. There are 15 full-fledged institutes and 120 units carrying out research on various aspects of Indian medicine.

### अन्वेषण

इस वर्ष २० वर्ष पुरानी देशीय चिकित्सा तथा होम्योपैथी शोध परिषद्, जो आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध, नैसर्गिक चिकित्सा, योग और होम्योपैथी, सभी पर शोध कार्य करती थी, शासन द्वारा तोड़ दी गई है। देशीय चिकित्सा के लिए दो अलग-अलग "साइंटिफिक एडवाइजरी कमेटी फॉर आयुर्वेद एंड सिद्ध" तथा "साइंटिफिक एडवाइजरी कमेटी फॉर यूनानी" बना दी गई हैं। होम्योपैथी, योग तथा नैसर्गिक चिकित्सा आदि के लिए अलग समितियां बन गयी हैं। 15 संस्थान और 120 इकाइयाँ देशी चिकित्सा के विभिन्न पार्श्वों पर अन्वेषण कार्य कर रही हैं।

The Central Government has also sanctioned a scheme to provide financial assistance to existing indigenous medical institutions for construction of buildings and purchase of equipment to help them attain the standards prescribed by the Council.

केन्द्रीय शासन ने एक और योजना स्वीकार की है जिससे वर्तमान संस्थाओं को केन्द्रीय परिषद् द्वारा निर्धारित मानदंडों तक पहुँचने के लिये भवन निर्माण तथा अन्य सामग्री जुटाने के लिये आर्थिक सहायता मिल सकेगी।

Nearly 80 per cent of Indian population resort to Indian systems for medical relief. This figure is supported by the Central Government Committee chaired by late Sir R. N. Chopra and other committees constituted by various states. If a number of Indian villagers take allopathic treatment, a large number of urbanites resort to Indian systems. An authentic survey supports this fact.

भारत की प्रायः 80 प्रतिशत जनता चिकित्सार्थ देशी पद्धतियों की शरण लेती है। केन्द्रीय सरकार की चोपड़ा समिति तथा अन्य राज्यीय समितियाँ इस संख्या की पुष्टि करती हैं। यदि कुछ ग्रामों में कुछ रोगी डाक्टरी चिकित्सा कराते हैं तो अनेक बड़े नगरों में अनेक नागरिक देशी चिकित्सा कराते हैं। निम्न प्रामाणिक सर्वेक्षण इस तथ्य की पुष्टि करता है।

## A Significant Survey

The Central Government, through the prestigious NIHAE (National Institute of Health Administration and Education), has conducted a significant survey of the comparative working of two Government dispensaries, one Ayurvedic and one allopathic; serving the *educated* middle classes of Delhi, not the faith-oriented villagers of India. The following extracts are taken verbatim (only italics ours) from "NIHAE RESEARCH REPORT 18". :—

"To start with only the dispensaries for the modern or the allopathic system of medicine were opened, but in 1966 the Government established 3 Ayurvedic dispensaries also for the first time *because of popular demand*."

The survey was carried out with the following objectives :—

"To compare the utilization rate, efficiency, cost of medicine, etc., with those of a CGHS allopathic dispensary."

"To estimate the demand for the Ayurvedic treatment facility under CGHS.....

'The Kidwai Nagar Ayurvedic dispensary was selected for this study mainly because of convenience. The CGHS allopathic dispensary of the *same area* was included in this study to provide data for comparison purpose."

From 1970 to 1973 the average daily attendance in the Ayurvedic dispensary *increased* every year, and in the allopathic dispensary *decreased* every year......"analysis clearly establishes that the demand for the CGHS Ayurvedic treatment facilities has been

## सार्थक सर्वेक्षण

केन्द्रीय शासन ने, अपनी प्रभावशाली संस्था, निहाई (नेशनल इन्स्टिटट्यूट आफ हैल्थ एडमिनिस्ट्रेशन एंड एजुकेशन) द्वारा एक महत्वपूर्ण सर्वेक्षण कराया है। दो केन्द्रीय शासनाधीन निःशुल्क डिस्पैंसरियों की तुलनात्मक कार्यक्षमता का जिनमें एक आयुर्वेदिक है और एक एलोपैथिक। दोनों ही दिल्ली की मध्य वर्ग की शिक्षित जनता की सेवा कर रही हैं, अशिक्षित श्रद्धालु ग्रामीणों की नहीं। निम्न उद्धरण शासन द्वारा प्रकाशित 'निहाई रिसर्च रिपोर्ट 18' से अक्षरशः लिए गए हैं :

'प्रारंभ में केवल डाक्टरी डिस्पैंसरियां ही खोली गई थीं। परन्तु 1966 में जनता की मांग पर तीन आयुर्वेद डिस्पैंसरियां भी खोली गई।'

निम्न लक्ष्यों को सामने रखकर सर्वेक्षण किया गया है :—

'एलोपैथिक डिस्पैंसरी के साथ उपयोगिता, क्षमता और औषध व्यय आदि का तुलनात्मक अध्ययन, केन्द्रीय शासन स्वास्थ्य-सेवा के अधीन आयुर्वेदिक चिकित्सा की मांग का अंकन।'

'इस अध्ययन के लिए किदवई नगर आयुर्वेदिक डिस्पैंसरी मुख्यतया सुविधा को लक्ष्य में रखकर चुनी गई। इसी क्षेत्र की केन्द्रीय शासन स्वास्थ्य सेवान्तर्गत एलोपैथिक डिस्पैंसरी भी तुलनार्थ अध्ययन में सम्मिलित की गई।'

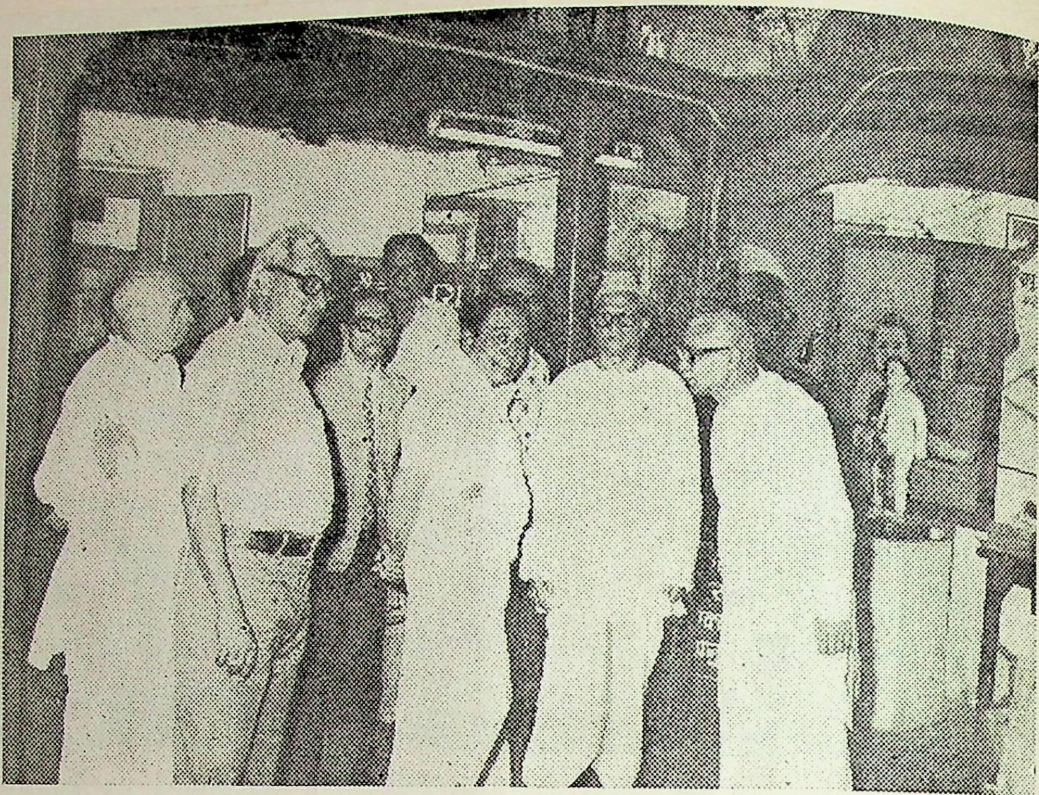
1970 से 1973 तक (4 वर्षों में) आयुर्वेदिक डिस्पैंसरी में औसत दैनिक रोगी-उपस्थिति निरन्तर बढ़ती गई और एलोपैथिक डिस्पैंसरी में घटती गई......'यह विश्लेषण स्पष्ट सिद्ध करता है कि शासकीय आयुर्वेदिक चिकित्सा सुविधा की मांग बराबर बढ़ रही है—यह वृद्धि स्वास्थ्य सेवा की साधारण मांग बढ़ जाने की प्रतीक नहीं



श्रीलंका के प्रमुख उद्योगपति श्री एम० डी० सिपाला गुणसेन वैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना-केन्द्र में पुस्तकालय का निरीक्षण करते हुए। उनके बगल में प्रतिष्ठान के सं० प्रबन्ध-निदेशक आयुर्वेद-चक्रवर्त्ती वैद्य दुर्गा प्र० शर्मा तथा अन्य कर्मीगण परिलक्षित हैं।



श्री गुणसेन वैद्यनाथ संस्थान के पटना-केन्द्र के प्रधान वैद्य डा० जायसवाल से बैद्यनाथ औषधियों के गुण-धर्मों पर बात करते हुए।



बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना केन्द्र स्थित पेन्टिग विभाग का डा० गुणसेन द्वारा निरीक्षण। प्रतिष्ठान के संयुक्त प्रबन्ध-निदेशक डा० डी० पी० शर्मा प्रतिष्ठान-सम्बन्धी आवश्यक जानकारी दे रहे हैं। चित्र में श्री गुणसेन तथा डा० शर्मा के बीच में प्रतिष्ठान के व्यवस्थापक श्री माहेश्वर मिश्र परिलक्षित हैं।



श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० पटना के आपूर्त्ति विभाग में श्री गुणसेन बैद्यनाथ च्यवनप्राश के पैक्ड डिब्बे का निरीक्षण करते हुए। चित्र में डा० डी० पी० शर्मा के अतिरिक्त उत्पाद-नियंत्रक श्री आर० के० गुप्त तथा अन्य वरिष्ठ अधिकारी परिलक्षित हैं।

*steadily growing...... the increase is not simply a reflection of over-all increase in demand for health services, for in that case there would have been a similar increase in the patient attendance at the allopathic dispensary also.*"

क्योंकि ऐसा होता तो रोगी संख्या में ऐसी ही वृद्धि एलोपैथिक डिस्पैंसरी में भी होती।'

## Other Significant Findings

## अन्य सार्थक आंकड़े

Work Load : Average, Ayurvedic dispensary : 97 patients per day per medical officer; allopathic dispensary : 70 patients per day per medical officer.

**कार्यभार** : आयुर्वेदिक डिस्पैंसरी की औसत : प्रति चिकित्सा 97 रोगी प्रतिदिन। एलोपैथिक डिस्पैंसरी : प्रति चिकित्सक 70 रोगी प्रतिदिन।

Waiting Time : "Average 51 minutes in the mornings." The report does not give the patients, waiting time at the allopathic dispensary, but it remarks, "The average waiting time of 51 minutes......indicates that the demand for Ayurvedic facilities is genuine and great,"

**प्रतीक्षा काल** : 'दिन के पूर्वार्द्ध में प्रति रोगी 51 मिनट।' रिपोर्ट में एलोपैथिक डिस्पैंसरी के आगे रोगी के प्रतीक्षा काल की औसत दर्ज नहीं परन्तु इतना लिखा है कि '51 मिनट का प्रतीक्षा काल यह स्पष्ट करता है कि आयुर्वेदिक सुविधाओं की मांग सच्ची भी है और अधिक भी।'

Distances : No patients come to the allopathic dispensary from more than 5 Kilometres distance; but quite a number of patients (3.5) per cent come to the Ayurvedic dispensary from beyond 5 kilometers. 2.3 per cent of these come from beyond 10 kilometres.

**दूरी** : एलोपैथिक डिस्पैंसरी में कोई भी रोगी 5 किलोमीटर से अधिक की दूरी से नहीं आते। परन्तु आयुर्वेदिक डिस्पैंसरी में एक अच्छी संख्या (3.5 प्रतिशत) इससे अधिक दूरी से आती हैं। इनमें से 2.3 प्रतिशत रोगी 10 किलोमीटर से भी अधिक की दूरी से आते हैं।

Behaviour : 98.7 per cent patient were satisfied with the Ayurvedic physicians' behaviour and 90.7 per cent with the allopathic doctors' behaviour.

**व्यवहार** : 98.7 प्रतिशत रोगी आयुर्वेदिक चिकित्सकों के व्यवहार से संतुष्ट थे और 90.7 प्रतिशत रोगी डाक्टरों के व्यवहार से संतुष्ट थे।

Medicines : The Ayurvedic patients have to purchase 37.8 per cent of the prescribed medicines from the market. The allopathic patients have to purchage only 20.2 per cent.

**औषध** : आयुर्वेदिक रोगियों को 37.8 प्रतिशत औषध बाजार से स्वयं खरीदनी पड़ती थीं, एलोपैथिक रोगियों को केवल 20.2 प्रतिशत औषध बाहर से लेनी पड़ती थीं।

Two of the reasons given for patients not going to the Ayurvedic dispensaries are : long queues at the dispensary and non-availability of medicines.

रोगियों ने आयुर्वेदिक डिस्पैंसरी में चिकित्सा के लिए न जाने के जो कारण बताए उनमें दो यह थे :— औषधों का न मिलना, लम्बी प्रतीक्षा से देर में बारी आना।

Reasons for preferring Ayurvedic treatment, stated by the patients : "Ayurvedic medicines provide *lasting* cure......have no ill effects......"

रोगियों ने आयुर्वेदिक चिकित्सा कराने के निम्न कारण बताए : 'आयुर्वेदिक औषध स्थायी लाभ करती है......उसके सेवन से साइड इफैक्ट ( दुष्प्रभाव ) नहीं होते।'

**Safety and Side Benefits**

Ayurveda reaches the disease through the patient; allopathy reaches the patient through the disease. The former treats the patients, and the latter the disease.

In infective disease there is no choice before allopathy but to employ lethal drugs to kill the microbe or the virus, while Ayurveda by-passes the infection and directly fortifies the patient. The result is that its medicines have no side effects. On the other hand they have many side benefits. Naturally, they are generally fool-proof and safe in the hands of even uneducated villagers.

**सुरक्षा तथा अतिरिक्त लाभ**

आयुर्वेद रोगी के द्वारा रोग तक पहुंचता है। एलोपैथी रोग द्वारा रोगी तक पहुंचती है। वैद्य सीधा रोगी की चिकित्सा करता है, डाक्टर रोग की।

औपसर्गिक रोगों में तो डाक्टरी के सामने और कोई चारा ही नहीं सिवाए इसके कि कीटाणु और वाइरस के ध्वंस के लिए मारक औषध का प्रयोग करे। आयुर्वेद कीटाणु को अलग छोड़कर सीधा रोगी की रक्षा में ही प्रवृत्त हो जाता है। फलतः इसकी औषधें दुष्प्रतिक्रियाओं से बरी है. बल्कि वे रोगी को अतिरिक्त लाभ पहुंचाती हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि अशिक्षित ग्रामीणों और बुद्धिहीनों द्वारा प्रयुक्त होने पर भी उनसे हानि पहुंचना असंभव है।

# निदान-चिकित्सा हस्तामलक
## (छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा)

# श्वास और हिक्का

वैद्य रणजितराय देसाई

### श्वास-हिक्का में हितावह सुश्रुतोक्त कल्प

श्वास, कास, हिक्का और हृद्रोग में पुराण घृत (दल वर्ष स्थित घृत) को अभया, विडलवण (अभावे कफ तथा पित्त का विलयन और वातानुलोमन होने से नवसादर) एवं हिङ्गु से सम्यक साधित कर दें। (इस प्रकार का घृत दुर्लभ एवं महार्घ होने से केवल उल्लिखित औषधों का चूर्ण सुखोष्ण जल से देना भी कार्य-साधक हो सकता है)।

सौवर्चल, अभया और बिल्वमज्जा से साधित पुराण घृत, अथवा विदारिगन्धादि गण के क्वाथ से साधित पुराण घृत को पिप्पल्यादिगण के द्रव्यों एवं पञ्चलवण का प्रक्षेप करके पिलाएं।

विदारिगन्धादिगण में विदारिगन्धा (शालपर्णी), विदारी, विश्वदेवा (गुलशकरी—यह उद्यानों में शोभार्थ लगाई जाती है, पर्याय—गो गेरुकी, अन्य मत से श्वेत पुष्प की बला)। सहदेवा (कंधी नाम से प्रसिद्ध पीतपुष्पा बला, मतांतर से नील पुष्प बला), गोक्षुर, पृश्निपर्णी, शतावरी, सारिवा, कृष्ण सारिवा, जीवक, ऋषभक, माषपर्णी, मुग्दपर्णी, बृहती, कण्टकारी, पुनर्नवा, एरन्डमूल, हंसराज, वृश्चिकाली (मेषशृंगी-विशेष), मतांतर में वृश्चियाशाक?) तथा कपिकच्छू। यह गण पित्त-वातहर एवं राज्यक्ष्मा, गुल्म, अङ्गमर्द, ऊर्ध्वश्वास तथा कास का नाशक है। इस गण के एवं अन्य भी गणों के समस्त अथवा जितने मिलें उतने द्रव्यों का चूर्ण, स्वरस, गुटी, अवलेह, घृत, तैल आदि कल्पनाओं के रूप में व्यवहार करें।

पिप्पल्यादि गण कफहर, वातघ्न, दीपन, आमपाचन एवं प्रतिश्याय, अरुचि, गुल्म और शूल को नष्ट करता है। इसमें पिप्पली, पिप्पली-मूल, चव्य (गजपिप्पली-मूल), चित्रक, शुण्ठी, मरिच, गज पिप्पली, हरेणुका, एला, अजमोदा, इन्द्रयव, पाग, जीरक, सर्षप, बकायन का फल, हिङ्गु, भारंगमूल, मूर्वा, अतिविषा, वचा, विडङ्ग और कटुकी—ये द्रव्य पठित हैं।

हिंस्रा (गुजराती नाम—कंथार), विडङ्ग, चिरबिल्व, त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक इन द्रव्यों को मिलित कर्ष ले जर्जर (जौकूट) कर इनसे दुगुने दुग्ध, चौगुने जल और एक प्रस्थ घृत मिला स्नेहपाक विधि से घृत सिद्ध करें। यह घृत श्वास, कास, अर्श, अरोचक, गुल्म, विड्भेद एवं क्षय को दूर करता है।

वासा के पंचांग को चतुर्गुण घृत में सिद्ध कर वासा के ही मूल और पुष्प का प्रक्षेप कर स्वांगशीत होने पर मधु-मिश्रित कर पिलाएँ।

कर्कटशृंङ्गी, मधूलिका (गुजराती में 'नागली' नाम से प्रसिद्ध तृणधान्य), भार्गी, शुण्ठी, रसांजन (दारुहरिद्राघन), सिता, मुस्ता, हरिद्रा तथा यष्टीमधु समांश ले इनका कल्क इतनी मात्रा में लें कि सिद्ध घृत की गन्ध आदि उत्कट न हों। इसे एक प्रस्थ घृत और चतुर्गुण शीत जल में मिला घृत सिद्ध करें। यह घृत श्वास, कास तथा हिक्का का निवारक है।

सुवहा (?) कालेयक (वल्ली दारुहरिद्रा, दक्षिण भारत में 'भरभंजकू' नाम से विदित वनौषधि)[1], भार्गी, शुकनासा (कडवी नाही, मिरचा-कन्द समुद्र कन्द), समुद्र फल (कफ हठ तथा श्वास में, विशेषतः बालकों के श्वास में उपयोगी), काकादनी (गुजराती में—कंथार), शुंठी, पुनर्नव, बृहती, कण्टकारी—इनका कल्क आधा तोला, घृत एक प्रस्थ तथा जल दो प्रस्थ (दो सेर) ले घृत-पाक विधि से घृत सिद्ध करें। इसे सुहाता उष्ण तथा कटु (कटु द्रव्यों के प्रक्षेप-युक्त ?) कर पीने से श्वास रोग नष्ट होता है।

---

1. **Coscinium fenestratum ( Gaertva ), Chlebr, वर्ग—Menispermaceal.**

सौवर्चल, यवक्षार, कटुकी, शुंठी, मरिच, पिप्पली, चित्रक-मूल, वचा, हरीतकी और विडंग—इनके कल्क से साधित घृत श्वास को शमन करता है।

इसी प्रकार सारिवा का क्वाथ घृत से द्विगुण ले सिद्ध किया घृत भी श्वास को शान्त करता है। एवं, हिंस्रादि घृत से आरम्भ कर सारिवा घृत-पर्यन्त निर्दिष्ट क्वाथों का व्यवहार अनुभवी वैद्यों के मत से श्वास और कास में हितावह है।

तालीशपत्र, तामलकी (भूम्यामलकी), वचा, जीवंती, कुष्ठ, सैन्धव लवण, बिल्वमज्जा, पुष्कर मूल, रोहिषतृण, सौवर्चल, पिप्पली, चित्रक मूल, हरीतकी-दल, और तजोवती (तेजबल अथवा मालकांगनी)—इनका चार गुणा जल ले बनाया घृत, सिद्ध होने पर चतुर्थांश हिंगु मिश्रित कर सेवन करना श्वास के समस्त प्रकारों का उत्कृष्ट शामक है।

रक्त पित्त के अधिकार में निर्दिष्ट वासाघृत (इसका पाठ पहले दे आये हैं) श्वास रोग में हितकर्ता है। डल्हन लिखते हैं—रक्त पित्त में इसका निर्देश किया होने से यह घृत पित्त प्रधान श्वासों में हितावह होता है।

वातव्याधि-चिकित्सा के अधिकार (?) में पठित षट्पल घृत भी श्वास रोग में गुणकारी है। डल्हन जी कहते हैं कि, मूल में यह घृत बाल रोग में निर्दिष्ट होने से यह वात प्रधान श्वासों में उपयुक्त होता है।

इस प्रकार पित्त प्रधान एवं वात प्रधान श्वासों में उपयुक्त उपर्युक्त घृतों का निर्देश कर अब तन्त्रकार कफ-प्रधान श्वास में हितावह स्नेह का उल्लेख करते हैं: तिल तैल एक भाग और भृङ्गराज का स्वरस दश भाग ले तैल सिद्ध करें। इसे यथायोग्य अच्छपान (केवल तैल-पान) के रूप में अथवा विचारणा (किसी भोज्य पदार्थ के साथ संयुक्त कर सेवन) के रूप में व्यवहार में लाने से कफ-प्रधान श्वास-कास दूर होते हैं।

दाडिम (अनारदाना), बीजपूर (बिजौरा) आदि अम्ल फलों के संयोग से आलीकृत, स्निग्ध (स्नेह-संयुक्त), सैन्धव का जिनमें अधिक मात्रा में प्रक्षेप किया गया हो ऐसे लाव (तीतर), बटेर आदि विष्किर (भूमि को कुरेद कर अपना भोज्य प्राप्त करने वाले) प्राणियों के मांस-रस अथवा कृष्ण हरिण गौर हरिण आदि के मांस रस (ये वातहर होते हैं) किंवा उत्तम प्रकार से संस्कारित कुलत्थ के यूष अथवा पञ्चमूल आदि वातहर द्रव्यों से साधित दुग्ध श्वास और कास को नष्ट करते हैं। (कुलत्थ-यूष प्राप्ति और निर्माण में सुगम होने से सरलता से आजमाया जा सकता है। हरिद्रा से अथवा लवण से, अथवा शुंठी, पिपप्लीमूल आदि से साधित दुग्ध के व्यवहार का प्रचार भी है। कुलत्थ, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र में भी उपयोग में आने वाला शास्त्रोक्त द्रव्य है।)[1]

तिमिर के बीज तथा कर्कटशृङ्गी अथवा दुरालभा (धन्वयास, धमासा), पिप्पली, कटुकी और हरीतकी अथवा सेह के काँटे, मयूर के रोम (चरक ने इन्हें मसी बनाकर ग्रहण करने का उपदेश किया है, यह ऊपर कहा जा चुका है), चव्य तथा पिप्पली अथवा भार्गी का छाल, शुंठी और सेह के कांटे (पाठान्तरानुसार शल्ल की वृक्ष तथा नागकेसर—शार्ङ्गधर ने पाचन का उदाहरण एकमात्र नागकेसर दिया है; और श्वास-कास में पाचन द्रव्य की उपादेयता सिद्ध ही है) अथवा नृत्तकौण्डक (गुजराती में 'नागली' अथवा 'बावदो' नाम से प्रसिद्ध क्षुद्रधान्य; इसमें केलिशयम प्रचुर होता है; अल्पवित्तों तथा आदिवासियों में विशेषतः प्रचलित है) अकेला—उपर्युक्त पांच भागों के पृथक-पृथक चूर्णों में से कोई भी चूर्ण विषम मात्रा में गृहीत घृत और मधु मिश्रित कर लेने से श्वास-कास नष्ट होते हैं। (अन्तिम योग में केवल नृत्तकौण्डक के चूर्ण का विधान किया है। इससे फलित है कि, यह धान्य श्वास-कास में उत्तम पथ्य है।)

सप्तपर्ण के पुष्प तथा पिप्पली को चूर्णित कर मस्तु (दही के तर) के साथ पिए और जौ की खील (धाना) मधु-मिश्रित कर सेवन करें।

अर्क के पल्लवों तथा पुष्पों से (इनके स्वरस से) अनेक बार सम्यक् भावित यवों से बनाया तर्पण (मन्थ अथवा सक्तु !) मधु-मिश्रित कर श्वास-पीड़ित पुरुष को पीना चाहिए। डल्हन कहते हैं कि, ऊपर के योग में जौ की खील के सेवन का विधान किया है उसी की व्याख्या

---

१. उल्हल के दिए परिचय के अनुसार गुजराती भाषा में 'तवरिया' नाम से प्रसिद्ध एवं समुद्र के पोखरों में उगने वाले वृक्ष। वनस्पति शास्त्रीय संज्ञा—Avicennia officinalis linn (Mangrove)।

यहाँ की गई है। (मूल वचन देखने से तो यह पृथक ही योग प्रतीत होता है।

शिरीष, कदली तथा कुन्द (मोगरा) के पुष्प पिप्पली-संयुक्त कर तण्डुलोदक (चावलों को रांधने पूर्व धोने से निकाला जल—डल्हन) के अनुपान से पीने से समस्त श्वास पूर्णतया (अशेषतः) नष्ट होते हैं। ऐसी प्राणवती फल-श्रुति एवं ऐसा लगभग बिना मूल्य प्राप्य योग अजमाने योग्य तो अवश्य है, यह कोई स्वीकारेगा ही)।

बदरी फल की मज्जा (अन्दर का गूदा), तालमूल (ताड़ के वृक्ष-सी जड़; 'तालमूली' इस पाठान्तर के अनु-सार मुषली) एवं रीछ के चर्म की मसी संयुक्त कर मधु साथ लेह बना कर चाटें।

अथवा, भारंगमूल (विषम प्रमाण-गृहीत) घृत और मधु-मिश्रित कर चाटें।

लघुकदम्ब (गोरखमुण्डी का पर्याय 'भूकदम्ब' है; उससे भिन्न यह पौधा है) के बीजों को पीसकर मधु मिश्रित कर तण्डुलोदक के अनुपान से लें। मूल में आए 'नीचैः कदम्ब' (लघु कदम्व) शब्द के स्थान पर 'नीपं कदम्बं रक्तं च' यह पाठान्तर है। एतदनुसार नीप (वृहत कदम्ब का फल) तथा कदंब (लघु कदम्बका फल) ये रक्त अर्थात् पक्व हो गए हों तो इन्हें पीसकर मधु और तण्डुल-जल के अनुपान से पिलाएं। लघु कदम्ब के बीजों का निर्देश पहले भी आ गया है; परन्तु वहां मधु और घृत के साथ उनके सेवन का विधान हुआ है और यहां तण्डुलोदक से; अतः पुनरुक्ति नहीं हैं। कोई डल्हन के पूर्व के टीकाकार आगे दिए 'हन्ति श्वासान् सुदारुणान्' शब्दों का सम्बन्ध इस कल्प के साथ भी मानते हुए इस योग की फलश्रुति यह बताते हैं कि, इसके योग से अति दारुण भी श्वास रोग नष्ट होते हैं।

द्राक्षा, हरीतकी, पिप्पली, कर्कटश्रृङ्गी तथा धन्वयास के चूर्ण को घृत और मधु में मिलाकर उपयोग करने से अति दारुण (घोर) भी श्वास रोग नष्ट होते हैं।

हरिद्रा, कृष्ण मरिच, द्राक्षा, गुड, रास्ना, पिप्पली और शटी (कचूर) समभाग लेकर बनाया चूर्ण तैल में मिला कर लेने से श्वास रोग शान्त होता है। इसके साथ भोजन पथ्य लेना चाहिए (वैसे तो यह पथ्य-विधान न केवल श्वास रोग पर, परन्तु रोगमात्र पर घटित होता है)।

गौओं के ताजे पुरीष का स्वरस अथवा घोड़ों का पुरीष-रस मधु, घृत और पिप्पली-सहित (पाठभेद में—मधु और पिप्पली-सहित) सेवन करना श्वासों और कासों में उपयोगी होता है।

पांडु रोग, (शोथ) एवं कास-चिकित्सा के प्रकरणों में जिन योगों का उल्लेख किया गया है वे श्वास-कास में भी हितावह होते हैं। (पाण्डु रोग में रक्त कणों की न्यूनता-वश श्वास-विशेषतः क्षुद्र श्वास संप्राप्त होता है, यह निदान-प्रकरण में कह आए हैं। इस प्रकार के पाण्डु रोग की चिकित्सा का श्वास-चिकित्सा में भी अतिदेश यहाँ किया गया है। कास में प्रयुक्त योग कफहर एवं स्तम्भ-निवारक आदि कर्म करने वाले होने से श्वास के शमन में भी उपयुक्त ठहरते हैं। सर्वाङ्ग-शोथ में फुप्फुस शोथा-क्रान्त द्रवपूर्ण-होने से श्वास के वेगों की संप्राप्ति होती है। शोथ निवृत्त हो जाने से श्वास के वेगों की भी शांति हो जाती हैं। इसी प्रकार हृदय शोथ-युक्त होने से दुर्बल हो जाता है, तब भी श्वास के वेग संभाव्य होते हैं। शोथ का निवारण होने से इस प्रकार होने वाले श्वास भी शांति को प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त बहुधा सर्वांगशोथ पाण्डुरोग का अङ्गभूत हुआ करता है और उसमें पाण्डुहर उपचार भी चिकित्सा के अंग होते हैं। सो, इस प्रकार भी सर्वांग-शोथ में विहित पाण्डुरोग की चिकित्सा श्वास में हितावह होती है)।

भार्गीत्वक्, त्रिकटु, हरिद्रा, कटुकी, पिप्पली, मरिच, चण्डा (चोरक, परिचय पहले से आए हैं), गौ के पुरीष का रस तथा तैल संमिश्र कर चाटना श्वासों में गुण-कारी है।

अङ्कोल के बीजों की यथाविधि बनाई उत्कारिका (खीर-जैसी पेय) का सेवन करने से अति दुस्तर भी श्वास शीघ्र नष्ट होते हैं। (अङ्कोल के मूल के उपयोग को मध्यकाल के सभी लेखकों ने अतिसार, प्रवाहिका तथा ग्रहणी रोग में अतीव उपकारक कहा है, यह 'निदान चिकित्सा हस्तामलक' के द्वितीय खण्ड में लिख आए हैं। यहां इस वृक्ष के बीजों को अति घोर भी श्वासों को शीघ्र नष्ट करने वाले कहा है। इसका व्यवहार इन दोनों रोगों में करने के द्वारा सत्यासत्य की परीक्षा करने की अभ्यर्थना अनुसन्धान-रसिक वैद्यों और अनुसंधानक-र्ताओं से करता हूं)। डहल्‌न कहते हैं कि, कोई सुश्रुत के

व्याख्याता उपर्युक्त भार्गीत्वक् आदि द्रव्यों और यहां कहे अङ्कोल-बीज योग को दो योग मान एक ही उत्कारिका-योग मानते हैं)।

पुराण घृत, पिप्पली, कुलत्थ के संयोग से साधित जाङ्गल प्राणियों के रस, सुरा, सौवीरक, हिंगु, बिजौरे का रस, मधु, द्राक्षा, आमलक और विल्व—ये द्रव्य भी श्वास और हिक्का रोगों से पीड़ित पुरुषों के लिए हित-कर हैं। (इनका आहारौषध कल्पनाओं के रूप में व्यवहार करना चाहिए)।

श्वास और हिक्का पर सुश्रुतोक्त योगों का उल्लेख कर अब लघु-वाग्भटोक्त कल्पों का उल्लेख करते हैं। तुलना करने से ज्ञात होगा कि, दोनों आचार्यों ने प्रायः समान ही द्रव्यों का समावेश इन योगों के पाठों में किया है। प्रथम उपयुक्त अन्नपान का निर्देश करते वाग्भट कहते हैं—

कुलत्थ और दशमूल के क्वाथ से संयुक्त कर जाङ्गल (शुष्क जलवायु के) प्राणियों के मांसरस तथा यूष दें।

शिग्रु, वृन्ताक (बैंगन), कासमर्द, वासा,मूलक; निम्न, पटोल, बड़ी कण्टकारी तथा मातुलुङ्ग—इनके पल्लव, कण्टकारी, धन्वयास, कर्कटशृङ्गी, बिल्वमज्जा, गोक्षुर, गुडूची, चित्रकमूल तथा कुलत्थ—इन्हें जल में पका इनके साथ बनाया (मुद्ग) यूष। अथवा—

रास्ना, लघु पञ्चमूल, बला, मुद्ग और चित्रक—इनका यूष दें।

इस प्रकार की टीका में हेमाद्रि ने अपनी आयुर्वेद-रसायन टीका में अष्टाङ्ग संग्रह से योग उद्धृत किये हैं। प्रथम उन्हें देख लें। इनमें प्रथम सुश्रुतोक्त शिरीष आदि के पुष्पों का योग है। सुश्रुत ने इस योग को श्वास में हितावह कहा है, जबकि संग्रहकार ने हिक्का श्वास और कास का श्रेष्ठ नाशक लिखा है।

आरनाल (रसशास्त्रोक्त काञ्जिक) में पीस अथवा जल में पका हिंगु, सौवर्चल, पिप्पली, बदरी फल की मज्जा (मूदा) और मुद्ग—इन द्रव्यों को मातुलुङ्ग का रस मिला उसके यूष का सेवन कराएं। (सुश्रुत तथा वाग्भट्ट के अनेक योगों में बदरी फल का प्रयोग श्वास, कास और हिक्का के नाशनार्थ विहित है। वैद्य तो इस द्रव्य का संप्रति विशेष व्यवहार नहीं करते, परन्तु यूनानी वैद्यक में सूखे बेर—उन्नाब—का प्रयोग ऐसे ही अन्य यूनानी औषधों के साथ क्वाथ आदि के रूप में करते हैं।)

त्रिफला, पाठा, कण्टकारी के फल और मूल से बनाये क्षार का सेवन कराएं। (पाठान्तर के अनुसार—कण्टकारी के फल और कुम्भी।)[1]

मुक्ता, प्रवाल, वैदूर्य, शङ्ख, सौगन्धिक (गन्धक), अञ्जन, भसार (?), गल्ल (?), स्फटिक (बिल्लौर), एला, सैन्धव, सामुद्र लवण, अपामार्ग के बीज, ताम्र, अयस् (लोह), रौप्य, शण के बीज—इनके यथायोग्य अयस्कृति या भस्म, पिष्टि वा चूर्ण लें उन्हें ज्योति (ज्योतिष्मती ?) के स्वरस के साथ चाटें।

केवल लोह (अयस्कृति अथवा भस्म) मधु-मिश्रित कर लेहन करें। लोह की उपयोगिता श्वास रोग के किन प्रकारों में होती है, उसका निरूपण पहले किया जा चुका है।)

पिप्पली, द्राक्षा, हरीतकी-दल, कर्कटशृङ्गी और, दुरालभा (धमासा)—इन्हें चाटें। यह योग सुश्रुत ने भी दिया है। परन्तु उसके अनुपान में तैल का समावेश नहीं किया है, तथा योग को अति दारुण भी श्वास रोग का संहारक कहा है। अनुपानोक्त द्रव्य पृथक-पृथक दोषों के श्रेष्ठ शमन के रूप में आयुर्वेद में प्रसिद्ध हैं। महाराष्ट्र की एक संस्था ने इन तीनों द्रव्यों को मिश्रित कर विक्रयार्थ प्रस्तुत किया था। इसका नित्य उपयोग यह संस्था बालकों की पुष्टि और स्वास्थ्य की स्थिरता के लिए करना हितावह बनाती थी। कारण, बालकों की प्रकृति या विकृति का आरम्भक दोष कोई भी हो उस पर इन तीनों में से किसी की भी उस पर क्रिया होगी ही।

आमलक और कपित्थ (कैथ) का—इनके फलों का—स्वरस पिप्पली और मधु-मिश्रित कर सेवन कराएं।

सितोपला, आमलक, द्राक्षा (मुनक्का), गौ तथा अश्व के ताज़े पुरीष का रस, जीवन्ती, चोरक, कर्कट-शृङ्गी, पुष्करमूल, तुलसी-दल, शटी (कर्चूर), पिप्पली, त्वक् (दालचीनी), बिडलवण, यवक्षार, शुण्ठी, हिंगु, अम्लवेतस (अम्ल फल-विशेष), एला, भूम्यामलकी, भार्गी,

---

1. गुजराती नाम---वापुंभा; वनस्पतिशास्त्रीय संज्ञा-Careya Arborea Roxb. इसका विशेष प्रयोग योनि-मार्ग में धारणार्थ प्रयुक्त होने वाली फलवर्तियों के निर्माण में होता है।

वृक्षाम्ल (कोकम)---इन्हें चूर्णित कर मातुलुङ्ग (बिजौरे) के रस, मद्य अथवा घृत में मिलाकर चाटें या अन्न-पान में मिश्रित कर उपयोग करें किंवा एकाकी इस चूर्ण को व्यवहार में लाएं तो हिक्का, श्वास, विबन्ध, अर्श, कास, हृच्छूल तथा पार्श्वशूल नष्ट होते हैं।

हेमाद्रि ने इसी प्रकरण में आगे वङ्गसेन-प्रदत्त दो योग दिये हैं। उन्हें क्रमशः उद्धृत करते हैं।

इनमें प्रथम योग भैषज्यरत्नावली तथा योगरत्नाकर में भी पठित है और वहां इसे 'भार्गीगुड' अभिधान दिया है। इसके निर्माणार्थ भारंगमूल 100 पल (12॥ सेर), दशमूल मिलित 100 पल एवं शिथिल पोटली में बद्ध हरीतकी 100 अदद अथवा 2 सेर ले, उन्हें चतुर्गुण (पक्का 108 सेर) जल में डाल चतुर्थांश शेष (27 सेर) पाक करें। इसे वस्त्रपूत कर अथवा बारीक चालनी से छान) इस जल में उक्त अखंड हरीतकी तथा 100 पल पुराना छोड़ गुड़ मन्द अग्नि पर पाक करें। पाकवश द्रव्य लेह्य अवस्था में आने पर उसमें त्रिकटु तथा त्रिसुगन्धि (त्वक्, एला, पत्र) इनमें प्रत्येक का पृथक्-पृथक् 1-1 पल चूर्ण तथा यवक्षार 2 तोला, (भैषज्यरत्नावली की मूल टीका में 6 तोला) का प्रक्षेप करें। स्वांगशीत होने पर इसमें 6 पल मधु डालकर एकजीव कर लें। इस योग का लेह 2 तोला (भैषज्यरत्नावली-टीका—१ से 4 तोला) तथा हरीतकी अखंड एक अदद अथवा यथावश्यक उसका अंश एकत्र कर सेवन करें। इस प्रयोग से दारुण भी श्वास एवं पञ्चविध कास शान्ति को प्राप्त होते हैं, स्वर और वर्ण प्राकृत स्वरूप में आते हैं और जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

कुलत्थ दशमूल मिलित तथा यष्टीमधु 100-100 पल ले दो द्रोण (32 सेर) जल में पाक करें। चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार, छान, शीत होने पर पुरातन गुड़ अर्ध तुला (50 पल) डाल पुनः पाक करें। सम्यक् पक्व होने पर लेह शीत हो जाए तब उसमें मधु 8 पल (32 तोला), तुगाक्षीरी (वंशलोचन अथवा तवाक्षीर) 6 पल, पिप्पली 2 पल, त्रिसुगन्धि (त्वक्, एला, पत्र) तथा सुगंधी (?)[1] पिप्पली-तुल्य डाल हिला कर समरस कर लें। जठराग्नि के बल के अनुरूप मात्रा में इस अवलेह का व्यवहार करने से श्वास, कास, ज्वर, हिक्का तथा तमक (तमक श्वास अथवा तमोदर्शन) नष्ट होते हैं।

अब पुनः लघुवाग्भटोक्त शेष कल्प देखिए।

चित्रकमूल, जीरक, कर्कटशृङ्गी और सौवर्चल से साधित अथवा दशमूल से साधित पेयाएं श्वास, कास, हिक्का—इन रोगों को दूर करती हैं।

दशमूल, शठी, रास्ना, बिल्व, ऋद्धि, पुष्करमूल, कर्कटशृङ्गी, चपला (पिप्पली), तामलकी (भूम्यामलकी), गुडूची और शुण्ठी इनसे साधित विधिवत् बनाए क्वाथ का सेवन कर उसके जीर्ण हो जाने पर (जिसकी प्रतीति उद्गार की शुद्धि से होती है) इन्हीं द्रव्यों से साधित पेया का उपयोग करें।

भोजन में शालिधान्य षष्टिक (सांठी चावल), गोधूम, यव, मुद्ग और कुलत्थ का उपयोग श्वास, कास, हिक्का, पार्श्वशूल एवं हृद्ग्रह की प्रशान्ति करता है। (इन आहार द्रव्यों में अरहर का समावेश नहीं किया गया है, यह इन रोगों के उपचार में लक्ष्य रखने योग्य है। अरहर वातल है)।

अर्क के अंकुरों (नवपल्लवों) तथा क्षीर से भावित यवों के सक्तु (सत्तू) में मधु तथा पूर्वोक्त दशमूल, शटी आदि क्वाथ संयुक्त कर उसका सेवन करें। भावित यवों के सेवन का विधान सुश्रुत में भी आया है, परन्तु यहां कुछ विशेष है।

हिक्का-श्वास में औषध-सिद्ध अन्न-पान का विधान करते वाग्भटाचार्य कहते हैं—अन्न में यवक्षार, हिङ्गु, घृत, बिडलवण, दाडिम, पुष्करमूल, शटी, त्रिकटु, मातुलुङ्ग तथा अम्लवेतस का संयोग अथवा संस्कार करें। एवं तृषा लगने पर दशमूल किंवा देवदारु का क्वाथ अथवा वारुणी (ताडी) का मण्ड पिएं।

पिप्पली, पिप्पलीमूल, हरीतकी, विडङ्ग तथा चित्रक—इनके कल्क से घृत-लिप्त पात्र में अर्ध अंगुल मोटा लेप

---

1. मूल में आए 'सुगन्धी' शब्द का अर्थ अन्वेष्टव्य है। निघण्टुओं में 'सुगन्धी पञ्चक' के दो प्रकार, 'सुगन्धी-षट्का के दो प्रकार इनमें एक महासुगन्धी षट्क प्रसिदध हैं। इन के द्रव्य क्रमेण देते हैं। केसर, अगुरु, कर्पूर, कस्तूरी और चन्दन, कर्पूर, कङ्कोल, लवङ्ग, जायफल और पुंगीफल, जायफल, लवंग, कर्पूर, सुपारी, उशीर और कङ्कोल; कृष्णागुरु, कस्तूरी, कर्पूर, श्वेत चन्दन, कङ्कोल तथा गन्धनाकुली।

कर वह (लेप) शुष्क और कठिन हो जाए तो उसमें तक्र डाल ढाँक कर एक मास रहने दें। यह तक्र दीपन एवं श्वास-कासहर होता है।

तक्र को इस प्रकार दीपनीय द्रव्यों के योग से संस्कृत करने से उसमें गुणान्तराधान (अन्य गुण-कर्म की उत्पत्ति) हो जाती है। तक्र के सेवन की संहिताओं में चाहे उतनी प्रशस्ति की गई हो, आनूप देशों (जलप्राय स्थलों) में अग्नि-बल देश स्वभावाधीन प्रकुपित हुए कफ के प्रकोप के कारण मन्द होने से असंस्कृत अथवा अपक्व तक्र उतना हितावह तो नहीं देखा है। इस विषय का अनुभव संग्रहकार के निम्न पद्य में प्रतिबिंबित हुआ है—

**तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च ।**
**पीनसश्वासकासादौ पक्वमेव प्रयुज्यते ॥**

—अ० सं० सू० 7, भाव प्रकाश

तात्पर्य, तक्र अपक्व हो तो वह कोष्ठ में—आम पक्वाशय में— कफ को नष्ट-सम करता है, परन्तु कण्ठ में (प्राणवह स्रोतों में) उसे (कफ को) प्रकुपित ही करता है। तस्मात्, प्रतिश्याय, श्वास, कास प्रभृति रोगों में पक्व ही तक्र का प्रयोग करना चाहिए। (जिन रोगों में पक्व ही तक्र के सेवन का विधान किया है, उन्हें दृष्टि में रखने प्रथम वाक्य में आए 'कण्ठे' शब्द से कण्ठसहित समग्र प्राणवह स्रोत का ग्रहण न्याय है। यह तक्र एकाकी उष्ण कर लिया जाए अथवा उसमें लशुन, राजिका आदि उष्ण तीक्ष्ण एवं दीपन द्रव्यों का छौंका दिया जाए अथवा ऐसे द्रव्यों से साधित कढ़ी का उपयोग किया जाए—यह तन्त्रकर्ताओं को अभिप्रेत है। यहाँ निर्दिष्ट कदी से उत्तर भारत में प्रचलित सान्द्र—गाढ़ी—एवं बड़ी-युक्त कढ़ी के प्रति संकेत नहीं है, परन्तु हमारी ओर गुर्जर देश में जो कढ़ी स्वरूपतः तक्र-सदृश द्रव प्रधान एवं आम्रहरिद्रा कैडर्य (कढ़ी-नीम), मिरची आदि से संस्कृत कर व्यवहार में आती है उसके प्रति अंगुली-निर्देश है। यह साधारण तक्र-सदृश अहित न करती हुई हितावह एवं स्फूर्ति-प्रद ही सिद्ध होती जाती है। जिन्हें पुनरावर्ती अथवा सतत प्रतिश्याय, कास, श्वासप्रभृति व्याधियों की पीडा हो उन्हें तक्र अथवा दधि का सेवन करना न चाहिए।)

पाठा, मधुरसा (मूर्वा)[1] देवदारु, सरल (चीड़ जिसका गौंद गन्धा बिरौजा है)—इनके चूर्ण के सुरा के मण्ड (निथारा हुआ उपरिस्थित द्रवांश) में एक रात रख कर थोड़ा लवण मिला दो पल (आठ तोला) जितनी मात्रा में लें।

भार्गी और शुण्ठी सुहाते पानी के साथ लें।

यवक्षार कृष्ण मरिच संयुक्त इसी अनुपान से लें।

इन दो योगों के समान सुगम योग अवश्य आजमाने योग्य हैं।

हिंगु पत्रिका के क्वाथ में हिंगुपत्रिका के चूर्ण को आलोडित कर उसका पान कराएं। (हिंगुपत्रिका' का डीकामाली अर्थ प्रसिद्ध हैं। परन्तु इसमें हिंगु-सदृश गन्ध न होने से इसे डिकामाली मानना दुष्कर है। अरुणदत्त ने मूल में आए बाष्पिका का अर्थ गुजराती-मराठी में बामुली या बामली नाम से प्रसिद्ध वनौषधि है।[2] इसके सुगन्धि फल रसोई के मसाले में डाले जाते हैं। मदनपाल-निघण्टु में हिंगुपत्री के दो भेद कहे हैं—बाष्पिका और हिंगुपत्रिका।)

सप्तपर्ण का स्वरस अथवा शिरीष-पुष्पों का स्वरस पिप्पली और मधु के साथ पित्त-कफ-प्रधान हिक्का और श्वास में हितावह है।

पित्तानुबन्धी हिक्का-श्वास में तुगाक्षीरी, पिप्पली,

---

1. मूर्वा का स्वतन्त्र उपयोग शास्त्र में देखा नहीं जाता। विभिन्न संयुक्त कल्पों में ही वृद्धत्रयी में यह विहित है। कठिनाई यह है कि, देश के पृथक्-पृथक् भागों में पृथक्-पृथक् वनौषधियों का व्यवहार मूर्वा नाम से होता है। इस प्रकार कोई छः वनस्पतियां मूर्वा नाम से -प्रचलित हैं। आचार्य बापालाल भाई ने अपने 'निघण्टु आदर्श, वृद्धत्रयी की वनस्पतियाँ और आयुर्वेदीय वनस्पति-कोष'—इन ग्रन्थों में हिन्दी में चिन्हार, जरतोर और मरुआवेल (चकरौता), गुजराती में मोरवेल तथा वनस्पति-शास्त्र में Marsdenia tenacissima W & A नाम से प्रसिद्ध Asclepiadaceae या अर्क-वर्ग की वनौषधि ही आयुर्वेदोक्त मूर्वा (मधुरसा, मोरटा, चोर स्नायु) है, यह प्रतिपादन किया है।

2. वनस्पतिशास्त्रीय संज्ञा—Pencedanum grande Llnn तथा वर्ग Umbelliferae है।

मधूली (जलज मधुयष्टी अथवा गोधूम-विशेष-अरुणदत्त), शुण्ठी और घृत से साधित उत्कारिका (पेया) दें।

वातानुबन्धी हिक्का-श्वास में सेह और शशक के मांस, पिप्पली, सेह के रक्त और घृत से साधित उत्कारिका का सेवन कराएं।

इन रोगों में वायु और पित्त का अनुबन्ध हो तो सुवर्चला (सूर्यमुखी) के स्वरस, त्रिकटु और घृत से साधित दुग्ध शालिधान्य का सेवन करने के अनन्तर कराएँ। देश, सात्म्य आदि को लक्ष्य में रख कर यह दुग्ध गौ का अथवा बकरी का लें।

चौगुने जल में अजा-दुग्ध मिला, शुण्ठी और गुड़ (मात्रावत्) डाल यथाविधि सिद्ध कर सेवन कराएँ। (आहार-द्रव्यों के प्रकरण में संहिताकारों ने लिखा है कि, गुड़ की विकृतियों को जैसे-जैसे शुद्ध किया जाए वैसे-वैसे उनमें श्वेतता और शीतता का उदय होता जाता है। इस प्रकार गुड़ स्वयं उष्णतम होने से कफ-वात प्रधान देह-प्रकृति और रोग-प्रकृति में सात्म्य होता है। उधर, सितोपला शीततम होने से पित्त प्रधान देह-प्रकृति और रोग-प्रकृति में उपयुक्त होती है तथा कफ-वात प्रधान स्थितियों में अहितावह होती है; प्रतिश्याय, के अधिकार में कह भी आए हैं कि, जिन बालकों को नित्य अथवा पुनरावर्ती प्रतिश्याय, मुखस्राव आदि रहते हों उन्हें दूध, चाय आदि में खाँड के स्थान पर गुड़ का व्यवहार कराया जाए तो केवल इतने ही उपचार से औषध बिना भी वे प्रकृतिस्थ हो जाते हैं। वह प्रकरण यहाँ पुनः ध्यान में लेना चाहिए)।

पिप्पलीमूल, यष्टीमधु, गुड़, गौ (गाय-बैल) और अश्व के ताजे पुरीष का रस—इन्हें मधु और घृत-मिश्रित कर लेने से हिक्का, श्वास, कास और अभिष्यन्द नष्ट होते हैं। (अभिष्यन्द शब्द 'नेत्राभिष्यन्द' अर्थात् आँख आने के लिए अधिक प्रसिद्ध है। परन्तु इसका एक अन्य अर्थ भी शास्त्र में आता है। और वह है—द्रव प्रधान कफ नासिका, मुख, गल आदि से प्रस्रुत होना। इसमें प्रस्रवण अर्थ की स्यन्द (न्दू) धातु है। अभिष्यन्द का यह पिछला अर्थ ही यहां ग्राह्य है)।

गौ (गाय-बैल), गज, अश्व, वराह (शूकर), उष्ट्र, खर (गर्दभ), अजा और मेष (मेंढा)—इनमें किसी भी प्राणी के पुरीष का रस मधु-मिश्रित कर चाटें अथवा पिएँ। शरीर में श्लेष्मा का आधिक्य हो तो यह योग हितावह होता है। (तात्पर्य, कास, श्वास, हिक्का प्रभृति रोगों में कफ का प्राधान्य हो तो इस योग का सेवन करना चाहिए)।

इसी प्रकार कफोल्वण श्वास रोग में (विभिन्न) चतुष्पाद प्राणियों के चर्म, रोम, अस्थि, खुर और शृङ्ग को जला (इनमें जो भी सुलभ हो उसका ग्रहण उपयुक्त होगा) इनकी मषी बना उसे (मधु के साथ) चाटें।

एवं इसी कफाधिक श्वास में अश्वगन्धा की मषी को (मधु से) चाटें।

अथवा शठी, पुष्करमूल और आमलक अथवा पुष्करमूल और पिप्पली अथवा सुवर्णगैरिक, अञ्जन तथा पिप्पली किंवा कपित्थ का स्वरस—इनमें से किसी भी योग को मधु मिला चटाएं। अथवा आमलक, सैन्धव और पिप्पली—इनके चूर्ण को कपित्थ के रस के साथ, अथवा हरीतकी, विडङ्ग, त्रिकटु एवं पिप्पली-चूर्ण को (विषम मात्रा में गृहीत) घृत-मधु से लेहन कराएं।

बेर (उन्नाब), खील, आँवला, मुनक्का, पिप्पली और शुण्ठी अथवा गुड़, तैल, हरिद्रा, द्राक्षा, पिप्पली, रास्ना[1]

1. रास्ना आयुर्वेद की प्रसिद्ध वनस्पति एवं वातघ्न द्रव्यों में श्रेष्ठ तथा अगुरु के अतिरिक्त शरीर की शीतता को लेप द्वारा दूर करने हारे द्रव्यों में श्रेष्ठ (देखिए : च. सू. 25) होने पर भी यह संदिग्ध द्रव्य है। लगभग आठ वनौषधियां इस नाम की उम्मीदवार हैं। भिन्न-राज्यों में भिन्न-भिन्न वनस्पति रास्ना नाम से उपयोग में लाई जाती है। आचार्य बापालालभाई ने उत्तर भारत में बायसूरई या रोसना नाम से प्रसिद्ध तथा गुर्जर प्रदेश में रास्ना नाम से व्यवहृत वनस्पति को रास्ना माना है। इसकी वनस्पतिशास्त्रीय संज्ञा **Pluchea lhnceolata Oliver & Hiern** है। साथ ही आचार्य जी लिखते हैं—डा० वामन गणेश देसाई कुष्ठ-ई-शामी (ईरान), राइसन, रासन (यूनानी) को रास्ना मानते हैं। यह पुष्करमूल की जाति की वनस्पति है। ईरानी नाम में इसे 'कुष्ठ' कहा है। कुष्ठ पुष्करमूल के समान ही सुगन्धयुक्त होने से उक्त यूनानी द्रव्य को रास्ना मानने में कोई आपत्ति नहीं। यूनानी नाम तुल्य होने के कारण भी इसे रास्ना कहा जा सकता है।

और त्रिकटु इन्हें चटाएं, अथवा ऊपर कहे लेहों अथवा टीकाकार के मतानुसार अगस्त्यहरीतकी आदि अवलेहों के पाठ में कहे द्रव्यों के चूर्णों को मांसरस, जल, मद्य और अम्ल द्रव्यों के साथ व्यवहार में लाएं।

आहार, पान, लेप आदि जिस भी रूप में अनुकूलता हो, उपयोग करने से निम्न चूर्ण, पार्श्वशूल, ज्वर और कास को नष्ट करता है तथा श्रेष्ठ हिक्का-श्वासहर है। इसका पाठ-जीवन्ती, मुस्ता, तुलसी, दालचीनी, छोटी तथा बड़ी इलायची, पुष्करमूल, चण्डा (चोरक), भूम्यामलकी, अगरु, भार्गी, शुण्ठी, ह्रीबेर, कर्कटशृङ्गी, शठी (कर्चूर), पिप्पली, नागकेसर (शार्ङ्गधर के मत से पाचन द्रव्य का उदाहरण; अतएव आम, कफ और वायु को प्रकृतिस्थ करने वाला) और चोरक (दो बार पठित होने से द्विगुण), शर्करा (मिलित से) द्विगुण।

शठी, भूम्यामलकी, भार्गी, चण्डा (चोरक), ह्रिबेर तथा पुष्करमूल (समभाग), शर्करा (मिलित से) अष्टगुणित। यह चूर्ण अतीव हिक्का-श्वासहर है।

शुण्ठी-चूर्ण और गुड़ समभाग ले श्वास रोग में उसका भक्षण करें। (प्रतिश्याय, शरीर में कफ का प्राधान्य, शीतता आदि में इन दो द्रव्यों में घृत मिला वटक बना उसके सेवन का समाज में प्रचार है।)

अब हिक्का और श्वास इन रोगों में उपयुक्त नस्यों का उल्लेख किया जाता है। इनमें प्रथम उक्त गुड़-शुण्ठी नस्य है। (इस ओर इस नस्य में घृत भी मिलाकर निर्माण की प्रथा है। प्रतिश्याय के प्रकरण में इसका विवरण किया जा चुका है। यहां प्रस्तुत विषय की पूर्ति के प्रयोजन से उसका पाठ-मात्र देते हैं। एक सेर जल, पांच तोला गुड़, 2 तोला सूक्ष्म शुण्ठी चूर्ण ले तीनों को संयुक्त कर जल चतुर्थांश शेष रहे तब तक ताप दें। पश्चात् उसमें पाव सेर घृत मिला घृत मात्र शेष रहे तब तक मन्द अग्नि पर पाक करें। स्वांगशीत होने का आए तब शीशी में भर लें। उपयोग काल में घी पिघलाना आवश्यक हो तो शीशी को ताप के समीप अथवा धूप में रखें।

लशुन, अथवा पलाण्डु अथवा गृञ्जनक (तीक्ष्ण नस्य यहां अभीष्ट होने से शलगम अर्थ लेना उपयुक्त होगा) अथवा चन्दन—इनका रस (चन्दन के पक्ष में—उसका घासा) नारी-स्तन्य में मिश्रित कर उसका नस्य दें। अथवा मक्षिका की विष्ठा (मधु—अरुणदत्त) स्तन्य के साथ किंवा लाक्षा के द्रव के साथ नस्यार्थ दें। अथवा मधु में स्तन्य और घृत का मण्ड मिला उसका नस्य दें। अथवा नारीस्तन्य-साधित घृत नस्यार्थ दें। अथवा जीवनीय आदि मधुर द्रव्यों से सिद्ध किया घृत पानार्थ तथा नस्यार्थ दें। अथवा इन मधुर द्रव्यों से साधित दुग्ध क्रमशः उष्ण और शीत रूप में पुनः-पुनः दें। दुग्ध जब उष्ण लेना हो तो उसमें सितोपला मिलाएं और जब शीत लेना हो तो मधु। अथवा त्रिवृत् आदि विरेचन द्रव्यों से साधित घृत का इसी प्रकार पानार्थ उपयोग कराएं।

पिप्पली, सौवर्चल, यवक्षार, आमलक, हिंगु, चोरक और हरीतकी, यस्तु तथा दशमूल का क्वाथ एवं घृत स्नेहपाक परिभाषा के अनुरूप मात्रा में ले घृत सिद्ध कर हिक्का-श्वास पीडित पुरुषों को पानार्थ दें। अथवा, जीवनीय द्रव्यों के कल्क से साधित घृत को मधु-मिश्रित कर चाटें, पिएं नहीं।

अन्य भी घृतों का विधान करते तन्त्रकार आगे कहते हैं—तेजवल, अभया, कुष्ठ, पिप्पली, कटुकी, भूतीक (कत्तृण, हरी चाय), पुष्करमूल, पलाश, (मूल अथवा बीज ?), चित्रकमूल, शटी, सैन्धव लवण, सामुद्र लवण, भूम्यामलकी, जीवन्ती, बिल्वमज्जा, वचा, तालीसपत्र—(प्रत्येक ?) का कल्क 1-1 तोला, हिंगु चतुर्थांश, घृत एक प्रस्थ—इन्हें संयुक्त कर (परिभाषानुसार जल मिला) यथाविधि पाक कर सिद्ध किया घृत पान करने से सत्वर शाखावात, अर्श, ग्रहणी, हिक्का, हृच्छूल तथा पार्श्वशूल को नष्ट करता है। अरुणदत्त कहते हैं कि, अपने प्रमाथी गुण के योग से यह घृत दुष्ट कफ से आवृत (मन्द-गति) स्रोतों को उद्घाटित करता हुआ शाखावात-प्रभृति रोगों को नष्ट करता है।

हेमाद्रि ने अपनी आयुर्वेद-रसायन व्याख्या में अष्टांगसंग्रह से अन्य भी घृत उद्धृत किये हैं। तथाहिः गुग्गुलु, मंजिष्ठा, लाक्षा, सर्जरस (राल), पद्मकाष्टा, मनःशिला, हरताल (मिलित या पृथक्-पृथक् ?) 1-1 कर्ष एक प्रस्थ घृत मिला यथाविधि घृत सिद्ध करें। (मनःशिला और हरताल अथवा इन दोनों का मूल तत्त्व सोमल श्वास रोग के विशिष्ट औषध हैं। तीनों के विषय में अधिक विचारणा आगे की जाएगी।) अथवा-विदार्यादि गुण-साधित, वन्सकादि गण के प्रक्षेप-युक्त तथा पञ्च-लवण

मिश्रित घृत श्वासों और कासों को नष्ट करता है। तद्वत्, हिंस्रा, (गुजराती में-कंथार), विडङ्ग, पूतिकरञ्ज (कुबेराक्ष), त्रिटुक, त्रिफला एक कर्ष (तोला), जल एक आठक तथा घृत दो प्रस्थ लेकर बनाया घृत कास, श्वास, प्रीतस, अर्श, अरोचक, क्षय और हिक्का को नष्ट करता है।

अन्त में प्रकरणान्तरोक्त घृतों का अतियेश श्वास और हिक्का के क्रियाक्रम में भी करते वाग्भट कहते हैं—प्रमेहोक्त धान्वन्तर घृत (आ०हृ०चि० 12-19), रक्त-पित्तोक्त वृष घृत (अ०हृ०चि० 2-40), गुल्माधिकारोक्त दाधिक घृत (अ०हृ०चि० 14-3) तथा गुल्म चिकित्सा में ही कथित हपुषादि घृत (अ०हृ०चि० 15) को अर्ध भाग यवक्षार अथवा अर्ध भाग सैन्धव लवण-मिश्रित कर पिलाएं। टीका में अष्टाङ्ग संग्रह से वचन उद्धृत कर अरुणदत्त जी ने कहा है कि, पुराण घृत अर्ध अंश सैन्धव मिलाकर पान कराएं। शेष क्षार की अर्धांश मात्रा के विषय में निर्णयसागरी अष्टाङ्ग हृदय की पादटिप्पणी में विद्वान सम्पादक महोदय लिखते हैं कि---अर्ध भाग क्षार की धान्वन्तर घृत आदि के साथ योजना अयोग्य है। कारण, यह चरक और अष्टाङ्ग संग्रह एवं हेमाद्रि, चन्द्रनन्दन, इन्दु आदि व्याख्याओं के विरुद्ध है। (वासा-घृत का पाठ पहले दे आये हैं।)

आगे हेमाद्रि ने वङ्गसेन से कुछ अन्य घृत उद्धृत किये हैं। उनका भी पाठ देते हैं—सौवर्चल, यवक्षार, कटुकी, त्रिकटु, चित्रक, वचा और विडङ्ग-साधित घृत श्वास का शमन करता है। कुलत्थ के क्वाथ सहित पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक और शुण्ठी) से साधित घृत उत्कृष्ट दीपन श्वास-कासहर तथा कफ-रोगनाशक होता हैं। कटुकी, सौवर्चल, यवक्षार, हरीतकी, त्रिकटु और हिंगु[1] से साधित घृत दूध में डाल कर पीने से श्वास-कास, गुल्म, आनाह (मलावष्टम्भ) और अति वृद्धिगत अर्श शांति को प्राप्त होते हैं। सुवहा ()?, कालिका (कालेयक वल्ली दारु हरिद्रा, दारुहरिद्रा नाम से यही बेची जाती है, दक्षिण भारत में होती है, जहां इसे 'मरमंजष्ठू कहते हैं' भार्गी, शुक्रनाशा (कड़ुई नाही), हिज्जल, काकादनी (गुजराती—कंथार), शुण्ठी, पुनर्नवा, कण्टकारी, बृहती—इन्हें एक तोला (पाठांतर में—4 तोला), जल एक आढक, घृत एक प्रस्थ में मिला सिद्ध किया घृत किंचित उष्ण पिया जाए तो श्वास रोग को नष्ट करता है। यह योग सुश्रुतोक्त कल्पों में भी दिया है। कुछ विशेष होने से पुनः यहाँ दिया है। अन्त में एक तैल का पाठ देते हैं—भृंगराज स्वरस दश गुणा तेल में सिद्ध कर यथाविधि पान करने से कास-श्वास दूर होते हैं।

**हिक्का की विशिष्ट चिकित्सा**—चरक-सुश्रुत-वाग्भट ने हिक्का और श्वास का निदान और चिकित्सा समान दी है, यह प्रस्तुत कर दोनों का उपचार प्रायः एक साथ ही दिया है। चरक में कुछ योग अवश्य हिक्का के प्रशम-नार्थ पृथक् दिए हैं। परन्तु भाव मिश्र ने इनका उल्लेख पृथक् प्रकरण में किया है। उन्हें देखने के पूर्व चरक-सुश्रुत, वाग्भट और भाव मिश्र ने हिक्का के जो अनौषध उपक्रम दिए हैं, उन्हें प्रथम देख लें। यों, संक्षेपतः चरक के मत का उल्लेख करते हुए उनका निर्देश कर तो आए हैं—

सहसा अर्थात् हिक्कार्त पुरुष को किसी प्रकार का संकेत दिए बिना ही उसके मुख पर पानी का प्रहार अथवा उसके मस्तक पर पानी उड़ेलना, त्रास (उसके चित्त को उद्वेग हो एतादृश क्रिया) विक्षेप (उसके शरीर को सहसा बलपूर्वक झकझोरते हुए व्यग्र-व्याकुल—कर देना), भयोत्पादन. शोकोत्पादन, तर्जन (मिथ्या धम-काना), विस्मापन (चकित कर देना, चौंका देना), क्रोध (क्रुद्ध कर देना), हर्षोत्पादन (सुखद समाचार आदि द्वारा), प्रिय (आहलादक वाणी, वर्तन आदि), चित्र-विचित्र वार्ता-विनोद, मन को आघात पहुँचाना, ईर्ष्या (असूया, परगुणासहिष्णुता, व्यक्ति-विशेष के सद्गुणों एवं सत्कर्मों की प्रशस्ति कर हिक्कार्दित पुरुष के हृदय में ईर्ष्याजनन), चिऊँटी आदि क्रमि-कीटों द्वारा दंशन(संन्यास-कोमा—के उपचार में विहित प्रकार से कपिकच्छू के रोमों का स्पर्श कर दुःसह कण्डू की उत्पत्ति यहां स्वीकार्य है वा नहीं, इसका निर्णय सद्वैद्यों को करना चाहिए। अंगुलियों से चिऊँटी भरना तो ग्राह्य है ही), श्वासावरोध (मूर्च्छा की चिकित्सा में कथित प्रकार से नासिका और मुख दृढ़ता से बन्द करके अथवा अनुभवी चिकित्सकों द्वारा मूर्च्छापनय-

---

1. मूल में इसके आगे ('समालूरै' शब्द है। उसका अर्थ समझ नहीं आया।

नार्थ व्यवहृतरीत्या रोगी के मस्तक को तकिए के ऊपर तट की ओर थोड़ा नीचे नमा कर उसका मुख अन्य व्यक्ति द्वारा दृढ़ बन्द करा उन्नत दोनों नासापुटों का जल द्वारा पूरण कर रोगी को हड़बड़ा देना)—इन उपायों का अवलम्बन कर हिक्का के वेगों को प्रच्युत-शान्त—करें। अरुणदत्त अपनी व्याख्या में भय-प्रभृति मनोभावों में कुछ को तामस—तमोगुण के उद्रेकवश होने वाले एवं अन्यों को राजस' नाम रजोगुण की उल्वणता से उत्पन्न होते कहते हैं। (इससे यह अभिप्रेत है कि, रोगी की मानसी प्रकृति में किस मानस दोष का प्राधान्य है इसे लक्ष्य में रखते हुए किस वर्ग का मनोभाव उत्पन्न किया जाए इसका निर्धारण कर उसी के उत्पादन का प्रयास करना चाहिए)।

(स्पष्ट समझा जा सकता है कि, उल्लिखित उपाय शरीर में प्रत्यावर्तित क्रिया (रिफ्लेक्स एक्शन) द्वारा किंवा मन को अन्यत्र आसक्त कर (भूलभुलैयाँ में डालकर) श्वास पटल के क्षोभ का एवं उसके तज्जन्य स्तम्भ का निवारण करते हुए हिक्का के वेग को शांत करते हैं।

अब भावमिश्रोक्त हिक्काहर योगों (मुष्टियोगों) पर दृष्टि-निक्षेप करें। हिक्कार्त पुरुष को शुण्ठी-सिद्ध अजा दुग्ध किंवा मधु और सौवर्चल के प्रक्षेप-युक्त मातुलुङ्ग-स्वरस पिलाएँ। मधु-मिश्रित मधुयष्टी, अथवा शर्करा-युक्त पिप्पली अथवा गुड-संयुक्त शुण्ठी—ये तीन नस्य हिक्का को शांत करते हैं।

प्रवाल, शङ्ख, (इनकी यथायोग्य भस्म वा पिष्टी) त्रिफला, पिप्पली और सुवर्णगैरिक इन्हें घृत और मधु-मिश्रित कर लेहन हिक्का का निवारण करता है।

मनःशिला अथवा गाय का श्रृङ्ग अथवा कुष्ठ अथवा राल अथवा कुश—इनमें किसी के धूम का पान करने से हिक्का के वेग दूर होते हैं। एवं निर्धूम अङ्गारों पर डाले हुए हिङ्गु और माष के चूर्ण का धूम पीने से पाँचों प्रकार की हिक्काओं को नष्ट करता है, इसमें संशय नहीं।

हरेणुका के बीजों का (हरेणु और पिप्पली का—यह अर्थ भी हो सकता है) क्वाथ हिंगु का प्रक्षेप कर (पान) हिक्का की भांति का श्रेष्ठ उपचार है—यह धन्वन्तरि का वचन है।

चन्द्रशूर (अहालिम) के बीजों को अष्टगुण जल में रख छोड़ें। बीज पानी पीकर मृदु हो जाएं तो उन्हें हाथ से मसल कर वस्त्र से छान लें। हिक्का के अति वेगों से व्याकुल रोगी पुनः-पुनः एक पल की मात्रा में इस जल का पान करे तो हिक्का अवश्यमेव शांत होती है।

इन योगों में कहीं-कहीं प्रदत्त फलश्रुति इनका उपयोग करने में प्रेरक तो प्रतीत ही होती है।

अस्तु। आयुर्वेद के अन्य संस्कृत-निबद्ध ग्रन्थों में एवं विभिन्न भाषाओं के ग्रन्थों में श्वास और हिक्का पर उपयुक्त अन्य भी कल्प उपलभ्य हैं। तथापि अनुसन्धान-रसिकों के लिए इतने ही पर्याप्त सिद्ध होंगे। इन योगों के प्रकरण में ऊपर में कुछ पथ्य भी दिये हैं। आगे भी दिए जाएंगे। उनका तथा देश (आबोहवा, क्लाइमेट) का भी अनुसन्धान इन योगों के साथ किया ही जा सकता है। कारण स्पष्ट है। श्वास और हिक्का दोनों रोग बहुधा कफ-वात प्रधान होने से इनके प्रकोपक आनूपदेश में सविशेष होते हैं। यह प्रस्ताव सकारण प्रस्तुत किया है। अनुसन्धानार्थ राज्य में एक ही रोग प्रायः पसंद किया जाता है। परन्तु, कई राज्य देखते हैं, देश की दृष्टि से विभाजन करने योग्य होते हैं। यथा, गुजरात प्रदेश का दक्षिण विभाग आनूप है और उसमें श्वास, अम्लपित्त, अग्निमांद्य आदि रोग सविशेष होते हैं और उन्हें शांत करना भी दुष्कर होता है। इसमें अधिक प्रभावी औषधों का सेवन और अधिक दृढ़ पथ्य-पालन आवश्यक हुआ करता है। इसके विपरीत, सौराष्ट्र और कच्छ जाङ्गल या या मरु देश हैं। इनमें उक्त रोग बहुधा होते नहीं, अथवा हों तो उनका बल अल्प होता है। आनूप देशवासी इन रोगों में किसी पीड़ित पुरुष को इन विभागों में जाना प्राप्त हो तो ये रोग स्वतः औषधोपचार के बिना भी शांत हो जाते हैं, अथवा मृदुता धारण कर लेते हैं। राजयक्ष्मा के लिए भी ये दोष सात्म्य होते हैं। इस करके राजयक्ष्मी पुरुषों को कुछ मास के लिए भी इन विभागों में जाकर रहने की सूचना दी जाती है। एतावता, निदान और चिकित्सा की दृष्टि से आयुर्वेद में निरूपित आहार, विहार (कर्ष), औषध, देश और काल के भेद से पंचविध उपशयानुपशय में एक इस देश को भी अनुसन्धान की दृष्टि से दृष्टि में रखते हुए भाषा की दृष्टि में रख कर निर्धारित एक ही राज्य में भी

देश-भेद से एक ही रोग को एकाधिक केन्द्रों में अनुसन्धानार्थ पसन्दगी दी जा सकती है।

उल्लिखित कल्प श्वासमात्र के लिए विहित होने पर भी इनका विधान मुख्यतः तमक श्वास पर और पर्याप्त अंशों में क्षुद्र श्वास के लिए ही हुआ समझना चाहिए। इनके घटक द्रव्यों से घटित योगों का व्यवहार सच्चिकित्सक श्वास के इन्हीं दो भेदों के लिए करते भी हैं। कारण स्पष्ट है। शेष तीन श्वास-भेद मारक ही होने से अन्त्यावस्था में ही दृष्टिगोचर होते हैं। अतः, उनमें इन योगों की क्रिया भी क्या होगी और उपयोग भी कैसे किया जा सकेगा? अवश्य ही इन तीन अन्त्यकालिक श्वास-भेदों में हेमगर्भपोट्टली, बृहद्—वातचिन्तामणि आदि वीर्यवान औषध ही कार्यक्षम होते हैं और यशस्वी चिकित्सक उनका उपयोग कर स्वल्प अवधि के लिए रोगी को जीवन-दान देते भी हैं। इन प्रभावी औषधों का प्रयोग भी ऊर्ध्व-श्वास और महाश्वास में ही विधेय होगा। छिन्नश्वास-सदृश तीनों प्रधान मर्मों की अकर्मण्यता-युक्त श्वास-विकृति से ये भी कार्मुक न होंगे।

स्थिति यह होते हुए भी रसरत्नसमुच्चयकार वाग्भट ने विशेषकर ऊर्ध्वश्वास के लिए एक योग दिया है। रसिकों के रञ्जन के लिए वह मूल वचन सहित उद्धृत करता हूं—

**इन्द्रवारुणिकामूलं देवदारु कटुत्रयम्।**
**शर्करासहितं खादेदूर्ध्वश्वास प्रशान्तये॥**

इन्द्रवारुणी मूल, देवदारु तथा त्रिकटु-प्रत्येक एक-एक भाग ले शर्करा-मिश्रित कर सेवन करें तो ऊर्ध्वश्वास की प्रशान्ति होती है। ग्रन्थकार ने इसे 'ऊर्ध्वश्वासादि' नाम दिया है।

उपरिनिर्दिष्ट कल्पों में मातुलुङ्ग (बिजौरा)—रस अम्लवेतस, कोकम प्रभृति कई अम्ल द्रव्यों का समावेश हुआ है। आपाततः (प्रथम क्षण में) अम्ल द्रव्य कफ की की वृद्धि करने वाले होने से रोग के लक्षणों में वृद्धि तो नहीं करेंगे?—यह बुद्धि होती है। परन्तु, टुक विचार करने से इसका समाधान किया जा सकता है। शाखाओं में (शरीरावयवों में) लीन होकर रहे दोष के कोष्ठगत अपने आशय में पहुंचने के जो निमित्त कहे गए हैं, उनमें प्रथम उसका वर्धन है। इस प्रकार श्वास रोग में अम्ल रस की सेवा से कफ वृद्धि को प्राप्त हो अपने आशय में आकर विलीन अथच चल अवस्था में आता है, जो रोग के मूलोच्छेद के लिए आवश्यक होता है। एक-दो उदाहरणों से वस्तु को विशद कर लें।

शाखाश्रित कामला के क्रियाक्रम में आचार्य चरक ने त्रिकटु को जंबीरस्वरस तथा मधुमिश्रित कर उसके सेवन की सूचना की है। उसकी व्याख्या करते हुए चक्रपाणिदत्त ने उक्त प्रकारक ही समाधान किया है। इस लेख-माला में कास के प्रकरण में हमने बाल-सुलभ) कुत्ता खाँसी (हूपिंग कफ) को लीन कफ के आवरण-वश प्रकुपित वायु से उत्पन्न होती कहा है। उपचार-क्रम में एक अनुभूत उपचार कपर्द-भस्म को जंबीरस्वरस तथा मधु-संयुक्त कर खिलाने का विधान किया है। वहाँ भी हमने यही व्याख्या की है।

इन योगों में अनेक में गुड और शर्करा भी पठित हैं। इनमें गुड तो उष्ण होने के कारण कफ-विलियन होने से हितावह माना जा सकता है। शेष शर्करा के विषय में अम्ल रस के प्रयोग-सदृश ही आशङ्का हो सकती है। समाधान उसका भी पूर्वोक्त ही है।

**अवस्था-विशेष में विरेचन**—श्वासों में वमन-विरेचन द्वारा ऊर्ध्वाध शोधन का विधान ऊपर दर्शा आये हैं। उपर्युक्त योगों में भी कटुकी, हरीतकी आदि विरेचन पठित हैं। हृदयाकार ने अवस्था-विशेष में पाठ-सहित विरेचन का निर्देश करते कहा है—आनाह (मलावष्टम्भ), आध्मान, उदावर्त्त, तमक श्वास तथा तमोदर्शन (आँखों के आगे अन्धकार का भास)—इन लक्षणों से युक्त हिक्का-श्वास पीड़ित पुरुषों को अनुलोमनार्थ मातुलुङ्ग, अम्ल-वेतस, हिंगु, पीलु और बिड अन्न में मिश्रित कर दें। इससे मलशुद्धि न हो तो, त्रिवृत्-मूल आदि विरेचन औषध बीजपुर आदि अम्ल फलों से अम्लीकृत एवं कटुष्ण कर सैन्धव मिलाकर दें।

हेमाद्रि ने अपनी टीका में योगरत्न-नामक ग्रन्थ से निम्न कल्प इस प्रकरण में दिया है—हिंगु, अम्लवेतस, त्रिकटु, सौवर्चल और त्रिफला सम भाग, त्रिवृत् सब से द्विगुण एवं शर्करा इन सबके समान मिला इस चूर्ण का सेवन पान अथवा भक्षण के रूप में कराएं। यह स्रंसन श्वास-हिक्काहर है।

**श्वास में पथ्यापथ्य**—अष्टांग हृदयकार का ववन ऊपर दिया है, जिसमें अमुक-अमुक धान्यों को हिक्का, कास आदि का प्रशमनकारी कहा है। योगरत्नाकरकार ने एक पृथक् प्रकरण द्वारा श्वास में पथ्यापथ्य का उल्लेख करते कहा है—

विरेचन, स्वेदन, धूमपान, वमन, दिवस में निद्रा, पुराण (एक वर्ष पुराने) षष्टिक चावल, रक्तशालि, गोधूम, यव, कुलत्थ, शशक, मयूर, तीतर, बटेर, मुर्गा, शुक (तोता) आदि धन्वदेशच पशु-पक्षियों के मांस, पुराण घृत, अजा-दुग्ध, अजाघृत, सुरा, मधु; शाकादि में पटोल, वृन्ताक (बैंगन), लशुन, घिसोड़ां (गुजराती-गित्तोड़ा), नीबू, चौलाई, बथुआ, एला, पुष्करमूल, उष्ण जल और कण्टकारी—ये श्वास रोग में पथ्य वर्ग हैं। (इनमें उष्ण जल के सेवन—पान, स्नान आदि के रूप में—के विषय में पुनः स्मरण करा दें कि, केवल उष्ण जल का पान औषध प्रयोग के बिना भी तमक श्वास में अतीव शान्ति प्रदान करता है।)

अब अपथ्यों का निर्देश करते तन्त्रकर्त्ता कहते हैं—रक्तमोक्षण, पूर्व दिशा का वायु, दूषित अन्नपान, भेड़ का दूध, विकृत जल, मत्स्य, कन्द, सर्षप एवं रूक्ष, शीत और गुरु अन्नपान—श्वास रोगी को इसका परिवर्जन करना चाहिए।

ऊपर सात्म्य-वर्ग में 'दिवास्वाप' का निर्देश किया गया है। सामान्य सिद्धान्त के अनुसार दिन में निद्रा कफवर्धक होने से श्वास रोग में अहितावह होगी, यही प्रतीत होता है। परन्तु, निद्रा-सम्बन्धी स्वस्थवृत्त में कहा गया है कि, जिन्हें रात्रि में निद्रा सुलभ न हुई तो उन्हें दिवस में किंचित् काल सोना अनुज्ञात है। और तमक श्वास के वेग रात्रि को विशेष होने से निद्रा पूर्णतः प्राप्त न होने के कारण उसकी पूर्त्यर्थ दिन-निद्रा की अनुज्ञा श्वास रोगी को दी गई है। (सावशेष)।

यहाँ कहे यवों का सेवन सत्तू और खील के रूप में करने की सूचना ऊपर दिये कल्पों में आई है। गुजराती में जिसे 'नागली' या 'बावटो' कहते हैं, उस क्षुद्र धान्य का अकेले का सेवन श्वास में हितकारी है, यह भी इन कल्पों की गणना में कहा है। इस धान्य का भी समावेश पथ्य-वर्ग में कर लेना चाहिए।

हमारा विशेष लेख

# प्रतिश्याय के हेतुओं के सम्बन्ध में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

(गुजरात आयुर्वेद विद्यालय, जामनगर के पोस्टग्रेज्युएट शोध प्रबन्ध का एक अंश)

* डा० बी० डी० शुक्ल
( बी० एस० ए० एम०, जामनगर )
( एम० एस० ए० एम०, कायचिकित्सा )
** डा० सी० पी० शुक्ल
(एल० ए० एम०, पाटन)
(ए० वी० वी०, पूना)

मानव शरीर स्रोतसों का एक समूह है। इनमें प्राणवायु एवं श्वासोच्छवास से सम्बन्धित होने के कारण प्राणवहस्रोतस् का प्राधान्य है। इसी हेतु इसकी गणना सर्वप्रथम की जाती है। प्रतिश्याय प्राणवहस्रोतों की व्याधियों में सबसे अधिक प्राप्त होने वाला विकार है। शास्त्रावलोकन से सुस्पष्ट है कि प्राणवहस्रोतस एवं अन्य स्रोतसों की अधिकांश व्याधियों में प्रतिश्याय हेतु, लक्षण, उपद्रव, किसी न किसी रूप में वर्णित है। यह व्याधि प्रायः सभी वर्ग एवं सभी आयु वाले स्त्री-पुरुष एवं बालकों को पीड़ित करती है। शास्त्रावलोकन एवं अनुभव से स्पष्ट है कि प्रतिश्याय यद्यपि स्वयं मारक व्याधि नहीं है किन्तु इसके द्वारा उत्पन्न होने वाले विकार तथा शारीरिक अवसाद, शिरःशूल, आलस्य आदि रुग्ण को अत्यंत पीडा प्रदान करते हैं। जो दैनिक कार्यक्रम में व्यवधान उत्पन्न करने वाले होते हैं एवं उपेक्षा के कारण इसकी जीर्णावस्था एवं उत्तरोत्तर अवस्था अनेक दारुण घातक विकारों को उत्पन्न करते हैं, यथा—कास, क्षय आदि जो असाध्यता का रूप धारण कर लेती है तब यह व्याधि रुग्ण एवं चिकित्सक के लिए प्रश्नचिह्न उपस्थित कर देती है।

अतः ऐसी व्यापक व्याधि को उत्पन्न करने वाले आयुर्वेद साहित्य में वर्णित हेतुओं का यथाशक्य संकलन किया गया है। आधुनिक विज्ञान में इसे 'वाइरस जन्य' माना है। परन्तु कुछ विद्वान इसे अनुर्जताजन्य एलर्जिक भी मानते हैं, अतः यहां पर प्रथम आयुर्वेदिक हेतुओं का उल्लेख किया गया है एवं उसके सम्प्राप्तिजनक क्रियाशीलता का वर्णन तदुपरान्त अन्य चिकित्सा साहित्य के हेतुओं का यथाशक्य सामंजस्य स्थापित करने का प्रयोग किया जायेगा।

**चिकित्सा आर्ष ग्रन्थों में प्रतिश्याय के हेतु**

आयुर्वेदिक चिकित्सा-विज्ञान में चिकित्सा के दृष्टिकोण से चरक प्रधान ग्रन्थ माना गया है। अतः प्रतिश्याय के हेतुओं का संकलन इस ग्रन्थ से प्रारम्भ किया जा रहा है—

**चरक संहिता साहित्यानुसार प्रतिश्याय के हेतु**

वेग संधारण, अजीर्ण, रजःसेवन, अतिसम्भाषण, अतिक्रोध, ऋतुवैषम्य, शिरोवेदना, रात्रिजागरण, अतिस्वप्न, अतिशीत, अम्बुपान, तुषारसेवन, अतिमैथुन, (व्यवाय), वाष्प (अश्रु), धूम्रसेवन आदि प्रतिश्याय के हेतु चरक संहिता में वर्णित हैं।[1] (च०चि० 26-104)।

**सुश्रुत संहिता साहित्यानुसार प्रतिश्याय के हेतु**

अतिशय स्त्रीसेवन, शिरोभिताप, धूम्र, रजः का सेवन, अतिशीतसेवन, तापसेवन, मूत्रपुरीष वेग का संधारण आदि से सद्यः प्रतिश्याय रोग होता है।

सुश्रुत में कालान्तरजनक प्रतिश्याय का चयादि क्रम से होना दर्शाया है। वहां पर उन्होंने वात, पित्त, कफ और शोणित के प्रकोपक हेतुओं का उल्लेख किया है

* क्लीनिकल रजिस्ट्रार—कायचिकित्सा विभाग, गुजरात आयुर्वेद युनिवर्सिटी।

** प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष—कायचिकित्सा विभाग, गुजरात आयुर्वेद यूनिवर्सिटी, जामनगर।

तथापि इन हेतुओं का उन्होंने विशेष उद्धरण नहीं दिया है इससे कुछ टीकाकार बलवत् विग्रह, दिवाशयन आदि का ग्रहण करते हैं।[2] (सु०उ० 24-3)

साथ ही कारण उल्लिखित न करने का हेतु यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति विशेष को रोगक्षमता के आधार पर प्रतिश्याय के सद्यःजनक हेतु ही कालान्तर में प्रतिश्याय की उत्पत्ति कर सकते हैं। इसमें सहज ही चरकोक्त हेतुओं का समावेश किया जा सकता है।

**आचार्य वाग्भटानुसार प्रतिश्याय के हेतु**

ओस, वायु, रज, अतिभाषण, अतिस्वप्न, अतिजागरण, अतिउच्च या निम्न उपाधानसेवन, अतिजलपान, अतिजलक्रीडा, छर्दि, अश्रु, निग्रह का प्रतिश्याय के हेतु रूप में माना है।[3] (अ०हृ०उ० 19-102)

**काश्यप संहिता मतानुसार प्रतिश्याय के हेतु**

काश्यप संहिता में कुछ विशेष विवेचन प्राप्त होता है। उनके मत से गुरु, मधुर, शीत, रुक्ष आदि पदार्थ का सतत सेवन, सतत द्विविध दुग्धपान के उपरान्त बालक का शयन, नित्य गुरु पदार्थ सेवनोपरान्त अजीर्ण में स्नान, श्लेष्मप्रकृति व्यक्ति द्वारा शीताम्बुपान तथा शीतजल में अवमाहन, भोजनोपरान्त अतिद्रव द्रव्यों का पान, वेगविधारण, सतत रूप से वेगविधारण, नित्य अनुपहित शयन, अतिपार्श्वशयन, अपावृत्तमुख शयन, मन्दाग्नि, विषमासन प्रतिश्याय के हेतु हैं।[4] (का०सं०उ०चि०)

**हारीत संहिता मतानुसार प्रतिश्याय के हेतु**

इसमें प्रतिश्याय सम्बन्धित स्पष्ट विवेचन प्राप्त नहीं होता है, मात्र नासारोगों के सम्बन्ध में सूक्ष्म रूप से निर्देश किया गया है। इसमें उल्लेखनीय विषय यह है कि नासारोगों की उत्पत्ति कृमि द्वारा भी होती है जिससे नासारोगों में रुधिर का स्राव होता है।[5]

**भेल संहिता मतानुसार प्रतिश्याय के हेतु**

इसमें प्रतिश्याय के वर्णन प्राप्त होते हैं। इसमें उत्तरकालीन ग्रन्थ भावप्रकाश, माधवनिदान आदि पूर्व ग्रन्थों का आधार लिया गया है। उपरोक्त प्रतिश्याय के हेतुओं को विवेचन सौगम्य की दृष्टि से निम्न भागों में विभक्त कर सकते हैं—

**प्रतिश्याय के हेतु**

1. आहार-जन्य हेतु
2. विहार-जन्य हेतु
3. मानसिक हेतु
4. अन्यविकार-जन्य

**1. आहारजन्य हेतु**

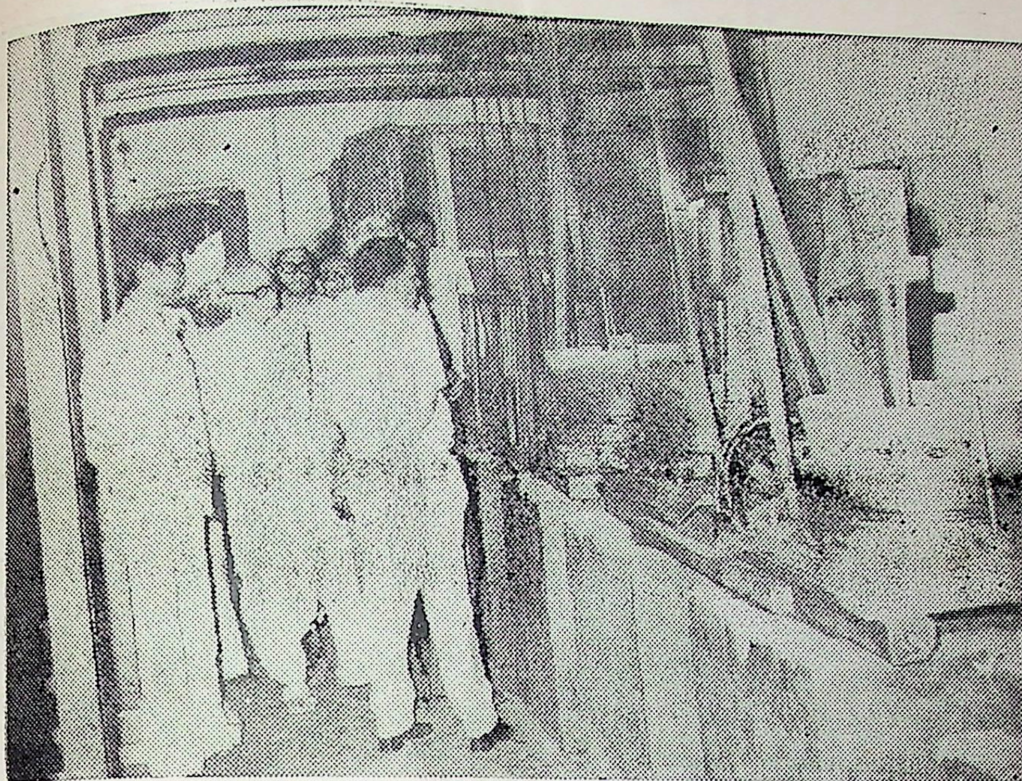
अजीर्ण, गुरु, मधुर, शीत, रुक्ष पदार्थों का सेवन, मन्दाग्नि, भोजनोत्तर द्रवपदार्थ सेवन, शीतजल सेवन।

(अ) अजीर्ण :—इस हेतु का साक्षात सम्बन्ध जठराग्नि से है। जठराग्नि का दायित्व सेवित आहार का सम्यक् पचन करते हुए उससे पोषक रस (आहार रस) का निर्माण करना है, तत्पश्चात अन्य धातुयें उत्तरोत्तर पुष्टि को प्राप्त होती है।

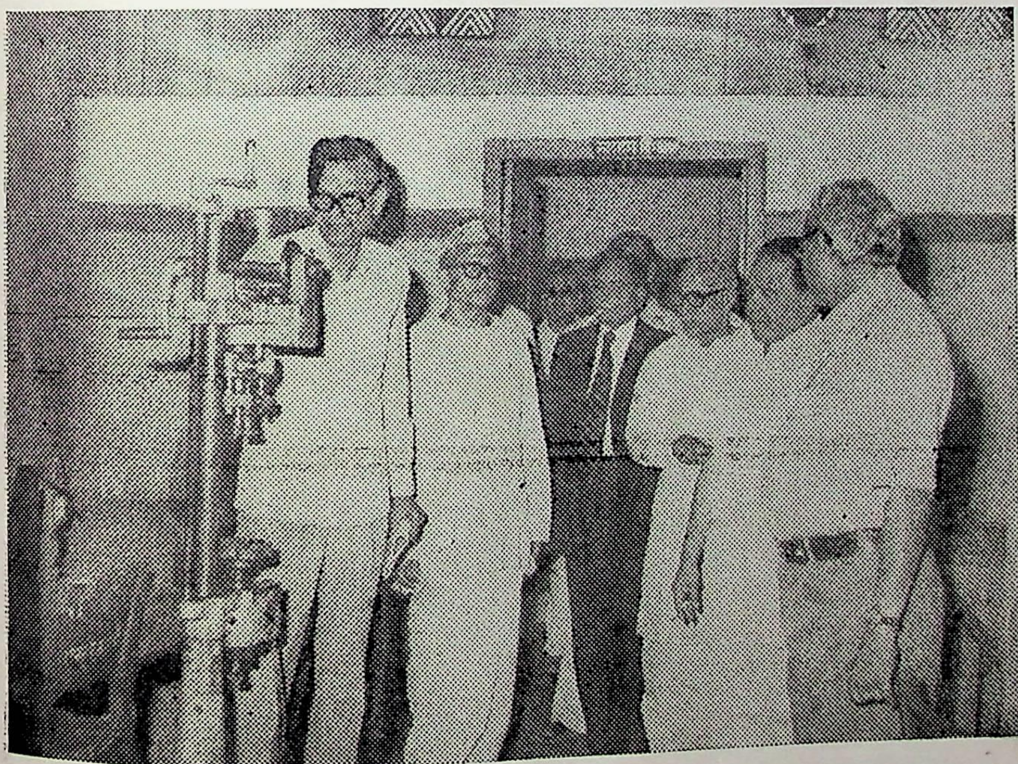
प्रथम व्यक्ति आहार का ग्रहण समुचित रूप से करता है तथापि यदि अग्निमांद्य हो तो उसका पाचन ठीक से नहीं हो पाता। फलतः पोषक रस शुद्ध रूप से नहीं हो पाता जिसके परिणामस्वरूप रस अपक्व रह जाता है। इसे आम संज्ञा प्राप्त होती है। यह अपक्व रस जब किसी स्थान पर अवरोध उत्पन्न करता है तो शरीर के रस क्षेत्र से सम्बन्धित व्याधि उत्पन्न होती है। इस पद्धति से चयादि स्वरूप प्रतिश्याय की उत्पत्ति होती है। द्वितीय जठराग्नि साम्यावस्था में नहीं रहती है किन्तु यदि व्यक्ति आवश्यकता से अधिक अथवा निम्न कालांतर से बारम्बार आहार का सेवन करता है तो भी अजीर्ण की उत्पत्ति होना सम्भव है। इस प्रकार अजीर्ण तत्काल प्रतिश्याय को उत्पन्न करने में कारणभूत होता है। अतिरात्रिजागरण, अतिदिवास्वप्न भी अजीर्ण के सहायक हैं क्योंकि व्यक्ति जागरण के उपरांत पूर्ण आहार का ग्रहण करता है। तुष्टिपूर्वक भोजनोपरांत व्यक्ति तत्काल सो जाय तो भी अजीर्ण की उत्पत्ति होती है।

एवमेव अजीर्ण से पीड़ित व्यक्ति यदि स्नान करे तो अग्नि जो पूर्वसेवित आहार को पक्व करने में असमर्थ है वह भी स्नान के कारण त्वक्गत हो जाती है जिसके कारण अपक्वरस का निर्माण होता है।

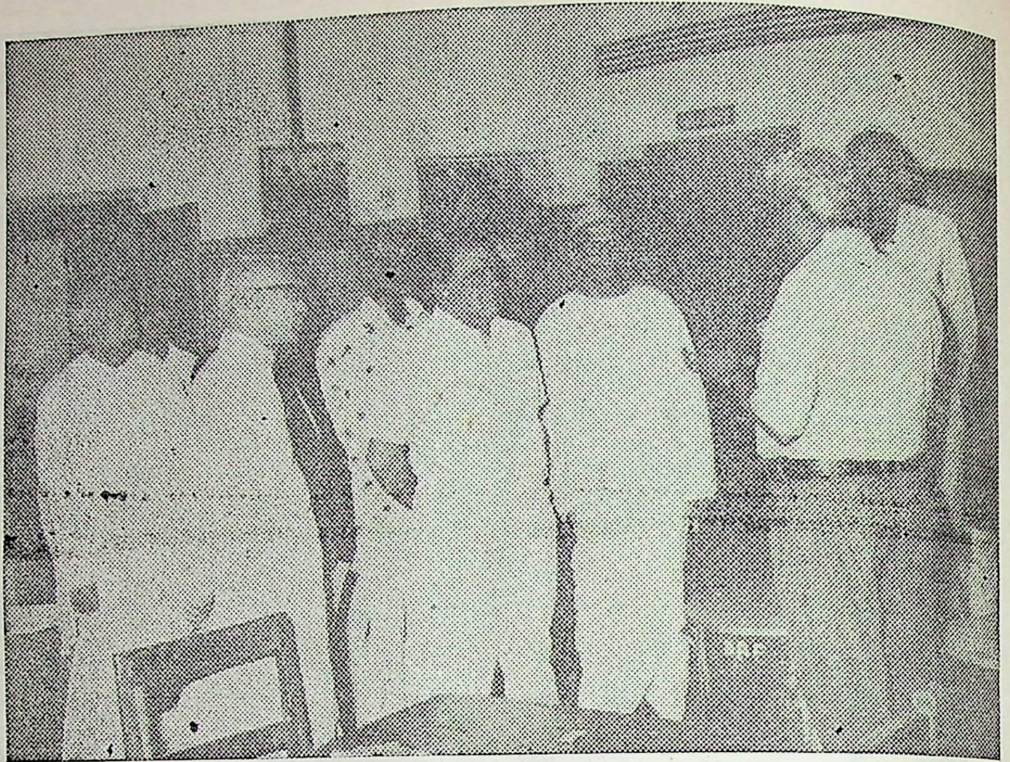
यह येनकेनप्रकारेण निर्मित अपक्वरस जब नासागत-स्रोतों का अवरोध करता है तब प्रतिश्याय की सम्प्राप्ति निर्माण में यह सहायक होता है। इस प्रकार अजीर्ण



बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना निर्माण-केन्द्र स्थित मशीन विभाग का श्री गुणसेन निरीक्षण करते हुए। उनके साथ डा० डी० पी० शर्मा, तथा अन्य कर्मी भी हैं।



बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के पटना निर्माण-केन्द्र में अवस्थित टेबलेट विभाग का श्री गुणसेन द्वारा निरीक्षण। चित्र में श्री गुणसेन के अतिरिक्त डा० डी० पी० शर्मा, श्री वर्मा, श्री माहेश्वर मिश्र (व्यवस्थापक), श्री गुहा (चीफ केमिष्ट), तथा प्रमुख उत्पाद-नियंत्रक श्री गुप्त हैं।



श्रीलंका के श्री गुणसेन महोदय को बैद्यनाथ प्रतिष्ठान, पटना के उत्पाद-नियंत्रक श्री गुप्त बैद्यनाथ औषधियों की निर्माण-प्रक्रिया से अवगत कराते हुए। चित्र में बायीं ओर से क्रमशः डा० द्विवेदी (आयुर्वेद-निदेशक), डा० डी० पी० शर्मा, श्री गुणसेन, श्री माहेश्वर मिश्र प्रभृति हैं।



बैद्यनाथ के पटना स्थित निर्माण-केन्द्र के विभिन्न विभागों का सम्यकरुपेण निरीक्षण करने के बाद श्री गुणसेन प्रतिष्ठान के निदेशक तथा अन्य वरिष्ठाधिकारियों के साथ वार्तालाप करते हुए।

तत्काल अथवा कालांतर में प्रतिश्याय की उत्पत्ति में कारणभूत होता है।

इसी तरह इससे सम्बन्धित अन्य कारणों को समझना चाहिये।

(२) विहार-सम्बन्धी हेतु :

अजीर्ण में स्नान, अतिभाष्य, अतिव्यवाय, अतिवस्त्रापसेवन, अनिल सेवन, वेगसंधारण, ऋतुवैषम्य द्विविध दुग्धपानोपरान्त शयन, धूम्रसेवन, वाष्पसेवन, अति जलक्रीड़ा, अतिजलपान, अतिपार्श्वशयन, अपावृत्त-मुखशयन, रज:सेवन, तापसेवन आदि।

(अ) **अतिभाष्य** :—उदान एवं प्राणवायु के कर्मों में वाक् का समावेश हुआ है एवं शारंगधर संहिता में उदान वायु के प्रकोप में स्वरभंग का वर्णन किया गया है जो एक भाष्य (भाषण) के परिणामस्वरूप दर्शनीय है।[6] अर्थात् जब मनुष्य अत्यधिक भाषण करता है तो ये दोनों वायु प्रकुपित होकर प्रतिश्याय की उत्पत्ति में प्रमुख दोष के रूप में उल्लिखित हैं। इसके अतिरिक्त जब प्राण-उदान वायु का प्रकोप होता है तब इसका प्रभाव व्यान-वायु पर भी पड़ता है जो स्वयं अवरोध उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। इसके सहयोग से प्रतिश्याय रोग की उत्पत्ति हो जाती है। व्यानवायु शिर:स्थित श्लेष्मा के प्रकुपित करने की सामर्थ्य रखता है। यह मलविकृति वायु एवं कफ दोनों दोषों से नासास्रोतस का अवरोध होकर प्रतिश्याय की सम्भावना रहती है। इससे एक-दोषज या त्रिदोषज प्रतिश्याय सम्भव है।

(आ) **अतिव्यवाय** :—(मैथुनहेतुजन्य प्रतिश्याय) :— व्यवाय में अति शुक्रक्षरण से व्यक्ति में वात का प्रकोप होता है। चरक ने अतिव्यवाय से वात एवं तत्काल स्वरूप कफ-पित्त का दुष्ट होना कहा है[7] (च० नि० 8।8) एवं उससे प्रतिश्याय उत्पन्न होता है। वृद्धिगत वायु सर्वप्रथम विषमाग्नि की उत्पत्ति करता है जिसके कारण उचित आहार सेवन करने पर भी उसका पाचन ठीक ढंग से नहीं हो पाता जो आमरस-निर्माण करने में सहायभूत होता है। यह आमरस जब नासास्रोतों का अवरोध करता है तब प्रतिश्याय की उत्पत्ति होती है। यह हेतु प्रतिश्याय के विप्रकृष्ठ हेतु में समाविष्ट हो सकता है। आधुनिक दृष्टि से रोगक्षमत्व के साथ संबंध स्थापित कर सकते हैं।

(इ) **अतिआवश्याय सेवन** :—अवश्याय से अभिप्राय तुषार (ओस) के सेवन से है। जब व्यक्ति नग्न सिर होकर सूर्योदय के पूर्व अधिक समय तक इनका सेवन करता है तब शिर में स्थित कफ प्रकुपित हो जाता है। यह स्मरणीय है कि शिर को कफ का स्थान कहा जाता है[8] (का० सं० चि० 3)। यह प्रकुपित कफ नासा में अवरोधी उत्पन्न कर प्रतिश्याय की उत्पत्ति करता है, अतः यह तुषारसेवन प्रतिश्याय का हेतु कहा गया है।

(ई) **अनिलसेवन** :—वायु को शास्त्रकारों ने योगवाही कहा है। प्रतिश्याय के सम्बन्ध में अनिलसेवन अर्थात् शीत के कारणशीतल पवन का सेवन ग्रहण करना चाहिए।[9]

नासा को शिर:स्थान का द्वार कहा गया है।[10] जब शीतवायु श्वास ग्रहण करने से आभ्यन्तर प्रवेश करता है और इसके साथ ही इसका प्रभाव कण्ठदेश में होता है, जिसके परिणामस्वरूप यह वायु नासा से होकर शिर में स्थित कफ को दूषित कर देता है, फलतः प्रतिश्याय की उत्पत्ति होती है।

(उ) **अजीर्ण में स्नान** :—अजीर्ण मन्दाग्नि एवं आहार के वैषम्य से प्रतिश्याय होना सम्भव है। यहां अजीर्ण में स्नान से अभिप्राय गुरु आहारों के उपरांत तत्काल स्नान कर लेने से है जिसमें अग्निमान्द्य की स्थिति नहीं होती। इस प्रकार जब अधिक आहार-सेवन के बाद कारणवशात् समुचित जल आदि का पान न किया जा सका हो तब यदि अजीर्ण उत्पन्न हो गया हो उसके पश्चात यदि तत्काल स्नान करे तब उसकी अग्नि और दूषित हो जाती है, अर्थात् वह कोष्ठ से बहिर्गमन त्वगाश्रित हो जाती है। अतः आमरस और अधिक उत्पन्न होकर शीघ्र स्रोतोरोध करता है और इस प्रकार अजीर्ण के समान अजीर्णोत्तर स्नान प्रतिश्याय का हेतु बन जाता है।

(ऊ) **अतिजागरण** :—अतिजागरण से रात्रिजागरण का ग्रहण होता है। अतिजागरण से वायु एवं पित्त का प्रकोप होता है। ऐसा होने पर यदि रात्रिजागरण के उपरान्त दिवास्वाप न किया जाय तो ये दोनों मिलकर अजीर्ण की उत्पत्ति करते हैं जो आमरस निर्माण का कारणभूत है। दूसरे, ये स्वयं कफ की दुष्टि करते हैं

परिणामस्वरूप जब ये दोष मांस में स्थित होकर स्रोतोवरोध करते हैं तो प्रतिश्याय की उत्पत्ति होती है, एवं ऐसे प्रतिश्याय में पित्त का भी कर्तृत्व रहता है।

**(ए) अति जलक्रीडा :**—अति जलक्रीडा से यद्यपि शरीरोष्मा में अभिवृद्धि होती है जिसके द्वारा शरीर के आमदोष का नाश होता है[11] ( च० चि० 27।59 ) स्तम्भ के उपक्रम मे जलक्रीडा का निर्देश किया गया है किन्तु जब यह जलक्रीडा अधिक समय तक की जाय तो शरीर में जो उष्मा उत्पन्न होती है उसकी स्थिति जल में निमज्जित शरीरावयव की अपेक्षा शिर भाग में अधिक होती है। इस उष्मा से शिरस्थित तर्पक कफ और कंठ स्थित उदानवायु का प्रकोप होता है।

उष्मा की वृद्धि अतिजलक्रीडा के बाद तत्काल उसके मुख से परिज्ञात होती है जिसके फलस्वरूप उसकी अक्षि एवं पूर्ण शरीर आरक्त हो जाता है जो पित्त की उत्कृष्टता का परिचय देता है। यही पित्त + तर्पककफ + उदानवायु जब नासा में स्रोतस का अवरोध करता है तब प्रतिश्याय की उत्पत्ति होती है जिसमें पित्त का अनुबन्ध प्रधान रूप से होता है।

**(ऐ) अति पार्श्वशयन :**—प्रतिश्याय में नासावरोध प्रमुख घटना कही गयी है। जब व्यक्ति एक ही पार्श्व में शयन करता है तब एक पथ का सतत अवरोध अन्य पथ के अवरोध से कम पाया जाता है। इस दीर्घकाल में श्वास-प्रश्वास की सम्पूर्ण क्रिया उपयुक्त अवरोध से ही नासिका पक्ष द्वारा सम्पन्न होती है। यहां यह स्पष्ट होता है कि गृहीत वात की शुद्धि जो दोनों पक्षों के द्वारा होती है वह कार्य एकही पथ को करना होता है और इस कर्म में तत्रास्थित नाडीतन्तु विशेष रूप से उत्तेजित हो जाते हैं। रुक्ष वायु आर्द्र करने में नासाश्लेष्मलकला स्वयं रुक्ष होकर विवर्ण जैसी हो सकती है। यदि आर्द्र वायु को शरीर अनुपात से उसकी आर्द्रता कम करने का कार्य करे तो उस पथ में अधिक जल की स्थिति हो जाती है। रुक्ष होने से वायु का प्रकोप प्रथम होकर वह वायु नासास्रोतस का अवरोध करती है और जल होने से वह कफ को प्रकुपित कर स्रोतस का अवरोध कर देती है। इस प्रकार पार्श्वशयन से प्रतिश्याय की उत्पत्ति सम्भव है।

**(ओ) अप्रावृत्त मुख शमन :**—इस प्रकार से व्यक्ति श्वास-प्रश्वास में शुद्ध वायु को ग्रहण नहीं करता और जो वायु चादर आदि को ओढ़ने के उपरान्त बाह्य वायु से सम्पर्क नहीं रखती है उसी वायु में बारम्बार श्वसन कर्म होने से वायु का शोधन नहीं होता जिससे वायु अशुद्ध एवं उष्ण हो जाती है।

शरीर स्वेद अलिप्त होता है। इस अशुद्ध वायु से व्यक्ति के नासागत स्रोतस का अवरुद्ध होना सम्भव है। इसके अतिरिक्त देहोष्मा की वृद्धि से तर्पककफ कुपित होकर नासागतस्रोतों का अवरोध करने में समर्थ होता है। अतः तत्काल प्रतिश्याय की उत्पत्ति परिलक्षित होती है।

**(औ) ऋतुवैषम्य**—चिकित्सा के समय हम देखते हैं कि प्रतिश्याय के रोगी प्रायः ऋतुसन्धिकाल में अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं क्योंकि ऋतुसंधिकाल में वातावरण चंचल होता है। जितना शीघ्र मौसम-परिवर्तन होता है उतना शीघ्र शरीर का क्रियाकलाप नहीं परिवर्तित हो पाता है इसलिए संधिकाल के विषय में वाग्भट्ट ने अच्छा विवेचन किया है।[12] इस संधिकाल में कुछ आहार-विहार का निरोध किया गया है। इस सन्धिकाल को शारंगधर संहिताकार ने यमदृट्या संज्ञा से अलंकृत किया है[13] (शा०प्र०खं० 2-30)। इस संधिकाल में व्यक्ति को कभी उष्णता और कभी शीतता की अनुभूति होती है। यदि वह उसके समान ही अपने आहार-विहार का सदैव परिवर्तन करे तो विषम क्रियायें होती हैं, यथा—रात्रि में अधिक उष्णता प्रतीत हो तो मुक्त वातावरण में सोना और प्रातःकाल शीत वायु का अकारण सेवन करना कफ प्रकोप का कारण हो सकता है। उष्णता के कारण व्यक्ति को स्वासागमन हुआ हो और शीघ्र ही शीत वायु का सेवन करता है तो प्रतिश्याय सम्भव है।

शीत ऋतु में ग्रीष्मऋतुवत् वातावरण में रहना और संधिकाल जैसे रहना यदि ऐसा हो तो पूर्ववत् प्रतिश्याय की उत्पत्ति होने की सम्भावना रहती है।

शास्त्रकारों ने हेमन्त को कफ का संचयकाल कहा है एवं वसन्त को कफ का प्रकोप काल कहा है।[14] यदि व्यक्ति इस परिवर्तन काल में भी शीतऋतु के समान आहार-विहार का वसन्त ऋतु में निरन्तर सेवन करता रहता है तो वह कफवर्धक आहार-विहार कफ के प्रकोप

का कारण होता है। यह कफ प्रकुपित होकर प्रतिश्याय की उत्पति का कारण होता है। यह प्रतिश्याय के विप्रकृष्ट हेतु में समाविष्ट होता है।

**द्विविध दुग्धसेवनोपरान्त शयन**

यह हेतु महर्षि काश्यप द्वारा वर्णित है। यदि बालक द्विविध दुग्ध सेवन के पश्चात सो जाय तो वह प्रतिश्याय रोग से पीड़ित हो जाता है। ऐसा कहा गया है क्योंकि जब बालक दुग्धपान के उपरान्त तत्काल शयन करता है तब शरीर की क्रियायें शिथिल हो जाती हैं। अतः वह बालक सेवित दुग्ध का सम्यक् पचन करने में असमर्थ होता है। फलस्वरूप आमरस एवं मन्दाग्नि होती है। ये दोनों हेतु एक-दूसरे से वृदिध को प्राप्त होते हैं, अर्थात् आम से मन्दाग्नि और मन्दाग्नि से आम और पुनः मन्दाग्नि से आम। इस प्रकार दुग्ध के सेवन के उपरांत शयन प्रतिश्याय का निर्माण करता है। इससे यह भी ग्रहण होता है कि मनुष्य भोजनोपरान्त शयन करे तो कफ की वृद्धि होती है जिससे प्रतिश्याय सम्भव है।

**धूम्र सेवन**

धूम्र या तो काष्ठ दहन से होता है या किसी भी वस्तु के दहन निर्मित होता है। उद्योग क्षेत्र में धूम्र का प्रभाव रहता है। उद्योग संस्थायें प्रायः कोयले का उपयोग करती हैं जो उत्खनन के द्वारा प्राप्त होता है। यह धूम्र नासिका में जाकर उत्तेजना पैदा करता है जिससे नासागतस्राव में वृद्धि एवं प्राणवह स्रोतस का उत्तेजन होता है और इससे मस्तिष्क भी उत्तेजित होता है। अक्षि का विक्षोभ होने पर अश्रु-निर्माण में वृद्धि हो जाती है। यह अश्रु अश्रुनासा प्रणाली द्वारा नासिका को प्राप्त होता है इससे प्राण, उदानवायु तथा तर्पक कफ का प्रकोप होता है तथा सम्प्राप्ति का घटन होकर प्रतिश्याय का निर्माण होता है। विशेषतः कोयला द्वारा उत्पन्न धूम्र जिसमें सोमल, तुत्थ आदि के अंशांश का होना सम्भव है। जो प्रतिश्याय के अतिरिक्त अन्य रोग भी उत्पन्न कर सकता है। महर्षि सुश्रुत विष पर्याय द्वारा उत्पन्न दूषित धूम्र के द्वारा प्रतिश्याय की उत्पत्ति मानी है[15] (सु० 3-16)।

**निम्नोच्च उपधान सेवन**

शरीर के अनुपात के अनुरूप उपधान न मिलने से जब शिर उच्च या निम्न रह जाता है तब ग्रीवा और शिर भाग में वायु प्रकुपित होकर नासा में अवरोध उत्पन्न करता है जिससे प्रतिश्याय रोग की उत्पत्ति होती है। इस हेतुजन्य प्रतिश्याय में यदि इस हेतु का निक्षेप किया जाय तो प्रतिश्याय का शमन हो जाता है।

**रजःसेवन**

रज यह पार्थिव है जो सूक्ष्म कणों में विभक्त रहता है। अल्प प्रभारी होने से अल्प गतिमानता में ऊर्ध्वगमन करता है तथा कुछ काल तक वायुमण्डल में वह इतः ततः परिभ्रमण करता है। इसे सामान्य भाषा में धूलि नाम से सम्बोधित किया जाता है। जब धूलि भरे क्षेत्रों में पवन तीव्रगति से चलता है तब यह धूलि आकाश में आच्छादित हो जाती है। इस तरह के वातावरण में मनुष्य को जब श्वासोच्छ्वास करना पड़े तब रजःकण प्रश्वास के समय सर्वप्रथम नासा पथ के सम्पर्क में आते हैं। नासास्थित लोम इनको रोकने का प्रयास करते हैं। आर्द्र नासा श्लेष्मलकला भी इन कणों को ग्रहण करती है। उस आर्द्रता के कारण ये उससे चिपक जाते हैं किंतु इनकी भी एक क्षमता होती है। ये वायु की वृद्धि का पूर्ण प्रयास करते हैं ताकि वायु के साथ ये हानिकारक पदार्थ न जाने पाये किंतु रजःकण अधिक प्रमाण में वायुमण्डल में होते हैं। तब ये नासाश्लेष्मकला की आर्द्रता का शोषण कर डालते हैं और शुष्क हो जाने से त्वचा रुक्षता को प्राप्त हो जाती है। नाडीतन्तुओं को उत्तेजना प्रदान करती है; फलतः इस अशुद्ध वायु के सेवन के लिये मनुष्य को बाध्य होना पड़ता है जिससे प्राण-उदान का कोपन होता है और यह कुपित वायु जब नासास्थित स्रोतसों का अवरोध होता है तब प्रतिश्याय उत्पन्न होता है।

**तापसेवनजन्य**

ताप से आतप और अन्य ईंधन के द्वारा उत्पन्न ताप का बोध होता है। इसमें शरीर की उष्मा की वृद्धि होती है। जब उष्मा वृदध होकर शिर स्थित तर्पक कफ को प्रभावित करती है तब उष्मा से व्यक्ति शीत में आ जाये तो वह कफ नासावरोध उत्पन्न कर सकता है जिससे नासागत स्रोतस का अवरोध हो जाता है और व्यक्ति प्रतिश्याय से ग्रसित हो जाता है।

यह स्थिति आतप द्वारा उत्पन्न तापसेवन से भिन्न होती है। अधिक आतपसेवन के बाद यदि तत्काल जल-

सेवन किया जाय तो प्रतिश्याय अतिसुगमता से हो सकता है।

**वाष्पसेवन**

आचार्य चरक ने जिन अधारणीय वेगों का उल्लेख किया है उसमें वाष्पनिग्रह को भी प्रतिश्याय रोगोत्पादक कहा है[16] (च० सू० 7/22)। वाष्प शब्द प्रायः अश्रु से है। इसका सेवन अर्थात् पान से है। जब व्यक्ति शोक, हृल्लास आदि मानसिक भावों से युक्त होता है, अथवा किसी कटु, तीक्ष्ण, उग्र, विक्षोभक पदार्थों के साक्षात अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, अक्षिका होने से अक्षि स्थित नाड़ी का उत्तेजन होता है जिसका प्रभाव अश्रु निर्माण ग्रन्थि के ऊपर होता है। जब अश्रु अधिक निर्मित होता है और उसे बाहर नहीं निकलने दिया जाय अर्थात् उसका निग्रह कर लेवे तो वह अश्रु नासाप्रणालिका के माध्यम से नासा में प्रविष्ट होती है। यह तनुनासास्रव नासा में अवरोध उत्पन्न करते हुये प्रतिश्याय की उत्पत्ति करता है।

इस वाक्ससेवन का समावेश यद्यपि वेगसंधारण में होता है तथापि आचार्य ने पृथक् से निर्देश किया है जिससे यह विदित होता है कि अन्य वेगावरोध की अपेक्षा वाष्परोध से प्रतिश्याय की उत्पत्ति अतिशीघ्र होती है। इस प्रकार वाष्पसेवन स्वतंत्र लक्ष पर लक्षित है। महर्षि वाग्भट न इसे वाष्पनिग्रह के रूप में दिया है।

**अतिस्वप्न :**

इसका स्पष्ट उल्लेख महर्षि चरक करते हैं। चक्रपाणि ने इसे दिवास्वप्न का ग्रहण किए है और दिवास्वप्न रो कफज रोग का कारण कहा है[17] (च० सू० 21/44) दिवास्वप्न मन्दाग्नि का उत्पादक है और मन्दाग्नि से आम, आम से नासागत स्रोतोवरोध अथवा दिवास्वप्न से कफ वृद्धि एवं कोथ होकर नासागत स्रोतों का अवरोध करके प्रतिश्याय की उत्पत्ति करता है।

**मलमूत्र वेगसंधारण :**

इस हेतु का स्पष्ट विवेचन सुश्रुत संहिताकार ने किया है[18] (सु० सू० 55/8-10) मलवेग संधारण से परिकर्तिका कलावरोध, उद्गार की प्राप्ति होती है, जबकि मूत्रावरोध से मूत्राशय, मेढ्शूल, शिरोरुजा, वंक्षण एवं आनाह की प्राप्ति होती है। मलावरोध से दुष्ट हुआ वायु जब सर्व शरीर में गमन करता है तथा शिरःप्रदेश में जाकर युक्त हो तर्पककफ की दुष्टि करता है तब वायु एवं कफ दोनों युक्त हो नासागत स्रोतसों का अवरोध करते हैं और शिरःशूल होता है। शिरोरुजा प्रतिश्याय का उत्पादक हेतु है[19] (सू० उ० 24/3)।

इसमें वृद्ध वायु (दुष्टवायु) कफ को दूषित कर पूर्ववत् प्रतिश्याय की उत्पत्ति करता है।

भेल संहिता के मत से ग्रथित शुष्क, अतिवृद्ध पुरीष से वायु कुपित होकर ऊर्ध्व गमन करता है और शिर में अधिष्ठित होने से उसके द्वारा उत्पन्न प्रमुख रोगों में प्रतिश्याय का उल्लेख प्राप्त होता है[20] (भेल० सं० 24/3)।

इसी प्रकार आचार्य वाग्भट ने भी मलावरोध से प्रतिश्याय का होना स्वीकार किया है[21] (अ० हृ० सू० 4/3)

**वेग सधारण**

अधारणीय वेगों का शास्त्रकारों ने बहुत स्पष्ट उल्लेख किया है और इसके द्वारा अनेक रोगों की उत्पत्ति हो जाती है जिसमें प्रतिश्याय का भी उल्लेख किया गया है। इन अधारणीय वेगों में से छर्दि वाष्प मलमूत्र इनके निग्रहण को साक्षात रूप से प्रतिश्याय के हेतुओं में समाविष्ट किया गया है। अधारणीय वेगों को धारण करता है तो उदावर्त रोग की उत्पत्ति होती है और उदावर्त से जो व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं उनमें प्रतिश्याय का समावेश किया गया है जिसकी उत्पत्ति वातजउदावर्त से होना कहा गया है। महर्षि काश्यप के मत से[22] (सु० उ० 55/12) सतत् वेगधारण प्रतिश्याय का हेतु है जिसके द्वारा वायु की अधिकाधिक दुष्टि होती है। परन्तु इस प्रकार का प्रतिश्याय पित्त की विशिष्ट दुष्टि के साथ होना सम्भव है तथापि इतना तो स्पष्ट ही है कि किसी वेगविधारण से वायु की दुष्टि एवं उसका प्रकोप एक सामान्य ही है कि किसी वेगविधारण से वायु की दुष्टि एवं उसका प्रकोप एक सामान्य घटना है। प्रतिश्याय में वायु मुख्य दोष के रूप में वर्णित है। अतः किसी भी वेगविधारण के द्वारा प्रतिश्याय का होना सम्भव है।

**(3) मानसिक हेतु**

अतिक्रोध—प्रायः ऐसा देखा गया है कि पित्तप्रधान प्रकृति और रजोगुणभूयिष्ठ व्यक्ति अपमान, अन्याय आदि चुनौती को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाने में देरी नहीं

करते हैं। आत्मसम्मान की अल्प भी क्षति हो तो वे लोग चुप नहीं बैठ सकते और उसकी रक्षा में संलग्न हो जाते हैं। अन्यायी या चुनौती देने वाले के प्रति तत्काल क्रोधित हो जाने के कारण उस व्यक्ति के शरीर में उष्मा की वृद्धि होती है। उष्मा की वृद्धि पित्त प्रकोप का लक्षण है। उष्णगुण पित्त के गुणों में उल्लिखित है। यह पित्त व्यक्ति के क्रोधित होने पर कुपित हो जाता है और जब शिरः स्थित तर्पककफ और कण्ठ में स्थित प्राण, उदानवायु दुष्ट होता है तो इन दोषों से नासागत स्रोतस का अवरोध होकर प्रतिश्याय रोग की उत्पत्ति होती है[23] (च० चि० 26,9)।

पित्तप्रधान या रजोगुणभूयिष्ट व्यक्तियों को बारम्बार प्रतिश्याय से ग्रसित होते हुये देखा जा सकता है। इस प्रकार के प्रतिश्याय में चिकित्सा के समय ध्यान रखना चाहिए क्योंकि सामान्यतः प्रतिश्याय चिकित्सा में उष्ण-तीक्ष्णगुण-भूयिष्ट द्रव्य दिये जाते हैं जो कफपित्तवर्धक भी हैं। ऐसे प्रतिश्याय में विशेष में कुछ विशिष्ट द्रव्यों की कल्पना करना श्रेष्ठ है।

**अन्य विकारजन्य हेतु**

ज्वर, उदावर्त, गुल्म, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, शिरोरोग, छर्दि आदि।

इसके अन्तर्गत उन सभी व्याधियों का समावेश हो जाता है जिनके उत्पन्न होने के उपरान्त उनको प्रतिश्याय की प्राप्ति हो। यह प्राप्ति लक्षणरस, पूर्वरूप, उपद्रव, अरिष्ट किसी भी प्रकार की हो सकती है, अर्थात् ये व्याधियाँ स्वतन्त्र होती हैं।

स्वतन्त्र व्याधि के उपरान्त जब प्रतिश्याय से रुग्ण ग्रसित हो तो प्रतिश्याय को परतंत्र व्याधि कहा जाता है। उपर्युक्त स्वरूपों में व्याधि परतन्त्र ही है। जिन व्याधियों में प्रतिश्याय प्राप्त होता है वे व्याधियां निम्न हैं—

**ज्वर**—ग्रन्थकारों ने श्लेष्मिकज्वर, वातश्लेष्मिकज्वर, श्लेष्मल्वण, मध्यपित्तहीनवात सन्निपात, वातोल्वण, पित्त-मध्यहीनकफ सन्निपात के लक्षणों को स्वीकार किया है। ज्वर का मुख्य दोष पित्त है किन्तु यहां वात एवं श्लेष्म-ल्वण वाले ज्वरों में उसका लक्षणरूप होता दर्शाया गया है।

**उदावर्त**—अधारणीय वेगों के संधारण से प्रतिश्याय की उत्पत्ति होना सभी शास्त्रकार स्वीकार करते हैं। उनके धारण से उदावर्त की उत्पत्ति होती है। यह स्मरणीय है कि प्रत्येक वेगधारण से होने वाली व्याधियां स्वतन्त्र वर्णित हैं जिनमें वात का कुपित होना स्पष्ट परिलक्षित होता है। यहां हम केवल उदावर्त शब्द का ही प्रयोग कर रहे हैं।

माधवनिदान में आमज आनाह के लक्षण में प्रतिश्याय की गणना की गई है[24] (मा०नि० 27-15,18)।

**गुल्म**—यह उदरगत व्याधि है। इस व्याधि में असाध्य लक्षण में प्रतिश्याय का परिगणन हुआ है। गुल्म में मन्दाग्नि विशेष कफज, वातगुल्म में अवश्य होती है जिससे आम का निर्माण होता है[25] (च०नि० 3-11)। उसी आम से नासागत स्रोतसों का अवरोध यदि हो जाय या दुष्टवात शिरःस्थित होकर यदि तर्पक कफ की दुष्टि करके नासागत स्रोतस का अवरोध कर दे तो यह व्याधि असाध्य लक्षण के रूप में हो सकती है। कफजगुल्म के अन्तर्गत प्रतिश्याय का होना स्वीकार किया गया है[26] (च०नि० गुल्म-अध्याय, कफज)।

**रक्तपित्त**—यद्यपि रक्तपित्त से साक्षात प्रतिश्याय का होना उल्लिखित नहीं है किन्तु यदि रक्तपित्त में स्रवित होने वाले रक्त का तत्काल स्थगन किया जाय तो उससे जो व्याधि उत्पन्न होती है उनमें दुष्ट प्रतिश्याय का समावेश किया गया है।[27] (चि०च० 4-98)। द्वंद्वजन्य प्रतिश्याय दोष प्रधान होना ही सम्भव है।

**राज्यक्ष्मा**—राज्यक्ष्मा में प्रतिश्याय का उल्लेख पूर्वरूप और रूप के अन्तर्गत किया गया है। इनमें प्रतिश्याय की स्वतन्त्र सम्प्राप्ति भी विशेष है जिसका उल्लेख अगले लेख में सम्प्राप्ति में किया जायेगा। यह व्याधि वेगसंधारणजन्य, धातुक्षयजन्य, विषमासनजन्य यक्ष्मा के लक्षणों में उद्धृत है[28] (च० नि० 6/4)।

**शिरोरोग**—शिरोवेदना और नासारोगों का अधिष्ठान शिर है[29] (च० चि० 8/59)। वेदना का मुख्य हेतु वायु होता है और शिर कफ का स्थान है[30] (च० चि० 8/48)। जब दृष्ट वायु शिर में अधिष्ठित होकर शिरोरूजा उत्पन्न करती है तब तर्पककफ प्रभावित होता है। ये वात, कफ यदि नासागत स्रोतसों को अवरूद्ध कर दें तो प्रतिश्याय का होना सम्भव है।

**छर्दि**—छर्दि का समावेश वेगविधारण के अन्तर्गत हो जाता है तथा वेगसंधारण को प्रतिश्याय का हेतु कहा

गया है। छर्दि स्वतन्त्र रूप से व्याधि है और वेग के साथ आने से वेगों में भी परिगणित है। छर्दिरोग आमाशय समुद्भव है। आमाशय का निम्नभाग पित्त का स्थान है। यदि ये दोष विकृत हो तो गृहीत आहार का पाचन होना तो दूर रहा वह आहार आमाशय की प्रतिलोमगति के कारण ऊर्ध्वगमन करते हुये मुखनासा मार्ग से बाहर निकल आता है। इस प्रकार की छर्दि को रोक दी जाय तो कफ, पित्त और वायु का भी दूषण कर डालते हैं फिर दुष्ट वायु द्वारा शिर में जाकर शिर: स्थान के कफ को भी दूषित कर डालते हैं तथा इनके द्वारा यदि नासास्रोत अवरुद्ध हो जाय तो उनके परिणामस्वरूप प्रतिश्याय होने की सम्भावना होती है।

उपरिविवेचित प्रतिश्यायरोग के हेतुओं का संकलन करके उनके द्वारा कैसे प्रतिश्याय की सम्प्राप्ति की सम्भावना हो सकती है इसके विषय का प्रतिपादन करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। जैसाकि विद्वान लोग यह जानते हैं कि प्रतिश्याय आयुर्वेद-शास्त्र में बहुत संक्षिप्त रूप से वर्णित व्याधि है परन्तु शास्त्रावलोकन से एवं इसके हेतुओं को संग्रहित करने से यह अनुभव हुआ कि प्रतिश्याय एक विकट व्याधि है।

**उपसंहार**

विभिन्न आयुर्वेदीय ग्रंथों के आधार पर तथा आतुरालय के अन्तरंग एवं बहिरंग विभाग में चिकित्सित रोगियों के अनुभवजन्य विचारों से आयुर्वेदोक्त प्रतिश्याय व्याधि के हेतुओं का तथा वे शरीर में प्रतिश्यायरोग को किस प्रकार उत्पन्न करते हैं, इसका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

कतिपय विशिष्ट हेतुओं के कर्तृत्व का विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

**आभार-प्रदर्शन**

उपर्युक्त कार्य के सम्पादन हेतु साधन-सामग्री प्रदान करने एवं आतुरालयी सुविधाओं का अनुसन्धान के लिये उपयोगार्थ अनुमति प्रदान करने हेतु हम गुजरात आयुर्वेद युनिवर्सिटी के कुलपति डा० मुकुन्दीलाल जी द्विवेदी एवं डीन श्री डा० लक्ष्मणस्वरूप भटनागरजी के आभारी हैं।

लेखनकार्य हेतु प्रेरणा प्रदान करने वाले परम पूज्य श्रद्धेय स्वर्गीय डा० शिवकुमार वशिष्ठ, सम्माननीय डा० शिवकुमार मिश्र जी, रीडर, कायचिकित्सा विभाग की कृतज्ञता यावत् चन्द्रदिवाकर: नहीं भूल सकता; जिन्होंने मेरे जीवन में ऐसी प्रेरणा जागृत करके नया जीवन प्रदान किया।

अन्त में उन सभी गुरुजनों एवं प्रियजनों का आभारी हूं जिनके द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लेखन-कार्य में यत्किंचित सहयोग प्राप्त हुआ है।

**सन्दर्भ सूची**

1. च० चि० 26।104
2. सू० उ० 24।3
3. अ० हृ० उ० 19।102
4. का० सं० प्र० नि०
5. हारीत संहिता
6. अ० हृ० सू० 12।5
7. च० नि० 8।8
8. का० सं० चि० 2
9. च० चि० 3।38
10. च० चि० 3
11. च० चि० 21।28
12. अ० हृ० सू० 3।58
13. श० प्र० खंड 2।30
14. श० स० प्र० 2।27
15. सु० क० 3।16
16. च० सू० 7।22
17. च० सू० 21।44
18. सु० सू० 55।8-10
10. सु० उ० 24।3
20. भै० सं० 20।3
21. अ० हृ० सू० 4।3
22. सु० उ० 55।2
23. च० चि० 26।9
24. मा० नि० 27।15-18
25. च० नि० 3।11
26. च० नि०
27. च० चि० 4।98
28. च० नि० 6।4
29. च० चि० 8।49
30. च० चि० 8।48



# नारी स्वास्थ्य

# बन्ध्यात्व या बांझपन


**कविराज डा० अयोध्या प्रसाद अचल**
एम० ए० (द्वय), पी-एच० डी०, आयुर्वेद-वृहस्पति
मनोयौन रोग-विशेषज्ञ
एवं
**वैद्या श्रीमती विमला अचल**
बी० ए०, एम० डिप् एन० आई० ई०,
स्त्री रोग-विशेषज्ञ, आयुर्वेद शोध संस्थान,
बुनियादगंज, गया-८२३००३


बोलचाल की भाषा में ऐसी प्रायः सभी स्त्रियों को जिन्हें कोई सन्तान नहीं होती बन्ध्या या बाझ कहा जाता है और उनका दोष 'बन्ध्यात्व या बांझपन' कहलाता है।

अंगरेजी में इस संदर्भ में प्रायः दो शब्दों का प्रयोग किया जाता है—स्टेरिलिटी (Sterility) तथा इन्फर्टिलिटी (Infertility)। स्टेराइल (Sterile) का अर्थ है 'संतानोत्पादन के सर्वथा अयोग्य' अथवा 'बीजकोष से रहित' तथा इन्फरटाइल (Infertile) का अर्थ है 'सन्तानोत्पादन की असमर्थता या अशक्ति।' अतः, स्टरलिटि का अर्थ हुआ सन्तानोत्पादन की अयोग्यता तथा अशक्ति। बन्ध्या शब्द प्रायः उक्त दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता है।

विशेषज्ञों का अनुमान है कि लगभग 15 प्रतिशत दम्पति किसी न किसी प्रकार की पुंसवन-अशक्ति से पीड़ित रहते हैं। शेष 85 प्रतिशत में से ७५ प्रतिशत, अगर उन्होंने किसी प्रकार के कृत्रिम गर्भ-निरोधक उपायों का सहारा न लिया, छः महीने के अन्दर और शेष साल पूरा होते-होते गर्भाधान में समर्थ हो जाते हैं। लेकिन इस अवधि के बीतने के बाद भी अगर स्त्री गर्भधारण नहीं करती तो उसे 'इन्फरटाइल' माना जाता है और जांच आवश्यक हो जाती है।

सन्तान का होना या न होना पति और पत्नी दोनों पर निर्भर है। दोष दोनों में से किसी के अन्दर भी हो सकता है। अतः इसके लिए दोनों की जाँच आवश्यक है। इस जांच के बाद अगर पति में कोई दोष नहीं मिलता और स्त्री में निश्चित रूप से कोई ऐसा कारण मिलता हैं जिसकी वजह से गर्भधारण और पुंसवन की क्रिया संभव नहीं होती तभी स्त्री को संतानोत्पादन के अयोग्य या बन्ध्या घोषित किया जाता है।

इन्फर्टिलिटि या पुंसवन-अशक्ति दो प्रकार की होती है—प्रमुख एवं गौण। जिस स्त्री को कभी गर्भाधान हुआ हीं न हो उसकी विकृति को प्रमुख कहा जाता है। और, जिसे गर्भाधान होने के बाद गर्भपात हो गया हो, या एकाध बच्चा होकर शीघ्र ही मर गया हो या एक-दो बच्चे होने के बाद फिर गर्भ न ठहरता हो उसकी विकृति को गौण कहा जाता है। आयुर्वेद में क्रमशः इन्हें 'आदि बन्ध्या' और 'काक बन्ध्या' कहा गया है।

**बन्ध्यात्व के कारण**

गर्भाधान की क्रिया एक जटिल क्रिया है। शुक्राणु को स्त्री की योनि में पहुंचने के बाद गर्भाशय में स्थित डिम्बाणु तक पहुंचने के लिए के लिए एक लम्बा रास्ता तय करना होता है। इस रास्ते में अगर कोई बाधा उपस्थित हो गई या कोई ऐसा कारण उत्पन्न हो गया जिसने शुक्राणु के अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया या उसे निरा अशक्त बना दिया तो शुक्राणु और डिम्बाणु का मिलन नहीं पाता और गर्भाधान की क्रिया नहीं हो पाती।

कभी-कभी ऐसे भी कारक उत्पन्न हो जाते हैं जो पक्व-डिम्ब (Mature Ovum) को गर्भाशय में पहुंचने से रोक देते हैं, उसे विकृत या अशक्त बना देते हैं या

संसेचित डिम्ब (Fertilized Ovum) को गर्भाशय में टिकने ही नहीं देते—उसे बाहर फेंक देते हैं। ऐसी हालत में भी गर्भाधान या पुंसवन की क्रिया संभव नहीं होती।

ऐसे सभी अवरोधक या बाधक कारकों को, जोकि जन्मजात और अर्जित दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं, चार प्रमुख वर्गों में बांटा गया है :—

**क--शुक्र के गर्भाशय-प्रवेश में बाधक कारक**

1. गर्भाशय अथवा योनि का अभाव (Absence of the uterus of vagina),

2. गवाक्षरोध शर्तोच्छद (Obturator hymen)

3. योनिशोथ (Vaginismus)

4. योनि-अविवरता (Atresia Vaginae)

5. गर्भाशयग्रीवा की कोनीय आकृति (Cenical shape of cervix)

6. ग्रीवा-अन्तर्गर्भाशयकला शोथ (Cervical endemetritis)

7. गर्भाशय का अन्तर्रोध (Occlusion of cervical canal)

8. पालिपि या तन्तुपेशी अर्बुद (Polypi or fibroids)

9. योनि अथवा गर्भाशयग्रीवा-मुख की अत्यधिक संकीर्णता (Very small as internum)

10. स्थान-भ्रंशता या स्थानच्युतियां (Displacements)

**ख--स्वस्थ डिम्बाणु के निर्माण में बाधक**

1. डिम्ब-ग्रन्थियों का अभाव (Absence of ovaries)

2. दोनों ही डिम्ब-ग्रन्थियों में सिस्ट संबंधी विकार (Cystic disease of both ovaries)

3. ऊतिशोध या पर्युदर्याशोथ (Cellulitis or peritenitis)

4. जीर्ण डिम्बशोथ (Chronic ovaritis)

**ग--डिम्बाणुओं के गर्भाशय-प्रवेश में बाधक**

1. डिम्बवाहिनी नलिकाओं का अभाव (Absence of Fallopian tubes)

2. डिम्बवाहिनी नलिकाओं का निकोचन या लोप (Stricture or obliteration of Fallopian tubes)

3. डिम्बवाहिनियों का पृथक्करण या स्थानान्तरण (Detachments & displacements of Fallopian tubes)

**घ--शुक्राणुओं की जीवनीशक्ति को नष्ट करनेवाले तथा संचित डिम्ब की गर्भाशय से सम्बद्ध होने से रोकनेवाले**

1. ग्रैव अन्तगर्भाशयकला शोथ (Corporeal or cervical endemetritis)

2. झिल्लीयुक्त कृच्छार्तव (Membranous dysmenerrhea)

3. अत्यार्तव या रक्त प्रदर (Menorrhagia or metrorrhagia)

4. जीर्ण गर्भाशयकला शोथ (Chronic metritis)

5. असामान्य वृद्धियां Abnormal growths)

6. सूजाक का विष तथा योनिस्रावों की अम्लीय प्रक्रिया (Gonorrheal Infectien & acid reaction of Vaginal discharges)

बहुत-से निस्संतान दम्पतियों में अनेकानेक नैदानिक परीक्षणों के बाद भी किसी प्रकार की शारीरिक विकृति या असामान्यता नहीं मिलती। इनमें से कुछ केस तो ऐसे भी हो सकते हैं जिनकी विकृति इतनी सूक्ष्म या कुछ ऐसे ढंग की हो जिसका ज्ञान अभी भी आयुर्विज्ञान को न हो—उनको खोज पाने की विधियां वह अभी तक आविष्कार न कर पाया हो, पर कुछ केस निश्चित रूप से मनोवैज्ञानिक कारकों की उपज होते हैं। यह स्थापित सत्य है कि प्राणी की संवेगात्मक विकृतियों, उसके मनोविकार (भय, शोक, चिंता आदि), उसकी दैहिक क्रियाओं को भी प्रभावित करते हैं। सन्तानोत्पादन की क्रियाएं भी, जो कि दैहिक क्रियाओं का एक महत्वपूर्ण अंग हैं, इनसे अछूती नहीं रहतीं। मनोविकार अण्डाणुओं की परिपक्वता में बाधक हो सकते हैं। डिम्बवाहिनियों, गर्भाशय तथा योनि में उद्वेष्टन अथवा ऐंठन पैदा कर सकते हैं। संसेचित डिम्ब के गर्भाशय से सम्बद्ध होने में रुकावट पैदा कर सकते हैं। अनेक ऐसे केस देखने में आते हैं जिनमें कोई निस्संतान स्त्री किसी बच्चे को गोद लेने के स्वयं भी गर्भवती हो गयी। मानना पड़ेगा उसकी यह पुंसवन-अशक्ति उसके मानसिक द्वन्द्व की उपज थी। हो सकता है सन्तान के अभाव की अत्यधिक चिन्ता स्वयं अपने-आप में पुंसवन-अशक्ति का एक महत्वपूर्ण कारण बन जाती हो।

कामशीतलता ( Frigidity ) और अतिकामुकता (Erotomania) भी मनोवैज्ञानिक कारकों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रायः बन्ध्या औरतें काम-शीतल होती हैं। लेकिन मात्र कामशीतलता को बन्ध्यात्व का कारण नहीं माना जा सकता। क्योंकि दूसरी ओर ऐसी भी औरतें होती हैं जो कामशीतल न होते हुए, बल्कि अधिक कामुक होते हुए भी, गर्भधारण में असमर्थ रहती हैं। अतिकामुक स्त्रियों में से कुछ इसलिए भी गर्भधारण नहीं चाहतीं क्योंकि वह उनकी कामतृप्ति के रास्ते में बाधक होगा।

इनके अतिरिक्त आहार-विहार-सम्बन्धी कुछ विकृ-तियां-यथा कुपोषण, रतिक्रिया में गलत आसनों का प्रयोग, रतिक्रिया के बाद स्त्री का तत्काल उठ जाना, योनि को डूस से धो डालना, कृत्रिम गर्भनिरोधकों का प्रयोग आदि, अन्त: स्रावी ग्रन्थियों की अन्योन्य क्रिया में गड़बड़ी, कतिपय व्यावसायिक परिस्थितयां तथा जलवायु आदि भी सन्तानोत्पादन की क्रिया में बाधक सिद्ध हो सकते हैं।

**आयुर्वेद का दृष्टिकोण**

आयुर्वेद में निम्न बीस प्रकार के योनि रोगों की चर्चा की गई है—

१. उदावर्ता—जिस योनि से बड़े कष्ट के साथ झाग-युक्त स्राव होता हो।

२. बन्ध्या—जिसका आर्तव नष्ट हो गया हो।

३. विलुप्ता—जिसमें नित्य वेदना होती हो।

४. परिलुप्ता—जिसमें मैथुन के समय अत्यधिक पीड़ा होती है।

५. वातला...जो कर्कश, जकड़ी हुई, शूल और तोद युक्त हो।

६. लोहितक्षरा...जिससे दाहपूर्वक रक्त गिरता हो।

७. वामिनी...जो वायु के साथ बीज और रज को निकाल देती हो।

८. प्रस्रंसिनी—जो क्षोभ के कारण बार-बार अपने स्थान से च्युत हो जाती हो।

9. पुत्रघ्नी या जातघ्नी—जो योनि स्थित हुए भ्रूण को बार-बार गिरा देती हो।

10. पित्तला—जो योनि अत्यधिक दाह, पाक और ज्वर से युक्त हो :

11. अत्यानन्दा—जो योनि मैथुन करने से कभी संतुष्ट न हो।

12. कर्णिषी—जिस योनि में कफ और रक्त के दोष के कारण मांस की ग्रन्थि उत्पन्न हो जाए।

13. अचरणा—जो मैथुन के समय पुरुष के स्खलित होने के पूर्व ही स्खलित हो जाए।

14. अतिचरणा—जो बहुत अधिक मैथुन करने पर ही स्खलित हो।

15. श्लेष्मला—जो पिच्छिल, कण्डूयुक्त और अत्यधिक शीतल हो।

16. षण्ढी—जिसे मासिक न होता हो, जिसके स्तन बहुत ही छोटे हों तथा मैथुन के समय जिसका स्पर्श अत्यधिक खुरदरा प्रतीत हो।

17. फलिनी या अण्डली—जो अत्यधिक बड़े या मोटे शिश्न वाले पुरुष के साथ संभोग के कारण विकृत हो गई हो।

18. विवृता—जिसका मुख बहुत ज्यादा फैला हुआ हो।

19. सूचीमुखी—जिसका मुख अत्यधिक संकीर्ण हो।

20. त्रिदोषज—जो योनि युक्त सभी प्रकार के दोषों से युक्त हो।

योनिरोगों की उक्त सूची को ध्यान से पढ़ने पर निम्न तथ्य सामने आते हैं :—

1. इस संदर्भ में योनि शब्द व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है। यह स्त्री के प्रायः सभी प्रमुख अंतर और बाह्य प्रजननांगों का वाचक है।

2. इस सूची में प्रायः उन सभी कारकों का समावेश हो जाता है जिन्हें ऊपर "इन्फर्टिलिटि" या "स्टर्लिटि" के कारणों के रूप में उद्धृत किया गया है।

3. उक्त योनिरोगों में से कमोबेश प्रायः सभी को सन्तानोत्पादन के रास्ते में बाधक माना गया है। पर प्रस्रंसिनी, पुत्रघ्नी या जातघ्नी, अचरणा और अति-चरणा के संदर्भ में स्पष्ट उल्लेख है कि वे बीजधारण में असमर्थ रहती हैं। षण्ढी, अण्डली, विवृता, सूचीमुखी और त्रिदोषजा—जो त्रिदोषज होने के कारण असाध्य मानी गई हैं—भी गर्भधारण में असमर्थ रहती हैं।

4. बंध्या की परिभाषा देते हुए कहा गया है वह योनि जिसका आर्तव नष्ट हो गया हो। लेकिन मात्र आर्तव का नष्ट होना या अदृष्ट होना बंध्यात्व का कारण नहीं माना जा सकता। अदृष्टार्तव को भी संतान हो सकती है। इस संदर्भ में सुश्रुत का निम्न कथन देखिये— "अदृष्टार्तवाप्यस्तीत्येके भाषन्ते।" अतः आर्तव का अर्थ यहाँ पर आर्तव का बीज भाग या डिम्बाणु ही लेना पड़ेगा। आर्तव शब्द के इस प्रकार के व्यापक प्रयोग अन्यत्र भी उपलब्ध होते हैं।

शास्त्रों में वंध्या के भी नौ-नौ भेद बतलाए गए हैं—

1. आदिबंध्या—पूर्व अथवा वर्तमान जन्म के दुष्कृत्यों के कारण।

2. रक्तबंध्या—दूषित रक्त के कारण।

3. वातबंध्या—वातप्रकोप के कारण स्त्री बीज दूषित होने से।

4. पित्तबंध्या—गर्भाशय में पित्तप्रकोप के कारण।

5. कफबंध्या—कफप्रकोप से मार्गों के अवरुद्ध हो जाने के कारण।

6. त्रिदोषबंध्या—तीनों दोषों के एक साथ प्रकुपित हो जाने के कारण उत्पादक अंगों के निष्क्रिय हो जाने से।

7. ग्रहदोष से।

8. देवबल से तथा

9. गुरुजन आदि पूज्य पुरुषों के पूजा के व्यतिक्रम तथा अपचार आदि के कारण।

इनमें से आदिबंध्या गर्भस्रावी प्रकृतिवाली, रक्तबंध्या मरे हुए बच्चे को जन्म देने वाली, वातबंध्या मात्र लड़कियों को ही उत्पन्न करने वाली तथा पित्तबन्ध्या या काकबन्ध्या को मात्र एक बार ही गर्भधारण करने वाली कहा गया है।

उक्त योनिदोषों के आयुर्वेद में निम्न कारण बतलाए गए हैं—मिथ्या आहार-विहार, आर्तवदुष्टि, माता-पिता के बीजदोष या वंशानुक्रम तथा दैव अर्थात् पूर्वजन्मकृत अधर्म या पापाचार।

### निदान

बन्ध्यात्व या पुंसवन की अशक्तता का निदान प्रायः एक कठिन समस्या होती है। सामान्यतया लगभग ४० प्रतिशत मामलों में पुरुष इसके लिए दोषी होते हैं पर वे जल्द यह मानने के लिए कि दोष उनमें भी हो सकता है, तैयार नहीं होते। परीक्षण के लिए भी नहीं राजी होते। सारा दोष अपनी पत्नी पर ही आरोपित करते रहते हैं।

ऐसे मामलों में आवश्यक और आसान भी यही होता है कि पहले पति की ही परीक्षा की जाए। अगर पति हर प्रकार से स्वस्थ हो, समर्थ हो, उसका वीर्य निर्दोष हो—स्वस्थ शुक्राणुओं से युक्त हो तो निश्चय ही दोष पत्नी में माना जाएगा और उसकी परीक्षा आवश्यक हो जायगी आज दिन ऐसी अनेक बिधियों-परीक्षणों का आविष्कार किया जा चुका है जिनसे इस दोष के कारण का बहुत हद तक सही पता लगाया जा सकता है।

आधुनिक उपकरणों की सहायता से अगर सही ढंग से निदान किया जाए तो इसमें तीन से लेकर छः महीने तक का या कभी-कभी उससे भी अधिक समय तक लग सकता है। जैसाकि ऊपर संकेत किया जा चुका है, पहले पुरुष की परीक्षा की जाती है और अगर पुरुष को सर्वथा निर्दोष पाया गया तो स्त्री की परीक्षा की जाती है। इस परीक्षा के क्रम में सबसे पहले स्त्री की पूरी केस-हिस्ट्री ली जाती है जिसमें निम्न बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक होता है—उसे कौन-कौन-सी बीमारियां हो चुकी हैं। कभी सूजाक, उपदंश आदि की शिकार तो नहीं हुई हैं। श्रोणि-प्रदेश के आंपरेशन तो नहीं हुए हैं। अगर हुए हैं तो कब, कितने और किस नेचर के। गर्भपात तो नहीं हुआ या कराया गया है। अपरिपक्व बच्चों ने जन्म तो नहीं लिया है। स्त्री किसी मानसिक द्वन्द्व, मनोविकार से पीड़ित तो नहीं है। इससे पहले इसी रोग के लिए उसका परीक्षण या उपचार तो नहीं कराया गया है। अगर हां तो उसकी क्या फाइंडिग्ज हैं, क्या नतीजा निकला। कहीं वह किसी ऐसे पेशे में तो नहीं लगी है। जहां रसायनों, विकिरणों अथवा अत्यधिक उष्णता से उसका सीधा सम्बन्ध हो। उसने कृत्रिम गर्भनिरोधक के उपायों-उपकरणों या औषधियों का प्रयोग तो नहीं किया है। उसका रहन-सहन, उसकी खाने-पीने की आदतें, मनोरंजन के साधन, व्यायाम आदि की व्यवस्था क्या है, और कैसी है। कहीं वह किसी प्रकार के मादक द्रव्य का व्यवहार तो नहीं करती है। उसका कामविकास सामान्य हुआ है या नहीं। रतिक्रिया में चरमबिन्दु पर पहुंचती है

या नहीं—समय के पूर्व ही तो स्खलित नहीं हो जाती। गर्भस्थापन में सहायक आसनों-विधियों, ऋतुकाल-चक्र में सबसे अधिक उपयुक्त दिनों आदि की उसे जानकारी है या नहीं। मैथुन के बाद तत्काल उठ तो नहीं जाती। योनि को धो तो नहीं डालती। आदि।

पूरी केस-हिस्ट्री ले लेने के उपरान्त चिकित्सक स्त्री के प्रजनन अंगों की स्थानीय जांच करता है। उसके लिए यह जानकारी आवश्यक है कि स्त्री में स्वस्थ डिम्बाणुओं का निर्माण हो रहा है, उसकी डिम्बवाहिनियां खुली हैं, उनसे होकर डिम्ब गर्भाशय में यथासमय पहुंच रहा है तथा उसके लिए इन अंगों में किसी प्रकार का शोध, अनावश्यक वृद्धि या वहां किसी प्रकार के प्रतिकूल पदार्थ की उपस्थिति नहीं है।

इसी क्रम में वह रुग्णा के रक्त (Typing and Rh Factor) विशेष कर-टाइपिंग तथा आर एच फैक्टर—अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों (विशेषकर थाइरायड तथा ओवरीज) उनकी अन्योन्य-क्रिया, उसके मूत्रादि का भी परीक्षण कराता है। इनके अतिरिक्त पति और पत्नी के शुक्र और आर्तव की अनुकूलता की जांच के लिए 'सर्म-सरविकल-म्यूकस कम्पेशियेबिलिटी' टेस्ट भी कराया जाता है। इसके अतिरिक्त स्त्री की पुंसवन-शक्ति की जांच के और भी, अनेक परीक्षण हैं—आधुनिक आयुर्विज्ञान और आयुर्वेद दोनों में ही—जिसका आवश्यकतानुरूप उपयोग किया जाता है।

परीक्षणों में समय तो अवश्य लगता है पर इससे दोष के स्थानीकरण और तदोपरान्त उसके उपचार में पर्याप्त सहायता मिलती है। जरूरी नहीं है कि हर केस में हर तरह का परीक्षण कराना ही पड़े। किसी - किसी केस में दोष आसानी से भी पकड़ में आ जाता है।

**पूर्वानुमान**

अगर बन्ध्यात्व पूर्ण अथबा स्थायी (Absolute sterility) ढंग का अथवा आकृतिजन्य असाध्य कारणों की उपज नहीं है तो 30 से 40 प्रतिशत मामलों में उसे ठीक किया जा सकता है। उपचार की सफलता बहुत हद तक एक ओर तो इस बात पर निर्भर है कि चिकित्सक किस हद तक बन्ध्यात्व के सही कारण को ढूंढ पाने और उसका निराकरण कर पाने में समर्थ है, और दूसरी ओर, दम्पति कहां तक उसके साथ सहयोग करने को तैयार हैं। जब तक पति-पत्नी निस्संकोच अपनी सही हालत को चिकित्सक के सामने पेश करने को, आवश्यक परीक्षण कराने को और चिकित्सक के निर्देशों को यथावत् धैर्यपूर्वक पालन करने को तैयार नहीं होते चिकित्सक की सफलता संदिग्ध रहेगी।

आयुर्वेद भी योनिरोगों में त्रिदोषज को ही--षण्डी, फलिनी, विवृता, सूचीमुखी तथा त्रिदोषज--को ही असाध्य मानता है। शेष को साध्य या दुस्साध्य ही समझना चाहिए।

**उपचार**

अगर उपचार के क्रम में स्त्री के रहन-सहन, खान-पान, व्यायाम, मनोरंजन, सेक्स सम्बन्धी आदतों आदि में किसी तरह का दोष मालूम हो तो उसे सुधारने की सलाह दें।

कोई शल्यसाध्य आकृति-सम्बन्धी दोष हो तो शल्य-क्रिया द्वारा उसे दूर करें या विशेषज्ञ के पास जाने की सलाह दें। अनावश्यक औषधोपचार में उसका और अपना समय बर्बाद न करें।

अगर रुग्णा किसी मानसिक दोष से पीड़ित हो तो आश्वासन या इष्टाश्वासन का सहारा लें। मनोविकार बढ़ा हुआ मालूम हो तो किसी मनश्चिकित्सक से राय लेने का परामर्श दें।

अगर बन्ध्यात्व का कारण कोई और शारीरिक, रतिज या छूत का रोग मालूम हो तो उसका उपचार करें। उसके ठीक होने और सामान्य स्वास्थ्य के सुधारने से हो सकता है बन्ध्यात्व-दोष स्वतः दूर हो जाए।

प्रजननांगों में किसी प्रकार का शोथ, अवरोध, अनावश्यक वृद्धि, घाव आदि हो तो उसका उपचार करें। किसी प्रकार का आर्तव - सम्बन्धी विकार हो तो उसे सुधारें।

योनि-रोगों में आयुर्वेदोक्त योनिव्यापच्चिकित्सा का आश्रय लें।

ग्रहदोषादि से पीड़ित केसों में दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा का सहारा लें। कई केसों में इससे लाभ होते देखा गया है--विशेषकर अगर रुग्ण का इसमें दृढ़ विश्वास है।

युक्तिव्यपाश्रय चिकित्साक्रम में निम्नलिखित योगों में से किसी एक का आवश्यकतानुसार प्रयोग करें।

**आदिबन्ध्या के लिए**

१. निम्नलिखित काष्ठौषधियों में से किसी भी एक की जड़ को रविवार के दिन पुष्य-नक्षत्र में लाकर उसमें से एक तोला ले शुद्ध पत्थर (या साफ सिल) पर एक वर्ण वाली सवत्सा गाय के कच्चे दूध में कुमारी कन्या से खूब महीन पिसवाकर उसमें थोड़ी सी मिश्री या शर्करा मिलाकर मात्र प्रातःकाल स्त्री को पीने को दे।

(क) सर्पाक्षी या पानशिवली (ख) देवलाली (ग) शरपुङ्खा, (घ) रुद्राक्ष दाना भी लिया जा सकता है लेकिन उसे पत्थर पर चन्दन की भांति घिस कर लेना होगा, ङ श्वेत कंटकारी, (च) लक्ष्मणा तथा (छ) श्वेतबला और मुलेठी।

ये औषधियां रुग्णा को ऋतुस्नान से शुद्ध होने के बाद प्रतिमास 4 से 7 दिन तक सेवन करानी चाहिए। भूख लगने पर सादा और सुपाच्य भोजन (यथासंभव निर्लवण) थोड़ा-थोड़ा करके खिलाना चाहिए। दूध और सांठी के चावलों का भोजन दे सके तो सबसे उपयोगी है।

**काकबन्ध्या के लिए**

2—निम्नलिखित में से किसी भी एक को पूर्ववत् लाकर भैंस के दूध में पिसवा उसमें भैंस के दूध का ही मक्खन या घी और थोड़ी शर्करा या मिश्री मिलाकर स्त्री को उक्त विधि से ही पीने को दें :—

क—विष्णुकान्ता पंचाग,

ख—असगंध की जड़

**इनके अतिरिक्त निम्न योगों का भी सभी प्रकार की बन्ध्याओं पर व्यवहार किया जा सकता है।**

3—स्वर्णभस्म एक तण्डुल, रौप्यभस्म 2 तण्डुल तथा ताम्रभस्म 1 तण्डुल असम भाग घी और मधु में मिलाकर।

4—छोटी पीपल, सोंठ, कालीमिर्च और नागकेसर (समभाग) का चूर्ण 1 ग्राम से दो ग्राम तक।

5—नीले फूलोंवाली विष्णुकान्ता की जड़ बकरी के दूध के साथ पीसकर।

6—काकोली, क्षीरकाकोली, लक्ष्मणा की जड़ और सांठी के चावल (समभाग) का चूर्ण।

7—गोखरू के बीज मेउड़ी के पत्तों के साथ पीसकर।

8—जयसुन्दर रत्नभागोत्तर, चक्रिकाबन्ध, वर्धमान तथा द्रुतिसार रसों में से किसी एक को दोषानुसार उचित अनुपान के साथ।

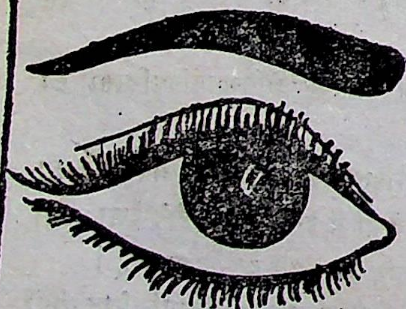
**जिन स्त्रियों को गर्भ तो ठहरता है पर गर्भपात हो जाता है, या सन्तान होकर शीघ्र ही मर जाती है उन्हें निम्न औषधियों का प्रयोग कराएं**

9—गर्भाशय को बल देनेवाले तथा पुष्ट करनेवाले योग।

10—अगर स्त्री गर्भवती है और उक्त आशंकाएं हैं तो गर्भ चिन्तामणि, गर्भपाल अथवा गर्भविनोद रसों में से कोई भी एक—दोषानुसार उचित अनुपान के साथ।

11—साथ में अनुपान के रूप में या अलग से भी फलघृत का भी सेवन कराएं।

**पथ्यापथ्य**—सादा और सुपाच्य भोजन, विशेषकर क्षीरान्न, दें। फलों का सेवन कराएं। अधिक परिश्रम, क्षोभ तथा उत्तेजना पैदा करनेवाली परिस्थितियों, मानसिक द्वन्द्वों, अत्यधिक शीतल, अन्नपान, दिवास्वप्न, तेज धूप आदि से स्त्री की रक्षा करें।



# वैदिक साहित्य में हृदय की सामान्य-रचना

श्री सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, एम० ए०,
डी० ए० वी० ई० कालेज, गोरखपुर; उ० प्र०, भारत

वैदिक साहित्य में अनेक सन्दर्भों में हृदय का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में हृद का उल्लेख अनेक बार हुआ है।[1] ऋग्वेद के एक पूरे सूक्त में शरीर के विभिन्न अंगों और उनके रोगों के साथ-साथ हृदय रोग का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] अथर्ववेद[3] और उपनिषदों[4] में हृदय को 'पुण्डरीक' (The blossom of Nelumbo-nucifera of NYMPHACEAE family) द्वारा व्यक्त किया गया गया है।[5] अथर्ववेद को एक ऋचा में 'देव-कोश'[6] तथा दूसरी ऋचा में 'कोश'[7] शब्द हृदय के लिये प्रयुक्त हुए हैं। गुह्य[8] शरीरस्थ स्य देहिनः[9] वामनम्,[10] प्रजापति,[11] पुरुष,[12] ब्रह्म,[13] मनीमय,[14] ब्रोक,[15] रवि,[16] विश्व,[17] हंस,[18] श्येन,[19] पक्षी,[20] (तु० ऋ० वे०, 1.64.20; श्वेता उप०, 4.4.6 जो कि सम्पूर्ण हृद-फुफ्फसीय अंग को एक पक्षी शरीर 'सुपर्ण' द्वारा इंगित करते हैं), गरुण,[21] भूमि[22] अग्नि[23] [दे० वाज० सं०, 18.52 जिसमें अग्नि के दो पंख बताये गये हैं तथा तुलना करें हृद फुफ्फसीय अंग जहां दोनों फेफड़े हृदय (अग्नि) से जुड़े हुए दो पंख की भांति प्रतीत होते हैं तथा ट्रेकिया विण्डपाइप (Trachaea) पक्षी के गर्दन एवं शिर की भांति प्रतीत होता है (दे० ऋ० वे०, 1.164.20; श्वेता० उप०, 3.3.18; 4.4.6; 6.6.15; बृ० उप०, 2.5.18; 4.3.7;19; वाज० सं०, 17.72; छन्दो० उप०, 8.3.], पुरुषय,[24] अश्वत्थ-वृक्ष,[25] या वृक्ष[26] पुरोडाश,[27] आदि अनेक रहस्यपूर्ण शब्द हैं जो हृदय के लिये बोधित प्रतीत होते हैं। सामवेद[28] और बृ० उप० में उल्लिखित 'विराट्' शब्द हृदय के ही किसी भाग विशेष को बोधित करते हैं[29]। सामवेद में वर्णन है कि विराट् पुरुष ने दश अंगुलियों द्वारा धरणी धारण किया है[30]। श्वेता० उप० में भी ऐसा ही एक प्रकरण है। श्वेता० उप० के उद्धृत मन्त्र में भूमि शब्द हृदय का ही द्योतक प्रतीत होता है[31]। चरक संहिता में भी हृदय से सम्बन्धित इस प्रकरण का मिलता-जुलता बिवरण मिलता है[32] अनेक वैदिक प्रकरणों में हृदय को रथ (Chariot) की भी संज्ञा दी गई है[33]। 'हिता'[34] और पुरीतत[35] दो ऐसे शब्द हैं जो हृदय से ही सम्बन्धित प्रतीत होते हैं[36]। उपनिषदों में हृदय-ज्ञान को अति महत्व दिया गया है तथा इसे आत्मज्ञान की संज्ञा दी गई है[37]। कभी-कभी हृदय ज्ञान को 'ब्रह्मविद्या'[38] और कभी मधुविद्या (Extract of knowledge)[39] कह कर उल्लिखित किया गया है।

अनेक वैदिक प्रकरणों से यह विदित होता है कि उस काल में भी हृदय ज्ञान की शिक्षा के पूर्ण संगठित और व्यवस्थित संस्थायें थीं[40]। इन संस्थाओं में हृदय ज्ञान सम्बन्धी शोध अनेक पीढ़ियों तक चलता रहा[41]। यह ज्ञान एक अति पवित्र और गुप्त ज्ञान था जो कि चुने गये कुछ सर्वोत्कृष्ट छात्रों को या सुयोग्य बड़े पुत्र को ही दिया जाता था[42]। 'ॐ' शब्द भी वैदिक साहित्य में एक अति रहस्यपूर्ण संकेत चिह्न है[43]। यह शब्द भी विस्तृत विवेचन करने पर हृदय ज्ञान का एक प्रतीकात्मक चिह्न[44] ही प्रतीत होता है। संभवतः हृदय के अध्ययन का इतना महत्व होने का कारण यह विश्वास था कि—'आत्मा का विश्वास हृदय में हैं। शंकराचार्य ने उपनिषद की व्याख्या में हृदय को आत्मा का लिंग (Symbol) और इन्द्रीय (An organ of action) माना है[45]।

हृद शब्द की उत्पत्ति संभवतः हृद[46] शब्द से हुई है। वैदिक साहित्य में 'हृद' शब्द जलाशय को बोधित करने के लिये प्रयुक्त किया गया है[47]। वैदिक साहित्य में भी इस प्रकार की धारणा के कुछ संकेत मिलते है[48]। अथर्ववेद के एक जलाशय के ही रूप में व्यक्त किया गया है[49]। इस तथ्य को हृद शब्द से ही

मिलते-जुलते एक दूसरे शब्द 'हौदा' [50] की विवेचना से भी स्वीकार किया जा सकता है। आज भी भारतीय गांवों में हौदे का उपयोग घरों में जल संग्रह के ही लिये किया जाता है। हृदय वास्तव में शरीर में एक कुण्ड या जलाशय के समरूप है जहां रक्त का संग्रह होता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि हृद शब्द थोड़े ही ध्वनि विभेद के साथ लगभग सभी भारतीय भाषाओं में एक समान मिलता है। तुलना कीजिए :

| | |
|---|---|
| Old English (A. S.) | —Hiertan, Heorte |
| Middle English | —Hert, Herten |
| Old High German | —Herza |
| Old Norse | —Hjarta |
| Gothic | —Hairto |
| Latin | —Cor, Cordis, |
| Old Irish | —Cride |
| Greek | —Kardia |
| Aramaic | —Sirt |
| Hittite | —Karts |
| Original Teutonic | —Herton |
| Dutch | —Hart |

एक दूसरे प्रकरण में हृद की तुलना 'द्रोण' से की गई है :

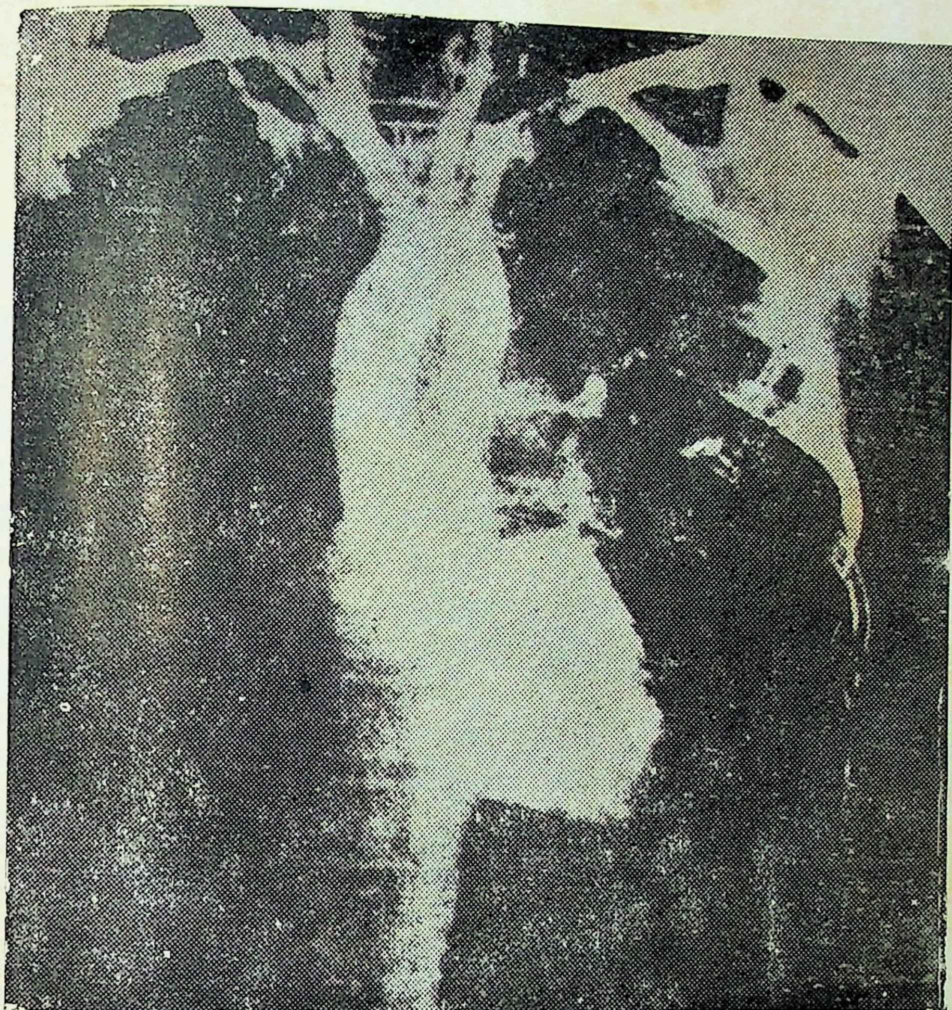
यद्‌दिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः।
द्रोणे सधस्थमश्नुषे॥ सा० वे० उ० प्र०, 2.4

द्रोण शब्द वास्तव में टोटीदार लोटे का द्योतक है। इस प्रकार के लोटे प्राचीन सुमेरिया और भारत में सामान्य रूप में मिलते हैं।

हृदय की रचना से सम्बन्धित वैदिक कालीन ज्ञान का पूर्व आभास वैदिक साहित्य में उल्लिखित अनेक प्रतीकात्मक शब्दों तथा उद्धरणों से मिलता है। ऋग्वेद के एक उद्धरण में, जहां हृदय को एक गुफा [51] के सदृश कहा गया है; वैदिक आर्यों के हृदय सम्बन्धी ज्ञान की प्रारंभिक रूपरेखा मिलती है। हृदय की रचना पर प्रकाश डालने वाला दूसरा तथ्य सामवेद के एक पा० से मिलता है जहां हृदय को द्रोण [52] का प्रतीक कहा गया है। किंतु बाद के वैदिक ग्रन्थों में हृदय की रचना - सम्बन्धी ज्ञान के विकास का एक निश्चित आधार और प्रमाण दृष्टिगत होता है [53]। वैदिक मनीषियों की ऐसी धारणा रही कि, आत्मा का वास हृदय में था [54]। सम्भवतः इस धारणा ने ही वैदिक मनीषियों को हृदय की आन्तरिक रचना के अध्ययन की ओर उन्मुख किया [55]। बृहदारण्यक उपनिषद में हृदय की रचना और कार्य की समुचित विवेचना हुई है [56]। एक सन्दर्भ में हृदय को आत्मा का लिंग (Symbol) और इन्द्रीय को (An organ of action) कहा गया है [57]। अथर्ववेद में हृदय को एक सन्दर्भ में पुण्डरीक पुष्प के रूप में व्यक्त किया गया है [58]। अथर्ववेद में वर्णित पुण्डरीक शब्द हृदय की रचना को बोधित करने के लिये किया गया है यह तथ्य सुश्रुत के वर्णन से भी स्पष्ट होता है [59]। सुश्रुत ने हृदय की रचना का वर्णन करते हुए इसे नाल से लटकते हुए अधोमुख 'कमल कलिका के समान है' बताया है जो सुप्त (Contract) और जागृत (Relax) होता रहता है [60]। जाग्रत अवस्था (Relaxed stage) में यह फूला या उद्विकसित होता है तथा सुप्त अवस्था (Contracted stage) में सिकुड़ता या निमीलित होता रहता है [61]। इस वर्णन से हृदय रचना सम्बन्धी वैदिक कालीन ज्ञान या यथार्थ आभास मिलता है (सु० सं० संलग्न एक्स-रे प्लेट जो आधुनिक शरीर विज्ञान की पुस्तक से ली गई है तथा जिसमें हृदय की यथावत् स्थिति दर्शायी गयी है)।

छान्दोग्य उपनिषद् में हृदय की बाह्य परीक्षा (Psysical examination) का विवरण मिलता है [62]। इस प्रकरण में यह वर्णन है कि शरीर के ताप का सम्बन्ध हृदय की धड़कन के साथ है एवं हृदय की धड़कन उसी समय तक सुनी जा सकती है जब तक शरीर में ताप है [63]। हृदय की धड़कन को सुनने के लिए व्यक्ति को आँख बन्द कर अपनी ज्ञानेन्द्रियों को हृदय पर केन्द्रित करना चाहिये [64]। छान्दोग्य उपनिषद् में ही हृदय के कार्य की उठने वाली ध्वनि का वर्णन गतिमय रथ से उठने वाली ध्वनि 'निनाद' के दृष्टान्त द्वारा किया गया है [65]। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हृदय की धड़कन से उठने वाली ध्वनि 'लुब-डप' घोड़े के टाप से उठने वाली ध्वनि 'टप-टप' में पर्याप्त समता होती है। इसी प्रकरण में हृदय-देश से ही उठने वाली अन्य ध्वनियों, घोष, [66] बोझ से लदे छकड़े के चिल्लाने जैसी ध्वनि, [67] बैल के डकारने जैसे ध्वनि, [68] तथा फैलती हुई आग से उठने

GRAY'S ANATOMY PLATE XXI



Angiocardiogram, ( provided by Dr. Frances Gardner ), showing the left side of the heart in a child of II years; anteroposterior view.

1. Upper pulmonary vein. 2. Left atrium. Note that owing to the great obliquity of the atrial septum, the left atrium extends to the right atrium. 3 Left ventricle. 4. Ascending aorts. 5. Brachiocephalic trunk. Left common carotid artery 7. Left subclavian artery. Note that the arms of the patient are raised above the heart and that, as a result, the distal end of the artery passes upwards.

वाली ध्वनि[69] का उल्लेख हुआ है। संभवतः ये ध्वनियां श्लेष्मयुक्त कौकिओल से होने वाली वायु के प्रकम्पन को बोधित करती है।

दूसरे स्थल पर बृहदारण्यक उपनिषद् में किसी जन्तु अथवा व्यक्ति के ताजे विच्छेदित्त हृदय का वर्णन किया गया है.[70]। इस वर्णन में हृदय को पुरुष शब्द द्वारा सम्बोधित किया गया है। यहां उल्लेख है कि उस पुरुष (हृदय) का रूप ऐसा है—जैसा हल्दी में रंगा वस्त्र; जैसे ऊनी वस्त्र, जैसे इन्द्र गोप (तु० 'इन्द्रगोप' सुश्रुत सूत्र-14-22 जहां इसे वीर बहूटी पुष्प के लिये प्रयुक्त किया गया है) यह उष्ण है जैसे अग्नि की ज्वाला इसका आकार है जैसे कमल का फल। इसमें बिजली के चमकने के समान गति होती है। इसे 'नेति-नेति' ध्वनि ब्रह्म के आदेश रूप में उत्पन्न होती है[71]।

यद्यपि उल्लिखित प्रकरण में वर्णन की शैली अत्यधिक अभिचार-पूर्ण हैं फिर भी उपर्युक्त वर्णन से हृदय की बाह्य रचना पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

हृदय के परिमाण के सम्बन्ध में उपनिषद् में इसके आकार को अंगुष्ठमात्र[72] होने का वर्णन किया गया है। विच्छेदन विज्ञान की आधुनिक पुस्तकों में हृदय के बराबर होने का उल्लेख है। निरुक्त, 147 में हृदय के आठ भाग होने का वर्णन किया गया है। सम्भवतः आठ भाग हृदय की आठ प्रमुख रक्त वाहिकाओं को इंगित करते हैं जो हृदय की दो आरोटाओं फुफ्फुसाभिगा धमनी और महाधमनी (Pulmonary and Aortic Aorta); दो महा शिराओं; उत्तरा और अधरा (Superior and Inferior venacava) तथा चार फुफ्फुसोत्था सिरा (Pulmonary Veins) के रूप में जानी जाती है। उपनिषद् और संहिताओं में भी अनेक बार दस बाहिकाओं का उल्लेख हुआ है[73] चरक[74] और सुश्रुत[75] के वर्णन में भी हृदय के दस वाहिकाओं का वर्णन मिलता है। संभवतः इस प्रकार का विभेद संहिता और उपनिषद् के ऋषियों द्वारा कोरोनरी या हार्दिक धमनियों को परिगणना में सम्मिलित कर लेने के कारण हुआ है जो कि वास्तव में हृदय की पेशियों में धंसी रहती है[75]।*

---

1. ऋ० वे०, 1.24.12; 1.60.3; 1.91.93; 3.39.1; 4.58.11; 6.53.5-7; 8.22.3; 10.34.7; 9.87.4।
2. आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्टोर्हृदयांदधि।
   यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नाः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते।
   ऋ० वे०, 10.163.3.
3. पुण्डरीक नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
   तस्मिन यद यक्ष्मात्मन्वत तद वै ब्रह्माविदो बिदुः॥
   अ० वे०, 10.8.43.
4. छान्दो० उप०, 8.1.1; 1.6.6.7.
5. पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम्।
   जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतश्च निमीलति॥
   सुश्रुत शा०, 4.31.
6. अ० वे०, 10.2.27.
7. अ० वे०, 10.7.10.
8. ऋ० वे०, 1.67.2; वाज० सं०, 32.8; कठो० उप०, 1-3-1; मुण्ड० उप०, 2.2.१; तु० चरक शा०, 1.73.88.
9. कठो० उप०, 2.2.4.
१०. कठो० उप०, 2.2.4.
11. बृ० उप०, 5.3.1.
12. बृ० उप०, 2.3.1. तु० अ० वे०, 10.2.11; सुश्रुत श०, 7.3 जहां हृदय को रक्तवाहिनियों के ऊर्ध्व, अवाची और तिरश्ची होने का उल्लेख है।
13. बृ० उप० 4.1.7.
14. छान्दो० उप०, 4.14.1.
15. बृ० उप०, 3.9.14.
16. श्वेता उप०, 5.5.8.
17. मुण्ड० उप०, 2.1.4
18. श्वेता उप०, 3.3.18; 6.6.15; तु० अ० वे०, 11.4.21.
19. बृ० उप०, 4.3.19, वाज० सं०, 19.86; अ० वे०, 9.7.5.
20. बृ० उप०, 2.5.18, तु० बाज० सं०, 10.9.25.
21. बाज सं०, 17.72.
22. श्वेता० उप०, 3.3.14, तु० सा० वे० पू० प्र० 6 द० 5, म० 3.
23. श्वेता उप०, 6.6.15, तु० बृ० उप०, 2.5.3.

24. बृ० उप०, 2.5.18, तु० सु० शा०, 4.29, 5.7,8.

25. कठो० उप०. 2.3.1.

26. श्वेता० उप०, 6.6.6.

27. बाज० सं०, 19.85; अ० वे०, 10.9.25.

28. सा०वे० पू०प्र०6 द०4, क०7 तु० बृ०उपा०, 4.2.19 से करें जहाँ हृदय में 'शत' और 'दश' अश्वों के जीते जाने का उल्लेख है। तु० चरक सू०, 30.2.4.

29. बृ०उप०, 4.2.3.

30 सा०वे०पू०प्र०6, द०4, म०7 तु० श्वेता० उप०, 3.3.14; चरक सू०, 2-7.

31. सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमि विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्.गुलम्॥
श्वेता०उप०, 3.3.14.

32. अचे दशमहामूलाः समासाता महाफलाः।
महच्चार्थश्च हृदयं पर्यायैरूच्यते बुधै॥

यहाँ उल्लेख है कि हृदय में महामूल वाली 'दस' वाहिनियाँ लगी हैं। चरक सू०, 30.2, तु० आष्टांग हृदय-सूत्र।

जिस प्रकार अगर कर्णिका पर गोपानसियाँ टिकी रहती हैं और छत को संभाले रखती है उसी प्रकार हृदय पर उपर्युक्त भाव आश्रित हैं। प्रतिष्ठार्थ हि भावाना मेषां हृदयमिष्येत। गोपात सीनामागार कर्णिकेवायचिन्त कैः चरक सू०, 30.4.

हृदय रूपी मूल के कारण दस धमनियाँ महामूल कहलाती हैं—

तेनमूलेन महता महामूला मता दश।
ओजोवहा शरीरे अस्मिन् विधम्यन्ते समन्ततः॥
चरक सू०, 30.7.

33. मुन्ड०उप०, 2.2.6; बृ०उप०, 2.5.15; कठो०उप०, 1 3.3: तु० चरक सू०, 30.7 तथा सुश्रुत शा०, 7.3, 4;9.3,4 में दिये वर्णन से करें जहाँ 'रथ के नाभि' वाक्य का एक ही जैसा वर्णन किया गया है.

34. बृ०उप०, 4.2.3; 4.3.20.

35. वाज०सं०, 20.5.13; मैत्र०सं०, 3.11.8; कात्या०सं०, 38.4; तैत्ति०ब्रा०, 2.6.5; शत०ब्रा०, 8.5.4.6.

36. मैक०एवं कीथ—'शरीर' वैदिक इन्डेक्स.

37. तु० छान्दो०उप०, 7.1.3 तथा शिक्षा-सम्बन्धी विषयों के सम्बन्ध में नारद सनत्कुमार वार्ता: छान्दो० उप०, 7.1.2,

38 ब्र०उप०, 4 ।० 1 एवं 2 में दिये गये विषद् वर्णन.

39. ब्र०उप०, 2 5 14; छान्दो०उप०, 3.11.3.

40. ब्र०उप०, 2 6.1—3; छान्दो०उप०, 8.15.1.

41. ब्र०उप०, 2.6 1—3; छान्दो०उ०, 8.15.1.

42. छान्दो०उप०, 3.11.15.

43. छान्दो० उप०, 2.2 3.3, मुन्ड० उप०, 2.2.-4; 2.2.6; माण्डु० उप०, 7.

44. श्वेता० उप०, 3.3.14; सा० वे० पू० प्र० 6, द० 4, म० 7, तु० चरक सू० 30.7; सुश्रुत शा०; 7.3.

45. शंकर व्याख्या छान्दो० उप०, 3.13.8 तथा शंकर व्याख्या बृ० उप०, 2.3.6.

46. ऋ० वे०, 1.52.7;3.36.8;3.45.3;10. 4.3.7;10.71.7;10.10.2.4;10.142.8; अ० वे०, 4.15.4;6.3.7.2; पं० ब्रा०, 25.10.8; शत० ब्रा०, 4.1.5.12;11.5.5.8.

47. निरुक्त पु० 27,28,417.

48. अ० वे०, 10.2.11.

49. अ० वे०, 10.2.11; ऋ० वे०, 4.58.11 सायण व्याख्या.

50. हिन्दी विश्वकोश

51. ऋ० वे०, 1.67.2.

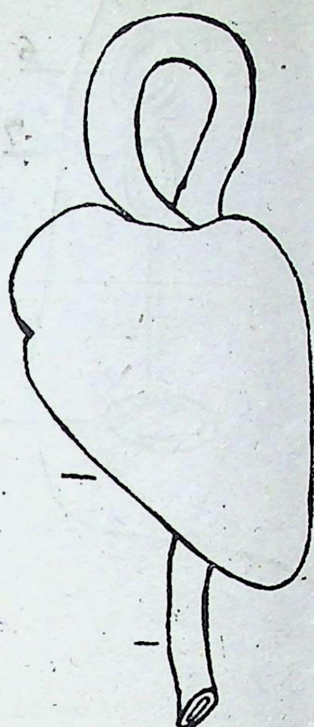
52. सा० वे० उ० प्र०, 2.4.

53. दे० हृदय रचना हेतु बृ० उप०, 2.3.6; 4.2. 2,3; हृदय स्पन्दन हेतु-छान्दो० उप० 3.13.8; बृ० उप०, 4.3.35; 5.9.1; हृदय की नीड़ियों के हेतु बृ० उप०, 4.4.9; 4.3.20; 4.2 3;2.1.19; कठो० उप०, 2.3.16; प्रश्न० उप०, 3,3.6; छान्दो० उप० 8 6 1,

54. छान्दो० उप०, 8.3.3; 3.14.3; श्वेत० उप०, 3.13; कठो० उप०, 2.1.12; 2.1.13; 2.3.17; प्रश्न० उप०, 3.3.6; मुण्ड० उप० 2.2.7.

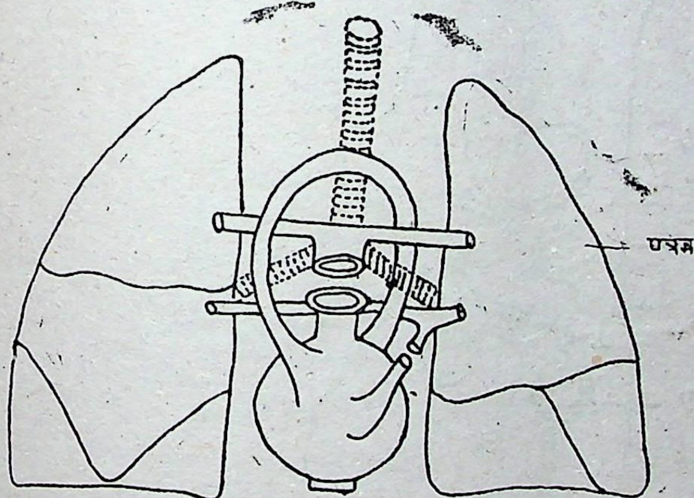
55. छान्दो० उप०, 8.1.1.

56. बृ० उप०, 2.3.6 तु० छान्दो० उप०, 3.13.8.



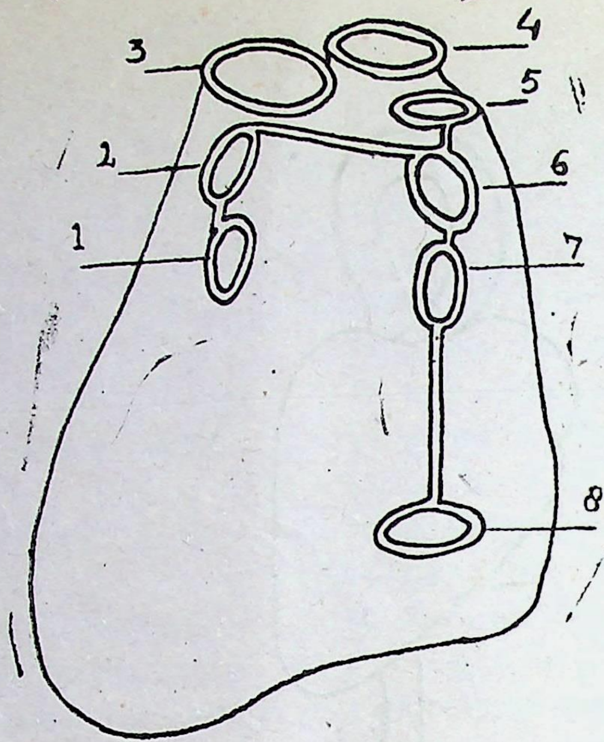

चित्र—1

वैदिक ऋषियों ,द्वारा वर्णित पुण्डरीक आकार हृदय तु० चित्र=5

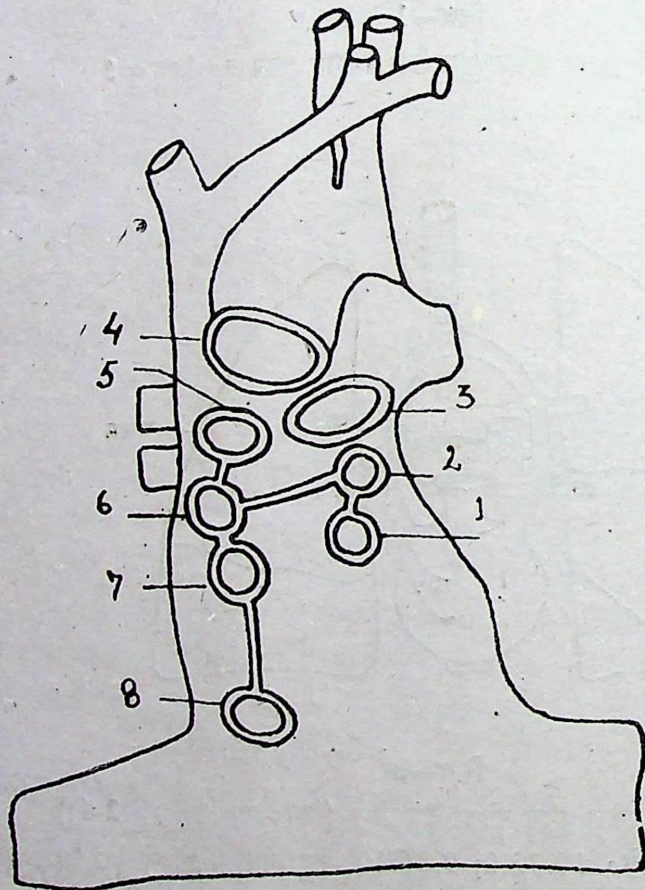



चित्र—2

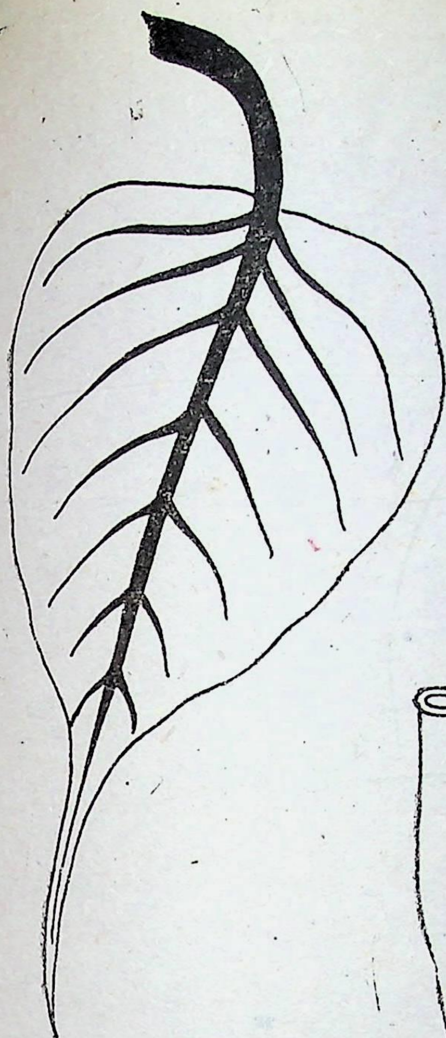
संहिताओं में अनेकत्र हृदय को प्रतीक द्रोण ( सा० वे० उ० प्र० 2.4 ) तथा कलश (ऋ० वे० 10.32.0; 9.86.19) कहा गया है। फुफ्फुस को पत्रम् (वाज सं० 1986) की उपमा दी गयी है।

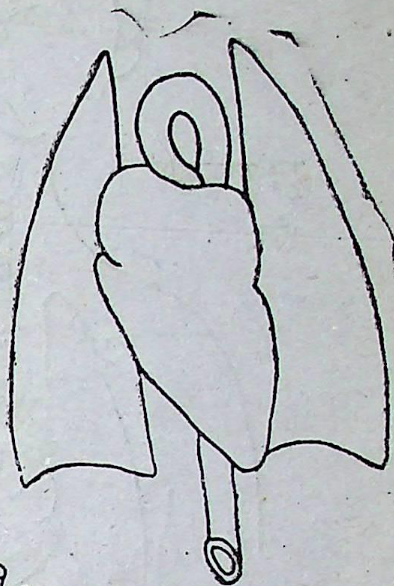


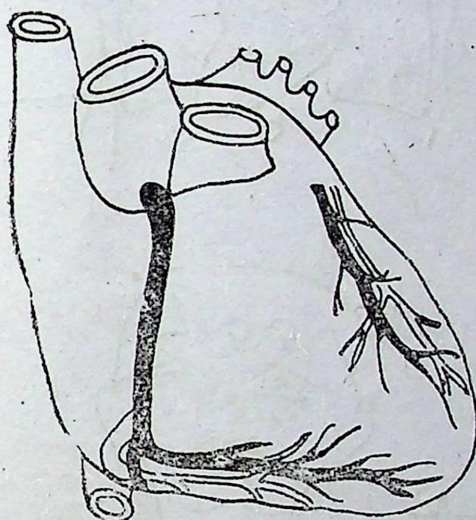

हृदयं ह्यष्ट चित्र—3



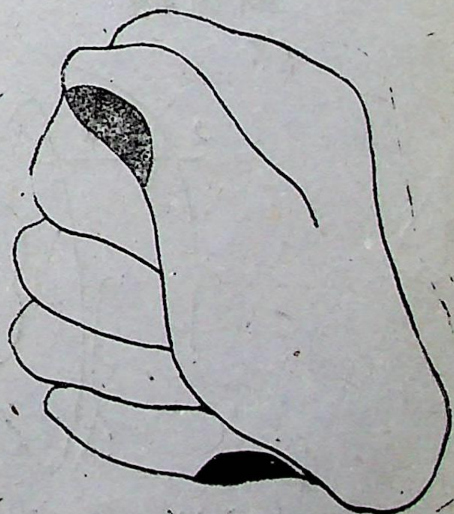

सृतिः सञ्चरणी
चित्र - 4







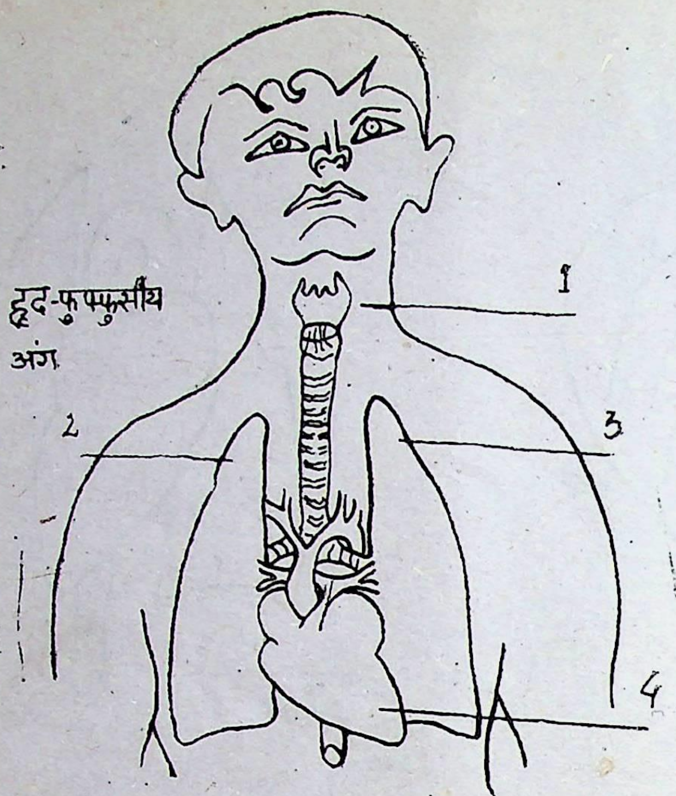


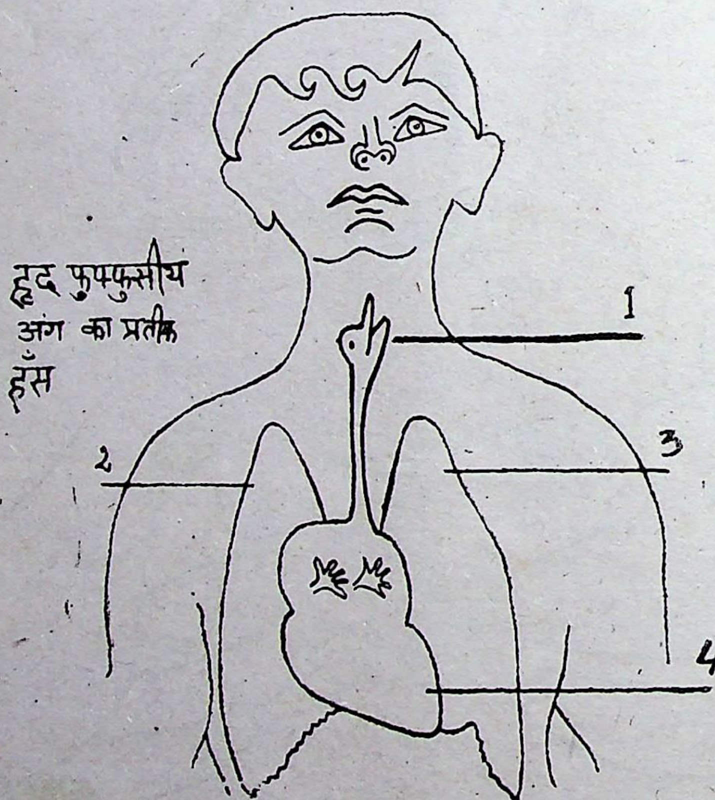


हृद अंग के विभिन्न रूपक



चित्र—6




एको हंसो भुवनस्यास्यमध्ये स एवाग्नि सलिले संनिविष्टः।
श्वेता० उप० 6.15; तु० हंस उप० 15; नादबिन्दु, 1-5

चित्र—7

57. तु० बृ० उप०, 2.3.6. शंकर की व्याख्या.
58 अ० वे०, 10.8.43.
59. सुश्रुत शा०, 4.31.
60. वहीं
61. वहीं
62. छान्दो०उप०, 3.13.8 तु०बृ०उप०, 2.3.6.
63. छान्दो०उप०, 3.13.8.
64. वहीं
65. छान्दो०उप०, 3.13.8.
66. बृ०उप०, 5 9.1.
67. बृ०उप०, 4.3.35 (बृ०उप०,2.3.6 में हृदय द्वारा 'नेति-नेति' ध्वनि उत्पन्न करने का उल्लेख है)।
68. छान्दो०उप०, 3.13.8.
69. वहीं.
70. बृ०उप०, 2.3.6.

71—तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपम् । यथा माहारजनं वासो यथा पाण्ड्वाविकं यथेन्द्रगोपो यथाग्न्यर्चिर्यथा पुण्डरीकं यथा सकृद्विद्युत सकृद्विद्युत्तेव ह वा अस्य श्रीर्भवति य एवं वेदायात आदेशो नेति नेति न ह्योतस्मादिति नेत्यन्यत्परमस्त्यथ नामधेय सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेव सत्यम् ।। ब्र० उप०, 2-3-6।

72—अंगुष्ठमात्रः पुरुषो अन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
हृदा मन्वीशो मनसाभिक्लप्तो
य एतद्विदुरभृतास्ते भवन्ति ।।
श्वेता० उप०, 3-13।

अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः
सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितो यः ।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव
आराग्रमात्रो ह्ययपरों अपि दृष्टः ।।
श्वेता० उप०, 5-8।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ।।
कठ० उप०, 2-1-12।

तु० कठ० उप०, 2-1-13; 2-3-17।

73—सा० वे० पू० प्र० 6, द० 4, म० 7, पु० श्वेता उप०, 3-3-14; अ० वे०, 19-6-1, चरक सु०, 30-7; कठ० उप०, 2-3-16; प्रश्न० उप०, 3-3-6; अ० उप०, 2-1-19; सुश्रुत शा०, 7-6 जहां दस रक्त वाहिनियों का उल्लेख है दे० सुश्रुत शा०, 9-3।

74—चरक सू०, 30-2, 7।

75—सुश्रुत शा०, 7-6; 9-3।

76—c.f. Gray's Human-Anatomy p.619, 686।

* विस्तृत अध्ययन के लिये, हृदयोपनिषद—सुरेश, चन्द्रभवन, दीवान बाजार, गोरखपुर, द्वारा प्रकाशित देखिये ।

33. DROSERACEAE

250. *Drosera peltata* Smith
synonym *Drosera lunata* Buchanin-Hamilton ex *DC*.
(Ramesh Bedi 137, 560)

34 ELAEAGNACEAE

251. *Elaeagnus latifolia* Linnaeus
(Ramesh Bedi 567)

252. *Elaeagnus umbellata* Thunberg
(Ramesh Bedi 63, 741, 1263)

253. *Hippophae salicifollia* D. Don
(Ramesh Bedi 717, 1233)

35. EQUISETACEAE

254. *Equisetum diffusum* Don
(Ramesh Bedi 292)

36. ERICACEAE

255. *Cassiope fastigiata* D. Don
(Ramesh Bedi 86)

256. *Enkianthus himalaicus* Hooker f.&T.
(Ramesh Bedi 148, 1175)

257. *Gaultheria fragranthissima* Wallich
(Ramesh Bedi 1042, 1117, 1147)

258. *Gaultheria nummularioides* D. Don
(Ramesh Bedi 605)

259. *Lyonia*
synonym *Pieris*
(Ramesh Bedi 380)

260. *Lyonia*
synonym *Pieris*
(Ramesh Bedi 553)

261. *Lyonia*
synonym *Pieris*
(Ramesh Bedi 614)

262 *Lyonia formosa*
synonym *Pieris formosa* D. Don
(Ramesh Bedi 132)

263. *Lyonia ovalifolia* (Wallich) Drude
(Ramesh Bedi 57, 134, 720)

264. *Rhododendron*
(Ramesh Bedi 40)

265. *Rhododendron*
(Ramesh Bedi 185)

266. *Rhododendron*
(Ramesh Bedi 322)

267. *Rhododendron*
(Ramesh Bedi 558)

268. *Rhododendron*
(Ramesh Bedi 777)

269. *Rhododendron*
(Ramesh Bedi 1023)

270. *Rhododendron*
(Ramesh Bedi 1084)

271. *Rhododendron*
(Ramesh Bedi 1088)

272. *Rhododendron*
(Ramesh Bedi 1251)

273. *Rhododendron anthopogon* D. Don
(Ramesh Bedi 28, 1107)

274. *Rhododendron campanulatum* D. Don
(Ramesh Bedi 909, 1087, 1089, 1090)

275. *Rhododendron cinnabarinum* Hooker f.
(Ramesh Bedi 30, 52)

276. *Rhododendron fulgens* Hooker f.
(Ramesh Bedi 89)

277. *Rhododendron hodgsoni* Hooker f.
(Ramesh Bedi 31)

278. *Rhododendron lepidotum* Wallich
(Ramesh Bedi 6, 43, 106, 190, 301, 307, 1088, 1224, 1286, 1287)

279. *Rhododendron lowndesii* *Davidian*
(Ramesh Bedi 615)

280. *Rhododendron setosum* D. Don
(Ramesh Bedi 29, 333)

281. *Rhododendron triflorum* Hooker f.
(Ramesh Bedi 161, 266)

282. *Rhododendron Wightii* Hooker f.
(Ramesh Bedi 1019)

37 EUPHORBIACEAE

283. *Bischofia javanica* Blume
(Ramesh Bedi 530)

284. *Croton bonplandianus* Baill.
synonym *Corton persicaria* Baill.
(Ramesh Bedi 531)

285. *Euphorbia*
(Ramesh Bedi 325)

286. *Euphorbia*
(Ramesh Bedi 348)

287. *Euphorbia*
(Ramesh Bedi 840)

288 *Euphorbia griffithii* Hooker f.
(Ramesh Bedi 12)

289. *Euphorbia khasyana* Boiss.
(Ramesh Bedi 167)

290. *Euphorbia sikkimensis* Boiss.
(Ramesh Bedi 901, 947)

291. *Sarcococca saligna* Mucll-Arg.
(Ramesh Bedi 1242)

38. FAGACEAE

292. *Quercus*
(Ramesh Bedi 483)

293 *Quercus incana* Roxburgh
(Ramesh Bedi 1037)

294. *Quercus semicarpifolia* Smith
(Ramesh Bedi 14, 1038, 1260)

39. FUMARIACEAE

295. *Corydalis*
(Ramesh Bedi 860)

296. *Corydalis cachemiriana* Royle
(Ramesh Bedi 81, 278, 358)

297. *Corydalis chaerophylla* DC.
(Ramesh Bedi 577)

298. *Corydalis leptocarpa* Hooker f. & T.
(Ramesh Bedi 830)

299. *Corydalis longipes* DC.
(Ramesh Bedi 243)

300. *Corydalis ophiocarpa* Hooker f. & T.
(Ramesh Bedi 204)

301. *Dicentra thalictrifolia* (Wallich) Hooker f. & T.
(Ramesh Bedi 708)

40. GENTIANACEAE

302. *Gentiana*
(Ramesh Bedi 1156)

303. *Gentiana*
(Ramesh Bedi 1207)

304. *Gentiana*
(Ramesh Bedi 1209)

305. *Gentiana*
(Ramesh Bedi 1254)

306. *Gentiana sikkimensis* Clarke
(Ramesh Bedi 1239)

307. *Gentiana stylophora* Clarke
(Ramesh Bedi 253)

308. *Gentiana veitchiorum* Hemsul
(Ramesh Bedi 1178)

309. *Halenia elliptica* D. Don
(Ramesh Bedi 808, 855)

310. *Swertia alterifolia* Royle
(Ramesh Bedi 1216)

311. *Swertia chirata* Hamilton
(Ramesh Bedi 1184)

312. *Swertia multicaulis* Don
(Ramesh Bedi 867, 1202)

313. *Swertia paniculata* Don
(Ramesh Bedi 1079)

41. GERANIACEAE

314. *Geranium*
(Ramesh Bedi 305)

315. *Geranium collinum* M. Bieb
(Ramesh Bedi 601)

316. *Geranium grevilleanum* Wallich
(Ramesh Bedi 344, 622, 838, 966, 967, 1270)

317. *Geranium nepalense* Sweet
(Ramesh Bedi 283, 294, 487, 711, 715)

318. *Geranium wallichianum* Sweet
(Ramesh Bedi 562)

42. GLEICHENIACEAE

319. *Dicranopteris linearis* Burn Underwood.
(Ramesh Bedi 411)

320. *Gleichenia volubilis* Junghuhm
(Ramesh Bedi 57)

43. GNETACEAE

321. *Ephedra saxatilis* Royle
var. *sikkimensis* Floren
(Ramesh Bedi 42, 371, 859, 865, 1050, 1155)

44 GRAMINEAE (Poaceae)

322. *Arundinella*
(Ramesh Bedi 1134)

323. *Oryza sativa* Linnaeus
(Ramesh Bedi 921)

324. *Paspalum dilatatum* Poir.
(Ramesh Bedi 420)

45. HAEMODORACEAE

325. *Ohiopogon wallichianus* Hooker f.
var. *pauciflora*
(Ramesh Bedi 1114)

46. HYPERICACEAE

326. *Hypericum*
(Ramesh Bedi 616)

327. *Hypericum elodeoides* Choisey
(Ramesh Bedi 1131)

328. *Hypericum hookerianum* W. & A.
(Ramesh Bedi 563)

329. *Hypericum japonicum* Thunbergh
(Ramesh Bedi 407)

330. *Hypericum patulum* Thunberg
(Ramesh Bedi 473, 970)

47. ILICINACEAE

331. *Ilex dipyrena* Wallich
(Ramesh Bedi 65, 1189)

48. RIDACEAE

332. *Iris kumaonensis* Wallich
(Ramesh Bedi 104, 151, 316, 1181, 1259)

49. JUGLANADACEAE

333. *Juglans regia* Linnaeus
(Ramesh Bedi 703)

50. JUNCACEAE

334. *Juncus bracteatus* Buchanin
(Ramesh Bedi 315)

335. *Juncus grisebachii* Buchanin
(Ramesh Bedi 698)

336. *Juncus sikkimensis* Hooker f. & T.
(Ramesh Bedi 69)

51 LAMIACEAE

337. *Ajunga bracteosa* Wallich var. *typica*
(Ramesh Bedi 272)

338. *Colquohinia*
(Ramesh Bedi 436)

339. *Colquohinia coccinea* Wallich
(Ramesh Bedi 311, 393)

340. *Elsholtzia blanda* Bentham
(Ramesh Bedi 722)

341. *Elsholtzia fruiticosa* D. Don
(Ramesh Bedi 1185)

342. *Elsholtzia strobilefera* Bentham
(Ramesh Bedi 954, 1173)

343. *Lamium*
(Ramesh Bedi 587)

344. *Lamium rhomboideum* Bentham
(Ramesh Bedi 872, 1228)

345. *Leucas*
(Ramesh Bedi 532)

346. *Leucas cephalotes* Spreng
(Ramesh Bedi 793)

347. *Leucas ciliata* Bentham
(Ramesh Bedi 470)

348. *Mentha*
(Ramesh Bedi 1249)

349. *Mentha sylvestris* Linnaeus
(Ramesh Bedi 1256)

350. *Nepeta*
(Ramesh Bedi 1186)

351. *Ocimum americanum* Linnaeus
synonym *Ocimum canum* Sims.
(Ramesh Bedi 545)

352. *Origanum*
(Ramesh Bedi 536)

353. *Plectranthus coetsa* Buchanin-Hamilton ex D. Don
(Ramesh Bedi 959)

354. *Plectranthus rugosus* Wallich
(Ramesh Bedi 684)

355. *Phlomis setigera* Falc.
(Ramesh Bedi 1113)

356. *Prunella vulgaris* Linnaeus
synonym *Brunella vulgaris* Linnaeus
(Ramesh Bedi 425)

357. *Salvia hians* Royle
(Ramesh Bedi 933, 1272)

358. *Scutellaria discolor* Coleb.
(Ramesh Bedi 424)

359. *Stachys*
(Ramesh Bedi 217)

52. LEGUMINOSAE

360. *Astragalus*
(Ramesh Bedi 604)

361. *Astragalus larkyaenis* Kitam
(Ramesh Bedi 72)

362. *Astragalus xiphocarpus* Bentham
(Ramesh Bedi 10)

363. *Caragana*
(Ramesh Bedi 321)

364. *Caragana gerardiana* Royle
(Ramesh Bedi 135)

365. *Cassia occidentalis* Linnaeus
(Ramesh Bedi 467)

366. *Desmodium gangeticum* DC.
(Ramesh Bedi 630)

367. *Desmodium racemosum* (Thunberg)DC
(Ramesh Bedi 976)

368. *Dolichos biflorus* Linnaeus
(Ramesh Bedi 743)

369. *Inlichos lablab* Linnaeus
(Ramesh Bedi 748)

370. *Indigofera*
(Ramesh Bedi 649)

371. *Indigofera dosua* Hamilton
(Ramesh Bedi 471, 854)

372. *Indigofera dosua* Buchanin-Hamilton var. *typica*
(Ramesh Bedi 205)

373. *Lespedeza eriocarpa* DC.
(Ramesh Bedi 724)

374. *Lotus*
(Ramesh Bedi 713)

375. *Mimosa pudica* Linnaeus
(Ramesh Bedi 516)

376. *Parochetus communis* Hamilton
(Ramesh Bedi 488)

377. *Piptanthus nepalensis* D. Don
(Ramesh Bedi 53, 327, 888, 1105)

53. LILIACEAE

378. *Aletris khasiana* Hooker f.
(Ramseh Bedi 273)

379 *Allium*
(Ramesh Bedi 757)

380. *Allium*
(Ramesh Bedi 818)
381. *Allium*
(Ramesh Bedi 839)
382. *Allium*
(Ramesh Bedi 861)
383. *Allium*
(Ramesh Bedi 943)
384. *Allium prattii* C. H. Wright
(Ramesh Bedi 176, 889)
385. *Allium wallichii* Kunth
(Ramesh Bedi 1102, 1211)
386 *Asparagus filicinus* Buchanin-Hamilton ex D. Don
(Ramesh Bedi 18, 64)
387. *Fritillaria*
(Ramesh Bedi 782)
388 *Fritillaria*
(Ramesh Bedi 989)
389. *Fritillaria*
(Ramesh Be li 1046)
390. *Fritillaria cirrhosa* D. Don
(Ramesh Bedi 77, 96, 240)
391. *Fritillaria imperialis* Linraeus
(Ramesh Bedi 241)
392. *Hemarocallis fulva* Linnaeus
(Ramesh Bedi 281)
393. *Lilium giganteum* Wallich
(Ramesh Bedi 211)
394. *Lloydia serotina* Reichb.
(Ramesh Bedi 182, 234)
395. *Netholiron macrophyllum* (D. Don) Boissier synonym *Fritillaria macrophylla* D. Don
(Ramesh Bedi 363, 588)
396. *Paris*
(Ramesh Bedi 158)
397. *Paris*
(Ramesh Bedi 235)
398. *Paris*
(Ramesh Bedi 236)
399. *Paris*
(Ramesh Bedi 815)
400. *Paris kieracoides* Linnaeus
(Ramesh Bedi 961)
401 *Paris polyphylla* Smith
(Ramesh Bedi 269, 1005, 1106)
402. *Polygonatum*
(Ramesh Bedi 239)
403. *Polygonatum cirrifolium* Royle
(Ramesh Bedi 11, 157)
404. *Polygonatum gemimflorum* Dcne.
(Ramesh Bedi 345, 388)
405. *Polygonatum phunctatum* Royle
(Ramesh Bedi 312, 326)
406. *Smilacina*
(Ramesh Bedi 37)
407. *Smilacina*
(Ramesh Bedi 39)
408. *Smilacina*
(Ramesh Bedi 340)
409. *Smilacina fusca* Wallich
(Ramesh Bedi 45)
410. *Smilacina pallida* Royle
(Ramesh Bedi 260)
411. *Smilacina purpurea* Wallich synonym *Jocaste purpurea* (Wallich) Kunth
(Ramesh Bedi 255)
412. *Smilax*
(Ramesh Bedi 564)
413 *Smilax aspera* Linnaeus
(Ramesh Bedi 1141)
414 *Smilax longebracteolata* Hooker f.
(Ramesh Bedi 773)

415. *Smilax parvifolia* Wallich
(Ramesh Bedi 173)
416. *Streptopus simplex* D. Don
(Ramesh Bedi 145, 306)
417. *Trillium*
(Ramesh Bedi 257)

54 LINACEAE

418. *Reinwardtia indica* D. Don
synonym *Reinwardtia trygyna* Planch
(Ramesh Bedi 1295)

55 LYCOPODIACEAE

419 *Lycopodium clavatum* Linnaeus
(Ramesh Bedi 368, 1091)

56 LYTHRACEAE

420. *Legerstroemia parviflora* Roxburgh
(Ramesh Bedi 463)

57 MAGNOLIACEAE

421. *Magnolia campbellii* Hooker f. et. Thomson
(Ramesh Bedi 636)

58 MALVACEAE

422. *Malva*
(Ramesh Bedi 791)
423. *Malva sylvestris* Linnaeus
(Ramesh Bedi 61)
424. *Thespesia lampas* Dalz & Gibs
synonym *Hibiscus lampas* Cav.
(Ramesh Bedi 452)

59 MELASTOMACEAE

425. *Osbeckia capitata* Bentham
(Ramesh Bedi 434)
426. *Osbeckia crinita* Bentham
(Ramesh Bedi 1255)
427 *Osbeckia stellata* Wallich
(Ramesh Bedi 468)

60 MENISPERMACEAE

428 *Cissampelos pareira* Linnaeus
(Ramesh Bedi 457)
429. *Stephania rotunda* Lour
(Ramesh Bedi 642)

61. MYRSINACEAE

430 *Maesa indica* Wallich
(Ramesh Bedi 524)
431. *Maesa macrophylla* Wallich
(Ramesh Bedi 528)

62 NEPENTHACEAE

432. *Nepenthes khasiana* Hooker f.
(Ramesh Bedi 517)

63 OLEACEAE

433. *Jasminum glandulosum* Wallich
(Ramesh Bedi 547)
434. *Jasminum grandifolium* Linnaeus
(Ramesh Bedi 1273)
435. *Jasminum humile* Linnaeus
(Ramesh Bedi 56, 187, 286)
436. *Syringa emodi* Wallich
(Ramesh Bedi 207)

64 ONAGRACEAE

437. *Chamaenerion angustifolium* (Linnaeus) Schur.
(Ramesh Bedi 1253)
438 *Epilobium*
(Ramesh Bedi 693)
439. *Epilobium*
(Ramesh Bedi 802)
440. *Epilobium roseum* Schreb.
(Ramesh Bedi 986, 1060, 1229)

65 ORCHIDACEAE

441. *Bulbophyllum*
(Ramesh Bedi 1092)

442. *Calanthe*
(Ramesh Bedi 1125, 1126)

443. *Ceologyne*
(Ramesh Bedi 168)

444. *Ceologyne*
(Ramesh Bedi 256)

445. *Ceologyne*
(Ramesh Bedi 1219)

446. *Cephalanthera ensifolia* Richard
(Ramesh Bedi 139)

447. *Cypripedium macranthum* Swartz
(Ramesh Bedi 383)

448. *Epipactis*
(Ramesh Bedi 1070)

449. *Epipactis consimilis* Wallich
(Ramesh Bedi 59, 806)

450. *Hebenaria*
(Ramesh Bedi 49)

451. *Habenaria*
(Ramesh Bedi 1244)

452. *Orchis*
(Ramesh Bedi 335)

453. *Orchis*
(Ramesh Bedi 394)

454. *Orchis latifolia* Linnaeus
(Ramesh Bedi 610)

455. *Pholidota*
(Ramesh Bedi 1139)

456. *Pleione hookeriana* (Lindley) T. Moore
(Ramesh Bedi 140)

457. *Satyrium nepalense* D. Don
(Ramesh Bedi 265, 975)

458. *Spiranthes australis* Lindley
(Ramesh Bedi 665)

66 OROBANCHACEAE

459. *Aeginetia indica* Roxburgh
(Ramesh Bedi 526)

460. *Boschniackia himalaica* Hooker f.&T.
(Ramesh Bedi 34)

67 OSMUNDACEAE

461. *Osmunda regalis* Linnaeus
var. *spectabilis* Wallich
(Ramesh Bedi 216, 437)

68 OXALIDACEAE

462. *Oxalis corniculata* Linnaeus
(Ramesh Bedi 22, 713)

69 PALMAE

463. *Areca catechu* Linnaeus
(Ramesh Bedi 458)

70 PANDNACEAE

464. *Pandanus sikkimensis*
(Ramesh Bedi 441)

71 PAPAVERACEAE

465. *Maconopsis*
(Ramesh Bedi 97)

466. *Meconopsis*
(Ramesh Bedi 606)

467. *Meconopsis*
(Ramesh Bedi 845)

463. *Meconopsis aculeata* Royle
(Ramesh Bedi 992)

469. *Meconopsis grandis* Prain
(Ramesh Bedi 88)

470. *Meconopsis horridula* Hooker f.& T.
(Ramesh Bedi 245, 991)

471. *Meconopsis nepalensis* DC.
synonym *Meconopsis Wallichii* var. *rubrofusca* Hooker
(Ramesh Bedi 202,606 )

472. *Meconopsis paniculata* (D. Don) Prain
(Ramesh Bedi 107, 391)

473. *Meconopsis simplicifolia* Hooker f. & T.
(Ramesh Bedi 250, 1247)

72 PHYTLACCACEAE

474. *Phytolacca acinosa* Roxburgh
(Ramesh Bedi 62, 701)

73 PINACEAE

475. *Abies spectabilis* (D. Don) Spach
synonym *Abies webbiana* Lindley
(Ramesh Bedi 38, 589, 1011)

476. *Larix griffithii* Hooker f. & Thomson
(Ramesh Bedi 1053)

477. *Larix griffithiana* Carriere
(Ramesh Bedi 84, 332)

478. *Pinus wallichiana* A. B. Jackson
synonym *Pinus excelsa* Wallich
(Ramesh Bedi 4, 951)

479. *Tsuga dumosa* D. Don
(Ramesh Bedi 127, 893)

75 PIPERACEAE

480. *Piper*
(Ramesh Bedi 518)

481. *Piper*
(Ramesh Bedi 521)

482. *Piper*
(Ramesh Bedi 548)

483. *Piper*
(Ramesh Bedi 549)

484. *Piper nepalense* Miquel
(Ramesh Bedi 519)

485. *Piper officinarum* DC.
(Ramesh Bedi 520)

486. *Piper peepuloides* Roxburgh
(Ramesh Bedi 3, 522, 523)

75 PLANTAGINACEAE

487. *Plantago*
(Ramesh Bedi 512)

488. *Plantago major* Linnaeus
(Ramesh Bedi 21, 114)

489. *Plantago tibetica* Hooker f. et. Thomas ex Hooker
(Ramesh Bedi 682)

76. POLYGONACEAE

490. *Fagopyrum*
(Ramesh Bedi 896)

491. *Fagopyrum cpmosum* Meissm.
(Ramesh Bedi 431, 778)

492. *Fagopyrum esculentum* Meench
(Ramesh Bedi 191)

493. *Oxyria digyna* Hill.
(Ramesh Bedi 924, 996)

494. *Polygonum*
(Ramesh Bedi 102)

495. *Polygonum*
(Ramesh Bedi 262)

496. *Polygonum*
(Ramesh Bedi 339)

497. *Polygonum*
(Ramesh Bedi 479)

498. *Polygonum*
(Ramesh Bedi 502)

499. *Polygonum*
(Ramesh Bedi 624)

500. *Polygonum*
(Ramesh Bedi 730)

501. *Polygonum*
(Ramesh Bedi 822)

502. *Polygonum*
(Ramesh Bedi 827)

503. *Polygonum*
(Ramesh Bedi 976)

504. *Polygonum alatum* Buchanan-Hamilton ex D. Don
(Ramesh Bedi 500, 617, 1002)

505. *Polygonum campanulatum* Hooker f. (Ramesh Bedi 1195, 1281)
506. *Polygonum flaccidum* Meissn. (Ramesh Bedi 415)
507. *Polygonum macrophyllum* D. Don (Ramesh Bedi 48, 184)
508. *Polygonum nepalense* Meissn. (Ramesh Bedi 968)
509. *Polynum paleaceum* Wallich (Ramesh Bedi 918)
510. *Polygonum perfoliatum* Linnaeus (Ramesh Bedi 428)
511. *Polygonum rancinatum* Hamilton (Ramesh Bedi 99)
512. *Polygonum sphaerostachyum* Meissn. (Ramesh Bedi 1223)
513. *Rheum* (Ramesh Bedi 1150)
514. *Rheum em di* Wallich (Ramesh Bedi 78, 565, 847, 977, 1034)
515. *Rheum nobile* Hooker f. & T. (Ramesh Bedi 493, 1008)
516. *Rumex dentatus* Linnaeus (Ramesh Bedi 905, A)
517. *Rumex nepalensis* Spreng (Ramesh Bedi 163, 637, 105)

77 POLYPODIACEAE

518. *Adiantum* (Ramesh Bedi 1104)
519. *Adiantum* (Ramesh Bedi 1168)
520. *Adiantum pedatum* Linnaeus (Ramesh Bedi 227)
521. *Crypsinus ebenipes* Hooker Copel (Ramesh Bedi 183)
522. *Lygodium flexuosum* Swartz synonym *Lygodium pinnatfidum* Swartz (Ramesh Bedi 1)
523. *Lygodium japonicum* Sweet (Ramesh Bedi 423)
524. *Oxychium japanicum* Kunj (Ramesh Bedi 136)
525. *Polypodium* (Ramesh Bedi 1187)
526. *Polypodium Lineare* Thunberg (Ramesh Bedi 198)
527. *Pteridium aquilinum* Kuhn synonym *Pteris aquilina* Linnaeus (Ramesh Bedi 5)
528. *Pteris biaurita* Linnaeus (Ramesh Bedi 1154)
529. *Pteris eretics* Linnaeus (Ramesh Bedi 215)
530. *Pteris longifolia* Linnaeus (Ramesh Bedi 450)

78 PRIMULACEAE

531. *Primula* (Ramesh Bedi 75)
532. *Prtmula* (Ramesh Bedi 233)
533. *Primula* (Ramesh Bedi 378)
534. *Primula* (Ramesh Bedi 820)
535. *Primula hellidifolia* King (Ramesh Bedi 35, 179)
536. *Primula capitata* Hooker (Ramesh Bedi 1041, 1138, 1204)
537. *Primula denticulata* Smith (Ramesh Bedi 50)
538. *Primula floribunpa* Wallich (Ramesh Bedi 1294)
539. *Primula glabra* Klatt. (Ramesh Bedi 73)
540. *Primula kingii* Watt. (Ramseh Bedi 181)

[ To be continued ]

# Field Clinical Trial of Nityananda Rasa in The Treatment of Slipada*

* D. D. Mishra
** B. V. Holla
*** Prem Kishore
Regional Research Institute(Ayurveda)
Bhubaneshwar.

Slipada filariasis, is prevalent through out the tropical and sub-tropical parts of the world. In our country it is distributed chiefly along the course of big rivers and in costal areas. The location of Puri district, along the sea coast and partly along the course of delta of Mahanadi makes it susceptible to high incidence of this disease. This vulnerability is further increased with the fact that the river Mahanadi originates from Vindhyas and use of water of such rivers is said to be a causative factor-Hetu, of Slipada.[1]

As such the incidence of this disease is high in areas 'around Bhubaneshwar. After a preliminary survey of 30 villages of the area, 3 villages-Janla, Bir-Ramachandrapur and Kapileswar have been selected for the field clinical trial of Nityananda Rasa in the Slipada. At first instance patients of both sex, in all stages of disease, all age groups, and with or without mircofilaria has been included in the trial.

## MATERIAL AND METHODS

A total number of 180 patients of Slipada have been selected for trial on the basis of clinical features of disease discussed in Ayurvedic classics. No bar of age, sex duration of illness and presence of microfilaria has been observed.

The patients have been prescribed treatment as per the regimen given hereunder.

- i) Drug— Nityananda Rasa. (Bhaisajya Ratnavali Slipadadhikara)
- ii) Dose— 500 mg. twice daily
- iii) Vehicle— Water
- iv) Duration of treatment—90 days
- v) Diet etc— No specific schedule could be prescribed. However patients have been advised to take Kapha nasaka diets and avoid exposure to mosquito bite.

Clinical assessment has been made every week and the night blood swear has been examined before treatment and the end of 90 days of therapy.

On the basis of these observations the

* Presented in Seminar of Scientists of Central Council for Research in Indian Medicine and Homoeopathy, New Delhi, held in December 1979.

1. पारियात्र भवायाश्च विंध्यसह्यभवाश्चया ।
शिरोहृद्रोग कुष्ठानां ता हेतु श्लीपदश्च ।। चरक

* Assistant Research Officer ** Ex-Asst. Director *** Asst. Director.

results have been classified under following groups—

i) Complete relief—Complete relief of symptom as well as absence of microfileria.

ii) Partial relief— Partial relief of symptoms with or without absence of microfileria.

iii) No relief— No improvment or deteriateration.

iv) Dropouts— Cases who discontinued the treatment.

**RESULTS**

Out of total 180 patients 106 were males and 74 were females. Maximim incidence of disease has been noted in age groups 21-30 years and 41-50 years. The incidence has less in patients below 20 years of age. (Table 1 & Fig 1)

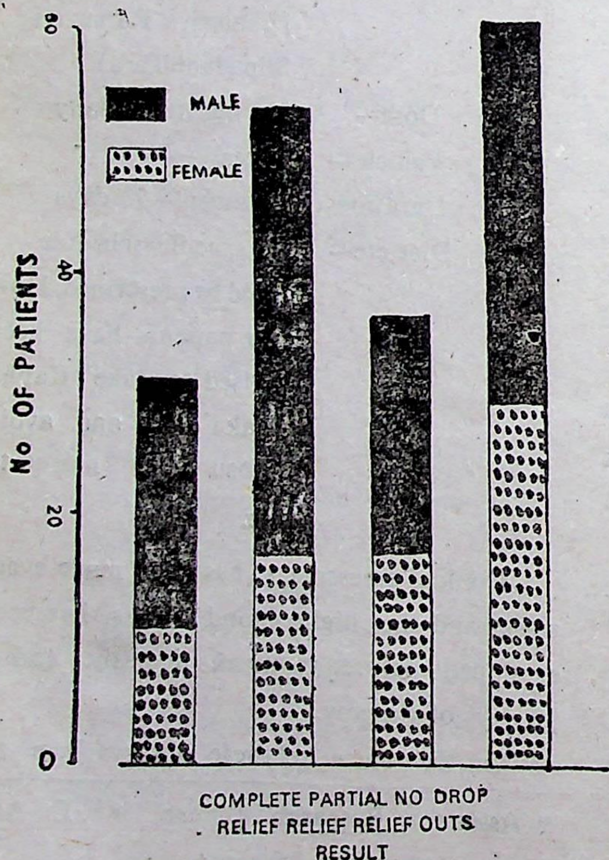



**Table 1, Showing incidence of Age and Sex.**

FIELD CLINICAL TRIAL OF NITYANANDA RAS IN SLIPADA.

| Sl. No. | Age (Years) | Male | Female | Total | Percentage |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | 0—10 | 10 | 3 | 13 | 7 2% |
| 2. | 11—20 | 10 | — | 10 | 5.5% |
| 3. | 21—30 | 30 | 21 | 15 | 28 3% |
| 4. | 31—40 | 10 | 11 | 21 | 10.6% |
| 5. | 41—50 | 30 | 19 | 49 | 27.2% |
| 6. | 51—60 | 16 | 20 | 36 | 20 6% |
| TOTAL— | | 100 (58.8%) | 74(41 2%) | 180 | |

As regards the duration of illness a substantial proportion of patients have been suffering with disease from 1 to 3 years. The patients with less than 1 year duration of illness has been comparatively underless. (Table II)

**Teble II, Showing the duration of illness**

| Sl. No. | Duration of Illness | No of cases | Percentage |
|---|---|---|---|
| 1. | Less than 1 year | 44 | 24.4% |
| 2. | Between 1—2 years | 28 | 15.5% |
| 3. | Between 2—3 years | 32 | 17.7% |
| 4. | Above 3 years | 76 | 42.2% |
| TOTAL | | 180 | |

The patients under study exhibited almost all the characterstic symptomps of disease discussed in literature, Jvara (fever), vedana (pain), gaurava (heaviness), and stulata (swelling) have been not observed in most of the cases. Kantakavata (thorny) Granthiyukts (glandular) and Valmkivata (antlike sbha) swelling have also been observed in many cases (Table III).

Table III, Showing incidence of signs and symptoms

| Sl No, | Signs and Symptoms | No of Cases | Percentage |
|---|---|---|---|
| 1. | Jvara (fever) | 161 | 89.4% |
| 2. | Gaurava (heaviness) | 125 | 69.4% |
| 3. | Mandavedana (mild pains) | 126 | 70. % |
| 4. | Sthulata (Swelling) | 102 | 56 63% |
| 5. | Kathinya (hardness) | 101 | 56, % |
| 6. | Sthira (immobile) | 90 | 56. % |
| 7 | Snigadhata (smoothness) | 82 | 45 5% |
| 8. | Svetabhasa (whitish appearanence) | 74 | 41. % |
| 9. | Mriduta (softness) | 61 | 33 8% |
| 10. | Raktata (redness) | 55 | 30.5% |
| 11. | Sphutana (spletting pain) | 54 | 30. % |
| 12. | Kantakavata (thorny appearance) | 54 | 30. % |
| 13. | Granthiyukta (nodular) | 48 | 26.6% |
| 14. | Daha (Burning sensation) | 47 | 26. % |
| 15. | Parusa (dryness) | 44 | 24.4% |
| 16 | Krishnata (blakish) | 34 | 18.3% |
| 17. | Valmikivata | 24 | 13 3% |



As a result of treatment patients showed gradual improvement in 10-15 days. Fever, Pain and swelling have been releived in most of the cases. However, no improvement could be noted in symptoms the Kantakavata (thorny) appearance of swelliings Granthiyukts (nodular swelling)

The observations in night blood examination of various stages of treatment showed that the microfilaria has been ierradicated in good proportions of cases after treatment in when, it was prevented before treatment (Table IV).

Table IV, Showing the effect of treatment of microfilariasis

| Sl. No. | Age Group | No of cases | |
|---|---|---|---|
| | | Before | After |
| 1. | 0—10 | — | — |
| 2. | 11—20 | 8 | 1 |
| 3. | 21—30 | 13 | 5 |
| 4. | 31—40 | 10 | 3 |
| 5. | 41—50 | 9 | 4 |
| 6 | 51—60 | 8 | 4 |
| Total | | 48 | 17 |

On the basis of clinical improvement and the effect of drug on parasite, in blood at the end of three months of therapy, the results have been classified in table V. (Fig. 2)

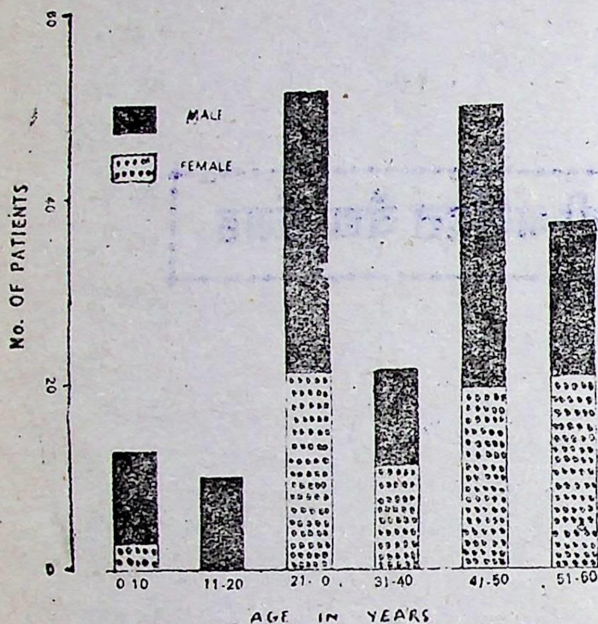



Table V showing the results of treatment

| Sl. N. | Result | Male | Female | Total | Percentage. |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | Complete relief | 20 | 11 | 31 | 17.2% |
| 2. | Partial relief | 36 | 17 | 53 | 29.4% |
| 3. | No relief | 19 | 17 | 36 | 20.0% |
| 4. | Drop outs | 31 | 29 | 60 | 33.3% |
| | Total | 100 | 74 | 180 | |

It has been noted that complete relief could be achieved in 17.2% of cases and partial relief has been noted in 29.4% of cases. While 20% of cases no improvement could be noted and a third of cases discontinued the treatment. The treatment has been more effective in early cases.

## SUMMARY AND CONCLUSIONS.

Field clinical trials on therapeutic officacy of Nityananda Rasa specially recommended for Slipada, has been conducted.

The patients selected for study had been from all stages of disease. Only a small percentage of cases (24.4 ) may be considered as sadhya (Curable) as per Ayurvedic concepts i. e. duration of illness less than a year.

Considering the nature of cases the response to the therapy may be considered good as 31 out of 44 cases considered as Sadhya showed complete relief and other 53 cases showed partial relief. The effect of treatment of Microfilarias is in night blood smears has also been good.

Further studies on cases considered as Sadhya i. e. with less than one year of duration of illness have been planned.

Authors are thankful to Director, Central Council for Research in Ayurveda and Siddha, New Delhi for providing necessary facilites and encourgements.

## BIBLIOGRAPHY

1. Beason and Mc-Dermott (1971), Cecl-loeb's text book of Medicine, Saunders.
2. Bhaisajya Ratnavali, commentry by Pt. Ambika Dutta Shastri, Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi-1961.
3. Charaka—Charaka Samhita commentry by Pt. Kashi Nath Mishra, Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi-1970.
4. Chaterjee K. D. (1971)-Parasitology
5. Madhava—Madhava Nidan Ed. by Pt. Y. N. Upadhyyaya, Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi-1961.
6. Mishra D.D. (1974) Slipada Ek Samikshatmaka Adhyayana

Holla B.V. – Sachitra Ayurveda April-1974.

# Scale Preparation ( Parpati ) of Mercury in Indian Medicine

**C. M. Tiwari***
**S. N. Tripathi****
Department of Kayachikitsa,
Institute of Medical Sciences
Banaras Hindu University
Varanasi-221005

Introduction of Mercury, metals and minerals in the treatment started almost a new era, it was accepted much earlier that thing in the world can be used as a medicament and use of same minerals were also in practice in the age of classics i. e. upto 400 A. D. But later on one of the great exponant of Indian medicine Nagarjuna devoted his entire life and energy to develop Rasashastra. With his efforts, mercury metals, and minerals become a very popular tool of therapy. The period of Nagarjuna is fixed somewhere 800 A. D. by the historians.

The credit for introduction of scale preparation of mercury goes to Chakrapani dutta, the commentator of Charaka, an author of a therapeutic book 'Chakradutta' (11th A.D.) The scale preparations of mercury are prepared by melting the kajjali (Black sutphide of mercury) and suddenly cooling it under manual pressure and is named as 'Rasparpati'. It has been first time recommended for the treatment of *Grahni* (malabsorption syndrome enteropathy). It is supposed to improve the nutritional status of the entire body. Chakrapani has recommended to take milk and meat soup as far as possible with this treatment.

It is evident from the review of the literature that many more scale preparations were introduced from time to time by adding few more, substances to the black sulphide of mercury before melting it. It has heen done with the idea to increase the efficacy of Parpati. A brief resume is given as below :

1. *Rasaparpati* : As mentioned above, the use of Rasaparapati was started first by Chakradutta in the 11th A.D. He recommended its use primarily for malabsorption

* Clinical Registrar.

** Professor and Head of the Department of Kayachikitsa, and Superintendent Ayurvedic Pharmacy.

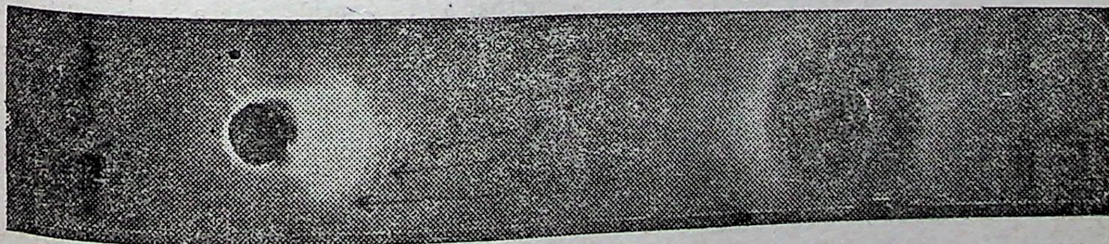


Fig. Showing Crystalographic X-Ray of Panchamrita Parpati

syndrome and also for tuberculosis and skin diseases. Till then it is in use and has been described by all the later Rasa Granthas. Rasprakash Shudhakar presented to mix copper along with mercury and sulphur and recommended for few more diseases specially arthritits to be along with Guggulu and Triphala. Rasratna Sammuchhya in 13th A.D. tried to increase its potency by trichuring it with juices of so many plants like Bhringraja, Tulsi etc. Regarding the dose, it can be given from 250 mg to 1500 mg in increasing doses, and the patient has to be kept on high protein diet milk or meat soup.

2. *Tamra Parpati* : Next introduction seems to be of Tamra parpati. Tamra Bhasma is added along with mercury and sulphur to prepare Tamra Parpati. In additien to malabsorption syndrome its use is specially recommended for Amavata (Arthritis) and skin diseases. The copper was added much earlier in Rasa Parpati but the name of Tamra parpti is seen first time in the Raschintamani written by Anantdeva Suri in 13th. 16th. A. D. Since then Tarma Parpati is included in all the later texts. Naginadas Chhaglani in Bhartiya Bhashaja Ratnakar has described three varieties of Tarmra Parpati depending upon the concentration of Tamra and other herbal ingredients.

*Lauh Parpati* : Lauh parpati is prepared by adding Lauh bhasma in mercury sulphide. This was introduced simultaneously by Ananta Dev Suri as described in Raschintamani in 13-16th A. D. Later on it was adopted by all the following texts. It is also recommended for malabsorption syndrome.

*Panchamrit Parpati* : Mercury, Sulphur, Mica-Iron and Copper and the five constituents of Panchamrit parpati as described by Dunduka Nath in 14th A. D. in Resendra Chintamani. The same has been adopted by later workers i.e. Govind das etc. This is the popular Panchamrit Parpati of today however the word Panchamrit was coined earlier by Bindu in Rasa Padhati. Constituents of Panchamrita Parpati are only four according to him. It does not contain iron but in place of it sulphur is used in double quantity. Lolumbraj (16th A. D.) has also described only four constituents. In this Panchamrit Parpati, instead of Tamra Sulphur has been used in double quantity. Vidyapati (17th A. D.) completely changed the constituents of Panchamrit Parpati. According to him, Naga and Banga Bhasma are added in place of iron and mica. This is not the end of the story. Pandit Haripra-panna Shastri has compiled nine varieties of Panchamrit Parpati in Rasyoga Sagar. There are little variations in many of them but the fourth type is quite different which contains Gold, Silver, Copper, Iron, Lead, Tin, Mica. Sulphur and Mercury. Thus it contains maximum numbers of ingredients, however, the name Panchamrit Parpati is retained which denotes only five constituents. It has been also treated by several other drugs of herbal and minerals origin. It is most obvious from this attempt that the Rasayanacharyas wanted to increase the potency or to widen the range of efficacy by adding several new ingredients from time to time.

The Panchamrit parpaty. (Fourth type) which is described in Rasayoga sagar was subjected to crystalographic study in the

department of Physics, Banaras Hindu University for scientific study under the supervision of Dr. O. N. Srivastava, Reader in Physics His refer is enclosed herewith in original.

"The sample is certainly crystalline as clear cut powder lines are visible. In the pattern of lines, evidence for the presenee of f. c. c. elements can clearly be seen, the lines are of course little broad. This would indicate that the following elements are present.

Gold [Au]

Silver [Ag]

Copper [Cu]

The line other than those following the f.c.c. pattern is N $[h^2+k^2+l^2]=3,4,8,11$..... are rather too many indicating that this belongs to a system other than. These would most probably com frome the element tin. Thus besides the above three elements tin is also thought to be present. The presence of other possible elements is not proved, based on the present powder X-Ray differaction patterns".

From the above reports it is seen that the metal form different compound is mixture Substences. Those which remain in crystal form are only traceable. By this method, for other's other technique has to be adopted, of course the conversion of metal into other forms by this process has much importance from the point of view of penetration in the wall of the Gut and absorption in the system. Further study on this line is suggested to throw sufficient light on the constitution of this type of parpati.

The dose of Panchamrita parpati is an usual except the last one which has been presented to be taken in the dose of 125 mg. only. Regarding indications, Panchamrita parpati is supposed to be use for dyspepsia, Malabsorption syndrome chronic cough, haemoptysis, tuberculosis, arthritis and skin disorders.

5. *Saptamrita* Parpati : Considering this trend Acharya Yadavji Trikamji coined a new formula in 20th A. D. named as saptamrita parpati containing mercury, iron, mica, copper, sulphur, tin and zinc for better action. He has also advised to mix Gold in the above parpati if required.

There is another trend of adding valuable metals and precious stones in parpati to achieve distinct effects. A brief resume is as follows :

6. *Swarn* Parpati : This type of parpati has been described in Rasayoga Sagar [1] it is simplest containing mercury, sulphur gold only. This is the type which is popularly known by the name of Swarna Parpati. The first reference is available in Bhaishajya Ratnavali [10th A. D.]. It is specially indicated for tubercular enteritis, and pulmonary tuberculosis, [ii] the second variety contains five ingredients, gold, silver, copper, iron and mica in addition to mercury and has been specially indicated for rejuvination, [iii] in this variety pearls are added in addition to above ingredients and has been specially recommended for chronic fever and diabetes [Prameha]. This has been referred by Bindu in Rasa Padhati [14th A. D.].

7. *Mani* Parpati : This contains Heeraka Bhasma, Panna Bhasam, Pushaparajamani bhasam, Intraneela mani bhasam, Hingula,

mercury and sulphur. This is first described in Rasratna Samuchhya in 13th A. D. A similar Parpati containing Diamond and Gold has also been described by him in the name of Parpati Rasa. It has been specially indicated in the treatment of disorder of sense organs specially on ear and nose diseases. Probably this has a special action on nervous system.

*8.* Vijaya *Parpati* : It has been described by Govind Dass in Bhaishajya Ratnavali. It contains diamond, pearl, gold, silver, mercury and sulphur. Two types of Vijaya parpai having the similar constituents have been described in Rasyoga Sagar. These are considered to be effective against all the disease.

There are several other types of scale preparations of mercury. Pranada Chandramrita, Unmada, Kushthanta, Bole and Abhra parpati etc. where mercury and sulphur has been used as the base and one another substances have been added to have different action.

In addition, there are some scale preparations which does not contain mercury and sulphur as well as Shweta parpati, Mall parpati etc. These are also known as Parpati because these are used in scale form.

It is obvious from the perusal of the above description that more than dozen types of scale preparations of mercury have been used. Nomenclature of the parpati is mainly after the chief ingredient added to Rasa parpati; For example if iron is added. It is called Lauha parpati and if copper is added is Tamra Parpati etc. Few names have been also given to represent the number of the chief ingredients e. g. Panchamrita parpati and Saptamrita parpati. Few names have been also proposed on the basis of their special indications and efficacy of Kusthanta parpati etc.

A great variation is observed regarding the ingredient in the same parpati for example panchamrit parpati alone has been described to be of nine types as described by Vaidya Hariprapanna Sharma in Rasayoga Sagar. So it becomes a necessity for a user to give the full reference of the parpati before trial & not only the name. The evolution of parpati preparation which started from Chakra Dutta in 11th A. D. is a continuous process. Probably the peak was in 18th A.D. and the preparation seem to be stabilized in that era. In the 20th A. D. probably with the development of modern medicine in our country, there was a general set back in early stages. So no further development is observed. Of course, with incorporation of new technology a critical study is more possible than ever which may start new era as a whole and use of Parpati in particular.

Regarding the ingredients Mercury and Sulphur are the base of every parpati. Later on iron., copper, tin, zinc, lead, silver and gold have been added out of the metals from time to time in different preparations. In addition precious stones and Jewels i. e. Diamond, pearl, Ruby, Neelam etc. have been also included as ingredients of parpati. Rather Mani parpati has been described by Rastantra Samuchhya as a special type.

A large number of herbs have been also used as ingredients in the preparation of different parpati having special indications. Most commonly used herbs are Trikatu,

Bhringraja, Shuhik, Kshigru, Nirgundi, Chitraka, Zeeraka, Dhatura, Bakuchi, Vacha, Kupiloo Swarasa or docoction. In addition to that many herbs have been advised to be taken as Anupana depending upon the disease to be treated.

As far as the indication of parpati is concerned; basically it has been recommended for the ailments of the G. I. T. e. g. Agnimandya, Amlapitta, Atisar, Grahni and worms of G. I. T. However, with the addition of few minerals and herbs it has been indicated for the disease of haemopitic system, respiratory system, urogenital system and metabolic disorders as described in above tables. It has been also claimed to be useful for every disease if used with different type of Anupana.

BIBLIOGRAPHY :


1. Chakradutta by Chakrapani dutta.
2. Raschintamani by Ananta Deva suri
3. Rasapaddhati by Shri Bindu.
4. Rasaendrachintamani by Shri Dundhukanath.
5. Vaidya Jeevanam by Lolimba Raja.
6. Vaidyarahasya by Vidyapati.
7. Bhaishjya Ratnawali by Govinda Das.
8. Rasamrita by Vaidya Yadvaji Trikamji Acharya.
9. Rasaratna Sammuchhya by Vagbhattacharya.
10. Rasaprakash Sudhkar by Yashodhar Bhatta.
11. Bharata Bhaishajya Ratnaker by Naginadas Chhaglani.
12. Rasyogasager by Hariprapanna Sharma.
13. Rasaratna Pradeep by Ramaraja.
14. Yogaratnaker by Maurapada Bhikshu.
15. Rasaraja Sundaram by Duttaram Choube.
16. Rasatarangani by Haridutta.

# आयुर्वेद को जिनपर गर्व है

# आयुर्वेदीय विश्वकोशकार वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह



हकीम दलजीत सिंह का जन्म सम्वत् 1960 वि० (तदनुसार 11 जुलाई सन 1903 ई०) श्रावण कृष्ण द्वितीया-शनिवार को 9 बजे दिन में तहसील चुनार, मिर्जापुरान्तर्गत रायपुरी ग्राम के एक उच्च एवं सम्भ्रान्त प्रतिष्ठित जमींदार परिवार में हुआ था। आपके पिता सम्माननीय बा० क्षत्रधारी सिंह के आत्मज श्री बा० महावीर प्रसाद जी थे, जो अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान, धर्मिष्ठ, लोकप्रिय एवं बड़े सूझ--बूझ के उद्योगशील धनी-मानी और साहसी व्यक्ति थे। श्री दलजीत सिंह आपही के वरिष्ठ सुपुत्र हैं। आदरणीय पिता की आपके ऊपर बड़ी कृपा-दृष्टि रहती थी। आपकी शिक्षा-दीक्षा एवं चरित्र-निर्माण में योग्य पिता का बड़ा हाथ था और उन्हीं का आदर्श सदैव आपके सम्मुख रहता है, जो आपको वर्तमान रूप में ढालने का प्रधान हेतु है। अस्तु, यदि यह कहें कि आप अपने पिता के सुयोग्य पुत्र—वास्तविक उत्तराधिकारी हैं तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह आयुर्वेद एवं यूनानी वैद्यक के मर्मज्ञ ज्ञाता और राष्ट्रभाषा हिन्दी के अच्छे लेखक हैं। संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी और राष्ट्र-भाषा हिन्दी तथा उर्दू की योग्यता के साथ ही आप बंगला, गुजराती और मराठी आदि अनेक प्रादेशिक भाषाओं के भी ज्ञाता हैं। अतएव इन भाषाओं में लिखित चिकित्सा-शास्त्र के ज्ञाता और सुविज्ञ, निपुण, यशस्वी और अनुभवी चिकित्सिक हैं। अस्तु, इस विषय पर विचार करने तथा लिखने का आपको अधिकार है। यही कारण है कि आपके द्वारा लिखित ग्रन्थ शोधपूर्ण एवं उच्चकोटि के तथा आयुर्वेदीय वाङ्मय की श्रीवृद्धि करने वाले तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के गौरव तथा उसके भंडार के परिपोषक हैं।

वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह अपने लेखकीय जीवन के प्रारम्भ से ही समन्वयी विचारधारा के रहे हैं। उनका दृढ़ मत रहा है कि प्रायः सभी समशील चिकित्सा-पद्धतियाँ एक में समवेत होकर जनहिताय, लोक हिताय काम करें। कहा भी है—'समशीले व्यसने सुसख्यम्'।

यह सुविदित है कि इस समय हमारे इस देश में प्रत्यनीक—हेतुव्याधिविपरीत चिकित्सा की यह तीन पद्धतियाँ-आयुर्वेद, यूनानी और एलोपैथी (डाक्टरी) प्रचलित हैं। आयुर्वेद की समृद्धि, विकास एवं परिबृंहण हेतु इनमें से शेष दोनों का सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक है। इस हेतु इनके सम्यक् ज्ञान के बिना इनका समन्वय-पूर्वक ग्रहण अशक्य है। इनमें भी सर्वप्रथम आयुर्वेद के अधिक निकट एवं समशील सहोदर चिकित्सा-पद्धति यूनानी का ज्ञान परमावश्यक है।

आज जबकि यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, कि आयुर्वेद में आमूल परिवर्तन-संशोधन-परिवर्धन कर उसमें समय के अनुसार रही हुई कमी को दूर कर उसे समय की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ एवं सर्वाङ्गीण चिकित्सा-पद्धति का रूप दिया जाय, जिसके द्वारा वैद्य-हकीम बन्धुओं के पास आया हुआ एक भी रोगी विमुख होकर वापिस न जा सके। इसके लिये यह आवश्यक है

कि प्रत्यनीक चिकित्सा-पद्धति की विज्ञानानुमोदित एवं आवश्यक प्रत्येक विषय का समावेश आयुर्वेद में यथास्थान कर उसे पूर्ण विकसित एवं समृद्ध बनाया जाय। परन्तु उक्त कार्य में इस बात का पूरा ध्यान रखा जाय कि अपनी आधारभूत भित्ति में परिवर्तन न किया जाय अपितु उससे ज्यूँ का त्यूँ रखा जाय।

इस हेतु यह आपेक्षित है कि उन-उन पद्धतियों के गंभीर अध्ययन एवं अनुशीलन या आलोचन द्वारा प्रथम उनका यथार्थ विशद ज्ञान प्राप्त किया जाय, तदुपरांत प्राप्त उक्त ज्ञान का समावेश आयुर्वेद के अपने मूल स्वरूप सिद्धांत आदि को स्थिर रखते हुए उसमें किया जाय।

इस बात को ध्यान में रखकर ही आपने सर्वप्रथम इन तीनों प्रत्यनीक एवं समशील पद्धतियों का उनकी अपनी भाषाओं में ही मौलिक अध्ययन किया। तत्पश्चात आपने ग्रन्थ का कार्य हाथ में लिया।

अपने लेखकीय जीवन के आरंभ से ही आपने इसी मार्ग का अनुसरण किया है। आपकी कोई भी रचना ऐसी नहीं जिसमें उक्त मार्ग का अनुसरण न किया गया हो। इसमें भी विशेषकर आयुर्वेद-यूनानी के समन्वयात्मक ग्रन्थ-लेखन का तो मानो आपने संकल्प कर लिया है। फलस्वरूप अबतक यूनानी विद्यालयों के पाठ्यक्रमांनुसार प्रत्येक विषय के समन्वयात्मक ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दी में लिखकर प्रकाशित हो चुके हैं। उनका अध्ययन आयुर्वेद-यूनानी के मध्य दृढ़ सेतु का कार्य करेगा, ऐसा उनका सुविचारित मत है।

द्रव्यगुण के प्रति आपका विशेष प्रेम है। अपने समय का अधिकांश आपने द्रव्यान्वेषण एवं आयुर्वेद-यूनानी के संदिग्ध द्रव्य-निर्णय में लगाया है जिसके फलस्वरूप बहुत ही महत्वपूर्ण निर्णय प्रकाश में आये हैं। हकीम साहब इस विषय के जाने-माने विशेषज्ञ हैं। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद-यूनानी-डाक्टरी के पारिभाषिक शब्दों पर भी आपका अधिकार है।

अभी हाल ही में हैदराबाद में आयोजित अखिल भारतीय पंचम शास्त्र-चर्चा में भाग लेने के लिए आपको आग्रहपूर्वक आमंत्रित किया गया था और उक्त परिषद् में आपको गेस्ट ऑफ़ ऑनर (सम्माजित अतिथि) के रूप में सम्मानित किया गया तथा सम्मान में उत्तम कश्मीरी ऊनी शॉल एवं चाँदी का गिलास आदि देकर सम्मान किया गया। इसके अतिरिक्त इससे पूर्व की कई परिषदों में स्वर्णपदक आदि प्रदान कर आपको सम्मानित किया जा चुका है।

आयुर्वेद और यूनानी के विद्वान् आचार्य हकीम दलजीत सिंह का जीवन बड़ा ही उदात्त, निर्लेप एवं दूसरों के लिये अनुकरणीय एवं प्रेरणाप्रद है। संक्षेप में वे एक ऐसी विभूति हैं, जिन्होंने आयुर्वेद और यूनानी के मध्य एक सुदृढ़ सेतु-रचना का कार्य किया है। भारत सरकार द्वारा संस्थापित केन्द्रीय चिकित्सा परिषद् का पहला कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह इस महान् योगी के द्वारा की गई सेवाओं को पहचाने और उनका यथोचित अभिनन्दन करें। भारत सरकार को भी उन्हें गौरवान्वित करना चाहिये।

## VAIDYARAJ HAKIM DALJIT SINGH SOCIAL SERVICE

वैद्य दलजीत सिंह अपने चिकित्सीय जन-सेवा के अतिरिक्त, प्रारम्भ से ही कांग्रेस के विचारों के कट्टर पोषक एवं स्वतंत्रता के हित छेड़े गए असहयोग आंदोलन में चुनार क्षेत्र के सदैव एक सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे।

**Nominations & recognition by Central and State Government & other Academic bodies, Institutions & Universities.**

(1) स्वास्थ्य मंत्रालय-भारत सरकार द्वारा स्वर्गीय कर्नल आर० एन० चोपड़ा की अध्यक्षता में संघटित "आयुर्वेद-यूनानी रिआर्गनाइजेशन कमेटी" द्वारा आयोजित विशिष्ट विद्वान हकीमों के सम्मेलन में आमंत्रित सदस्य (1947-48)

(2) भारत सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा आयोजित आयुर्वेद-यूनानी पुनर्संगठन समितियों में साक्ष्य के लिए आमंत्रित सदस्य।

(1) चोपड़ा कमीटी (भारत सरकार—1947-48, (2) आयुर्वेद—यूनानी रिआर्गनाइजेशन कमीटी, उत्तर प्रदेश सरकार (1947-48) रिपोर्ट में इनका लेख भी छापा है (देखें कमेटी) बम्बई स्टेट (1953) (4) स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आयोजित वैद्य-हकीमों के फेमिलीप्लानिंग सेमिनार (दिल्ली) में आमन्त्रित सदस्य।

## MEMBERSHIP

(1) भूतपूर्व सदस्य—आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी फार्माकोपिआ कमीटी, उ० प्र० सरकार (1950-56)।

(2) भूतपूर्व सदस्य—आयुर्वेदिक एण्ड तिब्बी अकादमी (उ०प्र०)

## EXAMINERSHIP

आयुर्वेद—यूनानी विषयों में स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में बी० एच०यू०, बोर्ड ऑफ इण्डियन मेडिसिन (उ०प्र०)आयुर्वेद-यूनानी बोर्ड म० प्र०,कानपुर यूनिवर्सिटी तथा झाँसी आयुर्वेदिक युनिवर्सिटी में परीक्षक रहे हैं।

## RESEARCH PAPERS & EDITING Etc.

आयुर्वेद की पत्र-पत्रिकाओं में लगभग 100 लेख छपे हैं। उनकें विशेषांकों का सम्पादन भी किया है।

विशेष :—तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्रिणी सम्माननीया राजकुमारी अमृत कौर की अध्यक्षता में आयुर्वेदिक युनिवर्सिटी झाँसी के कन्वोकेशन में स्वर्णपदक एवं D. Sc. A. की सम्मानित उपाधि प्रदान की गयी।

### साहित्य एवं ग्रन्थ-रचना

**प्रकाशित—**

हिन्दी में आयुर्वेदीय एवं यूनानी-ग्रन्थों की रचना द्वारा आपने आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा-विज्ञान की अभूतपूर्व सेवा की है तथा आयुर्वेदीय यूनानी स्नातकों के प्रेम-भाजन बने हैं। आपकी सभी रचनाएँ मौलिक हैं तथा समन्वयात्मक दृष्टि से लिखी गई हैं। नीचे आपके रचित ग्रन्थों एवं वैद्यकीय सेवाओं का यत्किंचित् विवरण दिया जा रहा है :—

**1—सर्प-विष-विज्ञान**—जो प्रथमतः सन् 1931 ई० में प्रकाशित हुआ। मूल्य 1.00 रुपया और अब 2.00 है। इस पुस्तिका पर म० म० कविराज गणनाथ सेन सरस्वती जैसे दिग्गजों की सम्मतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। प्र० 159

**2—आयुर्वेदीय कोष**—भाग 1 का प्रथम संस्करण (अ-अन्ध्ययः तक) सन् 1932 ई० में प्रकाशित हुआ। मूल्य 1.00 रुपया। पृष्ठ 107। इसी का द्वितीय परिवर्धित संस्करण सन् 1934 ई0 में (अज्ञातयक्ष्मा, शब्द संख्या 10250) मूल्य 6.00 रुपया, तृतीय संस्करण का मूल्य 16.00 रुपये है। पृ० 788।

**3—आयुर्वेदीय कोष बनाम आयुर्वेदीय विश्वकोश**—प्रथम संस्करण सम्वत् 1995 वि० अर्थात् सन् 1937 ई० (अंक-एक्सट्रैक्टम् शब्द संख्या 10626) मूल्य 16.00 रुपये। इसके उपर्युक्त भागों पर निखिल भारत वर्षीय सप्तविंशतितम वैद्य सम्मेलन नागपुर द्वारा स्वर्ण पदक और प्रथम श्रेणी का प्रमाण-पत्र (दिनांक 17-8-28 को) प्राप्त हो चुका है। पृ० 889।

**4—आयुर्वेदीय विश्वकोश भाग 3**—प्रथम संस्करण प्रकाशित संवत् 1999 वि० तदनुसार सन 1942 ई०, (एक्स्ट्रैक्टम्-कौहान, शब्द संख्या 10625) मूल्य 16.50 रुपये। पृ० 693।

**5—आयुर्वेदीयविश्वकोश भाग 4**—प्रथम संस्करण सन् 1969 ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। (काअ—गिरिकाण तक) मूल्य 30.00 रुपये। पृ० 680।

**विशेष**—इसके सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सचिव स्व. चन्द्रमौलि शर्मा जी ने अपने प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा है, कि अभी तक किसी भी भारतीय भाषा में ऐसा विश्वकोश प्रकाशित नहीं हुआ है। इस भाग को प्रकाशित हुए प्रायः 5 वर्ष हो रहे हैं। परन्तु इसके अगले भागों (प्रायः 3 या 4) के प्रकाशन के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिकारीगण प्रायः चुप्पी साधे हुए है।

**6—यूनानी सिद्ध-योग संग्रह**—प्रथम संस्करण प्रतियाँ 4000, प्रकाशित सन् 1947 ई०, प्रकाशक बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, मूल्य 2.50 रु०। द्वितीय संस्करण सन् 1955 ई०, प्रतियाँ 3000। मूल्य 2.75। तृतीय संस्करण सन 1962 ई०, प्रतियाँ 3000। मू० 2.81। पृष्ठ 235।

**विशेष**—आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा 1957 ई० में इस ग्रन्थ पर 100.00 रु० पुरस्कार-स्वरूप प्राप्त हुआ है।

**7—यूनानी-द्रव्यगुण विज्ञान**:-संपूर्ण-प्रथम संस्करण संवत् 2005 वि० तदनुसार सन् 1949 ई०। मूल्य 22.00 रुपये। पृ० 594। मूल्य 35.00 रुपये।

**विशेष**—यह ग्रन्थ यूनानी विद्यालयों के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखा गया है। आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी

उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा इसपर **प्रथम श्रेणी के पुरस्कार-स्वरूप 500.00 रुपये** प्राप्त हुए है तथा झांसी आयुर्वेद विश्वविद्यालय के तत्वावधान में आयोजित दीक्षांत समारोह में सम्माननीय स्वास्थ्य मन्त्रिणी श्रीमती अमृतकौर के हाथों से इस ग्रन्थ पर लेखक को **आयुर्वेद- बृहस्पति** (D. Sc. A.) की सम्मानित उपाधि तथा **स्वर्णपदक** भी प्राप्त हुआ है।

**8–यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धांत (कुल्लियात)**—पूर्वार्द्ध प्रथम संस्करण संवत् 2005 वि० तथा सन् 1950 ई०। मूल्य प्रथमतः 1.25 और अब 2.00 रुपये। पृ० 96।

**विशेष**—यह ग्रन्थ भी यूनानी विद्यालयों के पाठ्यक्रम के अनुसार परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से लिखा गया है।

9. **यूनानी चिकित्सा-विज्ञान ( पूर्वार्ध )**—प्रकाशित सन् 1951 ई० (सम्वत् 2009 वि) मूल्य 8.50 रु०। पृ० 693।

**विशेष**—आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा इस पर द्वितीय श्रेणी के पुरस्कार-स्वरूप 125.00 रुपये प्राप्त हुए हैं।

10. **रोगनामावली कोष तथा वैद्यकीय मान-तौल**—प्रथम संस्करण सम्वत् 2008 वि० (सन् 1951 ई०) प्रकाशक—चौखम्भा, संस्कृत सीरीज। मू० 3.50 रु०। पृ० 268।

**विशेष**—भारतीय चिकित्सा परिषद्, उत्तर प्रदेश, लखनऊ (द्वारा इस ग्रन्थ पर दिनांक 9-3-52 ई० को) 15000.00 रुपये प्रकाशकीय सहायता (अनुदान) स्वरूप प्राप्त हुआ था।

11. **यूनानी चिकित्सा सार**—यह बैद्यनाथ प्रकाशन है। प्रकाशित प्रथम संस्करण सम्वत् 2010 वि० (सन् 1953 ई०) मूल्य 4.50 द्वितीय संस्करण सन् 1963 ई०। पृ० 564।

**विशेष**—इसके प्रथम संस्करण पर आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी उत्तर प्रदेश (लखनऊ) द्वारा द्वितीय श्रेणी के पुरस्कार-स्वरूप सन् 1956 ई० में 200.00 रुपये प्राप्त हो चुके हैं।

12. **आयुर्वेद यूनानी समन्वयांक**—श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा प्रकाशित 'सचित्र आयुर्वेद' के विशेषांक का सफल संपादन। पृ० 200।

13. **यूनानी चिकित्सांक**—धन्वन्तरि के विशेषांक का संपूर्ण लेखन और संपादन। पृ० 520।

14. **यूनानी द्रव्यगुणादर्श**—द्रव्य गुण के मूलभूत सिद्धान्त, परिभाषा और भेषज कल्पनादि विज्ञानीय प्रथम खण्ड, प्रकाशित (सन् 1972-73)। मूल्य 25.00 रु०। पृ० 407-366।

**विशेष**—इस ग्रन्थ पर लेखक को बीरबल साहनी विशेष वैज्ञानिक पुरस्कार-स्वरूप 1000.00 और उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल महोदय के हाथों पारितोषिक प्रमाणपत्र मिला है।

15. **यूनानी द्रव्यगुणादर्श** :—उदिभ्ज्ज औषधाहार द्रव्यविज्ञानीय **द्वितीय खण्ड**, सन् 1974 ई० मूल्य 50.00। पृ० 992।

16. **यूनानी द्रव्यगुणादर्श तृतीय खण्ड** :—प्राणिजः—जान्तव औषधाहार द्रव्य विज्ञानीय प्रथम विभाग, पार्थिव—खनिज औषधहार द्रव्य विज्ञानी द्वितीय विभाग, विविध औषधाहार द्रव्य विज्ञानीय। छप गया। पृ० 326, 269।

आपके इन उपर्युक्त ग्रन्थों पर प्रायः आयुर्वेदीय (हिंदी, मराठी, गुजराती) तथा यूनानी (उर्दू) पत्र-पत्रिकाओं में स्तुत्य समीक्षाएं प्रकाशित्त की गई हैं तथा भारतवर्ष के कोने-कोने से ख्यातनामा प्रथितयश वैद्य, हकीम, डाक्टर बंधुओं की शतशः सम्मतियां एवं शुभकामनाएं प्राप्त हुई हैं और समय-समय पर आती रहती है। स्थानाभाव के कारण उन सबको यहां उद्धृत करना संभव नहीं है। कुल पृ० संख्या 8004।

**प्रकाशनार्थ प्रस्तुत ग्रन्थ (पांडुलिपि)**

17. **आयुर्वेदीय विश्वकोष** के शेष आगामी तीन या चार खण्ड (पृ० संख्या लगभग 3000)।

18. **हुम्मयात कानून** :—शेखर्रईस बूअली सीना लिखित अल्कानून ग्रन्थ का ज्वराध्याय का हिन्दी भाषानुवाद। यूनानी चिकित्सा विज्ञान उत्तरार्ध का प्रथम खण्ड। पृ० सं० लगभग 500।

लेखनाभिमुख ग्रन्थ
(सामग्री तैयार)

19. आयुर्वेदीय विश्वकोश (संक्षिप्त संस्करण एक खण्ड में)।
20. आहाराचार रसायन।
21. भस्म-ज्ञान-विज्ञान।
22. पुरुषरोग-चिकित्सा-विज्ञान।
23 औपसर्गिक पूयमेह (सूजाक) विज्ञान।
24. फिरंगोपदेश विज्ञान।
25. सिद्धयोगरत्नावली (सिद्ध योग रत्न-संग्रह)
26. यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धांत (कुल्लियात) उत्तरार्ध।
27. यूनानी चिकित्सा विज्ञान (उत्तरार्ध)—आशिरःपाद समस्त रोगी निदान-चिकित्सादि सम्मलित—दो या तीन खण्डों में।
28. मनुष्य और उसका अंतिम लक्ष्य-आवागमन से मुक्ति, मोक्ष एवं शांति—उसकी प्राप्ति के अनुभवपूत साधन—सुरत शब्द योग।

# सामयिक चर्चाएँ

## अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का हीरक जयन्ती ग्रंथ

माननीय विद्वत्वृन्द,

आपको सुविदित है कि आयुर्वेद विज्ञान की सुरक्षा एवं समुन्नति तथा तदर्थ भारतीय वैद्य समाज के उत्थान की दिशा में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन अपने स्वर्णिम अस्तित्व के ७०वर्ष पूरे कर चुका है। इस संबंध में महासम्मेलन की स्थायी समिति ने अपने अधिवेशन दिनांक 27 जून, 1977 में निश्चित किया है कि आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति एवं विषय में महासम्मेलन द्वारा किये गये ऐतिहासिक कार्य का विवरण देते हुए "अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन हीरक जयन्ती ग्रन्थ" प्रकाशित किया जाए। अब प्रस्तावित ग्रन्थ की रूपरेखा गम्भीरतापूर्वक विचारार्थ निम्नोद्धृत है।

### हीरक जयन्ती ग्रंथ की रूपरेखा

(क) प्राक्कथन

(ख) विषयानुक्रमणिका

(ग) ग्रन्थ में प्रकाशित होने वाले छाया-चित्रों की सूची।

(घ) संस्था के संस्थापक स्वर्गीय आयुर्वेद महोपाध्याय श्री शंकर दाजी शास्त्री पदे का पूर्ण पृष्ठीय चित्र।

**अध्याय 1**

**प्रथम लेखमाला**—आयुर्वेद का इतिहास एवं वेद-वेदांग तथा शास्त्रों में इसका वर्णन।

**द्वितीय लेखमाला**—विश्व की सभी चिकित्सा-पद्धतियों का मूल स्रोत 'आयुर्वेद'।

**तृतीय लेखमाला**—आयु एवं चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में विभिन्न दृष्टिकोणों में आयुर्वेद का विशेष महत्व स्थापित करने हेतु अकाट्य तर्कों एवं मार्मिक तथ्यों तथा आंकड़ों से परिपूर्ण पांडित्यपूर्ण लेख।

**अध्याय 2**

आयुर्वेद के संरक्षण एवं संवर्द्धन की दिशा में अखिल भारतीय आयुर्वेद महाम्मेलन तथा तदन्तर्गत निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ एवं आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका की महत्वपूर्ण भूमिका एवं इनके क्रिया-कलापों का उल्लेख।

**अध्याय 3**

पूर्व प्रकाशित रजत जयन्ती ग्रन्थ से अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन तथा निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के भूतपूर्व समस्त प्रधानों के संक्षेप में जीवन-वृत्त, उनके भाषणों का सारांश तथा चिकित्सा-क्षेत्र में उनके अनुभव एवं आयुर्वेद के उत्थानार्थ उनके द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण सुझावों का उल्लेख।

**अध्याय 4**

सन् 1935 से 1969 पर्यन्त महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के अध्यक्षों एवं अन्य प्रमुख अधिकारियों का संक्षिप्त जीवन-वृत्त, चिकित्सा-क्षेत्र में उनके अनुभव तथा आयुर्वेद के उत्थानार्थ उनके द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण सुझावों का उल्लेख।

**अध्याय 5**

सन् 1970 से 1979 पर्यन्त महासम्मेलन-विद्यापीठ के अध्यक्षों तथा अन्य प्रमुख अधिकारियों का संक्षेप में परिचय एवं इस बीच में संस्था द्वारा किये गये कार्यों का संक्षेप में इतिवृत्त।

**अध्याय 6**

धन्वन्तरि भवन परियोजना का परिपूर्ण विवरण और योजनान्तर्गत हुए कार्य का उल्लेख दानदाताओं की सूची सहित।

**अध्याय 7**

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के 66 वर्षों में प्रकाशित लेखों की विषयवार अनुक्रमणिका (इन्डेक्स)।

**अध्याय 8**

विभिन्न महासम्मेलनों द्वारा पारित महत्वपूर्ण प्रस्ताव।

**अध्याय 9**

"आयुर्वेद जगत के वर्तमान स्तम्भ"—शीर्षक के नीचे आयुर्वेद जगत की वर्तमान प्रतिष्ठित विभूतियों का परिचय दिया जायेगा।

**अध्याय 10**

महासम्मेलन के अखिल भारतीय संगठन की वर्तमान स्थिति, प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलनों के पते तथा प्रांतीय क्रम से सदस्य संख्या आदि का विवरण।

**अध्याय 11**

पूर्व प्रकाशित रजत जयन्ती ग्रन्थ में प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलनों के इतिवृत्त का सारांश एवं उक्त ग्रन्थ में वर्णित आयुर्वेद की अन्य पुरातन विभूतियों का संक्षेप में जीवन वृत्तांत तथा उनके भाषणों का सारांश एवं आयुर्वेद के उत्थानार्थ उनके द्वारा दिये गये महत्वपूर्ण सुझावों का उल्लेख।

**अध्याय 12**

सन् 1936 से 1977 पर्यन्त प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलनों तथा उनके भूतपूर्व एवं वर्तमान अध्यक्षों का परिचय तथा प्रत्येक प्रादेशिक आयुर्वेदिक सम्मेलन के अभी तक के सम्पूर्ण क्रियाकलापों का इतिवृत्त।

**अध्याय 13**

भारत की केन्द्रीय सरकार द्वारा (क) स्वतंत्रता से पूर्व एवं (ख) स्वतंत्रता के पश्चात् किये गये आयुर्वेद सम्बन्धी कार्यों तथा छयों पंचवर्षीय योजनाओं में आयुर्वेद के स्थान एवं तत्सम्बन्धी विशेष योजनाओं का विवरण।

**अध्याय 14**

भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् अधिनियम का पारण तथा परिषद् का गठन एवं इसके द्वारा किये गये अभी तक के कार्य का विवरण।

**अध्याय 15**

आयुर्वेद तथा स्वास्थ्य के विषय पर भारत सरकार द्वारा निर्मित विशिष्ट समितियों के कार्य एवं प्रतिवेदनों का विवरण।

**अध्याय 16**

प्रान्तीय सरकारों द्वारा आयुर्वेद के लिये किये गये कार्यों का विवरण।

**अध्याय 17**

आयुर्वेद के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों द्वारा निर्मित विशिष्ट समितियों के कार्य एवं प्रतिवेदनों का विवरण।

**अध्याय 18**

देशीय चिकित्सा-पद्धति केंद्रीय अनुसन्धान परिषद् की स्थापना एवं उसके कार्य का विवरण।

**अध्याय 19**

वर्तमान आयुर्वेदिक अनुसंधानशालाओं का इतिवृत्त।

**अध्याय 20**

भारत में प्रादेशिक चिकित्सा परिषदों (बोर्ड्स) का इतिवृत्त।

**अध्याय 21**

भारत में आयुर्वेदिक फैकल्टीज तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों में आयुर्वेदिक फैकल्टीज का इतिवृत्त।

**अध्याय 22**

भारत में आयुर्वेदिक शिक्षा

(क) आयुर्वेद शिक्षा के क्षेत्र में विद्यापीठ के कार्य का विवरण।

(ख) विद्यापीठ के कुछ प्रतिष्ठित स्नातकों का शासकीय चिकित्सा एवं शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान।

(ग) विद्यापीठीय विशेष-विशेष विद्यालयों सम्बन्धी विवरण।

(घ) विद्यापीठ के अतिरिक्त राजकीय तथा फैकल्टीज के विद्यालयों का विवरण।

(ङ) (i) केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकारों तथा (ii) गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा अभी तक किए गए स्नातकीय तथा स्नातकोत्तरीय आयुर्वेद शिक्षण के कार्य का इतिवृत्त।

**अध्याय 23**

भारत से इतर देशों जैसे कि नेपाल, श्रीलंका, बर्मा, थाइलैंड, जापान, अमरीका एवं पश्चिम जर्मनी आदि देशों में आयुर्वेद की स्थिति।

**अध्याय 24**

आयुर्वेद में रोगी सेवा-सुश्रूषा (नर्सिंग इन आयुर्वेद)।

**अध्याय 25**

भारत में आयुर्वेदिक आतुरालयों एवं सुप्रसिद्ध चिकित्सालयों का इतिहास एवं विवरण।

**अध्याय 26**

वृक्ष आयुर्वेद।

अध्याय 27

(क) आयुर्वेदिक वनस्पतियों का उल्लेख एवं इनके उत्पादन के क्षेत्रों का उल्लेख, (ख) आयुर्वेद की दुर्लभ एवं दिव्य औषधियों का विवरण तथा उनकी उपलब्धि के स्थान अथवा स्रोत का उल्लेख, तथा (ग) आयुर्वेद में विवादास्पद औषधियों के विषय में विचार।

अध्याय 28

आयुर्वेदिक वनस्पतियों, कच्चे द्रव्यों एवं खनिजों की प्राप्ति की मंडियों का विवरण।

अध्याय 29

आयुर्वेद में औषध-निर्माण तथा आयुर्वेद में औषध मानदण्ड निर्धारण।

अध्याय 30

भारत में आयुर्वेदिक फार्मेसियों का संक्षिप्त विवरण।

अध्याय 31

आयुर्वेदिक पत्र-पत्रिकाओं का संक्षेप में परिचय एवं इतिहास।

अध्याय 32

आयुर्वेदिक साहित्य का विवरण एवं (क) वर्तमान में प्रतिष्ठित ग्रन्थों के लेखकों का परिचय, (ख) उन ग्रन्थकारों का उल्लेख जिनके ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं हैं किन्तु उनके निर्देश अथवा संकेत मिलते हैं, (ग) नष्ट ग्रन्थों का उल्लेख तथा हस्तलिखित एवं अप्रकाशित ग्रन्थों का परिचय, एवं (घ) यथाशक्य आयुर्वेद की उपलब्ध अप्रकाशित पाण्डुलिपियों का उल्लेख तथा यथासाध्य प्राप्ति स्थान।

अध्याय 33

वंश परम्परा से आयुर्वेद के विभिन्न अंगों में दक्ष चिकित्सकों का विवरण—यथा नेत्र चिकित्सा, सर्प चिकित्सा, विष चिकित्सा, अस्थि भंग चिकित्सा तथा शल्य-शालाक्य प्रभृति चिकित्सा में विशिष्ट चिकित्सकों का विवरण।

अध्याय 34

आयुर्वेद के विभिन्न आवश्यक अंगों पर लेखमाला—विषय (क) पालतू पशुओं जैसे कि अश्व, गऊ, भैंस, बकरी, ऊंट तथा हस्ति चिकित्सा का आयुर्वेद में वर्णन।

(ख) आयुर्वेद में मंत्र तथा योग चिकित्सा का विवरण।

(ग) आयुर्वेद में जीव भौतिकी व जीव रसायन तथा सूक्ष्म जन्तु विज्ञान एवं इसी प्रसंग में आधुनिक चिकित्सा का समावेश।

(घ) आयुर्वेद में मनोविकार विज्ञान तथा भूत विद्या।

(ङ) आयुर्वेद में समाजपरक एवं निरोधक औषधियाँ।

(च) आयुर्वेद में पंचकर्म चिकित्सा।

(छ) आयुर्वेद तथा आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा।

(ज) आयुर्वेद में परिवार नियोजन—प्राचीन प्रणाली।

अध्याय 35

ग्रामीण गीतों (फोक लोर) में चिकित्सा के उपलब्ध साहित्य का उल्लेख।

आपसे सानुरोध विनम्र प्रार्थना है कि दी गई रूपरेखा का सम्यक् मनन करें तथा इसमें सुधारार्थ अपने अमूल्य सुझावों से हमें यथाशक्य शीघ्र उपकृत करें ताकि सम्पूर्ण योजना को परिष्कृत करके ग्रन्थ के सम्पादन का कार्य विधिवत् प्रारम्भ किया जा सके। आप विभिन्न विषयों सम्बन्धी प्रामाणिक सूचनायें भेजिये, लेख भेजिये तथा अपना बहुमूल्य परामर्श भी दीजिये ताकि इस कार्य का सम्यक् प्रकार सम्पादन किया जा सके।

इस महान् आयोजन में सम्पूर्ण वैद्य समाज का अमूल्य सहयोग परमापेक्षित है। जो महानुभाव इसमें सक्रिय भाग लेंगे उनका परिचय भी ग्रन्थ में प्रकाशित किया जायेगा। अतः सभी से विनम्र अनुरोध है कि विषय में अपनी रुचि की स्वेच्छा से शीघ्र सूचना दें तथा यह भी लिखें कि वे किस अंश में सहयोग देना चाहते हैं।

धन्यवाद सहित।

आपका
श्री कृष्ण मुलतानी
प्रधानमंत्री
अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

नई दिल्ली, दिनांक १ जनवरी, १९७९

# आलोचक की दृष्टि में

**घरेलू नुस्खे : लेखिका—सौ० लीला बांदिवडेकर; प्रकाशक : हरिचन्द एल० मेहता—हरिश्चन्द्र मेहता पब्लिक चैरिटेबुल ट्रस्ट, 3251, 'ए' वार्ड, महाद्वार रोड, कोल्हापुर 416002; मूल्य : चार रुपया।**

मेहता चेरिटेबुल ट्रस्ट आयुर्वेदीय साहित्य के प्रकाशन की दिशा में स्तुत्य प्रयास कर रहा है और उसके कई महत्वपूर्ण प्रकाशन आयुर्वेद जगत के सामने आ चुके हैं। अस्तु, आलोच्य पुस्तिका भी इसी ट्रस्ट का नवीनतम प्रकाशन है। निःसन्देह पुस्तिका उपयोगी है। प्रत्येक परिवार में रखने लायक है क्योंकि दैनंदिन प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ, जैसे लौंग, दालचीनी, जीरा, काली मिर्च, लाल मिर्च, नारियल, अजवायन, हल्दी, राई, मुलेठी, मूंगफली, लहसुन, प्याज प्रभृति से संबंधित नुसखों का वर्णन बहुलता से इसमें है। मानव शरीर जिन अनेक व्याधियों से समय-असमय पीड़ित होता रहता है और जिनसे मुक्ति पाने के लिए लोग अनेक प्रकार की औषधियों की शरण में जाने के लिए मजबूर होते हैं, की चिकित्सा साधारण चीजों से तैयार किए गए नुस्खों से सहज ही हो जाती है। ऐसे नुसखे जीवन में बहुत लाभप्रद सिद्ध होते रहे हैं और आज भी उनकी उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता।

प्रस्तुत पुस्तिका का सचमुच उपयोगिता की दृष्टि से सर्वत्र समादर होगा, ऐसी आशा है।

एक त्रुटि अवश्य खटकती है, वह है भाषा की अशुद्धि। पुस्तिका चूँकि एक अहिन्दी - भाषी लेखिका द्वारा लिखी गयी है, इसलिए भाषागत अशुद्धियां ढेर-सी हैं, आशा है अगले संस्करण में इस त्रुटि का परिमार्जन करने की दिशा में लेखिका और प्रकाशक दोनों ही सचेष्ट रहेंगे। छपाई-सफाई की दृष्टि से पुस्तिका का प्रकाशन उत्तम है।

—शाण्डिल्य

**कल्याण (सूर्य अंक) : सम्पादक-मुद्रक एवं प्रकाशक : मोतीलाल जालान, प्रकाशक : गीता प्रेस, गोरखपुर, मूल्य : 14 रु०।**

गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित प्रमुख धार्मिक एवं सनातनी मासिक पत्र 'कल्याण' का जनवरी अंक (1978) इस वर्ष सूर्य-अंक के रूप में प्रकाशित किया गया है। 'कल्याण' की विशेषांक-प्रकाशन की उदात्त परम्परा के अनुरूप ही प्रस्तुत विशेषांक का प्रकाशन हुआ—आकार, विषय-सामग्री, चित्र-संग्रह, स्वच्छता, शुद्धता प्रभृति सभी दृष्टियों से विशेषांक का प्रकाशन सर्वथा सराहनीय एवं स्पृहणीय है।

भारत की धर्मनिष्ठ जनता के मनोराज्य पर गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्य का अक्षुण्ण प्रभाव है और इस बात को भी अस्वीकारा नहीं जा सकता कि धार्मिक साहित्य के प्रकाशन की दिशा में गीता प्रेस की सेवाएं ऐतिहासिक कही जायगी।

सूर्य को वैदिक साहित्य में 'सविता' की संज्ञा दी गई है—समस्त जगत की सृष्टि-पालन एवं संहार में सूर्य कारण-स्वरूप हैं। इससे उन्हें आलोक देवता के रूप में समस्त भारतीय वाङ्मय में प्रतिष्ठित किया गया है—समस्त भारतवासी अर्घ्य दान के रूप में अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। सूर्य की महिमा-सम्बन्धी वर्णन से भारतीय कितना ओतप्रोत है, यह सर्वविदित है।

अतएव सूर्य के सम्बन्ध में इतना विशाल साहित्य इस विशेषांक में संग्रहीत है कि अकेले इस विशेषांक से ही प्रभूत जानकारी धर्मप्राण जनता को उपलब्ध हो जायगी। विशेषांक का प्रकाशन सर्वथा स्तुत्य है। आशा है इसका स्वागत पूर्व विशेषांकों की तरह होगा।

—शांडिल्य

**Science and philosopy of Indian medicine : Edited by K. N. UDUPA & R. H. Singh; Banaras Hindu University): Published by Shree Baidyanath Ayurved Bhawan Ltd, Nagpur-9. Price-Rs. 23/—**

The book under review gives a complete picture of Science & philosophy of Indian medicine. Thosre who want to derive more

about the basic principles of Indian medicine, must be benefited by the Publication of this useful treatise. There is no denying the fact that without being fully conversant with the basic concepts of Indian medicine (Ayurved) no physician or scholor can earn laurels in his field.

Needlees to say that Indian medicine is rich in its basic tenets & its approach basically differs from other prevalent systems of medicine.

I am at at one with the learned Editor of this monograph, that Indian system of medicine has laid great emphasis for taking man's Psychosomatic constitution as a whole in solving various problems of health & disease. As a matter of fact, there was no such book which dealt with that problems in details. No doubt, this publication would fill up this void & go a long way in educating the modern & ancient physicians as well in this regard.

All Contributors to this volume are well-known names in the field of Ayurved and they all are held in the highest esteem so far as their scholarship and erudition are concerned.

The learned Editor deserves special mention for bringing out this useful monograph to the world of medical science.

The printing, get up, and cover are of high order & the price of the book is also not high and it will be helpful in the way of popularising the book.

I fervently hope that the book will attract the attention of the scholars & researchers of Ayurved and as well as modern medical men.

—Shandily




माननीय शेख अब्दुल्ला,
मुख्य मन्त्री,
जम्मू एवं क़श्मीर राज्य।

महोदय,

भारतीय चिकित्सा संगठन की यह केन्द्रीय कार्यकारिणी,जिसका अधिवेशन वाराणसी में 19 मार्च, 1979 को सम्पन्न हुआ, यह कमी अनुभव करती है कि आपके राज्य में स्थापित एकमात्र आयुर्वेदिक कालेज शीघ्र ही बन्द होने जा रहा है क्योंकि आपके प्रशासन ने अनेक वर्षों से उक्त कालेज में प्रवेश पर रोक लगा दी है।

आज भारत के सभी प्रांतों में देशीय चिकित्सा-पद्धति के अनेक कालेज स्थापित हैं। महात्मा गांधी के शब्दों में—"भारत गांवों में बसता है"—के अनुसार प्रत्येक ग्रामवासी देशीय चिकित्सा करवाना ही पसंद करता है। देशीय चिकित्सा पद्धति के लिए जड़ी-बूटियों की प्रचुर आवश्यकता पड़ती है। जम्मू एवं कश्मीर एक ऐसा राज्य है जिसकी पर्वतमालाओं पर असंख्य जड़ी-बूटियां उगी हुई आज भी मिलती हैं। हिमाचल प्रदेश एवं जम्मू-कश्मीर ये दो ऐसे प्रांत हैं जहां आज से हजारों वर्ष पूर्व चिकित्सा-शास्त्र के प्रवर्त्तकों जैसे—चरक एवं दृढ़बल ने जन्म लेकर आरोग्य शास्त्र की नींव डाली। यह वही स्थान है जहां पुराने जमाने में अनेक क़ान्फ्रेंसें हुईं और बड़े-बड़े स्कूल खोले गए। हिमाचल प्रदेश में तो वहां के प्रशासन ने दो-दो कालेज एवं एक रिसर्च इंस्टीच्यूट खोल रखी है। वानस्पतिक सम्पदा के उपयोग का इससे अच्छा और कोई उपयोग मानवता के कल्याण के लिए नहीं हो सकता।

आप बड़े पुराने जनसेवी एवं गरीबों के पोषक रहे हैं। जड़ी-बूटियाँ अंग्रेजी दवाओं की अपेक्षा कहीं अधिक सस्ती एवं निरापद होती हैं। अतः आपसे कार्यकारिणी यह प्रार्थना करती है कि जम्मू के आयुर्वेदिक कालेज में फिर से छात्रों के प्रवेश लेने की अनुमति तत्काल प्रदान की जाय।

आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि आपके धर्मनिरपेक्ष प्रशासन में अंग्रेजी चिकित्सा-विज्ञान के साथ देशीय चिकित्सा-विज्ञान को भी वरद हस्त मिलेगा।

डा॰ सत्येन्द्र प्रसाद मिश्र
राष्ट्रीय महामंत्री,
केन्द्रीय कार्यालय
शिवाला. वाराणसी




## श्रीलंका में ९० प्रतिशत जनता आयुर्वेद पर निर्भर

यद्यपि आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति का उदभव भारत में हुआ, फिर भी एक स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई है जब कि चिकित्सा के कुछ क्षेत्रों में उसे श्रीलंका का सहयोग प्राप्त करना है।

वैद्यराज श्री जगदीश प्रसाद शर्मा, जो हाल ही दो सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल के एक सदस्य की हैसियत से श्रीलंका गये थे, ने एक वक्तव्य में बताया कि अष्टांग आयुर्वेद के तीन प्रमुख अंगों—यथा शालाक्यतंत्र, भूतविद्या तथा अगदतंत्र का जहां तक सम्बन्ध है, उससे सम्बन्धित ज्ञान का भारत में लोप हो चुका है, जब कि श्रीलंका का वैद्य समाज आयुर्वेद चिकित्सा की इन शाखाओं के ज्ञान से अभी भी पूर्ण विज्ञ है। श्री जगदीश प्रसाद जी ने वक्तव्य में आगे बताया कि अगले माह में श्रीलंका से तीन सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल भारत आयेगा जो दोनों देशों में प्रचलित चिकित्सा-पद्धति की प्रक्रियाओं की जानकारी के बारे में सरकारी स्तर पर कार्यक्रम निर्धारित करेगा।

आपने पुनः कहा कि श्रीलंका में ९० प्रतिशत लोग केवल आयुर्वेदिक चिकित्सा पर ही निर्भर करते हैं और श्रीलंका की सरकार आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति के विकास की दिशा में विशेष रूप से प्रोत्साहन देती है। श्रीलंका की सरकार ने हाल ही में 108 एलोपैथिक औषधालयों को आयुर्वेदिक औषधालयों में परिवर्तित कर दिया है। वैद्यराज श्री जगदीश जी ने आगे कहा कि श्रीलंका में 10000 वैद्यों के अतिरिक्त वहां कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कुछ खास रोगों के विशेषज्ञ हैं। उदाहरणस्वरूप वहां आयुर्वेद चिकित्सकों में भग्न-अस्थि-चिकित्सा, सर्प दंश तथा मंत्र चिकित्सा में दक्षता प्राप्त लोग भी हैं।

प्रतिनिधिमंडल के एक विशिष्ट सदस्य आयुर्वेद-चक्रवर्ती पं० दुर्गा प्रसाद जी शर्मा ने, जो भारत के फार्मेसिस्टों के प्रतिनिधि के रूप में श्रीलंका गये थे, अपने वक्तव्य में बताया कि उनकी यात्रा का सुखद परिणाम आयुर्वेदिक औषधियों के उत्पादन के लिए श्रीलंका में भारत और श्रीलंका के सहयोग से तीन 'जवायन्ट वेन्चर' की कार्यान्विति है।

## आयुर्वेद मण्डल की बैठक

आयुर्वेद मंडल की सर्वसाधारण सभा शनिवार दिनांक 17 मार्च 1979 को कार्यालय में वैद्य सुरेश चतुर्वेदी की अध्यक्षता में हुई।

उपर्युक्त सभा में निर्दिष्ट कार्यक्रम के पश्चात् नयी कार्यकारिणी का चुनाव हुआ जो निम्नानुसार है :—

कार्यकारिणी 1979

| | |
|---|---|
| संस्थापक संरक्षक— | वैद्य सुरेश चतुर्वेदी |
| अध्यक्ष— | डा. चन्द्रशेखर ठक्कर |
| उपाध्यक्ष— | वैद्य श्री. श्री. भावे |
| मन्त्री— | एस. एस. सेवक |
| सह-मन्त्री— | बाबूभाई भट्ट |
| कोषाध्यक्ष— | डा. सुकल्याबेन भट्ट |
| सह-कोषाध्यक्ष— | ,, पुरुषोत्तम धुलिया |
| प्रचार प्रमुख— | ,, प्रवीण कुमार बाजा, |
| कार्यालन प्रमुख— | वैद्य मंगलमूर्ति शनिवारे |

चुनाव के पश्चात् डा० बाबूभाई भट्ट ने मंडल की एक प्रसार मंत्रणा हेतु आयुर्वेद के विद्यार्थियों को भी केवल 2 रु. वार्षिक शुल्क लेकर असोशियेट मेंबर बनाने का प्रस्ताव रखा जो सर्वसम्मति से पारित हुआ।

2. तत्पश्चात् मंडल के मन्त्री श्री एस० एस० सेवक जी ने सभी सदस्यों को चित्र प्रदर्शनी बतायी जिसमें आयुर्वेद का इतिहास, वनस्पति, ज्योतिष आदि का समावेश किया गया था।

## "मंत्र, तंत्र, यंत्र विद्या में आयुर्वेद"

आयुर्वेद फंडामेंटल रिसर्च सेंटर की ओर से बम्बई में—"तंत्र, मंत्र, एवं यंत्र शास्त्र में आयुर्वेद" इस विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन हुआ।

कार्यक्रम के प्रारम्भ में डा० हरि जोगलेकर जी ने

मंगलाचरण किया।

स्वागत एवं प्राक्कथन के अपने भाषण में "आयुर्वेदिक फंडामेंटल रिसर्च सेंटर के मानद डायरेक्टर वैद्य सुरेश चतुर्वेदी ने सर्वप्रथम गोष्ठी में सम्मिलित महानुभावों का स्वागत कर परिचय दिया। रिसर्च सेंटर का परिचय देते हुए श्री चतुर्वेदी ने सेंटर की ओर से किये जाने वाले कार्यों पर प्रकाश डाला। उन्होंने आयुर्वेद की संलग्न विद्या मंत्र, तंत्र तथा यंत्र शास्त्र का होते जा रहे ह्रास पर दुःख प्रकट किया। और इसी विद्या को फिर से नया रूप देने का प्रमुख कार्य रिसर्च सेंटर करेगा, यह बता कर सभी इस विद्या के जानकार लोगों से सहायता करने की अपील की।

प्रस्तुत गोष्ठी के, प्रमुख वक्ता पुनर्बसु आयुर्वेदिक कालेज के प्राचार्य वैद्य वासुदेव लाटाजी ने कहा, शरीर और मन के विचल हो जाने से ही आदमी बीमार होता है। आयुर्वेद में मणि, मंत्र, औषध यह दिव्यशाली शक्तियाँ हैं। शब्द यह ब्रह्म है। इसीलिये मंत्र के पुनरुच्चारण से शब्द से अर्थ बनता है और वही कार्यक्षम बनता है, इसी को मंत्र कहते हैं, अर्थात् गुरुश्रद्धा और साधना इस पर उसका प्रभाव निर्भर है।

इस विद्या के जानकार वैद्य सेवक जी ने अपने भाषण में कहा, शब्द के आन्दोलन से शक्ति तैयार होती है, इसी शक्ति को मंत्र कहते हैं। जीभ से सारे शरीर में कंपन निर्मित होता है। स्थावर मंत्र—शब्दविन्यास-ध्वनि आघात यही रोग निर्माण करते हैं या रोग नष्ट करते हैं। अर्थात् सेवाभावी व्यक्ति ने रोग नष्ट करने के लिये इस विद्या को हासिल करने के लिये योग साधना करने के लिये प्रयास करना चाहिये. इसी के साथ रिसर्च सेंटर के कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

श्री देवेन्द्र शर्मा जी ने अपने भाषण में अपने अनुभव बताये। अणु-अणु में मंत्र, तंत्र, यंत्र ठीक प्रकार समाविष्ट हैं और गायत्री मंत्र की शक्ति का महत्व बताते हुये उन्होंने शरीर पर होने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया।

पं० मेघाराम शर्मा ने अपने भाषण में कहा, कंपन सारे संसार में व्याप्त है। संसार में पांच तत्व प्रधान हैं, जिसमें सूर्य यह ब्रह्मा का रूप है। इसकी उपासना से ही कंपन निर्मित होता है और इसी उपासना के शब्दाघात से यंत्र, मंत्र, तंत्र विद्या होती है।

प्रो० श्री रमण भाई मिस्त्री जी ने मंत्र, तंत्र, यंत्र विद्या में मंत्र से ज्यादा सायलोजीकल इफेक्ट महत्वपूर्ण बताया। यह विषय आयुर्वेद के रसशास्त्र से सम्बन्धित है जिसका साहित्य संकलन महत्वपूर्ण है, यह भी उन्होंने अपने भाषण में कहा।

बम्बई के प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० जगन्नाथजी शर्मा ने अपने आजमाये प्रयोगों का उल्लेख किया। जिसमें नारायण कवच, महामृत्युंजय मंत्र ज्यादा प्रभावकारी सिद्ध हुये। जिनका प्रयोग केवल पूंजीपतियों के घर ज्यादा स्तर पर होता है। क्योंकि उन्हें किसी का धन नष्ट करने या स्वयं धनवान होने की ललसा रहती है।

तदनन्तर वैद्य सूरेश चतुर्वेदी ने भक्ति वेदान इन्स्टीट्यूट के संचालक माधव दास जी से समारोह करने की विनती की। अपने भाषण में श्री माधवदास जी ने "भगवद्गीता" में जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि इन श्रेणियों का विवरण दिया। थोड़ी साधना से निष्ट होनेवाले मानसिक रोग को डाक्टर लोग उलझनों में डालकर रोग को और असाध्य बना देते हैं। इसीलिये मंत्र, तंत्र, यंत्र शास्त्र का विकास करना जरूरी है। भगवद्गीता और रामायण का दृष्टि में यह प्राचीन सिद्ध शास्त्र ह। जिसे केवल साधना की जरूरत है।

अन्त में भक्त वेदान्त इन्स्टीट्यूट के प्रोफेसर श्री गोयल जी ने उपस्थित आभार व्यक्त करते हुये सभी को हरे कृष्ण मंदिर, जुहू में पधारने का निमंत्रण दिया।

## १६वां अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद्।

अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद् का १६वां वार्षिक अधिवेशन उल्हासनगर जिला थाना (महाराष्ट्र) में 22-23'24 मई ७९ को होने जा रहा है।

सम्मेलन का उदघांटन दिनांक 22 मई 1979 को केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री श्री रविराय एवं अध्यक्षता प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद जी करेंगे।

प्रसिद्ध सिन्धी सन्त स्वामी प्रेम प्रकाश जी हमाराज की ओर से उनके प्रतिनिधियों के भोजन और निवास आदि का प्रबन्ध किया जा रहा है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनन्य भक्त भारत के प्रधान

मंत्री श्री मोरारजी भाई से समापन समारोह में मार्ग-दर्शन करने की प्रार्थना की गयी है।

सम्मेलन में भारत के कोने-कोने से लगभग 2000 प्रतिनिधियों के भाग लेने की संभावना है। इस अवसर पर लोक शिक्षण की दृष्टि से एक प्राकृतिक चिकित्सा प्रदर्शनी का आयोजन भी किया जा रहा है।

प्रतिनिधियों के सम्मेलन में भाग लेने के लिए रेल मंत्रालय ने रेलवे कन्सेशन की सुविधा प्रदान की है। रेलवे कन्सेशन केन्द्रीय परिषद् की प्रान्तीय शाखाओं से प्राप्त किया जा सकता है।

## श्वास शिविर सम्पन्न

महामना स्वर्गीय वैद्य जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल की 41वीं पुण्यतिथि पर दिनांक 17 एवं 18 मार्चको वैद्य जी की स्मृति में स्थापित सेवा-सदन में आयुर्वेदीय पद्धति से श्वास चिकित्सा-शिविर का शुभारंभ वैद्य मदन मोहन ने धन्वन्तरि पूजन से किया-पश्चात् रोग का निदान करके शिविर का उद्घाटन वैद्य विरञ्ची शर्मा (कार्यवाहक अध्यक्ष रा० प्र० वै० सम्मेलन) ने किया।

दो दिवसीय इस शिविर में श्वास पीड़ित रोगियों का परीक्षण कर 'बम्बई से श्री कमला प्रसाद जैन' द्वारा प्रदत्त श्वास की महौषधि का मुफ्त वितरण किया गया। रोगी संख्या 1044 रही। चिकित्सा-क्रम अभी भी जारी है। चिकित्सा-सेवा में अनेक वैद्य संलग्न थे।

शिविर में विशेष अतिथि-रूप में झुंझुनु जिलाधीश श्री डी० सी० सामंत नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों के मध्य शिविर की संचालन व्यवस्था को पूर्ण मनोयोगपूर्वक देखते रहे व आयुर्वेदीय चिकित्सा-क्रम से अत्यन्त प्रभावित हुए।

## भारतीय प्राकृतिक चिकित्सक संघका अधिवेशन

भारत के प्राकृतिक चिकित्सकों का प्रथम और राष्ट्रीय सम्मेलन दिनांक 16, 17, 18 फरवरी 79 को महाराष्ट्र के औद्योगिक नगर धुले (धुलिया) में हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन महाराष्ट्र के राज्यपाल माननीय सादिक अली साहब ने किया।

सम्मेलन में देश के विभिन्न प्रदेशों और जनपदों से आये लगभग दो सौ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। अधिकांश प्रतिनिधि महाराष्ट्र प्रदेश और मध्यप्रदेश के थे। अधिक संख्या में प्रतिनिधियों के न आ सकने का कारण रेल-मन्त्रालय द्वारा रेल किराये में छूट न देने की नीति थी जिससे प्रतिनिधियों में व्यापक असंतोष था।

इनपा की कार्यकारिणी द्वारा नियुक्त विषय समिति ने प्राप्त प्रस्तावों में से केवल 96 प्रस्तावों पर विचार कर उन्हें स्वीकार किया, जिन्हें १७ तारीख को खुले अधिवेशन में प्रतिनिधियों ने पास कर दिया। इस अधिवेशन में पहली बार ही प्राकृतिक चिकित्सकों ने अपनी समस्याओं पर विचार किया और कई प्रस्ताव सैद्धान्तिक विषयों पर लाये गए जिनका दूरगामी प्रभाव होगा।

इनपा का यह सम्मेलन एक प्रकार से ऐतिहासिक था क्योंकि इसकी सारी कार्यवाही प्राकृतिक चिकित्सकों द्वारा और प्राकृतिक चिकित्सकों के हित में ही शुरू से आखिर तक रही। किसी भी बाहरी व्यक्ति का किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं था।

प्रतिनिधियों के ठहरने की उत्तम व्यवस्था आदरणीय विनोबा जी के छोटे भाई शिवाजी भावे के आश्रम में की गई थी। अतिरिक्त प्रतिनिधियों को ठहराने के लिये सम्मेलन के पास ही तम्बुओं का एक नगर बनाया गया था। प्रतिनिधियों के आवास और भोजन आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था निसर्गोपचार केन्द्र धुले के ट्रस्टी मंडल द्वारा की गयी थी। व्यवस्था उत्तम और पूरी तरह निःशुल्क थी।

इस सम्मेलन के लिये जो स्वागत समिति बनायी गई थी, उसके अध्यक्ष थे महाराष्ट्र के महसूल मंत्री माननीय उत्तम राव जी पाटिल, जिनकी कुशल व्यवस्था में कहीं कोई दोष नहीं था।

अधिवेशन की सारी कार्यवाही इनपा के अध्यक्ष डा० के० आर० दिलकश के कुशल नेतृत्व में संचालित हुई। इनपा के महामंत्री डा० योगेन्द्र नाथ मिश्र की रिपोर्ट के अनुसार इस समय इनपा का प्रादेशिक संगठन उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, जम्मू और कश्मीर, कच्छ, गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र पुणे में विधिवत कार्य कर रहा है। सुदूर पूर्व और दक्षिण के प्रदेशों में संगठन बनाने की दिशा में प्रयत्न चल रहा है। महासचिव की रिपोर्ट के अनुसार इस समय भारत में प्राकृतिक चिकि-

त्सकों की संख्या मोटे अनुमान से ८ हजार के लगभग हैं। भारतीय प्राकृतिक चिकित्सक संघ में विधिवत सदस्य संख्या 380 है जो अब तेजी से बढ़ती जा रही है।

**शिवरात्रि मेले में नेपाल आयुर्वेदीय संस्था द्वारा यात्री सेवा शिविर का आयोजन।**

**काठमांडो 24 फरवरी**

महाशिवरात्रि मेले में पशुपतिनाथ के दर्शनार्थ नेपाल अधिराज्य के चौध जिल्लों से तथा मित्रराष्ट्र भारत से आये हुए यात्रियों के निःशुल्क उपचारार्थ स्वास्थ्य सेवा समन्वय समिति के अन्तर्गत नेपाल आयुर्वेदीय संस्था ने पशुपति बनकाली में यात्री सेवा शिविर खोलकर परंपरागत हिन्दू चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद में स्वास्थ्यो-पचार किया गया।

उक्त आयुर्वेद चिकित्सा शिविर में पधारकर निःशुल्क योगदान करने वालों में सर्वश्री कविराज नरेन्द्रनाथ रिमाल, कविराज चन्द्रानन्द राजवैद्य, कविराज दानरत्न बज्राचार्य, कविराज श्रीमती गणेशकुमारी गौतम, कविराज शिवचन्द्र लामिछाने, कविराज आनन्द कुमार श्रेष्ठ, कविराज चित्रबहादुर प्रधान, कविराज कपिलेश्वर मिश्र, कविराज दिव्यरत्न बज्राचार्य, कविराज पद्मश्री बज्र बज्राचार्य, वैद्य कुबेरमान श्रेष्ठ, वैद्य विश्वनाथ कर्माचार्य प्रभृति प्रमुख थे। वैद्य कविराजों के अतिरिक्त आयुर्वेद स्वास्थ्य सेवक श्री केदार बहादुर पुरी एवं श्री प्रेमबहादुर घुले, ने भी सेवा-कार्य में सक्रिय योगदान किया।

आयुर्वेद सेवा शिविर संचालन के लिए स्वास्थ्य सेवा समन्वय समिति, नेपाल रेडक्रास सोसाइटी काठमांडो शाखा के सहयोग के अतिरिक्त श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड पटना से निःशुल्क वितरणार्थ आवश्यक औषधियां प्रदान की गयी थीं।

## राजस्थान के गाँवों में आयुर्वेद का विस्तार

भीलवाड़ा, २६ मार्च। राजस्थान के आयुर्वेद मंत्री श्री भैरवलाल कालाबादल ने कहा कि राज्य के ग्रामीण बैंकों में आयुर्वेद चिकित्सा का और अधिक विस्तार किया जायेगा। आपने इसकी पौराणिकता को सिद्ध करते हुए रोग को जड़ से समाप्त करने में इस पद्धति में अपनायी जाने वाली असरदार औषधियों का भी जिक्र किया।

आपने कहा कि इस पद्धति पर ग्रामीणों का विश्वास है और वे इसे सरलता से प्राप्त कर लेते हैं।

वे भीलवाड़ा तहसील के मंगरोप ग्राम के आयुर्वेद औषधालय के आतुरालय हेतु नवनिर्मित भवन के उद्घाटन के अवसर पर ग्रामीणों को सम्बोधित कर रहे थे।

आपने मंगरोप के इस औषधालय को 'अ' श्रेणी में क्रमोन्नत करने की घोषणा भी की।

आपने भीलवाड़ा के आयुर्वेद औषधालय का निरीक्षण भी किया। आपने नगरपालिका द्वारा संचालित औषधालय को राज्याश्रय में लेने के सम्बन्ध में विचार करने का आश्वासन भी दिया।

विधायक श्री कौशल किशोर जैन ने आयुर्वेद और ऐलोपैथिक चिकित्सा में आवंटित बजट की विषमताओं पर अपने विचार प्रकट करते हुए समान बजट की आवश्यकता प्रतिपादित की।

## डा० प्राणजीवन मेहता को श्रद्धाञ्जलि

आयुर्वेद मंडल की शनिवार 17 मार्च 1979 को कार्यालय में एक सर्वसाधारण सभा वैद्य सुरेश चतुर्वेदी की अध्यक्षता में हुई।

सभा में सर्वप्रथम वैद्य सुरेश चतुर्वेदी ने श्रद्धेय डा० प्राणजीवन मेहता जी के दिवंगत हो जाने पर उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपने भाषण में उनके आयुर्वेद सेवा एवं कार्य पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात् आयुर्वेद मंडल के मन्त्री वैद्य श्रीकृष्ण भावे ने मेहताजी के जीवन के अनेक सन्दर्भ देते हुये सभा में शोक प्रस्ताव पढ़कर सुनाया।

तदुपरान्त उपस्थित सभी महानुभावों ने दो मिनट का मौन धारण कर दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की और शोक प्रस्ताव उनके परिवार के सदस्यों को भेज दिया गया।

## वैद्य श्री सीताराम जी अजमेरा का निधन

दिनांक 5 मार्च 1979 को इन्दौर के सुख्यात वैद्य श्री सीताराम जी अजमेरा का स्वर्गवास हो गया। श्री अजमेरा जी आयुर्वेद-जगत के एक जाने माने व्यक्ति और वर्षों अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के मंत्री तथा सरकार की कई कमिटियों के सदस्य भी रहे थे। उनके निधन से आयुर्वेद-जगत को बड़ी क्षति हुई।

## नागपुर में शोक-सभा

श्री सीताराम जी अजमेरा, इन्दौर के असामयिक निधन हो जाने से विदर्भ-प्रांतीय आयुर्वेद सम्मेलन की विशेष शोक सभा वैद्य पं० रामदत्त जी शर्मा—आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में दिनांक 16.3.79 को नागपुर में हुई जिसमें निम्न विद्वान वैद्यों ने श्री अजमेरा जी के जीवन पर प्रकाश डाला तथा विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की।

श्री वैद्य गुलराज जी शर्मा मिश्र, श्री वैद्य शिवकरण जी छांगाणी श्री वैद्य शिवकुमार जी शर्मा, श्री वैद्य ज्वाला प्रसाद जी शर्मा, श्री वैद्य वेदप्रकाश जी शर्मा, श्री वैद्य कस्तूरचन्द्रजी शास्त्री तथा श्री वैद्य मदन लाल जी शर्मा।

अन्त में एक शोक प्रस्ताव पारित किया गया तथा 2 मिनट मौन धारण कर हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

## जबलपुर में शोक सभा

दि० 10.3.79 को मध्य प्रदेशीय आयुर्वेद-मण्डल के तत्वावधान में नगर के वैद्यों की एक शोकसभा म० प्र० आयुर्वेद-मंडल के उपाध्यक्ष गोस्वामी पुरुषोत्तम लाल के निवास स्थान पर मध्य प्रदेश आयुर्वेद-यूनानी प्राकृतिक चिकित्सा बोर्ड के अध्यक्ष कविराज श्री रमेशचन्द्र जी मिश्र की अध्यक्षता में हुई जिसमें आयुर्वेद यूनानी बोर्ड के प्रथम अध्यक्ष, आयुर्वेद व संस्कृत वाङ्मय के प्रकाड पंडित प्राणाचार्य श्री पं० सुन्दर लाल शुक्ल (जबलपुर) तथा म० प्र० आयुर्वेद यूनानी चिकित्सा बोर्ड के सदस्य एवं म० प्र० आयुर्वेद मंडल के भू० पू० अध्यक्ष श्री सीताराम जी अजमेरा (इन्दौर) के दुखद निधन पर शोक प्रकट करते हुए दिवंगत आत्माओं की चिरशांति के हेतु भगवान से प्रार्थना की गई। शोकाकुल परिवार के प्रति समवेदना प्रकट की गई।

प्रो० (डा०) निशिकान्त, महिला आयुर्वेदिक कालेज, कन्या गुरुकुलखानपुर कलां की धर्मपत्नी के स्वर्गवास पर कालेज के समस्त स्टाफ एवं छात्राओं की एक सभा हुई। सर्वसम्मति से निम्न प्रस्ताव पारित हुआ।

### शोक प्रस्ताव

'इस महाविद्यालय के समस्त शिक्षक एवं गैरशिक्षक, कर्मचारीगण एवं छात्राओं की यह सभा श्री (डा०) प्रोफेसर निशिकान्त जी की धर्मपत्नी के दुःखद निधन पर हार्दिक दुःख का अनुभव करती है तथा शोकसन्तप्त परिवार के प्रति गम्भीर समवेदना प्रकट करती है तथा परमपिता परमेश्वर से दिवंगत आत्मा की चिरशान्ति हेतु प्रार्थना करती है।'

## 'धन्वन्तरि' का प्रकाशन अब 'निर्मल आयुर्वेद संस्थान' से होगा

'धन्वन्तरि' अब तक श्री ज्वाला आयु० भवन से प्रकाशित होता रहा है लेकिन अब परिवार में 5-2-79 से विभाजन के फलस्वरूप भविष्य में इसका प्रकाशन 'निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामूभांजा रोड, अलीगढ़' से होगा। अब 'धन्वन्तरि' का स्वामित्व 'निर्मल आयुर्वेद संस्थान' पर आ गया है। अतः 'धन्वन्तरि' का सदस्यता शुल्क भेजना है या नया सदस्य बनना है या आजीवन सदस्य बनना है, या पता-परिवर्तन कराना है, या 'धन्वन्तरि' में प्रकाशनार्थ कोई लेख-समाचार प्रेषित करना है तो सभी प्रकार का पत्र - व्यवहार अब 'निर्मल आयुर्वेद संस्थान, मामूभाँजा रोड, अलीगढ़' के पते पर ही करें।

**दाऊ दयाल गर्ग**

## श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय, नागपुर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ग्रेट नाग रोड, नागपुर द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, वाकर रोड, नागपुर में माह फरवरी सन् 1979 में 6720 रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गयी जिनमें 672 रोगी नये आये। रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है।

अतिसार 14, अजीर्ण 2, अग्निमांद्य 30, आमवात 5, अर्श 4, अम्लपित्त 8, अश्मरी 1, अन्त्रवृद्धि 1, अनिद्रा 3, अर्धावभेदक 5, इन्फ्लुएंजा 19, उदर शूल 18, उदावर्त 4, कृमि 11, कृमिज्वर 1, कामला 3, कास 60, कास ज्वर 9, कुष्ठश्वेत 1, कर्ण रोग 6, क्लैब्य 5, गृध्रसी 1, ग्रन्थिशोथ 1, ज्वर 117 जीर्णज्वर 3, ज्वरातिसार 1, दौर्बल्य 53, दाह 15, दन्त 2, नेत्र 3, प्रमेह 5, पामा 69, प्रदर 11, पित्त 5, प्रतिश्याय 31, पार्श्वशूल 2, बहुमूत्र 8, मुखपाक 6, यकृदाल्युदर 2, रक्तालपता 2, राजयक्ष्मा 8, वातव्याधि 15, व्रण 3, वातशूल

50, शीत ज्वर 3, श्वास 24, शोथ 7, श्लीपद 2, शिरोरोग 3, शिरःशूल 17, प्रसूतिका 2, शीतपित्त 4, सगर्भा 2, स्वरभंग 1, स्वप्नमेह 1, वमन 2, हृदय 1, कुल जोड़ 137।

## श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य रक्षा-केन्द्र, झांसी

### सालाना आंकड़ा सन् १९७८

| माह नाम | नवीन संख्या | पुरातन संख्या | मासिक-योग |
|---|---|---|---|
| जनवरी | 1136 | 4685 | 5821 |
| फरवरी | 852 | 4385 | 5236 |
| मार्च | 1575 | 6026 | 7601 |
| अप्रैल | 1206 | 5144 | 6350 |
| मई | 1162 | 4281 | 5443 |
| जून | 1157 | 4247 | 5404 |
| जुलाई | 1556 | 5560 | 7116 |
| अगस्त | 1448 | 4963 | 6411 |
| सितम्बर | 1771 | 6384 | 8155 |
| अक्टूबर | 1505 | 5444 | 6949 |
| नवम्बर | 1169 | 4729 | 5898 |
| दिसम्बर | 921 | 3407 | 4328 |
| सालाना योग | 15458 | 59255 | 74713 |

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय एवं स्वास्थ्य-रक्षा-केन्द्र, झांसी में माह दिसम्बर सन् 1978 में कुल 4328 रोगियों की नि:शुल्क चिकित्सा की गई जिसमें नवीन संख्या 921 हैं। प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार से है।

वातज ज्वर 77, पित्तज ज्वर 34, कफज ज्वर 8, जीर्ण ज्वर 2, विषम ज्वर 16, प्रसूत ज्वर 10, प्रतिश्याय 99, गलग्रन्थिशोथ 3, कृमि 8, वातातिसार 12, रक्तातिसार 8, आमातिसार 31, ज्वरातिसार 11, वालातिसार 6, गृहणी 1, वातजकास 78, कफजकास 57, तमक श्वास 1, क्षुद्र श्वास 8, अग्निमांद्य 1, आमाजीर्ण 23, विवंध 7, वातोदर शूल 23, शिरःशूल 13, पार्श्व शूल 12, संधि वात 10, कटि शूल 7, वात व्याधि 26, गृध्रसी वात 2, विश्वाची 1, आमवात 2, छर्दि 1, अम्लपित्त 8, शीतपित्त 3, रक्तपित्त 2, स्फोट 1, शोथ 6, विद्रधि 1, व्रण 42, पामा 1, कण्डू 29, विचर्चिका 10, दद्रु 1, गर्भ रोग 10, आघात् 4, अर्श 6, रक्तार्श 10, प्रमेह 15, मूत्रकृच्छ्र 8, बहुमूत्र 1, रक्त प्रदर 6, श्वेत प्रदर 24, रक्तालपता 3, कर्ण 2, कर्ण स्राव 7, दन्तशूल 18, नेत्र रोग 2, मुख पाक 18, भ्रम 14, पीनस 1, सद्योव्रण 2, पिड़िका 28, क्षीरालसक 5, दन्तोद्भेद 15, कु० कास 1, खालित्य 1, रजःकृच्छ 2, अग्निदग्ध 2, अर्द्धाङ्ग वात 1, तुण्डकेरी शोथ 3, आनाह 2, उपदंश 1, स्नायु दौर्बल्य 2, वाधिर्य 1, तिमिर 1, पक्षाघात् 1, श्वेत कुष्ठ 1, कम्पवात 1। नवीन 921, पुरातन 3407, मासिक योग्य 4328।

## श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य-रक्षा-केंद्र, झांसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय एवं स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र, झांसी में माह जनवरी सन 1979 में कुल 3905 रोगियों की नि:शुल्क चिकित्सा की गई जिसमें नवीन रोगी 741 हैं। प्रत्येक का विवरण निम्न प्रकार से है।

वातज ज्वर 74, पित्तज ज्वर 18, कफज ज्वर 7, जीर्ण ज्वर 1, विषम ज्वर 5, प्रसूत ज्वर 9, प्रतिश्याय 85, गल ग्रन्थि शोथ 3, श्वसनक ज्वर 1, कृमि रोग 17, वातातिसार 10, रक्तातिसार 7, आमातिसार 17, ज्वरातिसार 3, वालातिसार 12, गृहणी 1, वातज कास 54, कफज कास 32, क्षयज कास 1, तमक श्वास 2, क्षुद्र श्वास 8, अग्निमांद्य 5, आमाजीर्ण 19, विष्टब्धाजीर्ण 7, विवंध 6, वातोदर शूल 13, पित्तोदर शूल 1, शिरः शूल 16, पार्श्व शूल 9 संधि वात 2, कटिशूल 10, वात व्याधि 16, गृध्रसीवात 2, विश्वाची 4, वातज गुल्म 1, छर्दि 1, अम्लपित्त 7, शीतपित्त 3, रक्तपित्त 1, स्फोट 1, शोथ 3, विद्रधि 2, व्रण 28, पामा 3, कण्डु 32 विचर्चिका 5, दद्रु 4, गर्भरोग 7, आघात 3, अर्श 2, रक्तार्श 5, प्रमेह 12, मूत्रकृच्छ्र 7, वहुमूत्र 1, रक्त प्रदर 17, श्वेत प्रदर 19, रक्तालपत्ता 3, कर्ण शूल 1, कर्ण स्राव 7, दन्त शूल 8, नेत्र विकार 5, मुखपाक 13, भ्रम 12, दाह 2, पीनस 1, दन्तोद्भेद 9, गुदभ्रंश 2, पिण्डकोद्वेष्टन 1, अण्डकोष वृद्धि 2, पिड़िका 16, तुण्डकेरी शोथ 1, आनाह 1, यकृत वृद्धि 1, सद्योव्रण 8, अग्निदग्ध 2, श्वेत कुष्ठ 1, चर्म कील 1, रजःकृच्छ 1, विपादिका 1, अरूंसिका 1, पृष्ठ शूल 2, क्षीरालसक 1, रक्तचाप 1, हृदय दौर्बल्य 1। नवीन 741, पुरातन 3164, कुल 3905।













सर्वाधिकारी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की ओर से श्रीकान्त शास्त्री द्वारा शिवशक्ति प्रेस, लोदीपुर,

# सचित्र

SACHITRA AYURVED

# आयुर्वेद

मई, 1979

ये कामक्रोधलोभानां वीतरागा न गोचरे।
सदाचारस्थितास्तेषामनुभावैधृता मही ॥

जो वीतराग महापुरुष कभी काम,
क्रोध और लोभादि के वशीभूत नहीं होते
तथा सर्वदा सदाचार में स्थित रहते हैं,
उनके प्रभाव से ही पृथ्वी टिकी हुई है।

विष्णुपुराण ३।१२।४२


प्रकाशक




बैद्यनाथ

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

फोन - 53647
53592
53048

TELEX : 22-316 SBAB—IN

सदैव व्यवहार करें




शुद्धता, गुणवत्ता,




स्वास्थ्य एवं शक्ति के लिए

देशी दवाओं का
सबसे बड़ा
निर्माता एवं निर्यातक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर, नैनी (इलाहाबाद)

# अनभ्र वज्रपात !



"सचित्र आयुर्वेद" के माध्यम से निखिल आयुर्वेद जगत को यह सूचित करते हृदय विदीर्ण हो रहा है कि आयुर्वेद जगत के वरेण्य पुरुष, 'सचित्र आयुर्वेद' के मान्य संरक्षक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के संयुक्त प्रबन्ध-निदेशक, आयुर्वेद-चक्रवर्ती, आयुर्वेद-शिरोमणि, आयुर्वेद शास्त्र-वाचस्पति, वैद्यरत्न, प्राणाचार्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य का हठात् हृदयगति अवरुद्ध हो जाने से गत २५-४-७९ को प्रातःकाल स्वर्गारोहण हो गया। श्रीयुत् शर्मा जी १२ डाउन दिल्ली-हवड़ा एक्सप्रेस से बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के निदेशक-मण्डल की बैठक में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली से इलाहाबाद जा रहे थे। चलती गाड़ी में ही उन्हें दिल का दौरा पड़ा और समुचित औषधोपचार के अभाव में तत्काल उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। उनका पार्थिव शरीर कानपुर से असम-बरौनी मेल से पटना लाया गया और पटना-स्थित भागीरथी के पुनीत तट पर उनकी अंत्येष्टि क्रिया सम्पन्न हुई। दाह-संस्कार उनके सुपुत्र श्री प्रमोद कुमार शर्मा ने किया।

X X X

कहना न होगा कि श्री दुर्गा बाबू का अखिल भारतीय व्यक्तित्व था। उनकी प्रतिभा, कार्य-शक्ति एवं गुणावगुण को परखने की सूक्ष्म दृष्टि अद्भुत थी। भारतीय संस्कृति एवं आयुर्वेद के लिए तो उनका सम्पूर्ण जीवन समर्पित था। आयुर्वेदोत्थान की दिशा में वे जीवन की अन्तिम सांस तक प्रयत्नशील रहे। आयुर्वेद की लुप्त गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने की जैसी तीव्र इच्छा, लगन एवं उत्साह उनमें था, वैसा अन्यत्र देखने में न आया। उनकी व्यावसायिक बुद्धि मात्र धनोपार्जन तक सीमित न थी—उनका लक्ष्य, आयुर्वेद की विजय-वैजयन्ती जागतिक स्तर पर फहरा कर भारतीय संस्कृति का सन्देश देश-विदेश में पहुंचाना था। इसीलिए प्रायः वे विदेश की यात्रा पर जाते रहे। उनकी भ्रमणशील प्रवृत्ति भी थी और यही कारण था कि वह एक स्थान पर जमकर बैठ नहीं पाते थे। मध्य पूर्वीय देशों को छोड़कर वे लगभग सारी दुनिया का भ्रमण कर चुके थे। एशियाई देशों की तो कई बार उन्होंने यात्राएं की थीं। उनके मित्रों का एक बड़ा समुदाय विदेशों में बन गया था, किसी से भी सम्पर्क या परिचय होने पर वे उस सम्पर्क तथा परिचय को गाढ़ा बनाने में विश्वास करते थे—फलतः उनका सम्पर्क-सूत्र देश-विदेश में अत्यन्त व्यापक पैमाने पर था। देश-विदेश से आने वाली उनकी डाक से ही इस बात की पुष्टि होती थी।

उनका मानवीय पक्ष तो और भी आकर्षक एवं लुभावना था। छोटे-बड़े सबसे खुलकर मिलते, अपने हृदय का असीम आदर तथा स्नेह वय के अनुसार सबको देते। अत्यन्त विनयी, शिष्ट, मृदुभाषी, परोपकारी तथा सहृदय थे। इन्सानियत की दृष्टि से बहुत ऊंचे किस्म के इन्सान थे। बल्कि अतिमानव की सीमा तक। उदारमना ऐसे कि कोई रिक्त हस्त उनके यहां से न लौटा। जो भी गया निहाल हो गया।

पटना नगर तथा बिहार के सार्वजनिक जीवन के वे प्राण थे। न जाने कितनी धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं को उनका संरक्षण प्राप्त था और उनकी उदारता के प्रसाद-स्वरूप ये संस्थाएं चलती रहीं। धार्मिक-सांस्कृतिक अनुष्ठानों में गहरी रुचि थी। सदैव कुछ न कुछ उनके प्रतिष्ठान में अनुष्ठान का क्रम चलता रहता। भेष-भूषा, आचार-व्यवहार में भारतीयता के पोषक थे सही, किन्तु आधुनिकता से भी

( शेष पृष्ठ 955 पर )

# सचित्र आयुर्वेद

परामर्शदाता :
आयुर्वेद-बृहस्पति
आचार्य रामरक्ष पाठक

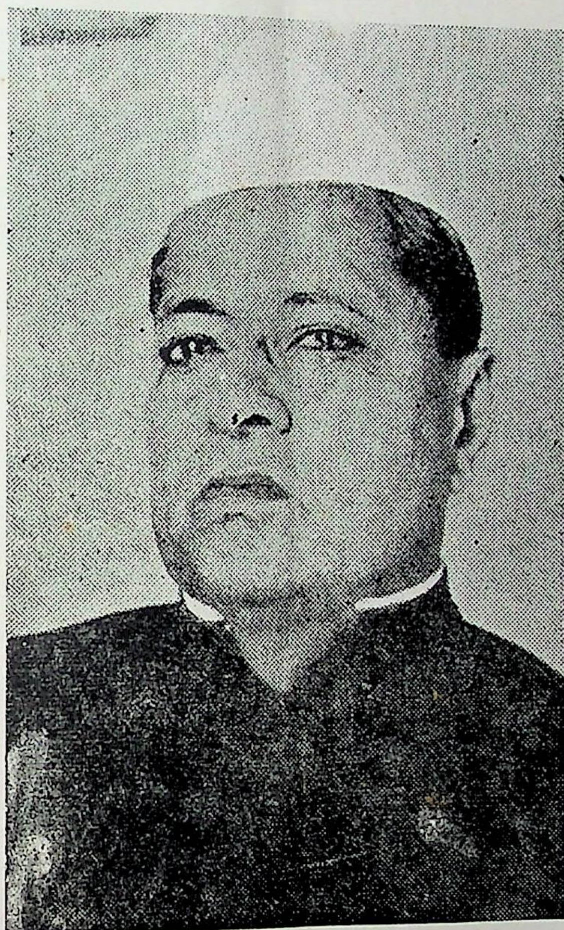
सम्पादक :
श्रीकान्त शास्त्री, एम. ए.

# विषय सूची



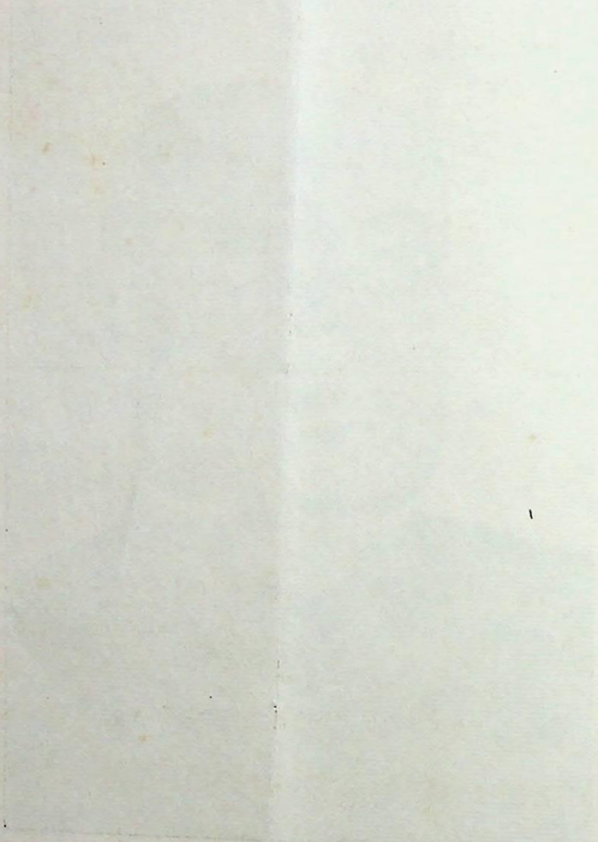

वार्षिक मूल्य १० रु०] [एक प्रति १ रुपया

# पुण्यश्लोक पं० रामदयाल जोशी



स्व० आयुर्वेद-विभूति पं० रामदयाल जोशी एक ऐसे वट वृक्ष के समान थे जिसकी स्निग्ध छाया के नीचे जो कोई भी आकर बैठा उसे बोधिसत्व हुआ। जो कोई भी उनके सम्पर्क में आया हमेशा उसने उनके महान जीवन से कुछ न कुछ ग्रहण ही किया। मानव मात्र की सेवा एवं राष्ट्रवाद में निष्ठा ही उनका आदर्श था। ऐसे सेवाव्रती वरेण्य पुरुष को उनकी १५वीं पुण्य तिथि के अवसर पर जो १ मई १९७९ को पड़ रही है, ''सचित्र आयुर्वेद' परिवार की शत-शत श्रद्धांजलियाँ !

—सम्पादक



Registered with the Registrar of Newspapers for India Under R. N. 2277/73
आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होने वाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र
# सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

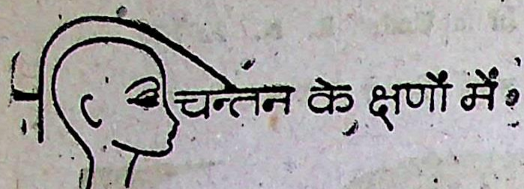
| वर्ष–३१ | पटना, मई, १९७९ | अङ्क-११ |
|---|---|---|

## आयुर्वेदीय सदाचार

'आयुर्वेद दीर्घजीवन के लिए दो लक्षणों को अपने सामने रखता है। ये हैं—स्वास्थ्य-संरक्षण और रोग प्रशमन। स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकार प्रशमनं च।' आयुर्वेद स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य-संरक्षण पर विशेष बल देता है। इसकी मान्यता है कि पुरुष स्वस्थ है तो सामान्य बाह्य और आभ्यन्तर-हेतु इसमें सहसा विकार उत्पन्न नहीं कर सकते। आयुर्वेद क्षेत्र (शरीर) को प्रधानता देता है; क्योंकि यदि क्षेत्र अनुकूल नहीं होगा तो बीज पड़ने पर भी सूख जायेंगे। यही कारण है कि आयुर्वेद में वैयक्तिक स्वास्थ्य पर विशेष जोर दिया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दिनचर्या, ऋतुचर्या एवं सद्वृत्त (सदाचार) के नियमों के उपदेश आयुर्वेद-साहित्य में पदे-पदे मिलते हैं। सभी प्राणियों की सब प्रवृत्तियां सुख के लिए होती हैं। सुख की प्राप्ति धर्म के बिना नहीं होती, अतः सबको धर्म करना चाहिए।

(अष्टांग हृदय सू० 2)

—




# आयुर्वेद का जागरण काल

इस शताब्दी के प्रारम्भ में भारत अपनी दीर्घकालीन निद्रा से जगा और जग जाने पर उसे अपने गौरवपूर्ण अतीत के साथ-साथ अपनी समृद्ध कला, साहित्य और दर्शन के महत्व का भान हुआ। यह जागरण बहुत हद तक पश्चिम के मनीषियों, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी तथा अन्य विद्वत् परिषदों द्वारा किए गए संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन-अनुशीलन का प्रतिफल था। अत्यन्त प्राचीन भारतीय संस्कृति और पश्चिम के आधुनिक विचारों की नवीन शक्तियों के घात-प्रतिघात के फलस्वरूप भारत अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक हुआ। इतना ही नहीं, भारत के भव्य और उदात्त विचारों, जीवन-विधि और आध्यात्मिक आदर्शों के क्षेत्र में भी विश्व को कितनी देन है, इसका मूल्याङ्कन भी इस युग में किया जाने लगा। आधुनिक वैज्ञानिक जीवन-प्रणाली और विचारों की अपर्याप्तता (त्रुटियां) धीरे-धीरे प्रत्यक्ष होने लगीं और पश्चिमवासी स्वयं ऐसा महसूस करने लगे कि केवल वैज्ञानिक सफलता से मानव जाति का कल्याण नहीं हो सकता। प्राचीन भारत का साहित्य और दर्शन, व्यक्ति के नैतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष की शुभ प्रेरणाओं से परिपूर्ण है। समस्त भारतीय वाङ्मय का जोर मनुष्य के आत्मिक और आध्यात्मिक पक्षों पर है। वैदिक साहित्य का प्रमुख अंग होने के कारण चिकित्सा-शास्त्र पर भी जिज्ञासु विद्वानों और अन्वेषकों की दृष्टि पड़ी। एक के बाद दूसरे, इस क्रम से मैक्समूलर से प्रारम्भ करके सिलवियां लेवी (Sylvainlevi) और जी० फिलियोजा (Jien Filliozat) तक पश्चिम के विद्वानों और भारत के पंडितों, वैद्यों और दर्शन के इतिहासकारों यथा डा० राधाकृष्णन और डा० दास गुप्त ने अन्वेषण कर यह बताया कि वैद्यकीय विचार और व्यवहार में भारत ने कैसी अद्वितीय सफलता प्राप्त की थी। भारतीय वैद्यक शास्त्र, तबसे अनेकानेक प्राच्य शास्त्रविदों (Orientalists) यथा जीमर (Zimmer) जूलियस जोली (Jullius Jolly) और अन्य सुप्रसिद्ध मनीषियों के अध्ययन का विषय रहा है।

राजनीतिक स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए उत्पन्न राष्ट्रीय जागरण के साथ-साथ भारत की अत्यन्त प्राचीन चिकित्सा-पद्धति को पुनरुज्जीवित कर उसे परिवर्तित अवस्थाओं के अनुरूप बनाने की प्रबल भावना का शिक्षितों में संचार हुआ और इस दिशा में प्रयास होने शुरू हुए। फलस्वरूप आयुर्वेदोत्थान को दृष्टि में रखते हुए प्रतिवर्ष आयुर्वेदज्ञों के बड़े-बड़े सम्मेलन होने लगे जिनमें तत्कालीन ब्रिटिश सरकार से इस आशय की मांग की गयी कि आयुर्वेद को राजकीय प्रोत्साहन मिलना चाहिए। सरकार को बाध्य होकर देशी चिकित्सा-पद्धति के अध्ययन-अध्यापन के लिए कई विद्यालय खोलने पड़े।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ प्राचीन आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति के पुनरुद्धार तथा आधुनिक शोध-प्रणाली के द्वारा आयुर्वेद की व्याख्या नवीन शब्दावली में प्रस्तुत करने की दिशा में भारतीय जनता का ध्यान गया जिससे कि आधुनिकों के लिए आयुर्वेद सुबोध हो सके। आयुर्वेद के मौलिक स्वरूप की रक्षा करते हुए आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणाली में आवश्यकतानुसार चिकित्सा की नवीनतम प्रवृत्तियों और औषधियों के समावेश करने की आवश्यकता भी लोगों ने समझी।

ऐसी आशा की जानी चाहिए कि आधुनिक शोध के सहारे आयुर्वेद एक विश्वविज्ञान (World Science) के रूप में प्रतिष्ठित हो सकेगा और इस चिकित्सा-पद्धति से सारा विश्व लाभान्वित होगा। साथ ही इस चिकित्सा-पद्धति का उपयोग न केवल भारतीय चिकित्सक ही प्रत्युत् संसार भर के चिकित्सक कर सकेंगे। आयुर्वेद को इसके मूल स्रष्टाओं भारद्वाज और आत्रेय मुनि ने विश्वव्यापी सांचे में ढाला था। सम्प्रति जो प्रयास चल रहे हैं उनके बल पर आयुर्वेद विश्व चिकित्सा-पद्धति के रूप में अवश्यमेव समादृत हो सकेगा।



स्व० डा० पी० एम० मेहता

# सम्पादकीय

## प्रधानमंत्री के प्रेरक विचार

पोस्ट ग्रेजुएट इन्स्टीच्यूट ऑफ मेडिकल एडुकेशन के एवं दीक्षान्त समारोह में भाषण करते हुए प्रधान मन्त्री श्री देसाई जी ने देश में प्रचलित सभी चिकित्सा-पद्धतियों के अमलबरदारों से यह अपील की, कि वे सभी मिलकर एक सर्वमान्य, सर्वसुलभ एवं सस्ती चिकित्सा-पद्धति को विकसित करने की दिशा में अपनी प्रज्ञा एवं शक्ति का उपयोग करें तो इस अभागे देश का बड़ा कल्याण हो सकेगा। आपने कहा कि वर्तमान में प्रचलित सभी चिकित्सा-पद्धतियों में एलोपैथी सर्वाधिक खर्चीली पद्धति है। इस पद्धति में विडम्बना यह है कि एक डाक्टर रोग का विनिश्चय नहीं कर पाता। मैंने देखा है कि कभी-कभी ४-४ डाक्टरों से परामर्श लिया जाता है। यह एक अजीब स्थिति है। प्रधान मन्त्री ने प्रतिबंधात्मक तरीकों पर बल देते हुए कहा कि दवाओं पर बेहिसाब होनेवाले व्यय को तो नियंत्रित किया जा सकता है, बशर्ते कि लोग जीवन-यापन के तौर तरीकों में बुनियादी परिवर्त्तन ला सकें। आपने अपना दृष्टान्त रखते हुए बताया कि पिछले ६० वर्षों की लम्बी अवधि में मुझे एक पैसा भी डाक्टरों को नहीं देना पड़ा—क्योंकि मैं संयमित, नियमित जीवन जीने एवं नियंत्रित आहार लेने का अभ्यस्त हो चुका हूं। बुनियादी रूप से आहार-पद्धति में परिवर्त्तन लाने पर जोर देते हुए श्रीदेसाई ने कहा कि अनेक व्याधियाँ हमें इसलिए ग्रस लेती हैं, कि हम आहार-विहार को गलत ढंग से लेते हैं। आज की हमारी जिन्दगी भाग-दौड़ की हो गयी है और हम निश्चिन्तापूर्वक दो-चार मिनट का समय भी भोजन करने के लिए नहीं निकाल पाते। शीघ्रता में उदरस्थ कर हम निश्चिन्त हो जाते हैं, मानों दाँत मेरे मुँह में नहीं होकर हमारे पेट में हैं। यह स्थिति रोग को जन्म देती है—बिना चबाया हुआ भोजन उदर में जाकर गड़बड़ी पैदा करता है। हमारे पाचन-संस्थान को विकृत करता है और हम रोगी बन जाते हैं। यह आधुनिक औद्योगिक सभ्यता का दुष्परिणाम माना जाना चाहिए। इस दिशा में आयुर्वेद हमारा अत्यन्त साधक बन सकता है। आयुर्वेदीय साहित्य में वर्णित स्वस्थवृत्त के नियमों का पालन करते हुए हम अपने को पूर्णतया स्वस्थ रख सकते हैं। इसके अतिरिक्त ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या-सम्बन्धी जो विशद नियम आयुर्वेद-पद्धति में बताये गये हैं, उनका अनुपालन हमारे लिए अनिवार्य है। प्रधानमंत्री ने इस ओर ही संकेत किया है। अपने वैयक्तिक जीवन में प्रधानमन्त्री प्राकृतिक नियमों का कठोरतापूर्वक पालन करते हैं और तभी इस बुढ़ौती में भी जहाँ तक शक्ति और कार्य-क्षमता का प्रश्न है, वे किसी भी नवयुवक से पीछे नहीं हैं।

मानना होगा कि आज हम प्राकृतिक जीवन विधि को तिलाञ्जलि देकर सर्वथा अप्राकृतिक या कृत्रिम जीवन-विधि को अपनाते जा रहे हैं और इसीलिए निरन्तर व्याधियों से घिरते रहे हैं—इस ओर से प्रधान मन्त्री सदैव हमें खबरदार करते रहे हैं—चेतावनी देते रहे हैं। प्रधान मन्त्री ने स्वास्थ्य-सम्बन्धी शिक्षण की आवश्यकता पर जोर दिया है और प्राकृतिक जीवन जीने की आवश्यकता बतायी है। हम औषधियों के आश्रयी न बनें—यह उनकी सीख है।

प्रधान मन्त्री ने पुनः कहा कि भारत अपने सीमित साधनों में ही राष्ट्रीय स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए जो व्यय करता रहा है, वह भारत सरीखे निर्धन राष्ट्र के लिए कम नहीं कहा जा सकता; फिर भी हमारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य अन्य उन्नत देशों की तुलना में निम्नस्तर पर है। डाक्टरों की संख्या बढ़ रही है, साथ ही अस्पतालों की भी। किन्तु जनस्वास्थ्य का स्तर गिरता जा रहा है, यह विचारणीय है।

श्री देसाई ने चिकित्सा-व्यवसाय को एक 'मिशन' के रूप में ग्रहण करने पर जोर दिया है। ऐसे ही लोगों को इस क्षेत्र में आना चाहिए जो सेवाभावी हैं और मानव सेवा की पुनीत भावना से ओतप्रोत हैं—दुर्भाग्य यह है कि अर्थलिप्सा से पीड़ित लोग ही इस व्यवसाय में छाए हुए हैं और यही कारण है कि अभीप्सित फल हमें नहीं मिल रहा है। प्रधानमन्त्री के इस कथन के औचित्य को कोई चुनौती नहीं दे सकता कि मेडिकल एडुकेशन इस देश में जिन आधारों पर चल रही है, उसमें बुनियादी तौर पर सुधार की जरूरत है।

श्री देसाई अपनी मौलिक सूझ बूझ एवं भारतीयता से गर्भित विचार-सम्पदा के धनी शक्ति हैं। उनके विचारों में ताजगी के साथ-साथ नवीनता रहती है। आशा है, देश के प्रबुद्ध जन, जो चिकित्सा-व्यवसाय में संलग्न हैं, इन विचारों से प्रेरणा ग्रहण करेंगे।

# वर्तमान मिश्रित चिकित्सा-पाठ्यक्रम तत्काल समाप्त हो

## आचार्य बदरी विशाल त्रिपाठी का वक्तव्य

केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद् के सदस्य सुप्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ आचार्य बदरी विशाल त्रिपाठी ने आयुर्वेद तथा एलोपैथी की वर्तमान मिश्रित चिकित्सा पाठ्यक्रम समाप्त कर केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद् की कार्यकारिणी-समिति द्वारा सिद्धान्ततः स्वीकृत शुद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सा पाठ्यक्रम केन्द्र तथा समस्त राज्य में लागू करने तथा सभी राज्यों में अविलम्ब एक-एक आयुर्वेद विश्वविद्यालय और कानपुर और दिल्ली में संस्थागत आल इंडिया इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइंस के समान स्तर के अखिल भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति संस्थान (आल इन्डिया इन्स्टीट्यूट आफ आयुर्वेदिक साइंस) की स्थापना करने की मांग की।

प्रेस क्लब में पत्रकारों से वार्ता के मध्य श्री त्रिपाठी ने कहा कि विगत लगभग तीन दशकों से आयुर्वेद तथा एलोपैथी ही मिश्रित चिकित्सा पाठचर्या का शासन द्वारा समर्थन मिलने पर भी उसके परिणाम सन्तोषप्रद नहीं निकले। शासकीय स्तर पर भी स्वीकार किया गया है कि इस प्रकार की मिश्रित प्रणाली से उच्चस्तर के प्रतिभासम्पन्न वैद्यों का अभाव होता जा रहा है। मिश्रित पाठचर्या द्वारा शिक्षित स्नातकों से न तो आयुर्वेद विज्ञान को लाभ होता है और न उन सहस्रों असाध्य रोगियों को सन्तोष प्राप्त होता है जो पाश्चात्य चिकित्सा से निराश होकर वैद्यों के द्वारा आयुर्वेदिक चिकित्सा करवाना चाहते हैं। स्वयं प्रधानमंत्री श्री देसाई ने मिश्रित चिकित्सा-प्रणाली से असहमति व्यक्त कर सभी चिकित्सा-प्रणालियों के स्वतंत्र विकास के पक्ष में राय व्यक्त की है।

श्री त्रिपाठी ने आश्चर्य व्यक्त किया कि देश में जहाँ एलोपैथिक, यूनानी एवं होम्योपैथिक चिकित्सा-पद्धतियों के स्वतंत्र विकास का पूर्ण अवसर प्राप्त है तथा उन्हें सरकारी संरक्षण भी प्राप्त है, इस देश की ही सर्वाधिक प्राचीन चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद के चिकित्सा-पाठ्यक्रम को एलोपैथी के साथ जोड़कर उसके स्वतंत्र विकास को न केवल अवरुद्ध किया जा रहा है, बल्कि उसके प्रति आस्था और विश्वास को नष्ट किया जा रहा है।

आपने कहा कि अंग्रेजों ने तो अपने-अपने शासन-काल में आयुर्वेद विज्ञान एवं भारतीय संस्कारों को नष्ट करने का पूर्ण प्रयास किया ही; उसके बाद स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू के प्रधान मंत्रित्व काल में भी अंग्रेजों द्वारा संचालित स्वास्थ्य-संरक्षण- योजना एलोपैथी को स्वास्थ्य-केन्द्रों के माध्यम से सफल बनाने का प्रयास किया गया। इसको आयुर्वेद का भाग्य ही कहा जायगा कि डा० सम्पूर्णानन्द जैसे मनीषी कांग्रेसजनों के प्रबल विरोध के कारण वह योजना सफल न हो सकी। श्रीमती गांधी के प्रधान मंत्रित्व काल में स्वास्थ्य मंत्री श्री के० के० शाह ने विदेशी सरकार द्वारा संचालित तथा कांग्रेस सरकार द्वारा प्रसारित ग्राम्य-स्वास्थ्य योजना नीति में आमूल परिवर्तन किया और देश के गांव में जीवन-पर्यन्त सेवारत ढाई लाख देशी चिकित्सकों के माध्यम से ग्राम्य-स्वास्थ्य योजना को संचालित करने का निश्चय किया। केन्द्र में भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री श्री राजनारायण ने पुनः उसी विदेशी सरकार द्वारा संचालित चिकित्सा-नीति का अवलम्बन किया। उसीका परिणाम है कि सम्पूर्ण देश एलोपैथी प्रधान स्वास्थ्य-केन्द्रों के जाल से आच्छादित हैं।

सर्वाधिक आश्चर्य की बात है कि श्री राजनारायण के कार्यकाल में स्वास्थ्म मंत्रियों के सम्मेलन तथा देशी-चिकित्सा-पद्धति सम्मेलन में ग्राम्य-स्वास्थ्य-योजना में वैद्यों तथा आयुर्वेद की उपयोगिता और आवश्यकता पर जोरदार चर्चा हुई। ऐसा प्रतीत हुआ कि योजना में ढाई लाख वैद्यों की सेवायें ले ली जायेंगी और आयुर्वेद के विकास व प्रसार का अवसर उपलब्ध होगा। किन्तु जो योजना कार्यान्वियन हेतु सामने आई उसमें आयुर्वेद व वैद्यों के नाम तक का उल्लेख नहीं था इस प्रकार आज

आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान अपने ही देश में गुलामी के काल से भी अधिक दयनीय अवस्था में है।

नौकरशाही शासन पर हावी होकर आयुर्वेद के विकास में किस प्रकार हावी हो रही है इसका उदाहरण प्रस्तुत कर श्री त्रिपाठी ने कहा कि जून 1977 में देशी चिकित्सा विशेषज्ञों की बैठक में प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने आयुर्वेद-शिक्षा के पाठ्यक्रम में पाश्चात्य चिकित्सा का किंचिन्मात्र भी मिश्रण न किये जाने का परामर्श दिया, किन्तु मिश्रित चिकित्सा प्रणाली में शिक्षित अधिकारियों की हठधर्मिता के कारण जो पाठ्यक्रम महाविद्यालयों में प्रचलित था, प्रचलित रहा। जबकि इस पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में वास्तविकता यह है कि, यह आयुर्वेद समिति तथा केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद् की बैठक में पारित भी नहीं हुआ तथा उसे पारित कर प्रचार के बल पर प्रादेशिक सरकारों तथा अन्य संस्थाओं से सम्मति ले ली गई। इन अधिकारियों के समूह ने अपना वर्चस्व कायम रखने के उद्देश्य से न केवल तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्रियों को अन्धकार में रखा बल्कि उन्होंने केन्द्र तथा प्रदेशों में शासकीय स्तर पर आयुर्वेद की उन्नतिपूर्ण योजनाओं की सफलता में योजनाबद्ध तरीकों से रोड़ अटकाये और उन्हें कार्यान्वित नहीं होने दिया।

श्री त्रिपाठी ने कहा कि चाहे आयुर्वेद - शिक्षा का प्रश्न हो, चाहे ग्राम्य-स्वास्थ्य-योजना का, श्री राजनारायण के मन्त्रित्वकाल में आयुर्वेद का इतना अधिक अहित हुआ है कि उतना अंग्रेज व कांग्रेस सरकार में भी नहीं हुआ।

आपने प्रधान मंत्री श्री देसाई से अपील की कि वह मूल ग्राम्य-स्वास्थ्य-योजना, जिसमें ढाई लाख वैद्यों को काम में लगाये जाने की बात थी, दृढ़तापूर्वक लागू करें, और 10 सितम्बर 1978 को केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद् की कार्यकारिणी द्वारा सिद्धांतः स्वीकृत शुद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सा पाठ्यक्रम केन्द्र तथा प्रान्तों में अविलम्ब लागू करवाने का प्रयास करें। देश के ढाई लाख से भी अधिक वैद्य उनकी ओर आशा भरी निगाह से देख रहे हैं।

इस दिशा में श्री त्रिपाठी ने प्रत्येक राज्य में एक आयुर्वेद विश्वविद्यालय खोलकर आयुर्वेद विद्यालयों को उससे सम्बद्ध किये जाने तथा कानपुर में भारतीय आयुर्वेद विज्ञान संस्थान की अविलम्ब स्थापना की मांग की। विज्ञान संस्थान खोलने के लिए कानपुर में 6 एकड़ भूमि पर बना वनौषधोद्यान एवं एक छोटा-सा छात्रावास है। आवश्यकतानुसार अन्य सुविधायें भी उपलब्ध हो जायेगी।

( पृष्ठ 949 का शेषांश )

परहेज नहीं था। आधुनिक विज्ञान एवं टेक्नोलाजी के प्रशंसक थे। और जिस तेजी के साथ आधुनिक टेक्नोलाजी बढ़ रही है, उतनी तेजी के साथ वह बढ़ना चाहते थे, टेक्नोलाजी का पूरा उपयोग करते हुए।

उनकी प्रतिभा को व्यवसायिक क्षेत्र में पूर्णतया विकसित होने का अवसर अब समीप आ रहा था—श्रीलंका, जर्मनी और भारत—इन तीन देशों के सहयोग से श्रीलंका में जिस नए उद्योग का सूत्रपात हो रहा था, वह अपने आप में सानी नहीं रखता। उसी प्रयत्न को स्थायी रूप देने की दृष्टि से श्री दुर्गा बाबू ३ मई को पुनः मासव्यापी यात्रा पर पश्चिम जर्मनी जाने वाले थे, किन्तु इसी बीच दुष्ट काल ने यह कुटिलता की। दुर्गा बाबू हमसे बिछुड़ कर गोलोकवासी हो गए—हाय रे हमारा दुर्भाग्य !

हृदय अत्यन्त घायल है—मर्माहत है। भावनाएं घनीभूत होकर वेग से उमड़ रही हैं किन्तु उनको इस घायल मनोदशा में कलमबन्द नहीं किया जा सकता।

'सचित्र आयुर्वेद' परिवार की ओर से हम दिवंगत दुर्गा बाबू के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जगदीश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह दिवंगत आत्मा को चिरशांति एवं शोक-सन्तप्त समस्त बैद्यनाथ परिवार को यह दारुण शोक सहन करने की शक्ति दें !

# निदान-चिकित्सा हस्तामलक
## ( छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा)

# श्वास और हिक्का
## (श्वास एवं हिक्का में प्रचलित उपचार)

वैद्य रणजितराय देसाई

### श्वास कुठार रस

श्वास की चिकित्सा करते हुए प्रायः जिस कल्प की स्मृति सर्वप्रथम होती है, वह यह श्वासकुठार है। इसका पाठ—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ, टङ्कण फुलाया हुआ, शुद्ध मनःशिला—प्रत्येक 1·2 तोला, मरिच 8 तोला, शुंठी, मरिच, पिप्पली प्रत्येक 2·2 तोला लें। प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना अन्य चूर्ण मिला 1-2 प्रहर सम्यक् घुटाई करें। अथवा जल से मर्दन कर 1-1 गुन्जा की वटिकाएँ बना लें।

एक से दो रत्ती चूर्ण अथवा वटिकाएं दिन में तीन बार पान में रख कर (अथवा ताम्बूल-स्वरस एवं मधु में मिला) सेवन कराएं। घटक द्रव्यों पर दृष्टिपात से विदित होगा कि यह योग कफवात प्रधान प्रतिश्याय, कास, श्वास और शिरोरुजा में अति गुणकारी है। आर्द्रक-स्वरस एवं मधु के साथ देना प्रसिद्ध है। रसयोगसागर में इस योग पर दी टिप्पणी में कहा है कि—वैद्य-दर्पण के अनुसार आधी गुंजा यह योग पान पर रख बीड़ा बना भक्षण करें, पश्चात् (पिप्पली के समान) क्रमशः संख्या-वृद्धि करते हुए कृष्ण मरिच का सेवन करें। ग्रन्थकर्त्ता ने आगे लिखा है कि—कास, श्वास, चिरन्तर, अपस्मार, सन्निपात, मोह, मूर्च्छा, गुल्म के कारण होनेवाला ऐंठन, भ्रम, मस्तक की शून्यता (खालीपन), उन्माद, आध्मान, शूल, अतिस्वेद और प्रलाप में यह अनुभव-सिद्ध और विश्वसनीय पाया है। (यहां कहे अतिस्वेद से प्रकृत्या होने वाले अति स्वेद का ग्रहण न कर वायु के प्रकोप या हृदय दौर्बल्य से सर्वाङ्ग में होना वाला अतिस्वेद लेना चाहिए। स्वेद को तत्काल पोंछते रहना चाहिए। अन्यथा शरीर की उष्णता स्वेद के बाष्पीकरण में लग जाने से शीतांग—शरीरोष्मा का ह्रास होकर सर्वांग का ठंढा पड़ जाना—हो जाएगा, जो भयावह होता है। सामान्यतया कई जनों को हस्तपादतल में अति-स्वेद होता है। वह भी सम्भवतः यहां ग्राह्य नहीं है)आयुर्वेदसार संग्रहकार ने लिखा है कि : स्वतन्त्र अथवा परतन्त्र दोनों प्रकार के श्वास रोग में यह उत्तम कार्य करता है। तथापि मूल रोग हृदय-दौर्बल्य और श्वास रोग उसका उपद्रवरूप हो तो श्वासकुठार का व्यवहार न करना चाहिए। अन्यथा, यह योग अपनी उग्रता से हृदय को अधिक दुर्बल बना देता है।

सन्निपात (प्रलाप-युक्त सन्निपातावस्था), मूर्च्छा (संज्ञानाश); अपस्मार, अति मोह (एवं अपतन्त्रक, हिस्टीरिया का वेग) में श्वासकुठार रस का चूर्ण सुंघाने से उसकी तीक्ष्णता के कारण मूर्च्छा नष्ट होती है। चूर्ण एक चार-पांच इंच लंबे स्वच्छ कागज पर रख उसे नलिकाकार बना उसका एक सिरा रोगी की नाक में प्रविष्ट कर दूसरे सिरे से मुख द्वारा फूंक मारने से यह क्रिया सिद्ध हो सकती है। संज्ञानाश के इन सभी प्रकारों में प्रकृत्या निरन्तर उत्पन्न होती लाला रोगी चित्त सोया हो तो बाहर न निकल अन्दर ही रहकर कण्ठावरोध उत्पन्न कर सकती है। अतः, उसे सर्वप्रथम एक पार्श्व पर सुलाया जाता है। परिणामतया, लाला नीचे की ओर के ओष्ठ-प्रांत द्वारा बाहर निकलती रहती है। स्वरोदयशास्त्र के प्रत्यक्ष-दृष्ट नियमानुसार रोगी पार्श्व-शयन कर रहा हो, उस काल प्राणवायु का गमनागमन ऊर्ध्ववर्ती नासापुट से ही होता है। ततः मूर्च्छा-प्रधान इन व्याधियों में संज्ञाप्रद औषध ऊर्ध्वगत नासापुट में प्रविष्ट करना ही कार्यसाधक होता है।

रसेन्द्रसारसंग्रह में इस योग की फलश्रुति में इसे श्वास, कास, संज्ञानाश (उक्तरीत्या सुंघाने के रूप में), प्रतिश्याय, उरःक्षत (क्षतक्षीण), एकादशविध यक्ष्मा,

हृद्रोग, श्वास-जन्य शूल, अति दारुण स्वरभेद एवं तन्द्रा-मोह समन्वित घोर संनिपात में भी हितकारी कहा है।

यह श्वासकुठार एकाकी भी व्यवहार में आता है, साथ ही शृंगभस्म, तालीसादि चूर्ण, सितोपलादि चूर्ण आदि के साथ भी इसका व्यवहार प्रचलित है। तालीस पत्र की श्वास पर क्रिया विशेष होने से श्वास-विकार (स्वतन्त्र अथवा परतन्त्र) में सितोपलादि चूर्ण की तुलना में तालीसादि चूर्ण को पसंद किया जाता है।

आधुनिकों ने 'तमक श्वास' की गणना 'एलर्जी' से उत्पन्न होने वाले रोगों में की है। इस गणना में शीत-पित्त और उदर्द का भी समावेश किया गया है। शीत-पित्त के क्रिया-क्रम में परंपरागत वैद्य एवं अनुभवी वैद्येतर गृहस्थ कृष्ण मरिच का (बहुधा साथ में सुवर्ण गैरिक का भी) यशस्वी व्यवहार करते हैं। यह सत्य है कि, नव्य-मताभिभूत शिक्षित आयुर्वेदीय चिकित्सक इस योग की अवगणना कर एलर्जी के उपचार के प्रति ही प्रवणता दर्शाने लगे हैं। उससे लाभ होता भी है, परन्तु, इससे कृष्ण मरिच की उपयोगिता में कोई बाधा नहीं आती। वास्तव में तो यह उपक्रम दोष-प्रत्यनीक होने से मूल-प्रहारी है। अब, शीतपित्त के सदृश तमक श्वास भी एलर्जी-जन्य रोग है, और इसमें कृष्ण मरिच का व्यवहार वैसा ही हितावह है। अपने उष्ण-तीक्ष्ण गुणों एवं दीपन-पाचन कर्मों के योग से अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ एक ओर अन्नपान का परिपचन यथावत करता है और दूसरी ओर कफ को भी समावस्था में लाता है। अन्नपान का परिपाक उत्तम होने से उसका यथेष्ट अंश सार-रूप रस धातु में परिणत हो जाता है। परिणामस्वरूप, किट्ट (मल)-भाग अल्प रह जाने से अन्नपान के मलों में एक वायु की उतनी पुष्टि एवं प्रकोप होने नहीं पाता। एतावता, कफ और वात का बल क्षीण हो जाने के कारण प्रधानतया उनके प्रकोप से जिसका जन्म होता है वह तमक श्वास भी शनैः-शनैः शान्ति को प्राप्त होता है। आधुनिक दृष्टि से कहना हो, तो किट्ट अल्प बनने से, साथ ही उसमें अपक्व अंश न्यून मात्रा में रहने के कारण उसका कोथ (सड़ांद) होकर 'एलर्जी' के जनक 'हिस्टा-मीन' का उत्पादन विघ्नित होता है। आयुर्वेद का सहारा लेकर इसमें इतना और बढ़ाया जा सकता है कि, संभवतः कृष्ण मरिच तथा अन्य दीपन द्रव्यों के योग से 'हिस्टा-मिनेज' तथा 'एड्रिनलीन' इन धात्वग्नियों की भी दीप्ति होकर हिस्टामीन नष्ट होता है एवं उसका प्रतिकार होता है।

श्वासकुठार रस में उत्तम प्रमाण में मरिच तो पठित है ही साथ ही त्रिकुट के रूप में भी यह इसके निर्माण में डाला जाता है। इसके कारण तथा कुछ मनः-शिला के कारण संभव है, किसी को यह उष्ण और रूक्ष प्रतीत हो। ऐसी स्थिति में मुख-ग बोधक कफ का क्षय होने से गल-शोष का अनुभव होता है। ऐसा अनुभव हो, तो औषध-सेवनोत्तर चाय के एक कप—जितने दूध के पान का नियम रखना चाहिए। इसमें शर्करा के स्थान पर सितोपला की योजना की जाए, तो उत्तम रहता है। वास्तव में तो प्रतिश्याय, कास आदि अन्य कफ-विकारों में भी तीक्ष्णवीर्य महालक्ष्मी विलास रस प्रभृति कल्पों के सेवन के अन्त में सद्वैद्य दुग्ध के अनुपान का सूचन करते ही हैं।

श्वासकुठार का अन्य व्याधिघाती घटक मनःशिला है। यह सोमल का समास (यौगिक) है। रसशास्त्र का आविर्भाव होने के पूर्व भी इसका श्वास रोग में व्यवहार होता था, यह ऊपर वृद्धत्रयी से संकलित योगों में आये एक-दो योगों पर दृष्टिपात करने से विदित होगा। रस-शास्त्र के प्रसार के पश्चात् मनःशिला का, उसके सदृश ही सोमल के यौगिक[1] हरिताल का एवं स्वयं सोमल का श्वास रोगादि में उपयोग अधिक व्यापी हो गया। मल्ल-सिन्दूर, तालसिन्दूर, शिलासिन्दूर, समीरपन्नग रस माणेक रस, रसमाणिक्य आदि का सुबहु उपयोग इसमें प्रमाण

1. सोमल (आर्सेनिका) नाम से जो द्रव्य प्राप्त होता है, वह शुद्ध सोमल न होकर उसका ओषजन के साथ समास होता है। इसमें दो भाग सोमल तथा तीन भाग ओषजन होता है। (सूत्र—$As_2O_3$)। अतएव, इसकी रासायनिक संज्ञा 'आर्सेनिक ट्राइ ऑक्साइड' है। अम्ल होने से इसे 'आर्सेनिअस एसिड' भी कहते हैं। प्रचलित नाम 'व्हाइट आर्सेनिक' भी है। हरताल एवं मनःशिला सोमल और गन्धक के समास हैं। दोनों में गन्धक की मात्रा का भेद होता है—हरताल में सोमल दो भाग तथा गन्धक तीन भाग एवं हरताल में सोमल दो भाग और गन्धक दो भाग होता है।

है। इन कल्पों के भी पाठ इसी प्रकरण में आगे स्वभावतः दिये जायेंगे।

वत्सनाभ भी वैसा ही श्वासादि कफ-रोगों में हितकर्ता है। नव्यप्रत्यक्षानुसार इसकी सुखद क्रिया श्लेष्मकला के शोथ पर होती है। त्रिभुवनकीर्ति, आनन्दभैरव (कासाधिकार), कफकेतु, कस्तूरी भैरव आदि कफ विकारोपयोगी औषधों के निर्माण में वत्सनाभ लिया जाता है। टंकण कफ को विलीन करने में उपयोगी होने के अतिरिक्त वत्सनाभ के वारण के रूप में जिस भी कल्प में वत्सनाभ होता है, उसके साथ नियमतः डाला ही जाता है।

**श्वासचिन्तामणि (श्वासकासचिन्तामणि) रस :**

शुद्ध पारद, स्वर्णमाक्षिकभस्म, सुवर्णभस्म प्रत्येक एक-एक तोला, मुक्ताभस्म ½ तोला, शुद्ध गन्धक तथा अभ्रक भस्म प्रत्येक दो-दो तोला एवं लोह-भस्म चार तोला ले सबको एकत्र मर्दन कर कण्टकारी-स्वरस, आर्द्रक-स्वरस, यष्टीमधु-क्वाथ, अजादुग्ध तथा ताम्बूल-स्वरस— प्रत्येक की सात-सात भावनाएँ देकर दो-दो गुंजा की गोलियाँ बना, छाया-शुष्क कर सुरक्षित रख लें। श्वास और कास में प्रातः-सायं 1-1 गोली पीस पिप्पली-चूर्ण और मधु के साथ चटाएं।

सहायक औषध के रूप में च्यवनप्राशावलेह, वासारिष्ट, भार्ग्यादिक्वाथ (द्वात्रशांग क्वाथ), शर्बत जूफा (सिद्धयोग संग्रह), शृङ्गभस्म, तालीसादिचूर्ण, सितोपलादि चूर्ण अथवा आगे कहे कनकासव का व्यवहार किया जा सकता है। चन्द्रामृत रस के उपयोग का विधान एवं प्रचार यों तो चाटने के रूप में है, तथापि चूसने के रूप में इसका उपयोग अधिक फलप्रद देखा गया है। इससे आभ्यंतर गुण तो होता ही है; गल आदि में लीन कफ को विलीन करने की इसकी क्रिया से प्रादेशिक लाभ भी होता है। वस्तुतः कास, श्वास में गोली चूसने आदि के रूप में प्रादेशिक उपचार के बिना चिकित्सा अधूरी ही रह जाती है। एक अहोरात्र में चार गोलियाँ यथेष्ट होती हैं। श्वासचिन्तामणि तथा श्वास कास चिन्तामणि दोनों के पाठों की तुलना करने से ये दोनों रूप अक्षरशः समान हैं। रसयोगसागर में 'श्वासकास चिन्तामणि' यह एक ही शीर्षक देकर टिप्पणी में लिखा है कि, भैषज्य रत्नावली में इसे ही 'श्वासचिन्तामणि' नाम दिया गया है। इसका अनुपान श्वास रोग में विभीतक चूर्ण तथा मधु दिया है। विभीतक दल मुख में धारण करने से उसका प्रादेशिक प्रभाव होकर श्वास-कास में लाभ होता है। लोलिम्बराज का एतद्विषयक अनुष्टुप् पहले उद्धृत कर आए हैं।

यह योग घटक द्रव्यों को देखते क्षय, पाण्डुरोग, दौर्बल्य आदि में भी अति हितावह है। महार्घ है, यह सत्य है।

**शृङ्गाराभ्र रस (बृहत्)**

इस नाम से एक अन्य भी कल्प पठित है। दोनों में वनौषधियाँ प्रायः तुल्य हैं। यहाँ जिसका पाठ दिया जा रहा, उसमें सुवर्ण विशेष है। इसके निर्माणार्थ शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध टंकण, नागकेशर, जातीपत्री, शुद्ध कपूर (इसका अर्थ पहले दिया जा चुका है), लवङ्ग, तेजपत्र और सुवर्णभस्म 1-1 कर्ष, अभ्रक-भस्म 4 कर्ष, तालीसपत्र, मुस्ता, कुष्ठ, जटामांसी, त्वक् (दालचीनी), धातकी-पुष्प, एला, त्रिकटु, त्रिफला, गजपिप्पली प्रत्येक 2-2 कर्ष ले, सबको एकत्र कर पिप्पली के क्वाथ से एक दिन मर्दन कर 3-3 गुंजा की गोलियाँ बना छाया-शुष्क कर रख लें। प्रातः-सायं 1 वा 2 गोली दालचीनी के चूर्ण (अथवा आर्द्रक-स्वरस) एवं मधु के साथ दें। ऊपर दूध पिलाएँ। श्वास-कास के अतिरिक्त पाण्डु रोग, कामला, अरुचि, अग्निमान्द्य, ग्रहणी आदि रोगों में भी यह हितावह है।

**श्वास-रोग में सोमल के कल्प**

रसशास्त्र में और उसके आविर्भाव के भी पूर्व वृद्धत्रयी में श्वास रोग में सोमल एवं तदीय यौगिकों का व्यवहार होता आया है, यह कह आए हैं। उसके पूर्व यह भी कहा जा चुका है कि, आधुनिक प्रत्यक्षानुसार इयोसिनोफिल-संज्ञक क्षत्व कणों (रक्त के श्वेत कणों) की वृद्धि से हुए श्वास-रोग में सोमल की प्रशस्ति है। आयुर्वेद-मत से तो ये तथा इतर क्षत्व कण कफ-वर्ग के ही अङ्ग हैं। एलर्जी से हुए श्वास-विकार में ये अपने कफ-विरोधी औष्ण्य—तैक्ष्ण्य से हितावह हो सकते हैं। अब, संप्रति प्रचलित सोमल-कल्पों का क्रमशः उल्लेख करेंगे। प्रथम सोमल, हरताल तथा मनःशिला तीनों का संयुक्त योग होने से 'समीरपन्नग' का एवं तदुत्तर 'सुवर्ण-समीरपन्नग' का पाठादि देंगे।

**समीरपन्नग तथा सुवर्ण समीरपन्नग रस**—समीरपन्नग रस के निर्माणार्थ शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सोमल, शुद्ध मनःशिला, शुद्ध हरताल 4-4 भाग लें। सुवर्ण समीरपन्नग रस बनाना हो तो सोने के वर्क एक भाग लें। प्रथम खरल में पारद डाल उसमें सोने के वर्क एक-एक करके डालें। सब वर्क मिल जाएं तब उसमें शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली बनाएं। पश्चात् उसमें सोमल, मनःशिला और हरताल मिलाकर दो दिन कुमारी—गर्भ अथवा तुलसी-स्वरस में मर्दन करें।

रसयोगसागर में रसवैद्यशिरोमणि पण्डित हरिप्रपन्नजी ने सादे समीरपन्नग रस के पाठ के ऊपर दी टिप्पणी में लिखा है कि; उक्त मिश्रण को सात दिन अर्कक्षीर की भावना दे शुष्क हो जाने पर काचकूपी में रख बालुकायंत्र में चार प्रहर पाक करने से प्राप्त योग का प्रयोग करना अधिक फलप्रद होता है, यह हमारा अनुभव है।

सादे समीरपन्नग का बालुका यन्त्र में पाक निम्न विधि से करने का विधान है। भावना देने पर द्रव्य गोला बनाने योग्य स्थिति में आ जाए तो उसका गोला या टिकिया बना एक बड़े शराव (शकोरे) पर अभ्रक-पत्र बिछा, उस पर इस गोले या टिकिया को रख, ऊपर दूसरा अभ्रक-पत्र ढांक दो-तीन कपरौटी कर शुष्क होने पर बालुका यन्त्र में मन्द अग्नि से चार प्रहर अग्नि दें। आयुर्वेदसार संग्रहकार लिखते हैं कि, अग्नि चार प्रहर खूब तेज दें। कोई-कोई मन्द ही अग्नि देने को कहते हैं, परन्तु मन्द अग्नि देने से रस का परिपाक ठीक नहीं होता; जिससे कुछ दिन बाद उसमें से बदबू आने लगती है और सर्दी पाकर वह फफूंद भी जाता है, अतः तीक्ष्णाग्नि द्वारा ही पाक करें। स्वांगशीतल होने पर संपुट के अंदर से काले रंग की और कठोर टिकिया निकाल कर रख लें। यह तल-लग्न रसायन है।

गुरूवर्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने सिद्धयोग संग्रह में सुवर्ण समीरपन्नग रस का पाक शीशी में रखकर बालुका यंत्र में करने और अग्नि मन्द देने का उल्लेख किया है। उनके शब्द हैं—(द्रव्य को) सात कपड़मिट्टी की हुई शीशी में भर कर वालुका यन्त्र में दो दिन पकाएं। अग्नि इतनी रखें कि जिसमें कज्जली द्रव होकर पकती रहे। शीशी के गले में आवे इतनी तेज न करें। (इस प्रकार आचार्यजी ने पाक दो दिन तक करने का निर्देश किया है। अग्नि मन्द होने के कारण रस का पचन होने में इतना काल लगना स्वाभाविक है)। आगे आचार्यवर्य लिखते हैं—स्वांगशीतल होने पर शीशी को तोड़, तलस्थ रस को निकाल, 2-3 दिन खूब महीन पीस कर शीशी में भर लें। (इससे फलित है कि मन्द अग्नि देने से गन्धक और अन्य द्रव्य शीशी में तलस्थ ही रहते हैं। बाष्पीभूत हो अमुक अंश में गलस्थ—उर्ध्वलग्न—नहीं होते। इस प्रकार तैयार हुए रस में समस्त औषध द्रव्य अवस्थित होने से वह गुणवत्तर बनता है। शराव-संपुट में रस सिद्ध करने की क्रिया में रसायन तललग्न ही होता है)।

आचार्य महोदय ने इसकी मात्रा आधी से एक रत्ती तथा अनुपान मधु अथवा आर्द्रक-समन्वित मधु लिखकर आगे सुवर्णसमीरपन्नग की फलश्रुति का निर्देश करते कहा है—सब प्रकार के वातरोगों में, विशेषतः अर्दित, पक्षाघात, कटिस्तम्भ तथा पार्श्वशूल इनमें, कफाधिक तमक श्वास में, सन्निपात ज्वर में जब तन्द्रा, स्वेदाधिक्य, शीताङ्ग आदि लक्षण हों, तब इस योग से अच्छा लाभ होता है। फिरङ्ग नो पदंश (सिफिलिस-गॉनौरिया) से जो वात रोग होते हैं, उनमें इससे विशेष लाभ होता है।

आयुर्वेदसारसंग्रह में अनुपान में पान या अदरक के रस या शहद इनमें किसी एक के साथ, कफाधिक्य में अडूसा (वासा) या मुलेठी और बनपशा के क्वाथ अथवा मिश्री के साथ देने का उल्लेख किया है। आगे ग्रन्थकार लिखते हैं—संप्रति इस रस को ऊर्ध्वलग्न बनाने की प्रथा भी चल पड़ी है। ऊर्ध्वलग्न भी लाभदायक है। उसकी मात्रा, उपयोग और गुण समान ही हैं।

श्वास रोग का प्रकरण होते हुए भी इस (समीरपन्नग) रस के विषय में दो-तीन प्रखर रस-चिकित्सकों के मन्तव्य व्यवहारोपयुक्त होने से आयुर्वेद सारसग्रह से पुनः उद्धृत किए जाते हैं—

इस रसायन के संबन्ध में स्वामी हरिशरणानन्द जी लिखते हैं--"इस रस की एक रत्ती की मात्रा से अर्धाङ्ग (लकवे) के अनेक रोगी मैंने अच्छे किये हैं। अर्धाङ्ग में जितना लाभ इससे होता है, उतना अच्छा लाभ करने वाला इस रोग के लिए एक भी रस नहीं मिला। इसके

अतिरिक्त गृध्रसी के भी रोगी हमने अच्छे किए हैं।

"रक्तचाप अधिक बढ़ जाने से तथा मस्तिष्क की केशिका फट जाने से ही रक्तस्राव मस्तिष्क के किसी भाग में होता है। उसी के कारण अर्धांग, सर्वांग या एकाङ्ग घात (लकवा) आदि रोगों का एकाएक प्रादुर्भाव हो जाता है। जिन व्यक्तियों को पक्षाघात होता है उनका रक्तचाप प्रायः बढ़ा हुआ देखा जाता है। ऐसे समय में बड़े-बड़े डाक्टर प्रथम रक्तचाप ठीक करने का उपाय सोचते हैं, किंतु सफलता नहीं मिलती है। हमने देखा कि, यह ऊर्ध्वलग्न समीरपन्नग रस पक्षाघात में प्रारंभ से ही दिया जाए तो बढ़े हुए रक्तचाप को भी कम कर देता है और बहुत जल्दी रोगी स्वास्थ्य-लाभ करता है।"

ऊपर के वक्तव्य में रक्तचाप के "प्रायः" बढ़े होने का उल्लेख इस हेतु किया है कि, कतिपय रुग्णों में रक्तचाप न्यून (लो ब्लड प्रेशर, हायपोटेन्शन) होने से भी पक्षवध का प्रादुर्भाव होता है। संवहन की मन्दता वश रक्त अपने स्रोत में ही स्कन्दित हो जाता हुआ—जम जाता हुआ—इस रोग को उत्पन्न करता है। इस रोग के अधिकार में इस पिछली स्थिति को 'कफान्वित वातज पक्षाघात' कहा है। उच्च रक्तचाप बहुधा पित्तप्रकोपवश होता है। उसका निर्देश 'पित्तान्वित वातज पक्षाघात' नाम से तन्त्रकारों ने किया है। इस रोग के शेष दो भेद शुद्ध या केवल वातज पक्षाघात तथा धातुक्षयज पक्षाघात है। प्रथम प्रकार में प्रकुपित घात के कारण मस्तिष्क में कहीं रक्तवाही स्रोत भङ्गुर हो जाने से—गुहनशील या 'फ्रेजाइल' हो जाने से—लेशमात्र कारण उपस्थित होने पर, यथा रक्तचाप की किंचित् ही वृद्धि होने पर, टूट जाता है और रक्त स्रुति होकर पक्षाघात होता है। जिन पुरुषों के स्रोतों में यह भङ्गुरता (विदरणशीलता) नहीं होती रक्तचाप का अङ्क अति भयावह स्थिति में पहुंचने पर भी वे पक्षवध के शिकार नहीं होते।

श्रीयुत छांगाणीजी के मतानुसार "यह (दूसरा) सन्निपात की उत्तम औषध है। विशेष कर संधिक सन्निपात के लिए बहुत उपकारी है। कफ के बढ़ जाने पर इसका प्रयोग बहुत काम देता है। शीताङ्ग सन्निपात में नाड़ी की गति क्षीण हो जाने पर इसकी 1-2 मात्रा से ही आशातीत लाभ होता है।"

कई परंपरागत वैद्य देखे हैं, जो प्रायः सभी रोगों पर अनुपान-भेद से समीरपन्नग का व्यवहार करते हैं, और इसकी प्रशंसा करते थकते नहीं। इसका नाम वातविकारों पर इसके अव्यर्थ फलप्रद होने का सूचक है। समीर का अर्थ है वायु एवं पन्नग का अर्थ है—सर्प। जैसे सर्प प्रसिद्ध किंवदन्ती के अनुसार वायु का भक्षण करते हैं, तद्वत् यह समीरपन्नग रस शरीर-गत प्रकुपित वायु का भक्षण अथवा विनाश करता है। आयुर्वेद-मत से सभी, नहीं तो अधिकांश रोग वातमूलक ही होते हैं। सो प्रवृद्ध वायु पर क्रिया करने वाला होने से यह समीरपन्नग नाना रोग-समूह पर उत्तम गुणकारी सिद्ध होता है।

**भल्लसिंदूर और भलचन्द्रोदय**—सिद्ध भैषज्य मणिमाला से गुरुवर्य वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने यह योग अपने 'सिद्धयोगसंग्रह' तथा 'रसामृतम्' ग्रन्थों में उद्धृत किया है। सिन्दूर-नामक कल्प वालुका यन्त्र द्वारा तैयार किए जाने वाले कूपीपक्वरस होते हैं। सिद्ध होने पर इनका वर्ण सिन्दूर-सदृश होने से इन्हें रस-शास्त्र में सिन्दूर संज्ञा दी गई है। जो द्रव्य प्रधान हो उसका नाम पूर्वपद में रख कर इन्हें भिन्न-भिन्न अभिधान दिए गए हैं। यथा, पारद से रससिन्दूर, ताम्र से ताम्र सिन्दूर, रजत से रजत सिन्दूर, सोमल से भल्ल सिन्दूर, मनःशिला से शिला सिन्दूर, हरताल से तालसिन्दूर और सुवर्ण से स्वर्णसिन्दूर (मकरध्वज वा चन्द्रोदय) कहा जाता है। रसयोगसागर के अन्त में अयःसिन्दूर के तीन पाठ तथा कांत सिन्दूर के दो पाठ भी दिए गए हैं।

मल्लसिन्दूर के निर्माणार्थ शुद्ध पारद 9 भाग, शास्त्रोक्त विधि से बनाया हुआ रसकपूर 9 भाग[1], शुद्ध

---

1. रस कर्पूर की शास्त्रोक्त निर्माणविधि इस योग (मल्ल सिन्दूर) के अनन्तर लिखी है। उसी के ग्रहण का विधान यहां किया गया है। यह रसकर्पूर पारद और क्लोरीन वायु का समास (यौगिक) है। पारद और क्लोरीन गैस के दो यौगिक प्रसिद्ध हैं—एक रसकर्पूर तथा दूसरा रसपुष्प। योग में पारद की मात्रा के भेद से ये दो भेद होते हैं। रसकर्पूर में पारद एक भाग तथा क्लोरीन दो भाग का समवाय होता है। अंग्रेजी में इसे 'कॉरोसिव सब्लिमेट' (Corrosive sublimate) कहते हैं। यह तीव्र विष है। भाषा में आयुर्वेद में रसकर्पूर एवं दक्षिण भारत और श्रीलङ्का में प्रयुक्त नामों का संस्कृतीकरण करके

पारद 5½ भाग और शुद्ध सोमल 5½ भाग लें। प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर, उसमें रसकर्पूर और सोमल मिला, दो दिन कुमारी-स्वरस में मर्दन करें। पश्चात्, सात कपरौटी की हुई शीशी में भरकर बालुका यन्त्र में रससिन्दूर की निर्माण-विधि से दो दिन पाक करें। स्वाङ्गशीत होने पर शीशी को तोड़, शीशी के गले में लग्न मल्लसिन्दूर को निकाल, तीन दिन पत्थर के खरल में मर्दन कर महीन होने पर शीशी में भर लें।

यदि मल्लसिन्दूर में एक तोला सुवर्ण के वर्क (पत्र) मिलाए जाएं और तलस्थ सुवर्ण में ऊपर के मल्लसिन्दूर को मिला, तीन दिन मर्दन कर योग बनाया जाए तो इसे मल्लचन्द्रोदय कहते हैं। मल्ल सिन्दूर के निर्माण में अन्य सावधानियों के अतिरिक्त विशेष सावधानी यह रखनी होती है कि कोई दस-बारह घण्टे जारणा (पाक) से गंधक संपूर्ण उड़ जाता है। तब तक शलाका से शीशी के गले के अन्दर के भाग को स्वच्छ करते रहना चाहिए। इसके पश्चात् सोमल का धुआँ निकलने लगे तो डाट लगा दें। अन्यथा, सोमल उड़ जाएगा। निर्माण-काल में सोमल के धुएं से भी बचना चाहिए।

यह मल्ल सिन्दूर सर्व प्रकार के वात और कफ के रोगों में उपयोगी है। अर्दित, पक्षाघात, जीर्ण प्रतिश्याय तथा कफाधिक कास और श्वास (तमक श्वास) में इससे अच्छा लाभ होता है ½ से 1 रत्ती की मात्रा में दिन में दो बार मधु के साथ अथवा सितोपलादि चूर्ण 2½ माषा और मधु मिलाकर दें। कफ-विकारों में अदरख अथवा पान के रस तथा शहद के साथ सेवन कराएं।

मल्ल एवं रसकर्पूर घटित होने से फिरङ्ग (सिफिलिस) से होनेवाले सन्धिवात में भी इससे त्वरित लाभ होता है।

**रस कर्पूर**—मल्ल सिन्दूर का एक घटक रसकर्पूर है। 'दाल चिकना'—नामक फिरङ्ग वात में उपयोगी औषधों में डाला जाने वाला रस द्रव्य भी इस रसकर्पूर से ही तैयार किया जाता है। प्रकरण की पूर्ति के अनुरोध से तथा आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम के आरम्भिक वर्षों में अधीत रसशास्त्र के स्वाभाविक ही विस्मृत प्राय होने से उसकी स्नातकों को पुनः स्मृति कराने के प्रयोजन से इस रसकर्पूर एवं दालचिकना की संक्षेपतः निर्माण-विधि देना उचित माना है।

आरम्भ में ही लिख दें कि, सिद्धभेषज मणिमाला में पठित अमीर रस और यह रसकर्पूर एक ही हैं। रसयोगसागर में अमीर रस का पाठ उद्धृत कर उसके कर्त्ता पण्डितप्रवर हरिप्रपन्न जी ने टिप्पणी में लिखा है—**अयं रसकर्पूर एवास्ति, भावप्रकाशीय कर्पूर भाण्डेश्वरादत्र विलक्षणगुणोऽपि नास्ति। परन्तु मरुदेशे विशेषतया लब्ध प्रतिष्ठोऽस्ति। अस्य स्थाने भावप्रकाशीययोगो विशेषतया लाभप्रदोऽस्ति।** तात्पर्य, यह अमीर रस कोई भिन्न रसायन न होकर रसकर्पूर ही है। भाव प्रकाश में पठितकर्पूर भाण्डेश्वर की तुलना में इसमें कोई विलक्षण गुण भी नहीं। परन्तु मरुदेश (राजस्थान) में यह विशेषतः प्रतिष्ठा प्राप्त किए है। भावप्रकाशीय योग इसकी अपेक्षया अधिक लाभप्रद है। (भाण्डकर्पूर रसकर्पूर का पर्याय है)।

निर्मित सवीर नाम से यह प्रचलित है। फिरङ्ग रोग (सिफिलिस्) के उपचार में व्यवहृत होने वाली सवीरवटी तथा अमीर रस का यह प्रधान घटक है। पारद और क्लोरीन का अन्य कल्प 'रसपुष्प' कहाता है। इसका प्रचलित नाम 'केलोमल' है। इसका विरेचन एवं यकृत पित्त के विरेचन के रूप में पुष्कल व्यवहार पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र में होता था। अब तो इसका स्थान 'फिनॉल्फ्थेलीन' (आधुनिक रसायन शास्त्र के प्रयोगों में क्षारों की परीक्षा के लिए प्रयुक्त होने वाला प्रसिद्ध द्रव्य। इसके सम्पर्क से क्षारीय द्रव्य गुलाबी रंग के हो जाते हैं।) आदि द्रव्यों ने ले लिया है। इसमें पारद और क्लोरीन दोनों दो-दो भाग होते हैं। रसकर्पूर का रासायनिक नाम 'मर्क्यूरिक क्लोराइड' तथा रसपुष्प का 'मर्क्यूरस क्लोराइड' है। इनके क्रमशः पर्याय 'हाइड्राजिराइड परक्लोराइड' तथा 'हाइड्राजिराई सब्क्लोराईड' हैं। वर्तमान शती के आरम्भिक वर्षों में रसपुष्प के लिए रसकर्पूर और रसकर्पूर के लिए रसपुष्प शब्द का व्यवहार होता था। सूरत में किसी समय कोई कुटुम्ब रसकपूर बनाने का व्यवसाय करते थे। रासायनिक रसकर्पूर सुलभ होने से यह व्यवसाय चिरकाल से बन्द है। परन्तु इस व्यवसाय के कारण उनको अटक (सरनेमा) 'रसकपूर वाला' अब भी चालू है। हिंगुल बनाने वाले व्यवसायी भी कभी यहां थे। उनकी अटक 'हिंगकोक वाला' थी।

वैद्य यादवजी त्रिकम जी आचार्य ने 'रसामृतम्' में रसकर्पूर का पाठ निम्न दिया है—फिटकरी, नौसादर, कासीस, सैंधा नमक, सूर्यक्षार, तुत्थ, टंकण—प्रत्येक 4-4 तोला। बालुकायन्त्र में इसके पाक की विधि तथा रोग-विशेष में उपयोगार्थ बनाई जानेवाली रसकर्पूर वटी का पाठ आदि मूल ग्रन्थ में देखिए।

आयुर्वेदसार संग्रह (वैद्यनाथ प्रकाशन) में रसकर्पूर में द्रव्यों का प्रमाण यह दिया है—शुद्ध पारद 30 तोला, नौसादर 15 तोला, फिटकरी 15 तोला, टंकण 8 तोला, नमक 8 तोला, सज्जी काली 10 तोला, कासीस हरा 5 तोला, यवक्षार 2 तोला, सोमल 1 तोला। शेष अनुभवाश्रित निर्माण विधि, निर्माण की महार्घता आदि के विवरणार्थ देखें—मूल ग्रन्थ।

**दालचिकना**—इसी आयुर्वेदसार संग्रह में लिखा है कि, रसकर्पूर और पारद समभाग ले, मर्दन कर उसमें सोमल, फिटकरी, टंकण तथा मैंगनीज डाई ऑक्साइड (एक आधुनिक रसायन शास्त्रोक्त द्रव्य) मिलाकर 175° श० की अग्नि दें। पाक-विधि के परिणामस्वरूप पारद और रसकर्पूर संयुक्त होकर एक नवीन यौगिक बनता है। इसे दाल (र) चिकना या केलोमल (?) कहते हैं। इसमें पारद और क्लोरीन दो भाग होते हैं। (इसका कुछ विचार पहले कर आए हैं। रसकर्पूर और रसपुष्प नाम में कुछ गड़बड़ी हो गई प्रतीत होती है)। भारतीय रसशास्त्र में स्व. डा० वामन गणेश देसाई ने इसके पर्याय कारोसिव सब्लिमेट (अं०), शविरम् या भाण्डकर्पूर (सं०), शविरमु (सिंहाली); शविरम्, शविर (दक्षिण); दाल चिकना, संबुल (हिन्दी); शविरम् (तमिल) तथा दारचिगनां) (पंजाबी)—ये दिए हैं। इसे उन्होंने रसपुष्प कहा है। (रसकर्पूर और दाल चिकनने के रासायनिक अन्तर आदि के लिए देखिए: आयुर्वेद सारसंग्रह)।

**सब्बीर**—सब्बीर-घटित अनेक योग रसग्रंथों में उद्धृत हैं। रसयोग सागर में पृ० 621 पर प्रदत्त 'सब्बीर-वटी' का पाठ देकर टिप्पणी में पण्डित हरि प्रपन्न जी ने लिखा है कि—अंग्रेजी भाषा में इसका नाम 'कारोसिव सब्लिमेट' तथा यूनानी वैद्यक में 'दाल-चिकना' है।

**अमीर रस**—रस योग सागर में पृ० 629 पर पंडित जी ने सिद्ध भेषजमणिमाला से मूल वचन उद्धृत कर उसका अर्थ दिया है। इसके निर्माण में सैन्धव नमक सूक्ष्म चूर्णित 4 तोला, रसकर्पूर, हिंगुल और दालचिकना 1-1 तोला उन्हें सूक्ष्म खण्डित कर, चांदी की जरी बारीक काटी हुई लिए जाते हैं। निर्माण तथा प्रयोग की शेष विधि के लिए देखें मूल ग्रंथ। यहां पहले उद्धृत की टिप्पणी पंडित जी ने लिखा है कि, रसकर्पूर और इस अमीर रस में कोई भिन्नता नहीं हैं। परन्तु अब तक जो दो पाठ रसकर्पूर के दिए हैं, उनमें हिंगुल और दाल चिकना पठित नहीं हैं। विधि भी भिन्न है। पंडित जी को प्राप्त रसकर्पूर का पाठ इस अमीर रस के तुल्य रहा होगा।

**सवीर**—आचार्य यादवजी भाई ने फिरङ्गोपदंश में उपयोगी सवीर वटी अपने सिद्ध योग संग्रह में दी है। प्रथम सवीर का पाठ तथा निर्माण-विधि उन ने दी है। इसके लिए फिटकरी 4 तोला, कलमी शोरा (सूर्यक्षार) 4 तोला, नौसादर 4 तोला, कासीस 4 तोला, सैंधा नमक 4 तोला, नीला थोथा 4 तोला, लोबान 4 तोला और पीला संखिया दो तोला लेकर सबको खरल में पीसें। पीसने से सब गीला हो जाएगा, उसको लोहे के तवे पर रख अग्नि पर सुखा खरल में डाल, उसमें पारद तीस तोला मिला, सबको तीन दिन मर्दन कर सात बार कपड़ मिट्टी की हुई आतशी शीशी में भर कर बालुका यंत्र में पकावें। X X X। स्वांग-शीतल होने पर शीशी को बाहर निकाल, तोड़कर शीशी के गले पर लगा हुआ श्वेत वर्ण का सवीर (रसकपूर) निकाल लें।

**शिलासिन्दूर (शिलाचन्द्रोदय)**—रसयोग सागर में इस नाम और पर्याय के पाच कल्प हैं। इनमें यह प्रथम है। शिला (मनः शिला) वृद्धत्रयी के काल से श्वास रोग में किसी-न-किसी रूप में प्रयुक्त होती आई है। इसका स्वतन्त्र (एकाकी) उपयोग भी पुष्कर मूल, कुष्ठ, सोम, सितोपलादि चूर्ण, तालीसादिचूर्ण, शंख भस्म आदि के साथ उचित अनुपान में वृद्ध वैद्य करते हैं। विभिन्न कल्पों के रूप में इसका व्यवहार प्रचलित है। इन कल्पों में एक यह शिला सिन्दूर है। इसके निर्माणार्थ शुद्ध मनःशिला को इक्कीस दिन आर्द्रक-स्वरस के साथ मर्दन कर शुष्क होने पर यह मनःशिला, शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक

आठ-आठ तोला ले प्रथम कुमारी-गर्भ के योग से पारद-गन्धक की कज्जली बना, उसमें मनःशिला मिला एक दिन कुमारी-स्वरस में मर्दन करें। पश्चात् विधानोक्त प्रकार से बालुका-यंत्र में पाक करें। अनुपान-विशेष से यह सर्व प्रकार के कफ और वात के रोगों को दूर करता है। मात्रा : ½—1 रत्ती; अनुपान—मधु और घृत।

कास-श्वास पर इसके व्यवहार के विषय में आयुर्वेद सार-संग्रहकार लिखते हैं—कफ या वात प्रधान कास (श्वास) हो, खांसी बार-बार आती हो, साथ ही श्वेत और पिच्छिल कफ निकलता हो, खाँसते-खाँसते मुख तथा नेत्र रक्त वर्ण हो जाते हों, अन्न में अरुचि, निद्रानाश तथा शरीर में गुरुता आदि लक्षण उपस्थित हों, ऐसी स्थिति में शिलासिन्दूर 1 रत्ती, त्रिकटु चूर्ण एक मात्रा में मिला वासा-स्वरस के साथ देने से विशेष लाभ होता है। यह दूषित कफ को निकाल कर श्वास-नली को स्वच्छ करता है तथा अपने उत्तेजक गुण के कर हृदय और वातवाहिनी नाड़ी (ज्ञानतन्तु) में उत्तेजना (बल) उत्पन्न करता है।

**तालसिन्दूर :** ताल का अर्थ है हरिताल। इससे घटित सिन्दूर को तालसिन्दूर कहा जाता है। इसके पाठ में सोंमल भी पठित है। अतः इसका भी उपयोग श्वास रोगों में हितावह होता है। यों मूल में इसे सब प्रकार के कफ और वात के रोगों को नष्ट करनेवाला कहा है। सिद्धयोग संग्रह में आचार्य यादव जी भाई ने इसका पाठ सिद्ध भेषजमणि माला से उद्धृत किया है। उसके अनुसार इसके निर्माण में पारद छः भाग, शुद्ध हरताल एक भाग और शुद्ध गन्धक एक भाग ले मिश्रित कर रस सिन्दूर के निर्माण-प्रकार से तालसिन्दूर का निर्माण किया जाता है। इसकी मात्रा आधा से 1 रत्ती, अनुपान मधु-घृत।

अब तक निर्दिष्ट योगों के सदृश विपुल प्रमाण में इसका प्रयोग नहीं किया जाता। तथापि, प्रतिश्यायादि रोगों के प्रकरण में बालकों को होनेवाले सतत किंवा पुनरावर्ती प्रतिश्याय, कास और श्वास (ब्रांकोन्यूमोनिया) में हरिताल-घटित रसमाणिक्य (माणेकरस) एवं उसे अन्य फलप्रद औषधों के संयोजित माणेकरसादि गुटिका का इस ओर (आनूप देश में) सुबहु उपयोग होता है। इनके पाठादि उपरिनिर्दिष्ट प्रकरणों में पुनः देख जाने चाहिए।

**श्वासकुठार (नूतन कल्प) :** केवल सोमल के इस कल्प का उल्लेख श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संस्थापक तथा प्रवन्ध-संचालक वैद्य रामनारायण जी शर्मा ने अपने सुप्रसिद्ध 'आरोग्यप्रकाश' में निम्न पदों में किया है—शास्त्रोक्त श्वास कुठार रस का हम भी व्यवहार करते हैं। परन्तु जब से इस श्वासकुठार का प्रभाव हमने देखा है, तब से यह निश्चय हो गया है कि, श्वास के लिए यह सचमुच कुठार (कुल्हाड़ी) है एक रत्ती संखिया में 25 रत्ती खाने का सोडा (सोडा बाई कार्ब) मिलाकर अच्छी तरह पीस कर 26 पुड़िया बना लें। एक पुड़िया सुबह और एक पुड़िया शाम जल के साथ या मलाई में खिलाएँ। रोगी को अनुकूल होने पर 16 पुड़िया की जगह आठ ही बना सकते हैं। शीत के समय में दमा के रोगी को 40 दिन या 8 दिन यह दवा खिलाएँ। भगवान की दया से दमा एकदम जाता रहेगा। मेरे अनुभव में दमा में स्थायी लाभ पहुंचाने वाली इससे उत्तम दवा अभी तक नहीं आई है। इस दवा का सेवन करा कर और साथ में रोगी का आहार-विहार ठीक रख कर मैंने दमा के कई रोगियों को आराम किया है। रोगी को अग्नि के बलानुसार ताजा घी भी पिलाना चाहिए। सावधान! दवा को अच्छी तरह मिलाकर तैयार करें। यदि एकही खुराक में मात्रा से अधिक संखिया रोगी के पेट में पहुंच जायगा, तो रोगी प्राण-त्याग कर सकता है।

(सावशेष)

## हमारा विशेष लेख

# वाग् विभ्रम


श्री अनन्तराम शर्मा

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, कायचिकित्सा,

ऋषिकुल राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, हरद्वार


सुस्वस्थेऽपि वाग्यन्त्रे नेरायो वक्तुमक्षमः ।
अस्पष्टमर्थशून्यं वा सावज्ञेयो वाग्विभ्रमः ।।

अन्नमट्ट शब्द को 'ध्वन्यात्मक' और 'वर्णात्मक' भेद से दो प्रकार का मानते हैं (श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः स द्विविधः, ध्वन्यात्मको वर्णात्कश्च)। आयुर्वेद-ग्रन्थों में वर्णित 'कपोत इव कूजेच्च' मा. नि., 'रुद्धो घुर्घुरकं तथा' च. और 'पीडयत्यानिशं क्वणन्' वा. ध्वन्यात्मक शब्द के उदाहरण हैं तथा 'ब्रूयादे च गुह्यानि हृदि स्थितानि' मा. नि., 'प्रसक्ताव्यक्त भाषिणः'[1] सु. और 'वाग्चेष्टितं मंदमरोवक्रश्च' च. आदि वर्णात्मक शब्द के उदाहरण हैं। इसी प्रकार 'स वाग्वज्रोयजमानं हिनस्ति'—पातञ्जलमहाभाष्य, 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ'—कालिदास और 'यदि वाचं प्रदास्यामि मानुषीमिव संस्कृतम्'—वाल्मीकी, सु. का. आदि में 'वाक्' शब्द का प्रयोग वर्णात्मक शब्द का द्योतक है।

ध्वन्यात्मक शब्द का क्षेत्र बहुत बड़ा है, जैसे—कोलाहल, तुमुल, मर्मर, कर्दन, पर्दन, शिंजित (आभूषण), रम्भा (गोशब्द), कूजित (पक्षीरवं), बुक्कन (श्वा), आदि परन्तु वर्णात्मक शब्द का क्षेत्र भी कुछ कम नहीं है। केवल आयुर्वेद ग्रन्थों में भी वाणी के लिए अनेक शब्दों का उल्लेख है, जैसे—निरुद्धवाक् (वा. नि. 6-17 अन्तः प्रविष्टवाक्-अरुणदतः) वाक्स्तम्भ (मूकत्वम्-अ. द.) अमर्त्यवाक् (वा. नि. ६-२६) अबद्धवाक्त्व (वा.) विशीर्ण वाक् (का.) हतवाक् (मा.) दीन स्वर (क्षमावचनः) अन्तर्गत स्वर (कण्ठस्य अन्तर्गतं यथाभवति तथा स्वरं वचनं वदतीति) अलक्ष्यपद (सु. 6/53) गद्गदवाक् (मा.) ग्रस्तस्वर (सर्वथानुच्चारः) क्षामस्वर (रुक्षः) दीनस्वर (दुःखोच्चार्य माणस्वरः) और अनुकीर्ण (उपच्युपरि-उच्चार्यमाणः) आदि[2]।

पाणिनीय व्याकरण की १९४३ धातुओं में लगभग २० धातु ऐसी हैं जिनसे उपरोक्त वर्णात्मक शब्दों का निर्माण होता है, जैसे—वच, वद्, भाष, गद, शच्, रट, जल्प, रप्, लप्, चक्षिङ्, ब्रूञ् और ख्या-प्रकथने। श्री अमर सिंह ने अपने नामलिंगानुशासन में वर्णात्मक शब्द के वाणी, वाग्, वचन, भाषण, भाषा, ब्राह्मी, भारती, उक्ति, लपित और वचस् आदि नाम दिए हैं और इसके देवता को गीष्पति, वाचस्पति आदि नामों से पुकारा है।

भारतीय वाङ्मय में शब्द का बड़ा महत्व है। संभवतः यही हेतु है कि इन्द्रियों में श्रेष्ठ ज्ञानेन्द्रियों में केवल वाग्देवी की ही कल्पना मिलती है, अन्य की नहीं। श्रुति के अनुसार 'शब्दोनित्यः' और आगम लिखता है, 'एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुष्ठुप्रयुक्तः स्वर्गेलोके च कामद्रुक भवति'। 'शब्द' से अभिप्राय क्या है? इस सम्बन्ध में महाभाष्यकृत परिभाषा इस प्रकार है : 'येनोक्तेन सास्नालांगूल ककुद खुर विषाणिनां संप्रत्ययो भवति स शब्दः'।

'शब्द' को लेकर पुराकाल में बड़ा रोचक विवाद रहा है जिससे उस समय के विद्वानों में बड़ी बारीकी से सोचने की उनकी क्षमता का पता चलता है। भट्टपाद ने श्लोकवार्तिक में शब्द-विषयक मतभेद का विवरण प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं कि—

"**सांख्यैः**—सत्वरजस्तमः स्वभावत्वात् त्रिगुणः शब्दः; **दिगम्बरैः**—पुद्गलाः परमाणव उच्यन्ते तेषामयं पौद्गल। तदात्मकः शब्द इतियावत् **काणादैः**—आकाशगुणः शब्दः; **शिक्षाकारैः**—**लौकिकैः**—वर्ण व्यतिरिक्तो नादात्माशब्दः, **शिक्षाकारैः**—वायुस्नयोऽर्थवाचकः (वायुरापद्यते शब्दनाम्), **वैयाकरणैः**—पदस्फोटात्मकः वाक्यस्फोटात्मकः, **बिन्ध्यवासीष्टम्**—सास्नप्यं सादृश्यम्, **बौद्धैः**—अन्यनिवर्तनम् अन्यापोहो—वाचकत्वेन य इष्टः।"

इस सम्पूर्ण कथन में वैय्याकरणों का 'स्फोट' 'वाग्विभ्रम' के संदर्भ में ज्ञातव्य है। व्याकरण भूषणसार और उसकी 'दर्पण' नामक टीका के लेखक 'स्फुटति प्रकाशते ज्ञातो भवति अर्थोऽस्मात् असौ 'स्फोटः' इस प्रकार उसकी व्युत्पत्ति करते हैं। इन्होंने ही एक अन्य स्थल पर 'परा', 'मध्यमा' पश्यन्ती और 'वैखरी' वाक् का विवरण प्रस्तुत

किया है जो अविकल इस दृष्टि से नीचे दिया जा रहा है जिससे वाणी का क्रिया-शारीर प्राच्यों के शब्दों में ही जाना जा सके :—

"ननु कोऽसौ स्फोटो यदनतिरिक्ता वर्णा इतिचेद् ? अत्राहुः—

ईश्वरसिसृक्षात्मक मायाविन्दुपरपर्याय त्रिगुणात्मकाव्यक्ताप्रभवः शब्द ब्रह्नापरनामा चेतनाधिष्ठितोऽनभिव्यक्तवर्णविशेषो खः परादिशब्दै र्व्यवह्लियमाणो नादः **'स्फोटः'** इत्युच्यते। स च सर्वगतोऽपि पुरुषस्य ज्ञातार्थ विवक्षाधीनप्रयत्नाधिष्ठित मूलाधारस्थपवनेन अभिव्यक्तः **परेतिव्यवह्वियते** । नाभिपर्यन्तमागच्छता तेनाभिव्यक्तः **पश्यन्तीति** । पुन हृदयमांगच्छता पश्यन्तीति । पुन हृदयमांगच्छता तेनाभिव्यक्तः तदर्थोल्लेखित ज्ञानविषयः परश्रोत्राग्राह्यत्वात् सूक्ष्मो **मध्यमा** वागिति । वक्त्रातु कर्णविधाने सूक्ष्मतर वाय्याभिघातेनापाशु शब्द प्रयोगे च श्रूयते।। स एव च आस्य पर्यन्त मागच्छता तेन वायुना कण्ठदेशं गत्वा मूर्धानमाहत्य परावृत्य तत्तत्स्थानेषु अभिव्यक्तः परश्रोत्रेणापि ग्रहीतुं शक्यः **वैखरीति** व्यवहृयते।"

श्रुति में वाग् का यही क्रियाशारीर वर्णन संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त हुआ है:

"चत्वारि वाक् परिमितानि पदानि। तानि विदुः ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि बिहिता नेगयन्ति। तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति"

भागवत के दशम स्कंध में एक पुराण वाक्य भी है:—

**' बिन्दोस्तस्मात् भिद्यमानात् रवोऽव्यक्तात्मकोऽभवत् ।**
**स एव श्रुति सम्पन्नः शब्द ब्रह्मेति गीयते ॥**

श्रुति ने तो 'ॐ' को सर्ववाक् कहा है और समस्तवाणी इसी की देन मानी है (ॐ एव सर्ववाक् सैषा स्पर्शोष्मभि र्व्यज्यमाना नाना रुपा भवति)

आयुर्वेद चिकित्सा-शास्त्र होने पर भी बाणी के इस प्रकार के क्रियाशारीर-सम्बन्धी वर्णन से सर्वथा शून्य है। इससे तो पाणिनीयार्थसा में भी अधिक स्पष्ट वर्णन उपलब्ध है। देखें—

**आत्मा बुद्धया समेत्यर्थान् मनोयुङ्क्तो विवक्षया।**
**मनः कायाग्नि माहन्ति, सप्रे रयति मारुतम् ॥**
**सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रामापद्य मारुतः।**
**वर्णान जनयति ... ... ॥**

महाभाष्य में महर्षि पतंजलि ने शब्द को 'त्रिधाबद्ध' कहा है (त्रिधाबद्धः—उरसि कण्ठे शिरसि) और यास्काचार्य 'वाग्-पुनः प्रकाशयत्यर्थान्' लिखते हैं।

वस्तुतः शब्द के रूप में उच्चरित ध्वनि जो सदा निश्चित अर्थयुक्त होती है, वाक 'Speech' कहलाती है। यह मस्तिष्क के सर्वोच्च बौद्धिक कार्यों में से एक है जो प्रेरक, संवेदी और मानसिक केन्द्रों के संयुक्त प्रयास का परिणाम है। वाक्, लेखन और पठन का परस्पर नितांत निकट का सम्बन्ध है। **शब्दशः उत्पन्न ध्वनि 'वाक्' है जबकि बाणी को दृश्य चिह्नों द्वारा व्यक्त करना 'लेखन' है और इन लिखित एवं दृश्य चिह्नों को** वाणी द्वारा **प्रकट करना 'पठन' कहलाता है।** वाक्-केन्द्र का मस्तिष्क की वाम-अधः-सन्मुखीन लहरिका क्षेत्र में और लेखन केन्द्र का वाम-मध्य-सन्मुखीन लहरिका क्षेत्र में स्थित होना समझा जाता है।

वाक्-विकास में संवेदी, प्रेरक और मानसिक क्रियायें सामूहिक रूप से क्रियाशील होती हैं। जब शिशु सर्वप्रथम बोलना सीखता है तो वह पहिले उच्चरित शब्द की ध्वनि को सुनता है और संवेदी तथा साथ के अन्य प्रभावों की सहायता से उस ध्वनि के पूर्ण अर्थ को समझने का प्रयत्न करता है। उदाहरण के लिए—शिशु सर्वप्रथम जब 'पापा' शब्द का उच्चारण करता है तो उसे इससे पूर्व पापा शब्द बार-बार सुनने के कारण एक व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध स्थापित करना होता है और वह आवश्यक प्रेरक आवेगों की वाग्-केन्द्र के विशिष्ट क्षेत्र में व्यवस्थित करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार इन आवेगों का यह व्यवस्थित प्रवाह उच्चारण से सम्बन्धित ओष्ठ, जिह्वा, ग्रसनिका, स्वर यन्त्र और श्वास का नियन्त्रण करने वाले पिरामिड क्षेत्र तक पहुंचता हुआ प्रेरक तन्त्रिकाओं तक जाता है और फिर कहीं शिशु प्रथम शब्द का उच्चारण कर पाता है। स्फुट उच्चारण के लिए और अधिक समय लग जाता है। इस प्रकार 'वाक्' के लिये श्रवण अनिवार्य है और यही कारण है कि जो बालक मूक '(Deaf)' पैदा होते हैं वे बधिर (Dumb) भी जन्म से ही होते हैं (देखें वृद्ध जीवकीय तन्त्र का वर्णन—तत्र वागिन्द्रियं त्वेकं द्विधाभूतं यथाकरो। अर्धेन शब्दं वदति गृह्णात्यर्धेन तं पुनः॥

तस्माच्चमूका भूयिष्टं भवन्ति बधिरा नरः। वाग्मूलं हि स्मृतं श्रोत्रं वाग्भ्रंशे भ्रश्यते हितत्—कफ चिकित्सा; In this way speech develops. For speech, therefore, hearing is essential. A child who is born deaf is also born dumb (unless special methods are adopted "भूयिष्ठम्")

- Human physiology.

एतावत् वर्णन 'वाग्-विभ्रम' में पठित 'वाग्' के विशिष्ट बोध के लिये आवश्यक था। तथ्य यह है कि आयुर्वेद वाङ्मय में ये दोनों शब्द एक साथ कहीं उपलब्ध नहीं हुए यद्यपि 'विभ्रम' का अन्य अनेक शब्दों के साथ पाठ हैं, जैसे—

**"उन्मादं पुनः मनो बुद्धि संज्ञाज्ञान स्मृति भक्ति शील चेष्टाचार विभ्रमं विद्यात्"—च० नि० 7।5**

प्रस्तुत प्रसंग में इस सूत्र की चक्रपाणिकृत 'आयुर्वेद-दीपिका' भी विषय के विशदीकरण के लिये सहायक रूप में नीचे अविकल दी जा रही है—

अत्र **मनोविभ्रमात्** चिन्त्यानर्थान् न चिन्तयते; अचिन्त्याश्च चिन्तयते। उक्तं हि-मनसश्च चिन्त्यमर्थः—सू० अ० 8 इति। **बुद्धिविभ्रमात्**—नित्यमनित्यमिति प्रियञ्चाप्रियमिति। पश्यति। वचन हि०—विषमाभिनिवेशोयो नित्यानित्ये प्रियाप्रिये। ज्ञेयः स बुद्धिविभ्रंशः समंबुद्धिर्हि पश्यति—शा० अ० 1 इति। **संज्ञाम् ज्ञानम् तद् विभ्रमात्** अग्न्यादिदाहं न बुध्यते। किंवा संज्ञा-नामोल्लेखेन ज्ञानम्। **स्मृतिविभ्रमात्** तु न स्मरति, अवयावद् वा स्मरति। **भक्तिरिच्छा, तद् विभ्रमाच्च** यथेच्छा पूर्वमासीत्तन्नानिच्छा भवति। **शीलविभ्रमात्** अक्रोधनः क्रोधनो भवति। **चेष्टाविभ्रमात्** अनुचित चेष्टो भवति। आचारः शास्त्रशिक्षाकृतो व्यवहारः, तद्विभ्रमात् अशौचाद्याचरति—च० पा०।

इस वर्णन में भी मनोविभ्रम, बुद्धिविभ्रम, ज्ञान-विभ्रम, स्मृतिविभ्रम, भक्तिविभ्रम, शीलविभ्रम, आचार-विभ्रम और यहां तक कि चेष्टाविभ्रम शब्द भी है किन्तु वाग्विभ्रम शब्द नहीं है जबकि ऐसे अनेकों शब्द मिलते हैं, जैसा कि इस लेख के आरम्भ में वर्णित है, जिनमें वाणी से सम्बन्धित अनेकों विभ्रमात्मक रूप ध्वनित होते हैं।

वास्तव में **वाग्-विभ्रम** Aphasia' वह विकार है जिसमें रोगी अपने मनोभावों को वाणी द्वारा प्रकट करने में असमर्थ होता है अथवा विकृत रूप में प्रकट कर पाता है। उसकी बोलने की सामर्थ्य नष्ट हुई नहीं होती है किन्तु जो कुछ वह कहना चाहता है उसकी समर्थता उसमें अनुपस्थित होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यदि रोगी वाणी द्वारा या लिखकर अपने विचारों को प्रकट करने में असमर्थ होता है या कठिनाई अनुभव करता है अथवा उसके लिये लिखे हुए या कही हुई बातों को समझने में वह असमर्थ रहता है तो वह अवस्था **'वाग्-विभ्रम'** कहलाती है। अस्पष्टवाक् Dysphasia अल्पवाक्-विभ्रम है। इस प्रकार यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वाणी की तीव्र विकृति 'वाग्-विभ्रम है और इसका हल्का प्रकार अस्पष्टवाक्' है।

वाग-विभ्रम प्रेरक Motor और संवेदी Sensory भेद से दो प्रकार का होता है। प्रेरक वाग्-विभ्रम में रोगी बोलकर या लिखकर अपने भावों को व्यक्त करने में असमर्थ होता है—रोगी जानता है कि वह क्या कहना चाहता है परन्तु उच्चारण ले बाह्य तंत्रिकापेशी संयन्त्र के विकारग्रस्त न होने पर भी वह कह नहीं पाता। संवेदी वाग्-विभ्रम में कही हुई बात के समझने में असमर्थता होती है (शब्द वाधिर्य Word-Deafness) या रोगी लिखे हुए को समझ नहीं पाता है (शब्द-आन्ध्य Word-Blindness) किन्तु रोगी में किसी भी प्रकार का आन्ध्य या बाधिर्य उपस्थित नहीं होता है। रोगी शब्दों को सुन-समझ लेता है या लिखे को देख-समझ लेता है परन्तु इनसे उसको किसी प्रकार का भी अर्थबोध नहीं होता है अथवा विकृतज्ञान होता है।

वाणी के चिन्ह उच्चरित शब्द या लिखित अक्षर होते हैं। वे गतियां जो लिखित या उच्चरित वाणी की उत्पत्ति को नियन्त्रित करती है वे संवेदी प्रभाव Impression के नियन्त्रण में रहती हैं। जब हम बोलते हैं तो हम शब्दों की सुनी हुई स्मृति के सहारे वाणी की गतियों को ठीक करते हैं और जब हम लिखते हैं तो उस समय हम लिखने की गतियों को भली प्रकार करने के लिये दृष्टि-संबन्धी स्मृतियों को प्रयोग में लाते हैं। यही कारण है कि वाग्-विभ्रम का शुद्ध प्रेरक या संवेदी प्रकार बहुत कम उपलब्ध होता है, अधिकतर मिले जुले प्रकार ही पाये जाते हैं।

**प्रेरक वाग्-विभ्रम** में वाणी का पूर्णतः लुप्त होना भी संभव है और हाथ का वध-Paralysis हुए बिना भी रोगी में लेखन-कर्म की क्षमता नहीं रहती है। कम भयानक विकार में वाणी मात्रा एवं उपयोगिता की दृष्टि से विकृत हुई होती है। रोगी 'हां' या 'ना' का प्रयोग भी गलत ढंग से करता है। अनिच्छित शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं। शब्द और वाक्यों का सही ढंग से बोल सकना कठिन हो जाता है। वाणी टेलीग्राम की भाषा जैसी हो जाती है, जैसे—लक्ष्मन···कहो··· जल्दी आदि। भावुक अथवा विस्मयबोधक वाणी में कोई विकार न होना संभव है, जैसे—ओ, हो! मैं तो बिल्कुल ठीक हूं! आदि। अर्थहीन पदों या उनके अंशों का बार-बार दुहराना सामान्य बात होती है।

**अलेखन** (Agraphia)—लिखने में असमर्थता—बिना अंगवध के उपस्थित होती है। रोगी अक्षर लिख सकता है पर वे तरकीब—"श-प्र-रा-का-म" अथवा अक्षरों, शब्दों या वाक्यों को अर्थ-रहित क्रम से दो-दो बार लिखता हैं,—"शश प्रप्र काका रारा मम" आदि। रोगी कभी-कभी अपना नाम ठीक लिख भी सकता है पर और कुछ नहीं। बोलने की अपेक्षा लिखने में गलतियां अधिक होती हैं। 'नामवाग्विभ्रम 'Nomina Aphasia' में रोगी उसको दिखाई गई वस्तु के काम को तो समझता है परन्तु वह उस वस्तु के नाम को नहीं बता सकता है। अगर उसे एक रुपये का सिक्का दिखाया जाय तो वह कहता है कि यह वह वस्तु है जिससे बाजार से सामान खरीदा जाता है परन्तु वह यह कहने में असमर्थ होता है कि यह रुपया है। यदि कुछ और चीजों के नाम के साथ 'रुपया' भी लिखा हो और रोगी को उस सूची को पढ़ने के लिये कहा जाय तो 'रुपया' पढ़ने पर वह सिर हिलाता है तथा मुस्कराता है और उसे उस वस्तु के नाम की ध्वनि का स्मरण हो आता है।

**संवेदी वाग्-विभ्रम** में जब "शब्द वाधिर्य" उपस्थित होता है उस समय रोगी सही अर्थ में किसी प्रकार भी वाधिर्य से पीड़ित नहीं होता है। वह शब्द या ध्वनि को सुनता है पर उच्चरित शब्दों का अर्थ वह नहीं समझ पाता और वह उसे अनोखी-अनजानी भाषा की तरह प्रतीत होता है। इसमें वाणी-संबंधी विकार अल्प ही होते हैं किन्तु वह शब्दों का उच्चारण गलत ढंग से करता है तथा ये सुव्यवस्थित भी नहीं होते हैं। यह अनर्थक Gargon वाग्-विभ्रम' कहलाता है। पागलपन (Insanity) में यह विभ्रम अत्यधिक बढ़ा हुआ होता है। तकलीफ हल्की हो तो रोगी परिचित शब्दों का अर्थ समझ लेता है। वह आपके चेहरे के भावों अथवा संकेतों को भी समझ लेता है किन्तु कही हुई बात का अर्थ नहीं समझ पाता। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि रोगी नई सीखी हुई भाषा को नहीं समझ पाता किन्तु बचपन की सीखी भाषा को नहीं भूलता है।

**'लेख-आन्ध्य** (Alexia')में रोगी देख सकता है किन्तु लिखित अक्षर उसके लिये अर्थहीन होते हैं। वाक्यों के कुछ शब्द उसकी समझ में आते हैं, कुछ छूट जाते हैं और कुछ का वह गलत अर्थ लगाता है। यदि वह लिखे हुए को पढ़ लेता है तो उसका अर्थ बनाने में असमर्थ होता है। वह दृश्य चिन्हों (Visual symbols) को भी समझ नहीं पाता है, जैसे—गणित के चिन्हों को न समझ पाना (अपरि संकलन Acalculia) या संगीत-शास्त्र के चिन्हों को न जान सकना आदि। लिखित अक्षरों के प्रति दृष्टि स्मृति (Visual Memories) का ह्रास भी अलेख Agraphia का ही एक प्रकार है। विशुद्ध शब्द-वाधिर्य के रोगी कम पाये जाते हैं।

जब हम पढ़ते या सुनते हैं तो उस समय कोर्टेक्स (प्रान्तस्था) में श्रवण एवं दृष्टि संयन्त्र की क्रियाशीलता द्वारा विचार प्रबुद्ध होते है। अन्धे और बधिरव्यक्ति अंगुलियों की गतियों से एवं स्पर्शज्ञान की सहायता से विशिष्ट चिन्हों द्वारा विचार ग्रहण करते हैं (Braille) यह 'स्पर्शवाक Tactile Speech' कहलाती है।

ऐसी बात नहीं है कि मनोविभ्रम से पीड़ित व्यक्तियों में वाग-विभ्रम न होता हो, अपितु तथ्य यह है कि वाग्-विभ्रम की तीव्रावस्था स्वयं ही न्यूनाधिक मात्रा में मनोविभ्रम के प्रति उत्तरदायी होती है। शब्द बाधिर्य से पीड़ितों में मनोविभ्रम अधिक पाया जाता है।

पुराकाल में अर्थबोध के लिये आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि को अनिवार्य बताया है जो कि आज भी उसी तरह अकाट्य है। 'आकांक्षादि रहितं वाक्यमप्रमाणम्' का उदाहरण देते हुए अन्नभट्ट लिखते है कि 'यथा-गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणम् आकांक्षा विरहात्' इसी प्रकार 'अग्निना सिंचेत्' में योग्यता विरहित होने से यह भी

अप्रामाण्य है तथा थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक-एक शब्द को बोलने में सान्निध्य न रहने से भी अर्थबोध संभव होता है (प्रहरे-प्रहरे असहोच्चारितानि 'गामानय' इत्यादि पदानि न प्रमाणम्, सन्निध्यामालात्-तर्क संग्रहः) वाग्विभ्रम में भी ऐसी ही स्थिति होती है। उसकी वाणी आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि से रहित होती है।

आयुर्वेद में मनुष्य के बोलने से सम्बन्धित दो तरह के विकारों का वर्णन है—एक का सम्बन्ध केवल स्वर से है जिसका वर्णन माधवकार आदि ने 'स्वर भेद' शीर्षक से पृथक ही किया है और दूसरे प्रकार का सम्बन्ध वाणी से है जिसमें यह जानना होता है कि रोगी जो कुछ कह रहा है उसका कुछ अर्थ भी निकलता है अथवा निरर्थक प्रलाप-मात्र है, जैसे महाहिक्का के लक्षणों में चरक (चि० 17।26 "अव्यक्त जल्पस्य—अव्यक्तानर्थक प्रलापस्य"—गं० धरः। प्रस्तुत "वागविभ्रम' प्रकरण में इसी तरह के वर्णन से अभिप्राय है।

वाग्-विभ्रम के वैद्यक वाङ्मय में विविध विवरण समुपलब्ध है; जैसे—"अनियतानां च सततं गिरामुत्सर्गः—च० नि० 7।7; अव्यक्त बुद्धि स्मृतिवाग्विचेष्टः—मदात्यय मा० नि०; अमर्त्यवाक्—च, अमर्त्या अनुचिता वागादयोयस्य सः—विजयरक्षितः; अवद्ध वाग्त्वम्—मा० नि०, असंबद्धवचनत्वम् विजयरक्षितः; चित्रंब्रवीति—विविधं ब्रवीति...मा० नि० इत्यादि वागविभ्रम के अनेकों उदाहरण हैं। इसी प्रकार सुश्रुत ने मूक मिन्मित आदि के प्रसंग में लिखा है "आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्द वाहिनीः। नरान्करोति—अक्रियकान् मूकमिन्मिन गद्गदान्"—सु० 1।1 विजयरक्षित इस श्लोक का वाग्विभ्रम परक अर्थ करते हुए लिखते हैं—"अक्रियकान् अवचनक्रियकान्, मूकोऽवचनः, मिन्मिनः सान्तुनासिकसर्ववचनः, गद्गदः लुप्तपद व्यञ्जनाभिधायी" वस्तुतः वाग्विभ्रम में पद-व्यञ्जन लुप्त होते हैं। इसी प्रकार अर्दित के असाध्य लक्षणों में सुश्रुत लिखते हैं :—"प्रसक्ताव्यक्त भाषिणः"—सु० 2।9 प्रसक्तं प्रकर्षेणसक्तं अप्रवृत्तं अव्यक्तं प्रपीडितवर्णपदं भाषितुं यस्य तथा—श्रीकण्ठः किन्तु इसमें पेशी विकार उपस्थित होता है। अभिन्यास ज्वर में भी 'शब्दं वा नैव बुध्यते" तथा "अल्पं प्रभाषते किञ्चित" आदि में कही हुई बात को न समझ पाना तथा वह क्या कह रहा है इसका पता न चल पाना आदि का वर्णन है।

वाग्-विभ्रम सहसा तथा शनैःशनै होने के आधार पर दो प्रकार का होता है। सहसा होने वाले वाग्-विभ्रम का कारण प्रान्तस्था (कोरटेक्स) का अन्तःशल्यता या घनास्रता के कारण मृदु होना है। इसके अतिरिक्त प्रमस्तिष्क रक्तस्राव, शिरोऽभिघात और फिरंग के परिणामस्वरूप होने वाले मस्तिष्क—मस्तिष्कावरण शोथ से भी यह विकार सहसा होता देखा गया है। यदि अवदृढ़तानिका (Subdural) में शोणित संचयार्बुद हो, प्रमस्तिष्क में अर्बुद हो या शंखखण्ड में अर्बुद हो तो वागविभ्रम का आक्रमण शनैः-शनैः होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी यक्ष्मजन्य मस्तिष्क या मस्तिष्कावरण शोथ में भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न होती है। अल्प समय तक ही रहने वाले वाग्विभ्रम का हेतु अर्धावभेदक, अपस्मार, अतिरक्तदाब से होनेवाली मस्तिष्क-विकृति, बाल्यावस्था का शिरोऽभिघात, अल्पग्लूकोजरक्तता, मूत्रविषमयता आदि हैं।

अपस्मार के आक्रमण के उपरान्त होनेवाला वाग्-विभ्रम निश्चित रूप से आंगिक विकृति का सूचक है (दोषवेगे च विगते सुप्तवत्प्रतिबुद्धयते—च० चि० 10-8)

रोग की परिणति के सम्बन्ध में पूर्वानुमान इस बात पर निर्भर करता है कि रोग के कारण को दूर कर सकना संभव है (निदान परिवर्जनम्) या नहीं। अवदृढ़तानिका Subdural रक्त संचयार्बुद और मस्तिष्कावरणार्बुद से उत्पन्न वाग-विभ्रम के ठीक होने की संभावना अधिक होती है। स्तब्धता के प्रभावों के दूर होने से पूर्व शिरोऽभिघात और वाहिका विकारों से उत्पन्न वाग्-विभ्रम के ठीक होने के सम्बन्ध में कुछ भी कहना कठिन है। छः वर्ष की आयु वाले बालकों में यह विकार सामान्यतः कुछ सप्ताहों में ठीक हो जाता है। कुछ सप्ताह बीत जाने के उपरान्त वयस्क व्यक्तियों का वाग्-विभ्रम विरल ही ठीक होता है।

**चिकित्सा** के लिए भी यह देखना होता है कि विकार का हेतु क्या है। यदि कोर्टिकल (प्रान्तस्था) क्षेत्र में रक्त-आंतच (Clot) उत्तान विद्रधि, मस्तिष्कावरणार्बुद या कपाल का पिच्चित भग्न हो तो यह सम्भव है कि शल्य कर्म द्वारा इन्हें दूर कर वाग्विभ्रम को ठीक कर

दिया जाय। यदि फिरंग रोग इस विकार का हेतु हो तो एतदर्थ प्रयुक्त रामवाण उपचार को प्रयोग में लाना चाहिए। सात वर्ष की आयु से कम उमर वाले बालकों में चिकित्सा परिणाम बहुत सन्तोषजनक होता है।

वाग्-विभ्रम के विशुद्ध आयुर्वेदिक उपचार की दृष्टि से पुराणघृत, ब्राह्मी एवं वचा के योग लाभप्रद हैं। प्रयोग विभ्रमात्मक विकार वात प्रधान होते हैं। मूकत्वच···वाक् संगश्च···भ्रमश्च—च.सू. 10-12; भ्रमपरिपतनम्-तीसटाचार्य: 'विशेषेण मेध्या' होने से शंखपुष्पी के पानक आदि योग साफल्य के साथ सेवनीय है। अज्ञात-कारण वाग्-विभ्रम में निम्नलिखित व्यवस्था-पत्र के अनुसार तीन सप्ताह तक औषध प्रयोग निश्चित रूप से लाभ पहूंचाता है :

१. ब्राह्मी, वचा और शंखपुष्पी से तैयार किया गया क्षीरपाक एतदर्थ प्रत्येक द्रव्य 2.2 ग्राम, दूध 100 मि. लि., पानी 400 मि. लि. लेकर दूध मात्र शेष रहने पर प्रातःकाल पिलावें।

२. बृहत् वात चिन्तामणि 200 मि. लि.
वचाचूर्ण 200 मि. लि.
ऐसी ३ मात्रा, प्रत्येक चार-चार घंटे के बाद शंखपुष्पी पानक 20 मि. लि. के अनुपान से दें।

३. सारस्वतारिष्ट 20 मि. लि., ऐसी दो मात्रा भोजन के उपरान्त समान मात्रा में जल मिलाकर, दो बार दें।

४. शिरोऽभ्यंग के लिए पुराणघृत सोते समय मलें।

# सुश्रुत संहिता में प्रकृति चित्रण

**डा० जी० के० गुर्जर, पी. एच. डी.**
प्रो० एवं विभागाध्यक्ष संस्कृत संहिता एवं सिद्धान्त,
पोद्दार वैद्यक महाविद्यालय, बम्बई-18
**डा० आर० ए० प्रसाद,**
जी० ए० एम० एस०, डी० एवाय० एम०,
ए० आर० ओ०, पंचकर्म रिसर्च यूनिट;
आर० आर० ए० पोद्दार आयुर्वेदिक रिसर्च
इन्स्सटिच्यूट वर्ली, बम्बई-400018

**योजक: तत्र दुर्लभ: (योग्य मानव की कमी)**

प्रत्येक अक्षर का किसी न किसी मंत्र के लिये प्रयोग किया जा सकता है। वैसे प्रत्येक मूल भी औषध के लिये उपयुक्त सिद्ध होता है। संसार में कोई भी पुरुष अयोग्य नहीं है। केवल इन तीनों का मिलान करने वाला या योजना करने वाला व्यक्ति चाहिये। यदि वात चरक में कहे हुये 'नानौषधि भूतं जगति किंचित द्रव्यम् उपलभ्यते' सिद्धांत से मिल जाती है। इसलिये शास्त्रकारों ने विशेषकर चरक ने प्राकृतिक पदार्थों के साथ-साथ प्रकृति का चिकित्सा को ध्यान में रखते हुये उपयोग किया है। संभवत: वर्णन भी किया है। क्योंकि ये सब शास्त्रकार आरण्यक संस्कृति के उपासक थे। प्रकृति की गोद से इन्हें वहुत प्यार था जैसे विभिन्न वानस्पतिक द्रव्यों का भी चिकित्सा के लिये सुश्रुत ने पूर्ण वर्णन किया है। वैसे उनके गुण एवं कर्म के अनुसार सूत्र स्थान के द्रव्यसंग्रहनीय स्थान में समान गुण कर्मवाले द्रव्यों के अनेक गुण बताये हैं। इन द्रव्यों की पहचान के सन्दर्भ में तपस्वी शिकारी, गोपाल वन में घूमने वाले, कन्द मूलों पर उपजीविका करने वाले, वनचरों से सम्पर्क रखना चाहिये

**गोपालास्तापसाव्याधा ये चान्ये वनचारिण:**
**मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते ॥**

सू० सू० 37/11.

प्रकृति का वर्णन यानि भिन्न-भिन्न देशों का, भिन्न-भिन्न ऋतुओं का, प्रभावों का वनराजी का, पशुओं की विभिन्न चेष्टाओं एवं लीलाओं का वर्णन रहता है। इसमें चरक की अपेक्षा सुश्रुत ने अनूक सिद्धांत के सन्दर्भ में भिन्न पशुओं के स्वभाव के साथ वातादि प्रकृति के मनुष्यों का वर्णन किया है। जैसे बकरा, सियार, खरगोश, कुत्ता आदि पशुओं के स्वभाव के साथ वातल प्रकृति का साम्य प्रदर्शित किया है तो पित्त प्रकृति वालों का साँप, उल्लू; बिल्ली, बानर, बाघ, बल्लूक, नकुल आदि के साथ स्वभाव-साम्य दिखाया है। सिंह, घोड़ा, हाथी, बैल, गरुड़, हंस इनके साथ कफ प्रकृतियों के स्वभाव का साम्य बताया है। विभिन्न काम लक्षणों में गांधर्व काय लक्षण के वर्णन में प्रकृति-प्रेमी रसीले आदमी का चित्र खींच लिया। गांधर्व काय लक्षण वाला व्यक्ति प्रकृति सौन्दर्य से, मनोहर स्थलों में घूमने में रस लेता है। नाचना, गाना, बजाना आदि कलाओं में दिलचस्पी रखता है। बिभिन्न सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पों से और खुशबू से फूला नहीं समाता है।

चिकित्सा के परिप्रेक्ष (क्षेत्र) में—

यौबन और उल्लास भरी निशा (रात) का भी वर्णन सुश्रुत ने संक्षेप में किया है।

**यामिनी सेन्दुतिलका कामिनी नवयौवना।**

सु० चि० 26/8.

प्रकृति का रम्य चित्र चरक की अपेक्षा सुश्रुत में कम बिस्तार वाला पाया जाता है लेकिन जब विषय ऐसे आते हैं कि प्रकृति की रम्यता का वर्णन आवश्यक होता है तो सुश्रुत भी रमणीय प्रकृति के चित्रण में पीछे नहीं रह जाते, जिसका पहले निर्देश किया है उस श्लोक का आधा भाग भी वाजीकरण के अध्याय में ही आया है। अनेक प्रकार के भोजन, विभिन्न प्रकार के शर्बत और पान, श्रवण, रमणीय बातें और स्पर्श सुख प्रदान करने वाली

बातें, तिलक के समान दिखाई देने वाले चन्द्रमा से अलंकृत रातें और नये यौवन से अधिक रमणीय दीखने वाली युवती, कान और मन को लुभाने वाले संगीत, अनेक प्रकार के ताम्बूल, मद्य, पुष्प मालाले, मनोहारी गंध खुशबू आदि चित्र-विचित्र दृष्य, आलेख्य (Photo) एवं लता और पेड़ों से भरे हुये उपवन, इस वर्णन से एक उद्दीपक वातावरण सामने आ जाता है। मन के प्रहर्ष को जगाने वाले वातावरण या किसी चीज को वृष्य कहते हैं क्योंकि वाजीकरण का चरम लक्ष्य मन के प्रतिघात को दूर करना ही है। यदि प्रतिघात साम्य न हुआ तो मानसिक क्लैव्य महसूस होता है और कमजोरी अनुभव होती है।

**तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसामनसि क्षते।**
**द्वेष्यस्त्रीसंप्रयोगाच्च क्लैव्यं तन्मानसं स्मृतम् ॥**

सु० चि० 27।9.

चरक ने रसायन का वर्णन करते हुये प्रकृति का जितना विस्तृत एवं मनोरम वर्णन उपस्थित किया है उसकी अपेक्षा सुश्रुत ने प्रकृति के रम्य वर्णन की ओर कम ध्यान दिया है लेकिन औषध के रूप में प्रयुक्त किये जाने दिव्य औषधि-द्रव्यों का वर्णन उन्होंने अवश्य किया है। ऐसे द्रव्यों की प्राकृतिक पहचान के लिये उनका विवरण भी दिया है जो प्रकृति के सूक्ष्म परिचय के बिना संभव नहीं। औषधिपति सोम का वर्णन करते हुये सोम या चन्द्र की कला के विद्धि या क्षय के साथ सोम की वृद्धि या क्षय को समान माना है।

**सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दश पञ्च च।**
**तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च ॥**
**एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा।**
**शुक्लस्य पौर्णमास्यान्तु भवेत् पञ्चदशच्छदः ॥**
**शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः।**
**कृष्णपक्षक्षये चापि लता भवति केवला ॥**

सु०चि० 29।20,21,22

ऐसे ही प्राकृतिक पहचान बहुत विस्तृत रूप से सुश्रुत ने निवृत संलापीय रसायन नामक अध्याय में की है। इन सब दिव्य औषधियों की खोज जिस अर्बुद गिरि पर करनी चाहिये उसका वर्णन सुश्रुत ने कोमलकान्त पदावली में किया है। ये शिखर देवताओं के विचरने से पवित्र बादलों से भी ऊंचे सिद्धि प्राप्त देवताओं से भी सेवित एवं प्रसिद्ध हैं। भयंकर गुहाओं से, सिंह की गर्जना से, घिरे हाथी से, आलोड़ित जलवाले नदियों से घिरे नानाप्रकार के विचित्र धातुओं से ये शिखर सब स्थानों पर शोभित हैं। नदियों में, पर्वतों में, तालाबों में, आश्रमों में, जंगलों में इन सब स्थानों में ये सब औषधियाँ ढूढ़नी चाहिये क्योंकि भूमि सर्वत्र वसु को अर्थात रत्नों को धारण करती है। प्रसंग में कश्मीर के क्षुद्रक मानस नाम के तालाव का वर्णन किया है।

**सोमवच्चात्र वर्तेत फलं तावच्च कीर्तितम्।**
**सर्वा विज्ञेयास्त्वोषध्यः सोमाश्चाप्यर्बुदे गिरौ ॥**
**स शृङ्गैर्देवचरितैरम्बुदानीक भेदिभिः।**
**व्याप्तस्तीर्थैश्च विख्यातैः सिद्धासुरसेवितैः ॥**
**गुहाभिर्भीमरूपाभिः सिंहोन्नादितकुक्षिभिः ॥**
**गजालोडिततोयाभिरापगाभिः समन्ततः।**
**विविधैर्धातुभिश्चित्रैः सर्वत्रैवोपशोभितः ॥**
**नदीषु शैलेषु सरःसु चापि**
**पुण्येष्वरण्येषु तथाऽऽश्रमेषु :**
**सर्वत्र सर्वाः परिमार्गितव्याः**
**सर्वत्र भूमिर्हि वसूनि धत्ते ॥**

सु० चि० 30।37,38,39,40

**चिकित्सा में तरुणी एवं प्रकृति का संयोग**

कालिदास ने प्रतिनिधि के रूप में सर्वोत्तम सुन्दरी का मेघदूत में एक श्लोक में चित्रण किया है जो बहुत ही प्रसिद्ध है।

**तन्वी श्यामा शिखरि दशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी।**

यहां के श्यामा पद से तात्पर्य है ऐसी सुन्दरी स्त्री से जो ग्रीष्मकाल में शीत स्पर्श वाली हो और हेमन्त ऋतु में उष्ण स्पर्श वाली रहती हो। (शीत काले भवेत् उष्णं ग्रीष्मकाले च शीतलम्) लेकिन सुश्रुत जैसे सूक्ष्मदर्शी चिकित्सक ने इस श्यामा स्त्री का ही चिकिसात्मक उपयोग बताया है और वह भी दाहपीड़ित पुरुष को दाह की शान्ति के लिये। यह दाह अत्यधिक मद्यपान से हो सकता है।

ऐसी अवस्था में कण्ठ को पूरी तरह सुखा देने वाली तृष्णा बार-बार उत्पन्न हो जाती है। और साथ ही बढ़े हुये पित्त के कारण दाह महसूस होता है। (दाहम प्रकृते घोरम् पितवत तत्र भेषजम्) इस सन्दर्भ में सुश्रुत ने बहुत

ही रमणीय एवं विस्तृत वर्णन किया है। इस प्रकार के शीतल उपचार किसी भी अत्यन्तिक दाह को मिटा देते हैं। सुश्रुत कहते हैं, सबसे पहले चन्दन का पतला लेप शरीर पर करना उत्तम है। चन्द्रमा की किरणों का, मुक्तहार का, बर्फ के समान शीतल जल का सेवन करे। शीतल पानी से अतिशीतल शीतल मुक्ताहार पहने, कमलनाल के कंगनों को धारण करके तरुणी लेटे हुये दाहपीड़ित पुरुष का आलिंगन करे। रोगी तो खिले कमल वाले निर्मल एवं शीतल विस्तर पर या जलबिन्दु वाले कमल के पत्तों पर शयन करे। मामज्जक, चन्दन, कमल इनसे व्याप्त जलवाली बावड़ी (कुआं) में स्वयं शरीर पर चन्दन का लेपकर तरुणियों के हाथ से रोमान्चित होते हुये स्नान करे। ऐसे वृहत कुआं में कमल पत्र के समान कोमल एवं शीतल हाथ उरु एवं मुख से तथा उन्नत स्तनों से स्पर्श करती हुए जल क्रीड़ा में निष्णात, मधुर स्वभाववाली सुन्दर स्त्रियां अपनी उत्तम कलापूर्ण रसीली वाणी से दाह-पीड़ित मनुष्य को प्रसन्न करे।

वापीं भजेत हरिचन्दनभूषिताङ्गः कान्ताकर स्पृशन-कर्कगरोमकूपः। तद्वीनमम्बुरुहपत्रासहैः स्पृशन्त्यः शीतैः करोरुवदनैः कठिनैः स्तनैश्च। तोयावगाह कुशला मधुर-स्वभावाः संहर्षयेबलाः सुफलैः प्रलापैः।

सु० १० ४७।५९.

जिस धारा गृह में निरन्तर वरसा की भांति पानी की फुहार पड़ रही हो, जहां जल मिश्रित वायु से कमरा शीतल बना हो वहां थके हुये दाहपीड़ित को सोना चाहिये। सुगन्धित फूलों से युक्त पानी में भूमि पर छिड़काव करके तेजपत्र, नागरमोथा एवं चन्दन के रस से दीवारों पर लेप करके चमेली कमल, विजयसार, केशर, नागकेशर, पुन्नाग, करवीर इनसे घिरे हुये घर में कमल धूलि से आरक्त बने आंगन वाले धारा गृह में प्रयत्न से लाई हुई पवन के द्वारा हिलने वाली फूलों की माला पहन कर सोना चाहिये। ऐसी कहानियों में दाहपीड़ित को रस लेना चाहिये जो हेमन्त ऋतु से या विन्ध्याचल से या हिमालय या मलयाचल पर्वत से सम्बन्धित हो। हरे-भरे वृक्षों की, शीतल पानी की, खिले हुये नीले कमल की चन्द्रमा की चादनी की अनुभूति लेकर मनोहर कहानियां सुनता रहे। जो रोगी ग्लानि एवं दीनता का शिकार हुआ हो उसे मन के अनुकूल व्यवहार करने वाली, स्तन, उरु एवं जघन जिसके पुष्ट हों, शरीर पर चन्दन का लेप किया हुआ, गीला, महीन वस्त्रधारण कर, ढीली कमरपट्ट एवं मुक्ताहार पहनी हुई युवतियां आलिंगन करती हुई रोगी के साथ सोये। एकान्त में ऐसी सुन्दर युवतियां अपनी मधुर वाणी, आकर्षक नृत्य आदि प्रयासों से रोगी को प्रसन्न करे। अपने शीतल व्यवहार से और उपचार से ये तरुणियां पित्तज पानत्म दाह को तुरत शांत करती है।

हेमन्तविन्ध्यहिमवन्मलयाचलानां शीताम्भसां सकदलीहरित द्रुमाणाम्।

——ता एनमार्द्रवसनाः सह संविशेयुः।
श्लिष्टवाऽबलाः शिथिलमेखलहारयष्टयः॥

सु० उ० 47।62, 63, 64

उसी प्रकार वात-कफ ज्वर की चिकित्सा में ज्वर से पीड़ित को गुनगुनाती कांजी, सुक्त, गोमूत्र या मस्तु से सिंचन करना चाहिये। तुलसी अर्जक एवं शीगु के पत्तों को पीस कर लेप करे। शुक्र मिश्रित क्षार-तैल से अभ्यंग करे। एरण्डादि वातहर द्रव्यों के सुहाते गरम क्वाथ से स्नान करना चाहिये। ऐसे उपचारों से शीत को शान्त करके गुनगुनाते जल से स्नान कर ऊन, कपास, रेशम के वस्त्रों से ढंक कर सोना चाहिए। काले अगरु को शरीर पर लेप की हुई, उभरे हुये स्तनों से विभूषित, सौन्दर्य से निखरती हुई और जवानी से मदमाती हुई चतुर स्त्रियों को लिपटा ले। ऐसी युवतियाँ शीत एवं दीनता को नष्ट करने में श्रेष्ठ होती हैं।

इसके अलावे सुश्रुत ने लिखा है कि दाहपीड़ित को अपने घर के बगीचे में और सीढ़ियों वाले कमलविभूषित कुओं (दीर्घिका) में घूमना चाहिए और कमल, लाल कमल के पत्ते, शैवाल के समूह से बने पंखों से वायु का सेवन करना चाहिये।

आसादयन् पवनमाहृतमङ्गनाभिः
कह्लारपद्मदलशैवल संचयेषु
कान्तैर्वनान्त पवनैः परिमृज्यमानः
शक्तश्चरेद्भवनकाननदीर्घिकासु॥

सु० उ० 47।57

सुश्रुत के प्रकृति-चित्रण के अध्ययन से यह विदित होता है कि चरक के समान उसने भी चिकित्सा के संदर्भ में उपयुक्त समझ कर प्रकृति का मनोहारी दृश्य खींचा है लेंकिन चरक के समान सुश्रुत पर्वतीय जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं करता है । इसलिये 'ग्राम्यो ही वासो मूलम असस्तानाम्" इस दृष्टिकोण को उसने नहीं अपनाया । चरक का प्रकृति चित्रण रम्यता के साथ-साथ विस्तृत और विशाल है । सुश्रुत का प्रकृति-चित्रण रमणीय जरूर है पर संक्षिप्त एवं त्रुटित है । चरक के रसायन अध्याय में हिमालय एवं पर्वतीय प्रकृति का जितना मनबहलाव वातावरण उपलब्ध होता है उतना सुश्रुत वर्णित रसायन अध्यायों में नहीं । शायद इसका कारण सुश्रुत का शल्य प्रधान चिकित्सा का ग्रन्थ होने में है जहां काय चिकित्सा का बयान करने का अवसर हुआ और प्रकृति-चित्रण की आवश्यकता हुई वहां सुश्रुत ने भी जितना संभव हो उतना प्रकृति के चित्र खींचने का प्रयास किया है ।

# 'न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्'

डा० रघुनन्दन शर्मा,
बी. एस. सी., बी. ए., एम. एम. एस,
चिकित्साधिकारी,
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय धर्मपुर, देहरादून

भारतीय चिकित्सा-शास्त्र आयुर्वेद ऐसा अथाह समुद्र है, जिसके अन्दर पीड़ित मानवता की सेवार्थ असंख्य रत्न भरे पड़े हैं। विश्वासपूर्वक इसका मन्थन करने पर कोई भी इसके चमत्कारों से लाभ प्राप्त कर सकता है। अपने आस-पास ही स्थित और नित्य-प्रति कार्य में आने वाले द्रव्यों का रोगों की चिकित्सा में सफलतापूर्वक प्रयोग आयुर्वेद की मौलिक विशेषता है। आज के अर्थप्रधान युग में, जब चिकित्सा-व्यय का भार वहन करना जन-साधारण के लिए असम्भव होता जा रहा है, आयुर्वेद में वर्णित, सर्वत्र एवं सर्वजनसुलभ परन्तु चमत्कारिक गुण-कर्मों से युक्त द्रव्यों के, चिकित्सा-कर्म में उपयोग को प्रोत्साहन देना, आयुर्वेदज्ञों का कर्त्तव्य है।

तक्र की गणना इसी कोटि की औषधियों में की जा सकती है। सम्पूर्ण आयुर्वेद वाङ्मय में इसे एक अमृत तुल्य महौषधि माना गया है। स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना और आतुर के विकार का प्रशमन करना, आयुर्वेद के ये दो मूल उद्देश्य बताये गये हैं। तक्र इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। तक्र के नियमित और विधिपूर्वक सेवन से शरीर व्याधि-मुक्त रहता है तथा इसके सेवन से नष्ट हुए रोग पुनः उत्पन्न नहीं होते। महर्षि चरक ने इसे मनुष्य को होने वाली अधिकांश व्याधियों को नष्ट करने वाला बताया है। प्रत्येक दोष द्वारा उत्पन्न विकारों में वात के द्वारा 80 रोग, पित्त द्वारा 40 रोग तथा कफ द्वारा 20 रोग उत्पन्न होते हैं। तथा कफ और वात के विकारों में तक्र के समान लाभप्रद कोई दूसरी औषधि नहीं है।

**'नास्ति तक्रात्परं किंचिदौषधं कफवातजे।'**

**च. चि. 14-88**

इस प्रकार कुल 140 व्याधियों में से 100 में तक्र को प्रशस्त बताया गया है। तक्र के व्याधिनाशक गुणों को ध्यान में रखकर ही इसे रोगनाशक द्रव्यों के सम्राट तक की संज्ञा प्रदान की गयी है और नित्य इसके सेवन का उपदेश एक स्वर से किया गया है।

**'शशिकुन्दसमुज्ज्वलशंखनिभं,**
**युवतीकरत्तिर्मितनिर्मथितम्।**
**घृतसैंधवहिंगुयुतं मधुरं,**
**पिब तक्रमहो नृप रोगहरम्॥**

तक्र के नाम, गुण-कर्म-भेद आदि का विस्तृत विवेचन इस प्रकार है।

**तक्र के नाम—संस्कृत**—घोल, मथित, तक्र, उदश्वित और छच्छिका।

**हिन्दी**—छाछ, मट्ठा, माठा, छाय। **बं०**—घोल। **कं०**—अलिमज्जिके। **म०**—ताक। **फारसी**—मास्त, दोग। **गुजराती**—छास, घोलवु। **अरबी**—हमीज, मर-बोज। **अंग्रेजी**—**Butter Milk.**

**तक्र के भेद एवं लक्षण**—तक्र के पांच भेद बताये गये हैं।

1. **घोल**—दही में बिना जल मिलाये मलाई सहित मथ कर बनाये जाने वाले पदार्थ को घोल कहते हैं।

2. **मथित**—यदि दही में से मलाई अलग कर बिना जल मिलाये ही मथा जाये तो उसे मथित कहते हैं।

3. **तक्र**—दही में चतुर्थांश जल मिलाकर मथने पर तक्र बनते हैं।

4. **उदश्वित**—आधा जल मिलाकर यदि दही को मथा जाये तो बने हुए पदार्थ को उदश्वित कहते हैं।

5. **छच्छिका**—दही को पहले मथ कर मक्खन निकाल लेते हैं। फिर उसी में अधिक मात्रा में स्वच्छ जल डाल कर पुनः मथने पर छच्छिका बनती है।

**तक्र के भेदानुसार गुण**

**घोल**—शर्करा मिश्रित घोल रसाल के समान एवं

वातपित्त नाशक तथा आह्लादकारक होता है।

**मथित**—कफ एवं पित्त का नाश करने वाला होता है।

**तक्र**—यह कषाय, मधुर रस युक्त, विपाक में मधुर, ग्राही लघु, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, तृप्तिकारक एवं वात-नाशक होता है।

**उदश्वित**—कफकारक, बल-वर्धक तथा अतिशय आमनाशक होता है।

**छच्छिका**—शीतल, लघु एवं पित्तनाशक होती है। श्रम तथा तृषा को दूर करनेवाली वातनाशक परन्तु कफकारक होती हैं। यदि सेंधव मिला दिया जाये तो अग्नि-दीपक होती है।

उपर्युक्त भेदों में से तक्र को विशेष गुणकारी एवं उपयोगी बताया गया है। अधिकांशतया इसी का प्रयोग किया जाता हैं। अष्टांग हृदयकार ने तक्र के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है कि :

"तक्रं लघु कषायाम्लं दीपनं कफवातजित्।
शोफोदरार्शोग्रहणीदोषमूत्रग्रहारुची:
प्लीहगुल्मघृतव्यापाद्गरपण्डूवामञ्जयेत्॥

अ० हृ० सू० 5/33-34

अर्थात्—तक्र, लघु, कषाय अम्ल रसयुक्त अग्नि-दीपक और कफ तथा वात नाशक है। शोफ, उदर रोग, अर्श, ग्रहणी रोग, मूत्रग्रह और अरूचि को नष्ट करता है। प्लीहा गुल्म, घृत जन्य रोग, गर विष और पाण्डु रोग को शान्त करता है। आचार्य सुश्रुत ने तक्र के गुणों पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला है। उनके अनुसार तक्र का रस मधुर, अम्ल अनुरस कषाय, उष्ण वीर्य, विपाक मधुर, तथा यह लघु रूक्ष एवं अग्निदीपक है। गर, शोफ, अतिसार, ग्रहणी रोग, पाण्डु रोग, अर्श, प्लीहा, गुल्म, अरूचि, विषम ज्वर, तृष्णा, वमन, लाला स्राव, शूल, मेद कफ और वायु का नाशक है। हृदय के लिये प्रिय, मूत्रकृच्छ्र नाशक, स्नेह व्यापद्नाशक और अवृष्य है।

**घृत मात्रानुसार गुण**—तक्र में उपस्थित घृत भी इसके गुणों को प्रभावित करता है। घृत की मात्रा के अनुसार तक्र को तीन प्रकार का बताया गया है।

1. **समुद्घृतघृत तक्र**—जिसका समस्त घृत निकाल लिया गया हो। यह पथ्य एवं विशेषतया लघु होता है।

2. **अधोद्घृत घृततक्र**—जिसका कुछ घृत निकाला जा चुका हो और कुछ शेष रह गया हो। यह समुद्घृत घृत तक्र से गुरू, वीर्यवर्धक एवं कफ का नाश करने वाला होता हैं।

3. **अनुद्धृत घृत तक्र**—यदि घृत बिल्कुल भी न निकाला गया हो तो ऐसा तक्र गुरू एवं पुष्टिकारक होता है। परन्तु कफ को बढ़ानेवाला होता है।

तक्र के गुणों का वर्णन करते हुए शास्त्रों में इसकी सहायता से निर्मित एवं लगभग इसी के समान गुणवाले दो अन्य द्रव्यों के गुणों का भी वर्णन मिलता है। इनमें से एक है किलाट। जो थोड़े से दूध में अधिक मात्रा में तक्र मिलाकर बनाया जाता है। यह बलकारक शुक्र एवं निद्राकारक, कफवर्धक, विष्टम्भी, गुरू और आम दोष को बढ़ानेवाला है। दूसरा द्रव्य तक्र कूर्चिका नाम का है। यह भी दूध में तक्र मिलाकर ही बनाई जाती है। महर्षि सुश्रुत ने इसके गुणों का वर्णन करते हुए इसे संग्राही, वातकारक, रूक्ष और कठिनाई से पचनेवाला बताया है।

**कच्चे तक्र के गुण**—कच्चा तक्र कोष्ठ स्थित कफ को नष्ट करता है तथा कण्ठ में कफ का वर्धन करता है। अत: कण्ठ से सम्बन्धित रोग पीनस, श्वास तथा कास आदि में पक्व तक्र के प्रयोग का ही विधान है।

**तक्र का दोषशामक प्रभाव**—तक्र का दोष शामक प्रभाव उसके रस पर निर्भर करता है। यथा मधुर रस वाला तक्र कफ प्रकोपक एवं पित्तशामक है तथा अम्ल रस वाला तक्र वायु का नाश करता है और पित्त को बढ़ानेवाला होता है परन्तु कुछ विशेष द्रव्यों के साथ मिलाकर प्रयोग करने से तक्र का प्रयोग प्रत्येक दोष की अधिकता की अवस्था में किया जा सकता है। यथा

"वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं स्वादु पित्ते सशर्करम्।
पिबेत्तक्रं कफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम्॥

सु० सू०-45/89

इस कथन को निम्न सारिणी द्वारा आसानी से समझा जा सकता है।

| क्र. सं. | दोष की अधिकता | तक्र का रस | मिलाये जाने वाले द्रव्य |
|---|---|---|---|
| 1. | वात | अम्ल तक्र | सेंधव लवण अथवा/तथा शुण्ठी |
| 2. | पित्त | मधुर तक्र | शर्करा |
| 3. | कफ | मधुर अथवा अम्ल | शुण्ठी,मरिच एवं पिप्पली तथा कोई क्षार |

**तक्र का प्रयोग**—आयुर्वेद-शास्त्र में तक्र के गुणों की प्रशंसा एक स्वर से की गयी है और बहुत - से रोगों में औषधि पथ्य एवं अनुपान के रूप में इसके प्रयोग का उपदेश किया गया है : इसके अतिरिक्त धातुओं के शोधन आदि में भी इसका उपयोग होता है। ग्रहणी, उदर रोग, मेदोरोग, अर्श आदि में तो यह प्राण रक्षक का कार्य करता है।

**तक्र सेवन के विषय**—शीतकाल में, अग्निमांद्य की अवस्था में, वात रोग, अरूचि तथा नाड़ियों के अवरोध में तक्र अमृत के समान गुणकारी है। गरविष, वमन, प्रसेक, विषमज्वर, पाण्डु रोग, मेदो रोग, ग्रहणी, अर्श, मूत्र ग्रह, भगन्दर, प्रमेह, गुल्म, अतिसार, शूल, प्लीहा, और उदर रोगों में इसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त अरूचि, श्वित्र, कोष्ठगत रोग, कुष्ठ, शोथ, तृषा तथा कृमि रोग को नष्ट करने वाला होता है।

**केवल तक्र द्वारा चिकित्सा**—उदर रोग अर्श और ग्रहणी में अकेले तक्र द्वारा चिकित्सा करने के लिये कहा गया है तथा यह भी बताया गया है कि केवल मात्र तक्र चिकित्सा द्वारा आरोग्य प्राप्त किये हुए रोगी में पुनः रोग का आक्रमण नहीं होता।

**विधि**—यदि वात की अधिकता है तो मक्खन पृथक न किया हुआ, यदि कफज रोग है तो मक्खन निकाला हुआ तक्र प्रयोग करना चाहिए। जिस रोगी की कायाग्नि अत्यन्त मन्द है उसे अन्न नहीं देना चाहिए, केवल तक्र का ही प्रयोग करना चाहिए। जब अग्नि कुछ प्रबुद्ध हो जाय तो प्रातः तक्र पिलाना चाहिए। और शाम को ताजा सत्तुओं का तक्र से बनाया अवलेह को देना चाहिए अथवा प्रातःकाल आहार के समय पी हुई तक्र के पच जाने पर रोगी को सायंकाल तक्र द्वारा साधित सेंधव-लवण युक्त पेयानी चाहिए। इसके पश्चात धीरे-धीरे तक्र की मात्रा कम कर देनी चाहिए। अर्थात् उसमें भात आदि मिलाकर देना चहिए।

**उपयोग क्रम**—तक्र सेवन के इस विधान में रोगी को सहसा ही तक्र सेवन बन्द नहीं कर देना चाहिए किन्तु जिस प्रकार धीरे-धीरे तक्र की मात्रा बढ़ाई गयी थी उसी प्रकार धीरे-धीरे उसे कम करना चाहिये। परन्तु इसमें ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि अन्न के साथ प्रयुक्त होने वाला तक्र की मात्रा कम करने की आवश्यकता नहीं है और नहीं रोगी को भूखा रखने की आवश्यकता है अतः तक्र की जितनी मात्रा कम की जाये उतना ही हितकर भोजन रोगी को देना चाहिये।

**अवधि**—उपर्युक्त क्रम से तक्र का सेवन रोगी की अवस्था के अनुसार सात दिन, दस दिन, पन्द्रह दिन, या एक माह तक कराया जा सकता है। इस क्रम से तक्र सेवन एक माह से अधिक नहीं कराना चाहिये।

**लाभ**—इस प्रकार तक्र सेवन करने से स्रोत शुद्ध हो जाते हैं और स्रोतों के शुद्ध हो जाने पर रस शरीर में सम्यग्तया पहुंचता है इसलिए रोग नाश के साथ पुष्टि बल, वर्ण एवं ओज की वृद्धि होती है।

उदर रोग ग्रहणी और अर्श में तक्र चिकित्सा को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया गया है।

**उदर रोगों में तक्र का प्रयोग**—उदर रोगी को मधुर रस वाला न अत्यन्त सान्द्र न अत्यन्त पतला तक्र का प्रयोग कराना चाहिये। उदर रोगों के अलग-अलग भेदों में तक्र का प्रयोग कुछ विशेष द्रव्य मिला कर कराने का उपदेश किया गया है। यथा।

| क्रम सं० | उदर रोग भेद | तक्र के साथ मिला कर देने योग्य द्रव्य |
|---|---|---|
| 1. | वातोदर | पिप्पली एवं संधा नमक, |
| 2. | पित्तोदर | शर्करा एवं मरिच, |
| 3. | कफोदर | अजवायन, सेन्धव, जीरक, मधु एवं त्रिकटु |
| 4. | सन्निपातोदर | त्रिकटु, यवक्षार एवं सेन्धा नमक, |
| 5. | प्लीहोदर | मधु तेल बचा, सौंठ सौंफ, कूट एवं संधा |
| 6. | बद्धोदर | हवुषा. अजवायन, जीरक एवं सेन्धव, |
| 7. | छिद्रोदर | पिप्पली चूर्ण एवं मधु, |
| 8. | जलोदर | शुण्ठी, मरिच एवं पिप्पली, |

**अर्श रोग में तक्र प्रयोग**—अर्श चिकित्सा में तक्र का प्रयोग विशेषरूप से लाभदायक कहा गया है। इस संबंध में महर्षि चरक ने कहा है कि तक्र चिकित्सा द्वारा नष्ट अर्श पुनः उत्पन्न नहीं होता क्योंकि तक्र को यदि भूमि पर भी सींचा जाय तो वह तृण समूह को जला देती है अतः जिस मनुष्य की कायाग्नि दीप्त है उसके अर्शों का तो कहना ही क्या है। अर्श चिकित्सा में तक्र का प्रयोग बहुत-से योगों के साथ अनुपान के रूर में किया जाता है। जैसे

1. कोविदार मूल के चूर्ण को तक्र के साथ प्रयोग करते हैं।
2. इन्द्रजौ, पिप्पली, चित्रक और सूरण को उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए तक्र के साथ पीना चाहिए।

3. बिल्व और कैथ या सोंठ और बिड लवण अथवा भिलावा या **अजवायन से** युक्त जौ के सत्तुओं को तक्र में मिला कर पीना **चाहिए।**

4. तक्र में हाऊबेर, हींग और चित्रक को मिलाकर पीना चाहिए।

5. पीलू के फलों को तक्र के अनुपान से एक मास तक खाना चाहिए।

6. अथवा चीते की जड़ के छिलके को अच्छी प्रकार पीस कर एक मिट्टी के घड़े में तिल की मोटाई के बराबर लेप करे, जब लेप शुष्क हो जाय तो उस पात्र में दही जमाना चाहिए। फिर उस दही से बना तक्र को रोगी को उचित मात्रा में पीना चाहिए।

7. इसी प्रकार किसी पात्र में छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी के फलों के कल्क का लेप करके उसमें तक्र भर कर रात भर रखा रहने दें फिर प्रातः इसका उचित मात्रा में अर्श के रोगी को पान करना चाहिए।

8. तक्र के अनुपान से हरीतकी का सेवन करना चाहिए।

9. पंचकोल पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, एवं सोंठ युक्त तक्र का प्रयोग कराना चाहिये।

**ग्रहणी रोगी में तक्र का प्रयोग**—तक्र दीपन ग्राही तथा लघु गुणों से युक्त होने के कारण ग्रहणी में प्रशस्त माना गया है क्योंकि लघु होने से यह मल का संग्राहक होता है। विपाक में मधुर होने से पित्त को प्रकुपित भी नहीं करता। कषाय रस, उष्ण, वीर्य, विकासी तथा रूक्ष होने के कारण कफ दोष में हितकर है। मधुर अम्ल एवं सांद्र होने के कारण वात में हितकर है। अतः उदर रोग और अर्श के अनुसार ही ग्रहणी में भी तक्र का प्रयोग करना चाहिए।

**तक्रकारिष्ट**—उपर्युक्त क्रम के तक्र द्वारा चिकित्सा करने के साथ-साथ तक्र की एक प्रमुख कल्पना तक्रारिष्ट का भी वर्णन किया गया है।

अजवायन, आमलकी, हरीतकी, कृष्ण मरिच, नमक पांचों, इन सबके चूर्ण के साथ तक्र की अरिष्ट कल्पना की जाती है। यह अग्निदीपक है, शोथ, गुल्म, अर्श, कृमि, प्रमेह एवं उदर रोगों को नष्ट करने वाला। तक्रारिष्ट सद्यः, प्रसूता के दुग्ध की पिच्छिलता के दोष को भी नष्ट करता है।

**तक्र निषेध के विषय**—क्षत-क्षीण तथा दुर्बल व्यक्तियों को तक्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उष्ण काल में मूर्च्छा, भ्रम, दाह तथा रक्तपित्त की अवस्था में तक्र सेवन के निषेध का उपदेश किया गया है।

इस प्रकार तक्र के गुण-दोष आदि का विवेचन करने पर हम कह सकते हैं कि वास्तव में यह एक अमृत तुल्य महोषधि है तथा इसकी प्रशंसा में कहा गया निम्नलिखित शास्त्रीय वचन सर्वथा सत्य है।

**'न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्नतक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नाराणां भुवि तक्रमाहु॥**

**भा० प्र० नि० तक्र व/7**

# कर्णवेध विधि द्वारा तमक श्वास की चिकित्सा

**श्री सत्यार्थ प्रकाश,**
भूतपूर्व चिकित्साधिकारी,
(आयुर्वेद चिकित्सालय उत्तर प्रदेश)
आयुर्वेद महाविद्यालय,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति होने पर भी अभी अनेक रोग असाध्य ही बने हुए हैं और प्रतिवर्ष जनसंख्या का एक बड़ा भाग इनके द्वारा पीड़ित होकर मृत्यु को वरण करता है। तमक श्वास अथवा ब्रांकियल आस्थमा (Broncheal Asthama) रोग का इनमें एक महत्वपूर्ण स्थान है।

भारतीयों की यह मान्यता है कि तमक-श्वास मनुष्यों की मृत्यु के साथ ही जाता है।

"दमा दम के साथ जाता है"

अनेक व्यक्ति इस रोग द्वारा बाल्यावस्था से ही पीड़ित होकर वार्धक्य पर्यन्त कष्ट उठाते रहते हैं। परिणामस्वरूप इनकी कार्यक्षमता में अत्यधिक ह्रास हो जाता है जो कि एक राष्ट्रीय क्षति है। तमक श्वास यद्यपि एक जीर्ण व्याधि है, और इसके द्वारा रोगी की मृत्यु अल्प अवधि में नहीं होती, किंतु अंततः यह अनेक उपद्रवों को उत्पन्न करता है। इन उपद्रवों के परिणामस्वरूप रोगी की मृत्यु होती है।

ब्रिटिश मेडिकल जर्नल की एक सूचना के अनुसार, "वर्तमान समय में आविर्भाव होने पर भी तमक श्वास के रोगियों की मृत्यु दर में वृद्धि हो रही है।

तमक श्वास रोग के उत्पादक कारणों का अत्यधिक विस्तृत अध्ययन वर्तमान युग में किया गया है। यद्यपि अभी भी इसके नैदानिक कारणों का पूर्ण विनिश्चय नहीं हो पाया है, फिर भी एलर्जी और मनोशारीरिक (साइको सोमैटिक) कारणों का महत्व भलीभाँति सिद्ध किया जा चुका है। जहाँ तक चिकित्सा का प्रश्न है, यह रोग अभी भी प्रायः असाध्य माना जाता है। प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों के अनुसार भी यह रोग कठिन माना गया है।

**"स याप्यस्तमकः श्वासः"**
—माधव निदान 12, 34

उपरोक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए तमक श्वास के रोगियों की चिकित्सा कर्णवेध विधि द्वारा सम्पन्न की गई है और उसका विवरण इस निबन्ध में प्रस्तुत किया जा रहा है :—

तमक श्वास रोग में कर्णवेध का वर्णन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में प्रायः नहीं है। मिरजापुर के प्रसिद्ध वैद्य श्री केदारनाथ जी अनेक वर्षों तक इसका प्रयोग श्वास रोग से पीड़ित व्यक्तियों पर करके उन्हें इस कठिन रोग से मुक्त कर रहे हैं। अतः उनकी इस सफलता से आकृष्ट होकर प्रस्तुत अध्ययन किया गया है।

**सामग्री एवं अध्ययन-विधि**

प्रस्तुत अध्ययन में तमक श्वास से पीड़ित 43 रोगियों को सम्मिलित किया गया है। इनमें अधिकांश रोगियों की चिकित्सा उक्त वैद्य जी ने की है। उनके द्वारा 1949 से 1968 ई० तक चिकित्सित तमक श्वास के रोगियों की सम्पूर्ण संख्या 2615 है। इनके सामान्य परिचय हो उपलब्ध हैं विशेष विवरण नहीं हैं। जिन रोगियों ने चिकित्सा के बाद अपने विवरण पत्रों द्वारा भेजे हैं उनकी संख्या 222 है। इनमें से छानबीन के पश्चात् 50 रोगियों के पास जवाबी पत्र लिखे गए और उनके रोग के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे गए। केवल सात रोगियों ने अपने उत्तर भेजे। इसके अतिरिक्त कुछ पुराने रोगी स्वयं आए और कुछ नए रोगियों का कर्णछेदन (कर्ण वेधन) करके 43 रोगियों को इस अध्ययन में सम्मिलित किया गया।

नये रोगियों में कर्णवेधन की क्रिया को लेखक ने स्वयं सम्पन्न किया है। इन रोगियों की रक्त परीक्षा और कुछ के वक्ष के एक्सरे आदि भी लिए गए हैं तथा उनके रोग का पूर्ण विवरण एवं इतिहास आदि भली-भाँति लिपिबद्ध

किया गया है।

इन रोगियों में कर्णवेधन रविवार या मंगलवार के दिन सूर्य की किरणों के समक्ष लेखक ने अपने घर पर ही सम्पन्न किया है। उक्त दिनों के अतिरिक्त किसी अन्य शुभ पर्व आदि पर भी यह क्रिया सम्पन्न की जा सकती है।

कर्णवेधन के समय कान के उस भाग को स्प्रिट आदि लगा करके स्वच्छ और विसंक्रामित कर लिया जाता है। विसंक्रामित सूई और धागे को लेकर बाहरी कान के मध्य भाग में भीतर की ओर से बाहर की ओर वेध करते हुए पार कर देते हैं। तत्पश्चात् तागे को बाली का आकार देते हुए दो गाँठे लगाकर अवशिष्ट तागे को काट देते हैं। इस विधि द्वारा कर्ण वेधन करने पर रक्तस्राव नहीं होता।

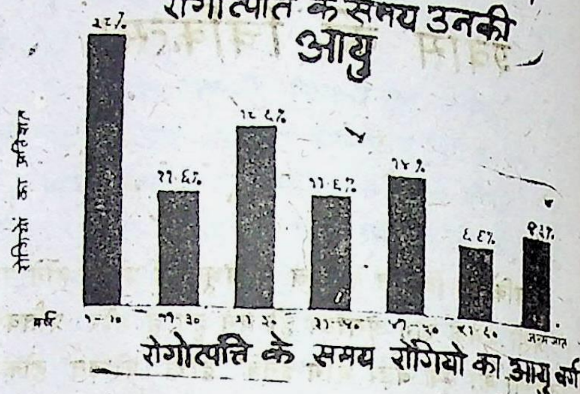
सात दिनों तक तागे को कान में लगा रहने देते हैं और नित्य गरम कडुआ तैल लगाकर धागे को काट कर निकाल देते हैं और उसमें पीतल की एक मुदरी पहना देते हैं। इसे 48 दिनों तक रहने देते हैं। इसके पश्चात् चाहे तो उसे बदल कर किसी अन्य धातु की मुदरी पहनी जा सकती है चाहे उसीको रहने दें या नीम की सींक आदि भी डाल सकते हैं जिससे छेद बन्द न होने पावे।

**पथ्य**—रोगी को 48 दिनों तक एक विशिष्ट पथ्य पर रहना पड़ता है जिनमें निम्न 13 चीजें हैं— **रोटी**—गेहूं, जौ। **दाल**—अरहर, मूंग। **साग**—लौकी, नेनुआ, परवल। **जलपान**—किसमिस, मुनक्का, मिश्री। **मसाला**—कालीमिर्च, नमक। **पीना**—जल।

इनमें से रोगी चाहे केवल कुछ द्रव्यों का उपयोग करे अथवा सम्पूर्ण द्रव्यों को ले किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु इस अवधि में न लें।

इस 48 दिनों की अवधि में किसी अन्य औषधि को लेने का निषेध है। श्वास का आक्रमण होने पर या कोई उपद्रव उत्पन्न हो जाने पर भी कोई अन्य औषधि नहीं लेना चाहिये। इस समय मिश्री की चासनी में मरिच मिलाकर चाटने से कुछ आराम होता है। अधिक गम्भीर उपद्रव होने पर अन्य चिकित्सा - विधियों का प्रयोग अत्यधिक रूप में प्राण-रक्षा हेतु लिया जा सकता है किन्तु उस रोगी में पुनः कर्णवेधन करना पड़ेगा।

इस चिकित्सा में दो वस्तुओं का विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रथम तो यह कि परहेज का कड़ाई से पालन किया जाय और दूसरी वस्तु यह कि कान का छेद बन्द न होने पावे। कान का छेद बन्द होने पर रोग पुनः उत्पन्न हो सकता है।




( चित्र संख्या १ )

**चिकित्सित रोगियों में रोग की अवधि**

प्रस्तुत प्रबन्ध में 43 रोगियों का सम्यक अध्ययन के पश्चात् विवरण दिया जा रहा है। इन्हें विभिन्न आयु-वर्ग के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया और साथ ही यह देखा गया कि तमक श्वास उत्पन्न होने के समय उनकी आयु कितनी थी। सारिणी एवं चित्र संख्या १ द्वारा स्पष्ट है कि श्वास रोग से ग्रस्त होने वाले रोगियों में 1 से 10 वर्ष की आयु वर्ग वाले सर्वाधिक थे। इनमें से लगभग 10 प्रतिशत रोगी जन्म-जात श्वास रोग से ग्रस्त थे और 50 प्रतिशत से अधिक रोगी श्वास रोग के प्रथम आक्रमण के समय 30 वर्ष से कम अवस्था के थे।




( चित्र संख्या 2 )

**रोग की अवधि**

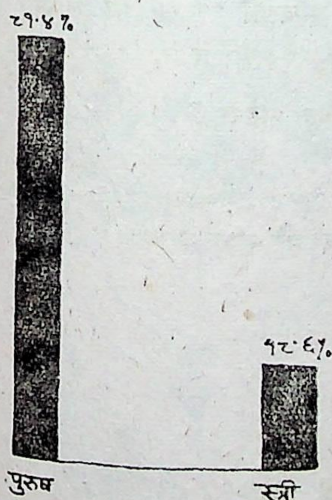
श्वास रोग से पीड़ित इन रोगियों में रोगावधि का भी अध्ययन किया गया। लगभग 30% रोगी 1 से 5 वर्ष की अवधि से रोग द्वारा पीड़ित थे और 28 % रोगी 10 वर्ष की अवधि से रोग ग्रस्त थे। सारिणी संख्या 2 में इसका विस्तृत विवरण प्रदर्शित किया गया है। लगभग 10% ऐसे रोगी भी थे जो 20 वर्ष से अधिक समय से तमक श्वास रोग द्वारा ग्रस्त थे।

**( चित्र संख्या 3 )→**

**कर्ण वेधन के समय रोगी की आयु**

कर्ण वेधन के समय लगभग 50% रोगियों की आयु 30 वर्ष से कम थी। लगभग 20% रोगी 50 वर्ष से अधिक अवस्था के थे। सारिणी संख्या 3 में इसका सम्यक विवरण दिया गया है।

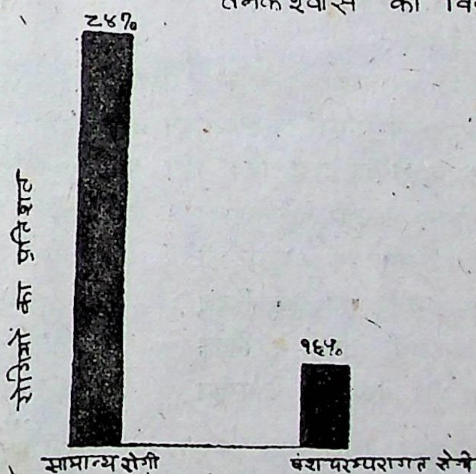



**( चित्र संख्या 4 )**

**लिङ्ग के अनुसार वर्गीकरण**

प्रस्तुत अध्ययन में सारिणी संख्या 4 के अनुसार स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है। पुरुष लगभग 82% और स्त्रियाँ 18% की संख्या में कर्ण वेधन चिकित्सा के लिए आईं। स्त्रियों में श्वास रोग कम होने का सम्भवतः एक कारण यह हो सकता है कि सामान्यतया सभी स्त्रियों का कर्ण वेधन किया हुआ रहता है और वे कान में धातु का आभूषण आदि भी पहनती रहती हैं।



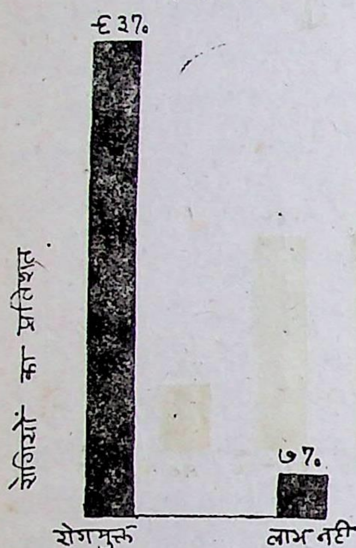

**( चित्र संख्या 5 )**

**आनुवंशिकता का अध्ययन :**

इन रोगियों में आनुवंशिकता का भी अध्ययन किया गया। लगभग 16% रोगियों में तमक श्वास का इतिहास उनकी वंश परम्परा में मिला। शेष रोगियों में इसका कोई स्पष्ट कारण नहीं ज्ञात हो सका। **वंश**

परम्परावाले रोगियों में भी कर्ण बेधन चिकित्सा द्वारा लाभ हुआ है, यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। सारिणी 5 देखें।

तमकश्वास के ४३ रोगियों में कर्णवेध चिकित्सा का परिणाम




( चित्र संख्या 6 )

**चिकित्सा का परिणाम :**

उपर्युक्त विधि द्वारा कर्णवेधन चिकित्सा सम्पन्न की गई। इनमें से अधिकांश रोगियों का कर्ण वेधन लेखक के पिता श्री केदारनाथ जी वैद्य द्वारा किया गया था शेष रोगियों की चिकित्सा लेखक ने स्वयं की। कर्णवेधन की क्रिया उपरोक्त विधान के अनुसार की गई उन्हें परहेज आदि का पूर्ण निर्देश दिया गया। प्रायः सभी रोगियों ने निर्देश का पालन किया और 48 दिन के परहेज पर रहे।

इन सभी रोगियों के पास पत्र लिखे गए पुराने रोगियों में केवल 7 ने उत्तर दिए किन्तु नवीन रोगियों में अधिकांश स्वयं उपस्थित हुए अथवा अपना विवरण लिखकर भेजते रहे। उक्त निरीक्षण के अनुसार परिणाम का विवेचन किया गया जो अत्यधिक उत्साहवर्द्धक रहा। समस्त 43 रोगियों में 40 रोगमुक्त पाए गए और केवल 3 रोगियों को चिकित्सा से लाभ नहीं हुआ। सारिणी 6 में चिकित्सा-परिणाम प्रदर्शित किया गया। इन 43 रोगियों में कर्णवेधन के पश्चात् कितने दिनों तक ये रोगी स्वस्थ रहे और रोग का पुनः आक्रमण नहीं हुआ इसका विवरण सारिणी संख्या 7 में दिया गया है। (इस सारिणी द्वारा ज्ञात होता है) कि लगभग 25% रोगी कर्णवेधन के पश्चात् 6 वर्ष से 20 वर्ष की अवधि तक में पूर्ण स्वस्थ पाए गए और उनमें श्वास रोग का पुनः आक्रमण नहीं हुआ। वास्तव में यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। क्योंकि तमक श्वास एक अत्यधिक कठिन रोग है और इसका आक्रमण वारबार होता रहता है।

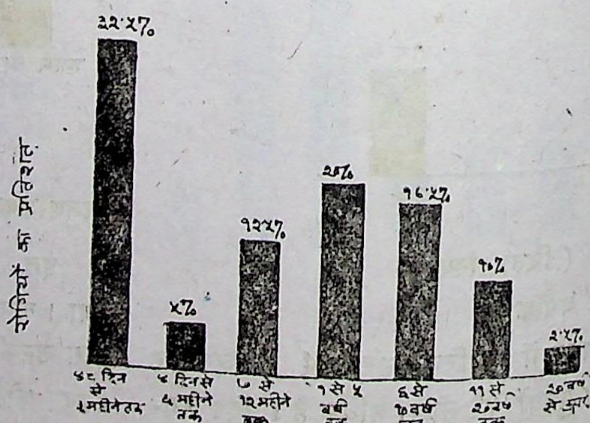
**पर्यालोचन**

उक्त अध्ययन द्वारा स्पष्ट है कि तमक श्वास रोग की चिकित्सा में कर्णवेध एक प्रभावशाली चिकित्सा-विधि है और इस कठिन एवं असाध्य रोग को दूर करने में यह सक्षम है। फिर भी कर्णवेध द्वारा यह रोग कैसे दूर होता है इसकी अभी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं की जा सकी है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा-शास्त्र में वर्णित शिरावेध से यह विधि भिन्न है, क्योंकि इसमें Pina का वेध किया जाता है। और इसमें कोई रक्तस्राव भी नहीं होता। आचार्य सुश्रुत ने तमक श्वास में शिरावेध का निर्देश भी नहीं किया है।

अन्य आयुर्वेदीय आचार्यों द्वारा भी कर्णवेध का उल्लेख श्वास रोग की चिकित्सा में नहीं किया गया है।

↓ ( चित्र संख्या 7 )

कर्णवेध के पश्चात् रोग मुक्त तमकश्वास के ४० रोगियों में रोगमुक्ति की ज्ञात अवधि



आधुनिक समय में चीन की इक्वीपंचर विधि का पर्याप्त प्रचार है। सम्भव है इस विधि का प्रभाव उसी प्रकार से होता हो। चीनी विधि में यद्यपि विशिष्ट प्रकार की सूचियों का प्रयोग होता है और वे शरीर के विभिन्न रोगों में अलग-अलग स्थानों पर अनेक बार उसका प्रयोग करते हैं अतः चीनी विधि से भी यह एक अलग प्रकार की विधि है।

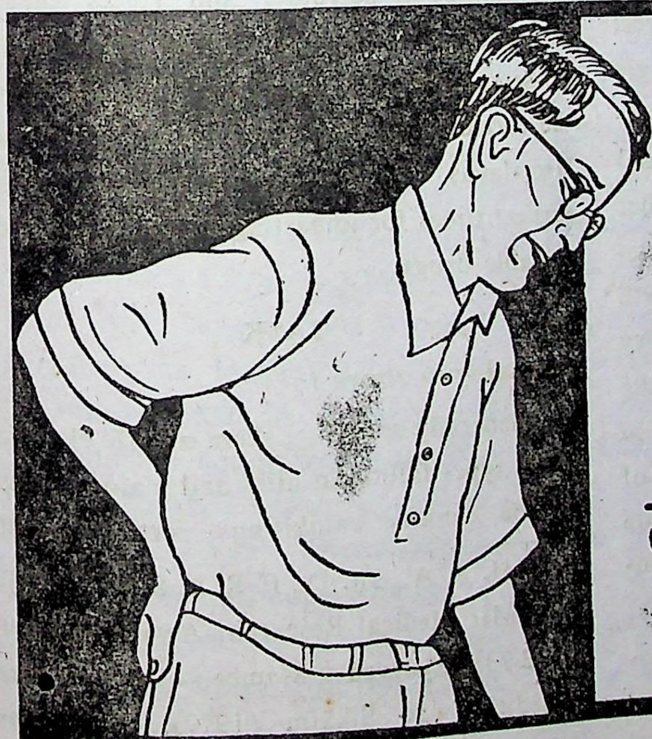
अतः निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस विधि का मुख्य स्रोत कौन-सी चिकित्सा - विधि है। हाँ यह जरूर है कि इसी प्रकार की अनेक विधियां जैसे गोदना, दग्ध क्रिया आदि क्रियायें चिकित्सा के रूप में सुदूर गाँवों में अब भी प्रचलित हैं। लेखक के पिता को कानपुर के श्री राम प्रसाद जी से यह विधि प्राप्त हुई थी और तब से सैकड़ों-हजारों रोगियों को इससे लाभ पहुं-चाया गया है। और आज भी अनेक लोग इससे फायदा उठा रहे हैं।

**सारांश**

प्रस्तुत लेख में तमक श्वास के 43 रोगियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। कर्णवेध चिकित्सा-विधि का इसमें प्रयोग किया गया। परिणाम बहुत ही उत्साहवर्धक रहा है। इनमें से 40 रोगी रोग मुक्त पाये गये जिनसे कि अभी तक रोग का पुनः आक्रमण की सूचना नहीं प्राप्त हुई। केवल 3 रोगियों में कर्णवेध द्वारा कोई लाभ नहीं दिखाई पड़ा। अतः इस कठिन रोग को दूर करने में कर्णवेध एक अत्यधिक उपयोगी चिकित्सा है।

**आभार-प्रदर्शन**

लेखबद्ध करने की प्रेरणा पूज्य गुरु एवं आचार्य डा० रमानाथ जी द्विवेदी, आयुर्वेद विभागाध्यक्ष (Head of Deptt) इंस्टीच्यूट आफ मेडिकल साइंसेज का. हि. वि. वि. वाराणसी एवं लेख को आकर्षक एवं सुचारू रूप प्रदान करने के लिए आदरणीय मित्र डा. कामता प्रसाद जी शुक्ल, मेडिकल आफिसर इन्चर्य आयुर्वेद विभाग, सर सुन्दर लाल चिकित्सालय का. हि. वि. वि. वाराणसी का विशेष आभारी हूं जिनकी प्रेरणा एवं सहयोग से मैं इस लेखक को प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ हूं।






# Evolving High Altitude Ayurvedic Drugs Survey

**Dr. Gyanendra Pandey** *
Regional Research Centre (Ayurveda),
Himachal Pradesh Jogindernagar-176120

**Introduction :**

A retrospection, even cursory, into history can find vital role played by the forests in the life of the people since the first embers of civilization were lit, in the ancient land of ours—India. The close association with and dependency on the forests have deeper link since the time immemorial, beginning with thick extensive forests and its wild life; and the various potentialities of forests remain rich sources for fulfilment of human needs in health and sickness, and today the forest resources carry manifold wider utility ranges effecting national economy. Forest conservancy, management, protection, potential productivity, mensuration and various other scientifically advanced contributions in forestry collectively help promote forest growth (by improving under national forest policy stressing for well-managed forests of the land—60% in the hilly regions and 20% in the plains against only 17.2% forests land of the total area of the country which occurs forests on 56 million hectares/ with a percentage over entire geographical area i. e. 17% as per Indian Forest Statistics, 1860 61). Basically out of two major and larger groups of forest resources, the woods-timbers and minor forest produce are the main constituents, and the medicinal plants and alike form a sizable part of the latter in which hilly forests contribute a lot.

India has been an established veritable emporium of medicinal plants, nearly three-fourths of the drugs mentioned in British and other Pharmacopoeias grow here in natural state. Not only the country's great resources so far the medicinal plants are concerned, but many kinds of perfumes and spices known all over the world abound in it. Incidentally possesses climatic conditions varying from the torrid to the frigid zone which lies in the Himalayas enjoying a high repute since earliest times for imparting the valuable and variable drugs.

## TASK

**Himalayan zones :**

Generally speaking, there are 16 climatic forest types falling in hilly and plain regions of the country exhibiting certain salient

* H. P. A.. Ph. D., F. R. A. S. (London); CCRIMH Medical Research Award Winner (1972-73), Ayurvedist Member--Special Survey Expedition to Sikkim (1977); Officer-in-charge, R. R. C. (Ay), Jogindernagar.

features of the land, climate, rainfall, temperature; and resultly the forest species from sea coasts to high mountains with larger range of different sea level heights exhibit a larger range of varities.

As regards hilly regions and the Himalayas, Burrard and Hoydar plainly classify them as (1) Greater Himalayas (2) the Lesser Himalayas and (3) the Siwaliks. In a generally acceptable broadway, J. D. Hooker (1906) divides it into (i) Tropical zone (upto 1500 m.). (ii) Temperate zone (1500-3600m ) and Alpine zone (3600m. and above). One more prevalent classification the details out it as : Sub-tropical vegetation (upto 2000—2700 m.), Sub-alpine (2700-3600 m) and Alpine (3600-5100 m.) and then covers present snow belt (5100 m. and above) A. E. Osomasten (1927) gives another practicable view : Sub Himalayan tract (150-300 m ), Outer Himalayan tract (300-1500 m.) and Inner Alpine Ranges (above 3000 m.).

**Physical Features of Himalayas :**

Geographically India lies entirely in the northern hemisphere, the mainlands, northern boundary is generally formed by the Himalayas with various neighbouring countries (commecing from its land frontier in the north-west and proceeding in a clock wise direction). India is contiguous with West Pakistan, Afghanistan, China, Nepal etc. Thus, out of the three well defined regions of the country the mountainous—Himalayan-zone is physically salient one. The Himalayas have almost parallel ranges interpersed with plateaux and valleys (some of which are fertile, extensive and of great scenic beauty) moreover some of the highest peaks are to be found in these ranges and there are only a few passes across. Himalayan rivers are snow-fed and so they are perennial leading to various major branches and a number of tributaries. Such physically variable lands in the Himalaya exhibit a rich and variable type of forests compared of a large number of species in which many are medicinally known and unknown flourishing in the areas explored or unexplored.

**Himalaya—a home for Ayurvedic drugs :**

The materia medica of indigenous medical systems particularly, Indian medicine, form a major part with the drugs from botanical origin in comparison to non-botanicals like mineral and animal (Khanija and Jantava); and since past early times, the Himalaya remained under unending human quest and discoveries attributed to expounders of Medicine for exploring drugs from botanical origins.

Remarkably the Himalayas have had glorious association with learning and expansion of Ayurveda in its sacred and divine abode of the Gods, and the early classical texts of medicine preserve its vital significance behind evolution of Triskandha and Trisutra Ayurveda (e. g. Tada bhutesvanukrosam puraskrtya maharsayah/ sametah punjakarmansh parsva himavatah subhe. Caraka. Sutra. 1-7). In the earliest times, Vedic sources, recognised as first written record of eternal knowledge, provided ample material; Vedic hymn sung reputation and quality of the Himalayas as land of best drugs (e. g. ye paravatah) samaprsthah, apa uttanasivari/ Vatah parjanya adagniaste

krivyadabha sisamana—Athrvaveda, 3-21-10). Ayurveda in rich heritage alligated to its eternal source (Vedas/Atharvaveda) came forward to project the lands of the Himalayas as greatly resourceful for the drugs employed in indigenous systems, and such vital concept conclusively prevails in leading expounder of the science—Caraka who specifies that the best of habitats for medicinal plants is the Himalayas, the most majestic mountains ('Ausadhinam para bhumirhimavana sailiasattamah'—Charaka Chikitsa. I—1,38). And the Himalayan pioneer place In drugs' availability is living till today.

Out of total drugs prescribed in the literature af Ayurvedic materia medica, a good number of useful drugs occur in the Himalayas other than many plants of medicinal importance including those are medicinally not known so far. In other terms, the pharmaceutical processes of Ayurvedic drugs, in case of such drugs of non-plain regions, are fully dependent on the procurement of drugs from the hilly zones falling under Himalayan region; and the survey is the only proper instrument to probe, locate, explore and guide for procurement of drugs from genuine botanical sources scatteredly grown in the Himalayan ranges consisting certain parts of country. A medicinal plant survey is certainly different to the pure botanical one; the survey meant for Ayurvedic drugs is to consist of different ingredients of objective such as availability, exploitation, quntitative and qualitative assessment, collection, statistics on trade, commerce and annual out turn, distribution, possibilities of procurement and storage and coupled with basic statistics/data (physiology, ecology, geology and climatology). ethnomedical and other observations related to the lands, inhabitants, health-sickness and medical traditions, utilitarian knowledge and importance of the flora. Such survey with manifold aims and objects also help in future procurement and exploitation of drugs on large scale and indentification of genuine botanical sources for certain controversial or little known as well as unspecified drugs mentioned in Ayurvedic texts.

## APPROACH

**Towards high altitudes :**

Explicitly the medicinal plants survey conducted in the plains much differs to the hilly survey, and a striking difference becomes more wider when survey in the high altitudinal regions of Himalayas is meant for, as it carries plain distinction in theory and practice both. Practically speaking, the survey in hilly regions, particularly at high altitude shas its individual kind, specific way in approach and implementation of the excursion plan. The geographical features and characterstics of the Himalayan areas play basic role behind their cbious individuality and distinctive nature.

**Glimpses of Alpine habitats :**

The fascinating flora of the high altitudes in the Himalayas has attracted world wise attention. Royle's Illustrations of the Botany of the Himalayan Mountains published more than 130 years ago was, perhaps, the first book to give an extensive account of the Himalayas, and detailed account of flora exploration in the Himalayas is given by Bnrkill (1965); and the extensive attempt

from different angles in this field have particularly been made in a few past decades of current century but much of the work is still to be done in this direction. As regard the Ayurvedic drugs suvey of the Himalayan region, only a few attemps in certain areas can be considered cf casual nature, hence principal task of systematic and comprehensive survey remains undone and initial efforts are being already made of recent. In this direction the leading organisation for Ayurvedic researches in the country. C. C. R I. M. H. is taking initiatives in this field too.

Alpine zone, though specified in general in the terms of sea level height roughly 3000 m to 3600 m. and above, but it varies to different sectors of the Himalayan regions. In case of Western Himalays on account of the widely different conditions that prevail in Western sector, it becomes difficult to fix the limit i. e. altitude for beginning the alpine zone; however, the lower limit of the alpine zone is arbitrarily taken as 3000 or 3300 m. to 3600 m. above sea level as M. A. Rau (1975) opts for. At the upper limit plant life is generally seen up to the 5600 m. though, exceptionally; some plants may occur even higher as the altitudes above 6000 m. or near about.

The alpine zone is generally considered to begin where the tree zone in the Himalaya ends which is also called timber line. A fringe of shrubs may be seen in some places and in others, continuous or scattered dwarf or gnarled trees may be present immediately above the tree line. The high level conifers reach their highest limit at altitudes around 3600 m. above sea level alongwith their associates. In the drier inner valleys vegetation is of a scrub type. In alpine shruby zone, it is common to see the very dwarf recumbent shrubs with large number of long prostrate branches spreading over a considerable area. Above the tree line there is usually present a grassy belt with high meadows, grassy slopes and flower linen postures. The alpine marshes, stream banks and similar watery situations are favoured by another set of herbs. At the higher limits vegetation, the habitats are varied. The herbs are generally restricted to sheltered slopes, rock cervices, and beneath rock edges. The cushion habit is the commonest adaptation in this zone which also predominate in the cold scree desert, stonny waste rubble of the exposed drier localities. The high alpine grasslands generally show mixed association of grasses, sedges and pretty herbs.

**On alpine flora**

The alpine flora of Himalayas as it exists now has had a long history. Its origin has no easy solution and its study has many difficulties. It is presumed in modern views that the Himalayan mountain had its own flora even before the Pleistocene epoch. During the intermission between the periods of glaciation, warm conditions probably prevailed in which plants must have thrived (though many of them may have perished with each glaciation). In the Himalayas, the glaciers did not reach the foot hills and resultly, the vegetation of the lower belt was not affected. In determining the present composition and distribution of the Himalajan alpine flora, there may be certain factors like migration floras, survival

of reliots, evolution of new species by an intermixing of different floras and by mutation and acclimatisation of species from the lower altitudes and other similar elements considered important in arctic conditions and floral growth by the plant geographers.

Studies in the alpine flora of different sectors of Himalayas observe certain notable influential elements. For the instance, a large number of species and most genera of the lower alpine belt in the western Himalaya e. g. Garhwal—Kumaon sector and eastwards appear to come from Tibet, West China and adjoining north-east Asia. There has been considerable influence, in case of north-western Himalayan sector, from adjoining areas, reputed for floristic richness, located in Karakoram, Pamir and further north in the Tien Shan range of mountains. Authorities take note that the floras of Himalays, Tibet and West China have had a common origin and differentiation gradually took place as Himalaya and the Tibetan Plateau rose from the sea level to become the highest region in the world. In the central and eastern sectors, general patterns for present distribution are also based on plant geographical consideration. Experts also draw eastern Himalayan floras along 83% E Longitude from phytogeographic point of view.

There are various possibilities regarding the entry of floristic elements into the Himalayan heights from the north, west and east; likewise species with distribution to the north of the Himalaya are considered to have entered Himalayas either from the west or from the east. An attractive assemblage of herbs on its heights, the Himalayan parts began actually attracting the attention of explorers and researchers nearabout the middle of eighteenth century but the phase later got acceleration in the beginning of 19th century and this quest of knowledge of plants at high mountains today continues toward diversified directions with remarkable achievement.

Though whole Himalaya in general has its manifold importance, but certain reputed regions from medicinal point of view, for the instance, falling in different States may be located broadly to larger parts in—west and east Himalayas such as Uttar Pradesh (parts of mountainous range lying in Tehri, Garhwal, Kumaon divisions), Jammu and Kashmir (Srinagar, Leh and Ladakh zones), Himachal Pradesh (Chamba, Kinnaur, Lahual & Spiti, Kulu and higher parts of Kangra Simla), West Bengal (Darjeeling and adjoining higher parts), Sikkim (higher parts of north, east and southeast zones), Meghalaya (Shillong and adjoining higher parts) and some other parts in the country.

**Traditions long approach to mountains :**

Modern concepts may suggest to fix the time of quest for mountaineering as well as plants exploration in Himalayas not much back to two centuries back or around; but Indian ideology brings it to back, say it dawn of culture and civilization, and in more authortative way it becomes weighty when the Vedas, first written records of knowledge, signify the glory of mountains possessing manifold values and human's great quest. And Vedic scriptural dictions bless : 'Sanoh sanumaruhata' : 'May (you) climb from peak to peak'. Further in the field of exploration

of medicinal plants in the high mountains, Vedic texts speak of significant knowledge; for the example, a classical drug 'Paidva' has been described with method of its collection in higher hills ('Kairatika kumarika saka Khanati Bhaisajani Hiranyibhirabhribhirgiri-namupa sanusu—Atharvaveda, X,4,14-18).

Ayurveda, a medical system of tradition without beginning ('Na hi nabhuta Kadaci-dayusah santano buddhi santano va'-Caraka, I, 30-27) has followed and developed the sacred tradition. Compilatory medical texts, for the instance Sarangadhara Samhita specifies to plants into two groups i. e. Agneya and Soumya grown in Vindhyan and Himalayan regions respectively (Agneya vindhya-sailadyah soumyo himagirirmatah' : 1,1,55), also carried forward the significance of Himalayan drugs; and the later indigenous medical works have made a lot of additions to the knowledge on this aspect. In general the chief classical compendia of Ayurveda as well as their annotators ( Samhitas and Tikakara) pay their scholarly attention and guiding material for certain drugs available in mountainous region or Himalayas. For the instance, Dalhana specifies a particular botanical source available in hills for Murijataka ( Svanamakhyatah svalpakandah uttara-pathe' Susruta. Su. 39-8,c.17-15) and several other examples scattered in the various texts.

Ulimately the practical study has become main source of enhancing knowledge of Himalayan plant drugs which inspires for exploratory efforts and studies in the Himalayan regions, with particular stress on the drugs of Ayurveda.

**Materials for methodology of high altitude approach :**

Though exact methods and line of approach for high altitude survey may differ region to region, but a generalisation for framework consisting directive principles, elements and guiding factors will have its common applicability with certain modifications under the needs of the area in particular under survey; and such elaboration which may provide material to evolve out a methodology for Ayurvedic drugs survey in the Himalayas can be outlined.

**1. Pre-survey : Proper planning :**

(a) Selection of the area in view of rich floral growth, study of previous work, gathering all requisite informations, fixation of time and period in appropriate season (e. g. prewinters-summer months/monsoon months for drier alpines attracting no/low rains or post-rains months prior to colder season); chalking out detailed programme, movement schedule and itinerary alongwith prior arrangement for stay accommodations (wherever available).

(b) Proper and fruitful contacts with various sources and authorities concerned in the field; arrangement/obtainment of valid identity cards/identification proof, and permits for inner line/restricted areas' visits in case of border areas (vital/sensitive for defence point of view) alongwith authoritative permission of photography (wherever needed/ accorded as certain areas/spots totally prohibited for photography), ration permits, documents of vehicle (under perfect orderlines) equipped with fog lamp and other accessories

of hilly need and hills-licensee driver; and similar other papers and various jobs.

(c) Arrangement of various kinds of survey epuipments/apparatus, instruments, chemicals, containers (including collection-tubes and polythene packets for samplings) and all plants collecting-drying-preserving adequate material (in view of high humidity and moisture), data/observations-recording material including field books, stationery items, camera alongwith accessories and photographic material, and certain particular (for hilly areas) equipments like iceaxe, ruck sacks, ropes, altimeter, sleeping bags, alpine tents, kapok mattress, smelling salt, oxygen containers/smaller equipments (wherever needed) first aid box (with adequate medicines and appliances), leather/foam dresses and woolens, set of utensils and cooking/food wares and provisions (including preserved/condensed foods).

(d) Adequate preparedness in arrangement for risk, hazards or unforeseen eventualities and high altitude effects; selection of experienced and stamina-keeping and skilled surveyors (to avoid any hight altitude risk which may go to the extent of fatality and for maximum output of work) accustomed with conditions prevailing and survey techniques in high hills; acclimatisation and advancing forward gradually (after visiting lowerer altitude areas) to the altitudes with increasing heights (by avoiding direct journey/expedition from hotter plants to high altitudes).

**II. Survey : Multi-angled comprehensive field operation :**

(a) Completion of necessary formalities with the authorities and rechecking of tentatively drawn tour programme in the light of local informations and guiding indications, fixing up of programme for various spots in view of total outing period, possibility of work, situation of localities, stay arrangments, accessibility to areas; and mode of conveyance/transportation (e. g. also availability of poneys/mules, yalks and porters/guides) various other factors/circumstances worth consideration.

(b) Collection of plants specimens, different parts of plants, raw drugs material, green samples ( also in collecting tubes ); exhaustive exploration and hard field work by intensive and extensive ways in the forests; observations of various nature in the field and taxonomical data and their recording, and photography.

(c) Qualitative and quantitative survey of medicinal plants-informations/data on collection, out turn, trade, supply, storage of locally available drugs alongwith extent of present exploitation and assessment of potentials/prospectives in regard to economically/commercially important medicinal plants.

(d) Ethno-medical survey of medicinal flora growing in the area, data recording of folklores, medical usage and efficacy of plants to fuller extent and maximum possible/available details in the set patterns; general informations on historical, cultural, religious background alongwith present status, health and living conditions including hygenic sanitary considerations and prevalence of diseases, method/system of treatment, folk and medical facilities, medical traditions indigenous to the area; observations on

religious places/institutions, textual and learning sources, medical/research institution with particular reference to medicinal plants study.

(e) General statistics and informations/data lika climate, altitudes, topography; geography, geology, meterology, economics, forests, agriculture and similar aspects helpful (directly or indirectly) in medicinal plants study of the area in general.

(f) Movement in the localities by following local etiquettes or 'mountain manners' and customs; and strict adherence to the specific instructions/requirements (particularly in restricted areas) from the authorities/of permits; better co-ordination in team itself, and with the authorities/officials concerned as well as local inhabitants; proper performance of camp works.

(g) Acclimatisation and adopting the way of gradually advancing to higher altitude areas (as also indicated in part II); and taking precautions for both type of mountain hazards-objective (e.g landslides, rivers/rivulets spate, hanging glaciers, electric storms and also avalanahes-likely at quite higher altitudes) and subjective (e.g. slip-falls, benightedness, snow blindness, frostbite, accidents/illness of common likelihood at high hills or casual happenings due to inadequate/untimely treatment and first aid available in camp/field).

**III. Post-Survey : Contributory Presentation :**

(a) Re-arranging, firstly, collections of plant-specimens, raw drugs; promptly carrying out their chemical treatment and processing of plants collections and adequate conservation with utmost care (in view to preserve net outcome in terms of irreplacable collection of herbs) forest explorations alongwith other processes desirable.

(b) Arranging data/ informations recorded in the field, assessment of data; drawing conclusions and findings on various aspects/sections of the projects undertaken, alongwith proper identification—Ayurvedically and botanically—of plants.

(c) Systematic presentation of detailed account of explorations and study conducted enumerating salient features (including area, process, work, output) and net results alongwith significant achievements made on Ayurvedic drugs survey; timely presentation/production of research work based on survey before the research field; indication for future scope and effective suggestions on further accomplishment on the same project or useful modifications in the light of the work and extent of targets achieved.

**Prospects and Scope**

(a) The review of problems and several factors confirm that a survey of medicinal plants in hilly areas, particularly at high altitude has promising value. A number of drugs frequently used in certain botanical sources are exclusively grown in high altitude areas in the state of nature.

(b) A list of some important plants drugs of Ayurveda has been made (see Annexure) which generally consists plants providing valuable Ayurvedic drugs (particularly mentioned in the texts) except few are may be available at a lower elevation also. In

these drugs, botanical source, in accordance with the altitudinal variation, for some Ayurvedic drugs may vary, and certain drugs are named as per their common accestability.

(c) Besides the common Ayurvedic (textual) drugs in vogue, the hilly plants survey find a large number of plants reportedly possessing medicinal efficacy—known and mentioned in other works but are not directly depicted (as per present knowledge) in Ayurvedic texts, and so the incorporation and addition to the materia medica becomes further work. Such survey remarkably contributes to the knowledge of medical sciences and opens the wider avenue for further work, and also a vast scope for multi-disciplinary studies by tracing out the plant drugs alongwith first hand information of medicinal utility hitherto unknown. This is one of great achievements which may be made through pefect ethnomedical study with wider outlook in the course of Ayurveda-oriented plants survey.

(d) The explorations in high altitude in Himalayan regions attach great significance for development of Indian Medicine and other medical sciences and advancement of research in field of indigenous drugs and their further utilitarian scope, availability of genuine and potent drugs, indentification of controversial or unspecified Ayurvedic drugs, (in respect of correct botanical source), larger contribution of plant remedies against tidious and serious diseases in the field of medical sciences, maximum exploitation of Himalayan herbal wealth by programming exhaustive forests survey through systematic and practicable as well as perfect methodology entirely with Ayurveda-oriented approach and by its exact implementation under great enthusiasm and painstaking devotion.

**Acknowledgement :**

The author is grateful to the Director, C. C. R. I. M. H., New Delhi, for sponsoring projects of medicinal plants research, particularly encouragement to high altitude plant drugs survey.

## ANNEXURE

| Sl. No. | Ayurvedic Name/Drug | Plant Source |
|---|---|---|
| 1. | Talisa | *Abies webbiana* Lind. |
| 2. | Vatsanabha | *Aconitum chasmanthum* Stapff. ex Holmes |
| 3. | Ativisa | *A. heterophylum* wall. |
| 4. | Coraka | *Angelica glauca* Edg. |
| 5. | Daruharidra | *Berberis aristata* DC |
| 6. | Bhurja | *Betula utilis* D. Don. |
| 7. | Devadaru | *Cedrus deodara* (Roxb.) Loud. |
| 8. | Musali | *Chlorophytum arundinaceum* Baker. |
| 9 | Trayamana | *Gentiana kurroa* Royle. |
| 10. | Sati | *Hedychium spicatum* Ham, ex Smith. |

| | | |
|---|---|---|
| 11. | Kataphala | *Myrica nagi* Thunb. |
| 12 | Jatamamsi | *Nardosachys jatamansi* DC. |
| 13. | Katuka | *Picrorrhiza kurroa* Royle ex Bent. |
| 14. | Sarala | *Pinus roxburghii* Sargent. |
| 15. | Karkatasrhgi | *Pistacia integerrima* Stew. ex Brandis. |
| 16. | Padmaka | *Prunus cerasoides* D. Don. |
| 17. | Mayaphala | *Quercus infectoria* Roxb. |
| 18. | Amlavetasa | *Rheum empdi* Wall. |
| 19. | Tindika | *Rhus parviflora* Roxb. |
| 20. | Manjistha | *Rubia cordifolia* Linn. |
| 21. | Kustha | *Saussuera lappa* C. B. Clarke. |
| 22. | Kiratatikta | *Swertia chirata* Buch. Ham. |
| 23. | Lodhra | *Symplocos paniculata* Wall. |
| 24. | Sthaumeyaka | *Taxus baccata* Linn. |
| 25. | Tumburu | *Zanthoxylum alatum* Roxb. |
| 26. | Gajapippali | *Scindapsus officinalis* Schott. |
| 27. | Parasikayavani | *Hyoscymus niger* Linn. |
| 28. | Vaca | *Acorus calamus* Linn. |
| 29. | Hapusa | *Juniperus communis* Linn. |
| 30. | Jatukanda | *Jurinea macrocephala* Benth. |
| 31. | Puskaramula | *Inula racemosa* Hook. f. |
| 32. | Bhargi | *picrasma quassioides* Benn. |
| 33. | Pasanabheda | *Bergenia ligulata* Wall. |
| 34 | Ahiphena | *Papaver rhocas* Linn. |
| 35. | Tvaka | *Cinnamomum tamala* Nees. & Ebem. |
| 36. | Tagara | *Valeriana jatamansi* Jones. |
| 37. | Karcura | *Curcuma zedoaria* Rosc. |
| 38. | Brhadela | *Amomum subulatum* Roxb. |
| 39. | Talisapatra | *Rhododendron anthopogon* D. Don. |
| 40. | Elavaluka | *Prunus cerasus* Linn. |
| 41. | Treyamana | *Thalic foliolosum* DC. |
| 42. | Vendaka | *Viscum album* Linn. |
| 43. | Akásavalli | *Suscutareflexa* Roxb. |
| 44. | Gojhiva | *Onosma bracteatum* Wall. |
| 45. | Kosamra | *Schleichera trijuga willd.* |
| 46. | Soma | *Ephedra gerardiana* Wall. |
| 47. | Munjataka | *Orcnis latifolia* Linn. |
| 48. | Trayamana | *Delphinium cashmerianum* Royle. |

| | | |
|---|---|---|
| | | *Podophylum hexandrum* Royle. |
| 49. | Giriparpata | *Corydalis govanina* Wall. |
| 50. | Bhutakesi | *Viola serpens* Wall. |
| 51. | Vanpuspla | *Carum carvi* Linn. |
| 52. | Karavi | *Heracleum canescens* Lindi. |
| 53. | Aticchatra | *Selinium candollei* DC. |
| 54. | Mura | *Selinium vaginatum* C. C. Clarke. |
| 55. | Rocana tagara | *Viburnum nervosum* D. Don. |
| 56. | Tilaparni | *Artemisia maritima* Linn. |
| 57. | Nagadamani | *Taraxacum officinale* Weher. |
| 58. | Goji | *Polygonum affine* D. Don. |
| 59, | Kukkuti | *Exphorbia thomsoniana* Boiss. |
| 60. | Svarnakshiri | *Salix daphnoides* Vils. |
| 61. | Vetasa | *Iris kumaonensis* Wall. ex G. Don. |
| 62. | Sadagrntha | *Potamogeton pectinatus* Linn. |
| 63. | Saivala | *Prunus armeniaca* Linn. |
| 64. | Aruka | *Limonia ceenulata* Roxb. |
| 65. | Surasi | *Archyengelica himalaica* Edgew. |
| 66. | Canda | *Delphinum vestitum* Wall. |
| 67. | Sprakva | *Pyrum communis* Linn. |
| 68. | Tanka | *Smilax aspera* Linn. |
| 69. | Dvipantaravaca | *Juglans regia* Linn. |
| 70. | Aksota | *Pormalia perlata* Ach. |
| 71. | Saileya | *Crocus sativus* Linn. |
| 72. | Kunkuma | *Rosaa mosclata* Herrm. |
| 73. | Kubjaka | *Dendrobium Pauciflorum* King. & Panl. |
| 74. | Jivanti | *Awiantum venustum* G, Don. |
| 75. | Hamsapadi | *Pyrus malus* Linn. |
| 76. | Simbitika | *Eerula jaeschkeana* Vatke. |
| 77. | Hingu | *Eulophia unda* Lindl. |
| 78. | Rddhi | *Habenaria ttermedia* D. Don. |
| 79. | Vrddhi | *Microstylis wallichil* Lindl |
| 80. | Rsabhaka | *M. Mucifera* Ridley. |
| 81. | Jivaka | *Roscoea procera* Wall. |
| 82. | Kakoii | *Lillium polyphylum* D. Don |
| 83. | Ksirakakoli | *Fritillaria oxypetla* Royle. |
| 84. | Kakoli | *Polygonatum verticillatum* All. |
| 85. | Meda | |

| | | |
|---|---|---|
| 86. | Mahameda | *P. hookeri Baker.* |
| 87. | Ajamoda | *Apium graveolens* Linn. |
| 88. | Dhattura | *Datura stramonium* Linn. |
| 89. | Varahi | *Dioscorea bulbifera* Linn. |
| 90. | Parpat | *Fumaria indica* Linn. |
| 91. | Kakamachi | *Solanum nigrum* Linn. |
| 92. | Kakajangha | *Leea aequata* Linn. |
| 93. | Patha | *Setephania glabra* (Roxb.) Miers. |
| 94. | Sarpaksi | *Polygonum plebejum* R. Br. |
| 95. | Matsyaksa | *P. avisule* Linn. |
| 96. | Vastuka | *Chenopodium botrys* Linn. |
| 97. | Phanijjaka | *Griganum valgare* Linn. |
| 98. | Asvabala | *Meliolotus officinalis* Lamk. |

## REFERENCES

Annomyn : Materials for the flora of Bhutan (edited by Director, B. B. I.), Howarh, 1973

Burkill, I. H. : Chapters on the History of Botany in Indian, Calcutta, B. S. I., 1965

Chopra, R. N. et al : Glossary of Indlan Medicinal plants, C. S. I. R., New Delhi, 1956

Collett, H. : Flora Simlensis, Dehradun (reprint), 1971

Hara, H. : The Flora of Eastern Himalaya, Tokyo, 1966

Hooker, J. D. : A Sketch of the Flora of British, Indian, Oxfored, 1906

Kihara, H. : Fauna and Flora of Nepal Himalaya, Vol. I., Kyota, 1955

Polunin, N. : Introduction to plant Geography, London, 1960

Rau, M. A. : High Altitude Flowering Plants of West Himalaya, Howarah, 1975

Rau, M. A. : Illustrations of West Himalayan Flowering Plants, 1963

Royle, J. F. : Illustrations of the botany and other branches of the natural History of the Himalayan mountains, London, 1039-40

Sagreiya, K. P. : Forests and Forestry, N. B. I., New Delhi, 1967

Singh, B. & Chunekar K. C. : Glossary of Vegetables drugs in Brhattrayi, Varanasi, 1972

Sapru, B. L. et al : Flora of Ladak, 1978

Smith, W. W. : The Alpine and sub-alpine vegetation of Southeast Sikkim, 1977

Stewart, R. : Flora of Ladak, Western Tibet, 1973

*Other than classical texts (Vedic/Ayurveda) referred with original quotations in the texts.

# SPIRITUAL ASPECT OF AYURVEDA

Vaidya **P. G. Athawale,**
Principal Ayurved Mahavidyalaya, Sion,
Bombay-22

The Ayurveda is defined as the Science of life; the whole life. The aim of Ayurveda is to cure a person not only of his mental and bodily ailments but also to relieve him of his bondage of matter and to show him the path of true salvation-"Moksha".

Charak Maharshi has described Ayurveda as आयुषः वेदः आयुर्वेदः। आयु+विद्। विद् comes here in various aspects of its three meanings.

विद् ज्ञाने आयुः वेत्ति इति आयुर्वेदः।
विद् लाभे आयुः विंदन्ति इति आयुर्वेदः।
विद् सत्तायाम् आयुः अस्मिन् विद्यते अनेन आयुर्वेदः।

Charak also describes the life, जीवनम् as 'शरीरेन्द्रिय सत्वात्म संयोगो धारिजीवितम्।'

The human personality is made up of शरीर the Body, इन्द्रिय-the sensory and motor organ, सत्व the Mind and Atma the soul the spirit, so a medical student must be well accquainted with all these factors while trying to treat a person-of his ailments.

So also the great philosopher Patanjali has described the activities of a human being Charak says-योगेन चित्तस्य, पदेन वाचाम् मलं शरी॰ रस्य च वैद्यकेन ।।योऽ्या करोत्त' प्रवरं मुनीनाम् पतंजलि प्राञ्जलिः आनतोस्मि ।।

All the activities are done by Body, speech and mind; कायेन वाचा मनसा under the control and directives of Atma; which here; is implied by the word Conciousness; because the Atma is exactly described as Chetana Dhatu.

Atma is Chetan and the 'Mind is Achetan, so Atma induces mind to do the activities. But if the Atma, इंद्रिय organs and the Body are in existence but the mind is not there, then no knowledge is acquired. We have seen before that human personality is comprised of शरीर इंद्रिय सत्व आत्मा and as per this Chronological order, the Mind-the "Satwa" is the linking factor in between the Atma and the body and its organs. Thus the Mind has got to play an important role throughout the life. Even if the Atma has to see its own-he has to take help of the **mind,**

Here I will site one example of a mirror. When the mirror—the shining and reflecting side of the mirror is facing towards the Exogenous matters, the world we can not see ourselves in it and we get no knowledge—but if the mirror is turned towards our face we can see ourselves in it and acquire some knowledge. In the same way, the mind is to be turned towards the Atma to have the proper knowledge. Thus the Intellect is the quality of Atma.

This mind is the seat of impulses and feelings and it is common to all living creatures. Animals also possess a mind. When they come in contact with the world, impulses and feelings are generated in their minds any they are in turn manifested in their respective actions. They do not have the capacity to judge and determine the intention

or the motive behind it.

The human being the man—the crown of the creation, has got the capacity to discriminate the impulses and the feelings, he has got the power of judgement, the capacity to discern what is right and what is wrong and this is the function of Intellect and not the Mind. When this intellect is lost, the man is no more superior to any animal.

All the living creatures in this Universe are classified in the following four groups.

(1) The lower most quality is of those living beings who carry out only the physical activities शारीरिक क्रिया e. g Beasts and animals.

(2) The second group comprise of the domestic and tamed animals e. g. Cows; Horses; Dogs; Cats etc., who have got mind evolved to a certain extent, which can be observed from their affinity and loyalty to their masters.

(3) Then comes the Third Group of Intellectual category—like the human beings. Their all actions are mainly intellectual.

(4) The last and the Top most group comprises of the spiritual category—the cream of Human beings i. e., the spiritual personalities and yogis, who live mainly on the spiritual level.

I may site one example here—about the king 'Janak', who lived purely a spiritual life by remaining neutral (स्थितप्रज्ञ) towards the pains and pleasures simultaneously as is described

'सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जया जयौ...।'

These four groups indicate the four rising steps of conciousness where in each succeeding step includes, the preceeding ones. For example a yogi has to live a physical life and has to consume food for sustaining the body. He has his mind and emotions, feelings and impulses but they are under control. He posseses intellectual quality because he discerns between permanent and impermanent, "नित्यानित्य विवेक:"

And in spite of all these three lives he realises the spiritual aspect of life or the conciousness, and hence all his activities are concentated towards the conciousness—The Atma.

The concept of health according to Ayurveda as comprehensive and unique. It is :—

'समदोषा: समाग्निश्च समधातुमल क्रिया ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमन: स्वस्थ इत्यमिधीयते ॥

Here the first line of this stanza indicates the physiological functions and normal states of various system in the body. Whereas the second line describes the importance of mental, Intellectual and spiritual health of a human being.

Health means Ease Absence of health is Disease. These diseases are caused by Exogenous as well as Endogenous factors. The mind has a unique role to play in both these factors. It is an established fact that some physical diseases are caused by stress and strain, which are related to the Mind E. g. Hypertension, Heart diseases etc.

"रसवाहीनि दुष्यन्ति चिन्त्यानाम् अतिचिंतनात् ।"

As such they are diseases of रसवह स्रोतस् according to Ayurveda.

As regards Exogenous diseases—

"काम क्रोध भयाद्याश्च तेस्यु आगन्तवो गदा"

Passion, Anger, Fear, etc. are all exogenous diseases which are related to the Mind. So it clearly means that the Mind has got a very important role to play for keeping or maintaining the body in Sound state of Health. When the Mind of a Human being is not playing its role properly, the resulting diseases are termed as "प्रज्ञापराधज"—i.e the diseases caused by volitional Transgression.

From time immemorial, the human being is in search of ways and means for keeping his body, physically, mentally, Intellectually and spiritually, in a sound state of Health.

This has been clearly explained by Charak in the Chapter "तिस्त्रैषणीय" i. e. the three Instincts in the man. They are प्राणैषणा—the aspiration to live long happy life; धनैषणा—aspiration for wealth, परलोकैषणा—the aspiration for emancipation or salvation. Out of these the Third—aspiration परलोकैषणा has been described as the supreme aspiration of all.

The ways and means for attaining this aspiration have also been described systematically as follows—

"चिन्त्यम् विचार्यम् अह्यम संकल्प्यम्—सिद्धि: and समाधि:"

All these are directly concerned and are under direct control of the Mind.

The conciousness or Atma is the supreme controller of the Body and is the only concious factor of the human life; but he has to manifest itself through the medium of Mind. Thus the importance of Mind in spiritual aspiraiion is very clear.

To attain समाधि: that is the superconcious state, the extrovert mind is required to be rendered introvert, introspective towards Atma. For which the ways and means are laid down as said before.

Patanjali the master Yogi has opened the topic of Yoga with an aphorism relating to the Mind—

योग: चित्तवृत्ति निरोध:

That is regulating, and stopping all mental activities—is equal to Yoga.

Thus we can see that to attain a healthy & sound state of body a human being has to know first the constitution of Body, as is made up of शरीरेन्द्रियसत्वात्म् संयोग: So to get rid of ailments we have to look forwards for all constituents like Mind, Atma and Intellect.

This is the doctrine of Ayurveda

# Tridax Procumbens Linn. as an Ayurvedic substitute to the Tincture iodine in the Clinical management of injuries and wounds.

**P. D. Jopat***
**C. R. Karnick****
( Jawaharlal Nehru Ayurvedic Medicinal Plants Garden and Research Institute, Kothrud, Poona-411029 )

**ABSTRACTS**

According to sage Charaka, everything that is useful for therapeutic purpose can go by name "Aushadh" that is medicine, which has been ascribed four basic qualities. The first and foremost among them is its large scale availability. **Tridax** procumbens Linn. which is till now held as an exotic plant from South America, undoubtedly deserves to be called an "Aushadh" or medicine, particularly in the light of what Acharya Charaka has propounded. As regards its availability, it grows so widely like a wild weed on rocky places, hilly tracts and plains etc. that it is difficult to estimate the quantum to which it is available.

It is indeed surprising that this plant; despite of its huge availability, does not occupy any place in the practice of the Ayurvedic Physicians. It is also equally true that in almost all the Ayurvedic Samhitas and Nighantus, there is hardly any description of this medicinal plant. More or less the same trend with regard to this plant continues to be treated by the present day Ayurvedic scholars and the authors of books on Dravyaguna Vigyan. Nevertheless, the tribals and the traditional practitioners of Ayurveda did not fall in line and have used it with no reservations.

As per the folk-lore claim, the juice of the fresh plant when applied to an injury or wound acts as an antiseptic, preventing puss formation and suppuration on one hand and helping in the speedy healing of the wound or injury without allowing the secondary infection to grow on the other hand. This fact has been practically ascertained by the authors of this paper. The same has also been confirmed from various competent authorities. But the important fact which drew the attention of the authors of this paper is the difficulty in carrying the plant-juice in fresh condition at the places where it is actually to be used. This necessitated the preparation of a convenient mode of drug, out of this plant as per Bhaishajya kalpana i. e. Ayurvedic Pharmaceuticals, which could effectively substitute the Tincture iodine of modern medicine. Keeping in

---

* Research Assistant (Ayu.).

** Officer-in-charge.

*** Paper presented and read at the 5th All India Shastra Charcha Parishad held on Skin & Blood diseases at Hyderabad during 25th August to 6th September, 1978.

view of the above, a medicated oil of Tridax procumbens Linn. was prepared and tried on the selected cases. The results obtained are presented and discussed in this paper for the first time.

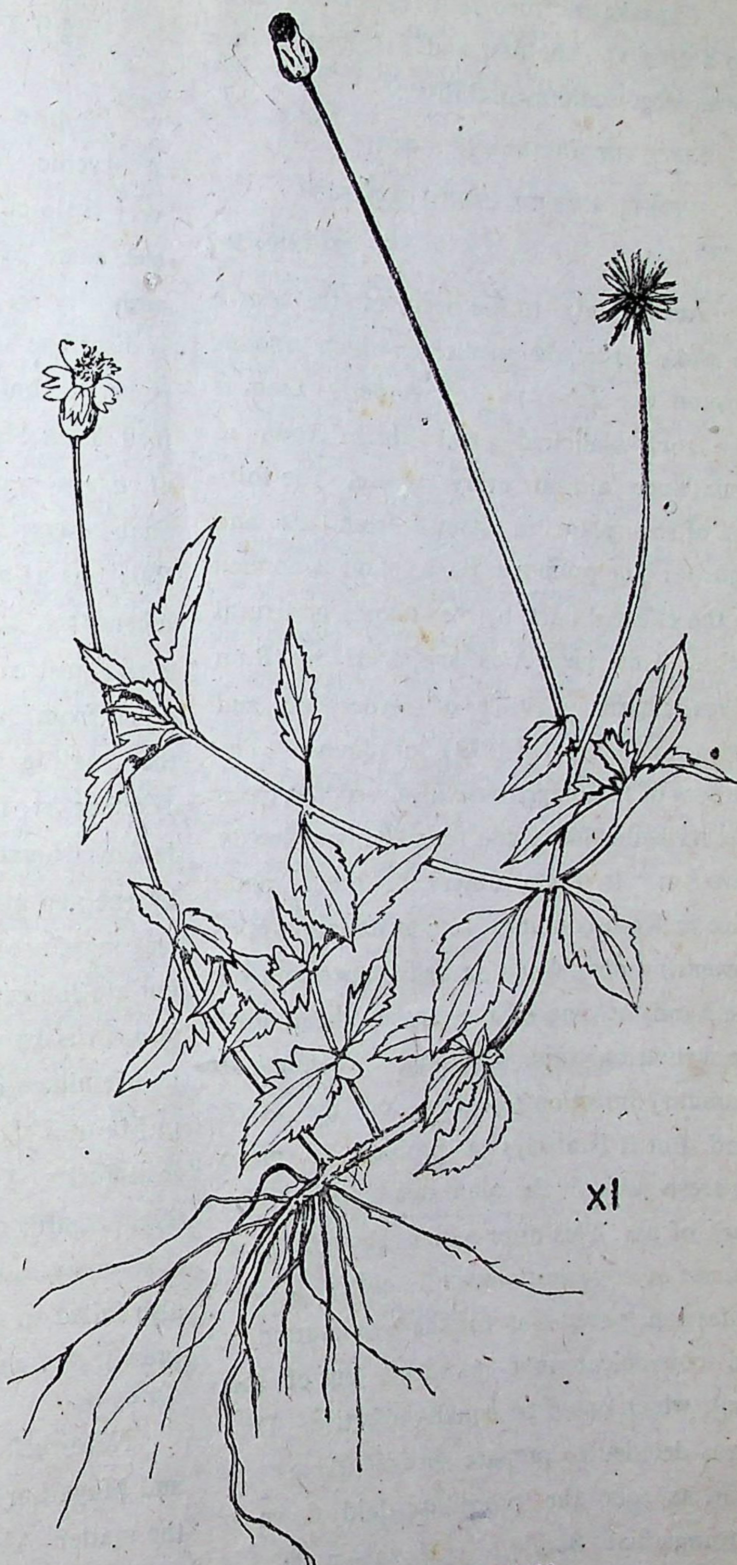
## INTRODUCTION

India abounds in rich flora and founa. It is not very surprising that many of the plants are still unknown. There are several species of plants found in different parts of the country which still remain un-explored by the Ayurvedic profession.

It is noteworthy that some Ayurvedic plants continue to be in use through ages for different purposes by the rural masses and tribal folks and shephard etc. It is one of the reason why lord Dhanvantri instructed his desciples to collect information about drugs from the cowherds, the ascetics, the hunters, the wild tribes, those who live on tubers and forest folks :

'गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिण:
मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषज व्यक्तिरिष्यते' ।

सुश्रुत सू० 36-20




TRIDAX PROCUMBENS LINN.

Charaka ascribed four essential qualities to a drug viz, the first and foremost of them s its large scale availability :

'बहुला तत्र योग्यत्वमनेकविध कल्पना
संयच्चेति चतुष्कोऽयं द्रव्याणां गुणउच्यते।'
चरक०सू० 9-7

Accordingly to the need of the hour is to make use of the medicines which abound around us. *Tridax procumbens* Linn, is one such medicinal plant which grows in abundance almost every where. The folk use of this plant is against fresh cuts and injuries. The pounded fresh plant is applied to the effected part by the tribals and rural folks. This view was supported by Ram Nivas Sharma (1978) of Hyderabad and Mayaram Uniyal (1979) of Jhansi. The authors of this paper have also used it in cases of cuts and injuries and found it marvellously effective. It was observed that plant juice in fresh condition acts as an antiseptic, preventing pus formation and supperation on one hand; helping in the speedy healing of the wound or injury without allowing the secondary infection to grow, on the other hand. But it is always a problem to make the fresh juice of the plant available at the place of use. This after serious thought and a series of consultations with elders in the profession, paved way for the preparation of and convenient mod of drug out of this plant, which could be equally effective. Thus it was decided to prepare on oil from this plant, as per the procedure laid down in Sharangadhar Samhita (Madhyam Khand chapter 9, stanzas 1 to 3 and ascertain its clinical efficasy on the scientific lines—

'कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यं घृतं वा तैलमेव वा
चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता'।
शार्ङ्गधर संहिता, मध्यम खण्ड 9/1-3

Despite of our best efforts to collect Ayurvedic information on this drug plant, very little could be known. During discussions, some of mey friends have quoted an authority on Ayurveda stating that the plant is discribed in Ayurvedic Classics under the name 'Kesharaje'. This could not be ascertained. Lala Shaligram (1896) in his glossary of drugs entitled 'Shaligram Aushadha Shabdasagar' has however shown 'Kesha Raja' as a synonym to Bhrungaraja. Some others try to co-relate it from 'Vishalya Karni' just as the Unani brethern attempt to do so from 'Jakhme Hayat' keeping in view the healing property of Medicinal Plant. Whether it is the same Vishalya Karni or Jakhme Hayat or not is yet to be confirmed by one and all. But its name in vernacular languages are indeed not only very signficant but are indicative of its therapeutic property also. In is known as 'Ghayapaku' suggestig its usefulness in injuries. Similar is the name in Marathi 'Dagadipala' i, e. a herb useful in injurles. In Kannada it is known as 'Ghayamari', meaning enemy of the injuries. Like many other medicinal plants this plant also failed to receive due attention from our present day authorities on the subjects and Vaidyas.

Nevertheless Acharya Bapalal Jee Vaidya and Mayaram Uniyal are the exception in the matter. Almost all, barring Uniyal are of the opinion that this is an exotic plant introduced from South America despite of the truth that it grows in abundance like a

wild weed almost every where in our country, on rocky places, hilly tracts and plains etc. Bapalalji in 'Nighantu Adarsh' (1968) has referred it as a 'Paradeshi BhringraJ' found useful in wounds and abcesses of the head. Uniyal in 'Uttarakhand Vanaushadhi Darshika' (1877) has referred it under the name 'Akkal kohed' which is available upto an altitude of 120 meters. He on the strength of the rural folk lore claims, found it useful for stoppage of the bleeding and healing of injuries and wounds. Professor Ram Nivas Sharma, Hyderabad collected very interesting information in respect of this plant. For instance, this is a very favourte food baite for partridges. The hunters make use of partridges, which are considered to be very hot, in the treatment of diseases like paralysis etc., Probably this may be the reason why it attracts since this plant is very cold. Tt is plant is available throughout the year. The flowering period is during April and August each year. The entire plant is to be used for therapeutic purpose. Its internal uses are not definetely known. Who knows, if tried it will open new vistas in the treatment of the most stubborn diseases of skin and blood ?

## OBSERVATION

*Phurmacognosy* :—*Plant* :—A straggling hispid herb. *Leaves* :—opposite, enciso-dentate. *Heads*—10-15 cm. heterogamous, rayed, ray-flowers made, fertile, disk flower hermaphroidte, fertile. *Involacre*—Compenculate, few-seriete, outer broad, herbaceous, inner scarious. *Receptacle*—Convex, paleae membranous, *Corolla* of male flowers lighlate or t-labiate, outer lip large 3-lobed, the inner small 2-lobbed, of harmaphordite. Flowers tubular, the limb, 2-lobed. Antherbases with short acute auricles. *Style* :—Arms heiry, the tips subulate-Achenes-turbinate or oblong, silky, pappus-short or long, aristate, feathery bristles.

*Phytochemical studies* :—

Active constituents of this plant were screemed using methods outlines by Peach & Tracey(1955). Data obtained are recorded below :—

TABLE * 1 *

| | PARTS | | | |
|---|---|---|---|---|
| **Constituents** | **Roots** | **Stem** | **Leaves** | **Flowers.** |
| Alkaloids | + | + | + | + |
| Glycosides | + | + + | + + | + + |
| Carbohydrates | — | — | + | + |
| Saponins | + | + | + | + |
| Sterole | + | + | + | + |
| Tannins | — | — | — | — |
| Proteins | + | + | + | — |

*Discussion and Results* :—With a view to evaluate its claims held for healing, an oil of *Tridax procumbens* was prepared as per the method outlined in Sharangadhar Samhita, a standard work on Bhaishajya Knlpana and the oil was tried in cases of fresh injuries and wounds as well.

The patients were devided in two groups for the purpose of convenience in making their comparative studies. The group 'A' consisting of 40 patients received Tridax-oil as an external applicant towards treatment. Another batch 'B' consisting of 40 patients received Tincture iodine for external application as the mode of treatment. The details of the trial are tabled below:

EFFECT OF OIL OF TRIDAX PROCUMBENS LINN.

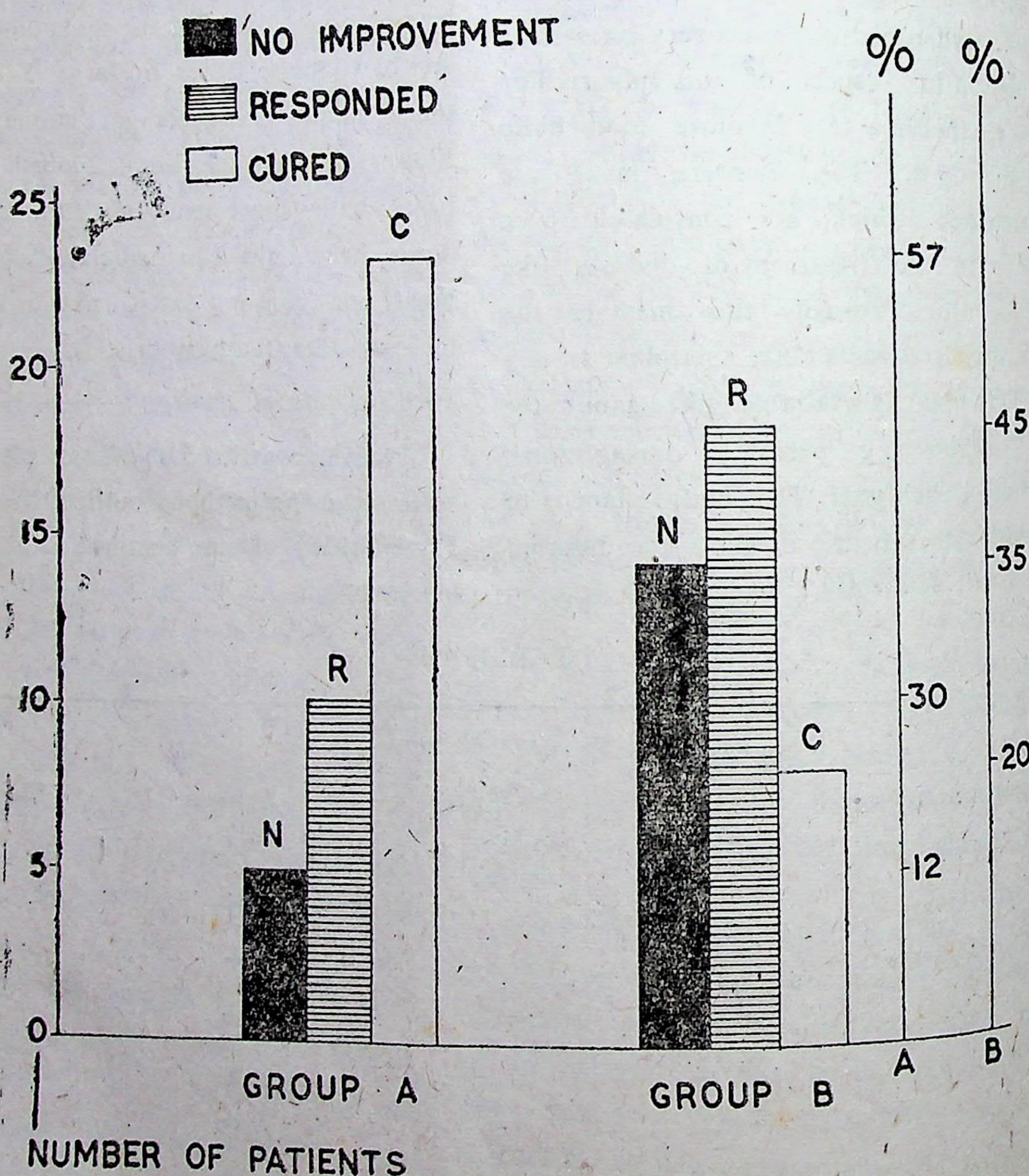


TABLE 2

| Batch | No. of patients | Responded | Cured | No Improvement |
|---|---|---|---|---|
| Group A | Male ....... 22 | 12±1 | 23+2 | 5+1 |
| | Female ....18 | 12±1 | 23 | 5+1 |
| Group B | Male ......19 | 18±1 | 8+1 | 14+1 |
| | Female ......21 | 18±1 | 8+1 | 14+1 |

The treatment consisted of local application of either the oil of *Tridax procumbens* or Tincture iodine. No medicine was administered internally to the cases of either groups. The treatment was done for 10-15 days. The cases which did not respond showing to improvement, themselves stopped coming for treatment, so the reasons responsible for the failure of the therapy could not be analysed. The patients whose condition appeared better but were not fully cured until the time limit fixed were categorised as "responded", In pyogenic conditions where the puss formation had taken place due to some reason or the other, the oil proved to be equally efficacious unlike Tincture Iodine. The oil had marked advantage in subsiding the burning sensation and swelling of the wounds. In group A, 23 out of 40 cases were cured, 12 simply responded and 5 showed no sign of improvement. On the contrary group B, where upon Tincture iodine was used as medicine consisted of 8 persons in the category cured, 18 responded, 14 displayed no symptoms of improvement.

The results obtained in the present study clearly indicate that the folk-lore claim held in respect of this medicinal plant is based on substantial truth, since the results of our preliminary trials are very encouraging. Although the study is still in progress yet it may be safely inferred that the plant in question is not only an antiseptic but something more than that which accelerates the process of healing besides ruling out the probability of the growth of secondary infections.

## ACKNOWLEDGEMENTS

The authors are thankful to the Director CCRIMH for providing full facilities during the tenure of this Research work. They are also grateful to Dr. Ram Nivas Sharma, Hyderabad for his uninterrupted generous help and guidance.

## REFERENCES

1. Yadavji Trikamji Acharya (1941) : Charak Samhita with "Ayurvedic Deepika" annotations by Chakrapanidutta, Nirnayasagar Press, Bombay.

2. Yadavaji Trikamji Acharya (1935) : Sushrut Samhita with "Nibandha Samgraha" annotations by Ballhabhacharya, Nirnayesagar Press, Bombay.

3. Vaidya Shaligram (1896) : Shaligram Aushadh Shabda Sagar, Khemaraj Srikrishnadas, Bombay.

4. Sharma Prayagadutta (1948) : Sharangadhar Samhita with Subodhini Commentary, Jayakrishnadas Haridas Gupta, Varanasi.

5. Nadakarni, K. M. (1976) : The Indian Materia Medica, Popular Prakashan, Bombay.

6. Vaidya Bapalal G. (1968) : Nighantu Adarsha, Chaukhmba Vidyabhavan, Varanasi.

7. Sharma, Ram Nivas (1978) : A personal communication, Hyd.

8. Uniyal Mayaram (1977) : Uttarakhand Vanaushadhi Darshika; CCRIMH, New Delhi.

9. Peach K. & Tracey M. V. (1952) : Modern Methods of Plant Analysis, Berlin.

# Herbal Wealth of Bhutan

Sri Ramesh Bedi

541. *Primula nivalis* Pall
synonym *Primula stuartii* Wallich
(Ramesh Bedi 36)
542. *Primula petiolaris* Wallich
(Ramesh Bedi 82)
543 *Primula prolifera* Wallich
(Ramesh Bedi 86)
544. *Primula sikkimensis* Hooker f.
(Ramesh Bedi 165, 379, 609, 995)
545. *Primula sminiana* Craib
(Ramesh Bedi 51)

79 RANUNCULACEAE

546. *Aconitum*
(Ramesh Bedi 1133)
547. *Aconitum*
(Ramesh Bedi 1232)
548. *Aconium luridum* Hooker f. & T.
(Ramesh Bedi 41, 1043)
549. *Aconitum maviculari* Stapf
(Ramesh Bedi 1241)
550. *Aconitum palmatum* D. Don
(Ramesh Bedi 810, 1198)
551. *Aconitum spicatum* Stew.
(Ramesh Bedi 813, 146, 1212)
552. *Anemone demissa* Hooker f. T.
(Ramesh Bedi 118)
553. *Anemone obtusiloba* D. Don
(Ramesh Bedi 68, 112, 226)
554. *Anemone polyanthes* D. Don
(Ramesh Bedi 124)
555. *Anemone rupestris* Wallich
(Ramesh Bedi 95)
556. *Anemone rupicola* Camb.
(Ramesh Bedi 19)
557. *Caltha palustris* Linnaeus
(Ramesh Bedi 221)
558. *Caltha scaposa* Hooker f. & T.
(Ramesh Bedi 92, 180, 884)
559. *Clematis grata* Wallich
(Ramesh Bedi 647)
560. *Clematis acutangula* Hooker f. & T.
(Ramesh Bedi 709, 927)
561. *Clematis connata* DC.
(Ramesh Bedi 492, 719, 792)
562. *Clematis montana* Hamilton
(Ramesh Bedi 13,26,254,350,596,1266)
563 *Delphinivm*
(Ramesh Bedi 1215)
564. *Delphinium altissimum* Wallich
(Ramesh Bedi 902, 1231, 1234)
565. *Delphinium denudatum* Wallich
(Ramesh Bedi 672, 960)
566. *Oxigraphis polypetala* Hooker f. & T.
(Ramesh Bedi 90, 93)
567. *Ranunculus*
(Ramesh Bedi 74)
568. *Ranunculus*
(Ramesh Bedi 323)
569. *Ranunculus affinis* R. Br.
(Ramesh Bedi 109, 334 1258)
570. *Ranunculus hirtellus* Royle
(Ramesh Bedi 94)
571. *Ranunculus laetus* Wallich
(Ramesh Bedi 232, 744, 288)
572. *Thalictrum*
(Ramesh Bedi 336)
573. *Thalictrum eloinum* Linnaeus
(Ramesh Bedi 111)
574. *Thalictrum chelidonii* DC.
(Ramesh Bedi 580, 582, 899)
575. *Thalictrum cultratum* Wallich
(Ramesh Bedi 308)

676. *Thalictrum elegans* Wallich
(Ramesh Bedi 904, 952)

677. *Thalictrum foliolosum* DC.
(Ramesh Bedi 277, 489, 557, 579)

678. *Thalictrum minus* Linnaeus
(Ramesh Bedi 1067)

679. *Thalictrum rostellatum* Hooker f.
(Ramesh Bedi 141, 213)

80 ROSACEAE

680. *Agrimonia pilosa* Ledephour var. *Nepalensis* (D. Don) Naki synonym *Agrimonia eupatorium* Linnaeus
(Ramesh Bedi 274, 421, 645, 655)

681. *Aruncus sylvester* Kostel
(Ramesh Bedi 1262)

682. *Cotoneaster acuminata* Lindley
(Ramesh Bedi 1159)

683. *Cotoneaster microphylla* Wallich ex Lindley var. *alpinus* Klotze.
(Ramesh Bedi 108)

684. *Fragaria*
(Ramesh Bedi 785)

685. *Fragaria vesca* Linnaeus *nubicola* Hooker f. var.
(Ramesh Bedi 100)

686. *Potentilla*
(Ramesh Bedi 76)

687. *Potentilla*
(Ramesh Bedi 317)

688. *Potentilla*
(Ramesh Bedi 337)

689. *Potentilla*
(Ramesh Bedi 603)

690. *Potentilla*
(Ramesh Bedi 824)

691. *Potentilla*
(Ramesh Bedi 911)

592. *Potentilla fruticosa* Linnaeus
(Ramesh Bedi 91, 247, 632)

593 *Potentilla fulgens* Wallich
(Ramesh Bedi 390, 710)

594. *Potentilla griffithii* Hooker f.
(Ramesh Bedi 279)

595. *Potentilla kleiniana* W & A
(Ramesh Bedi 293)

596. *Potentilla microphylla* Don
(Ramesh Bedi 1201)

597. *Prinsepia utilis* Royle
(Ramesh Bedi 149, 1062)

598 *Prunus persica* Lentham & Hooker f.
(Ramesh Bedi 297)

599. *Prunus rufa* Wallich
(Ramesh Bedi 12, 237)

600. *Pyrus baecata* Linnaeus
(Ramesh Bedi 212)

601. *Pyrus sikkimensis* Hooker f.
(Ramesh Bedi 166)

602. *Rosa*
(Ramesh Bedi 209)

603. *Rosa*
(Ramesh Bedi 555)

604 *Rosa*
(Ramesh Bedi 749)

605. *Rosa*
(Ramesh Bedi 784)

606. *Rosa*
(Ramesh Bedi 809)

607. *Rosa*
(Ramesh Bedi 915)

608. *Rosa*
(Ramesh Bedi 971)

609. *Rosa*
(Ramesh Bedi 1120)

610. *Rosa longicuspis* Bertol.
(Ramesh Bedi 270)

611. *Rosa macrophylla* Lindley
(Ramesh Bedi 1171, 1191)
612. *Rosa moschata* J. Herrm.
(Ramesh Bedi 1182)
613. *Rosa sericea*
(Ramesh Bedi 23, 258, 611)
614. *Rubus*
(Ramesh Bedi 282)
615 *Rubus*
(Ramesh Bedi 447)
616. *Rubus*
(Ramesh Bedi 1033)
617. *Rubus*
(Ramesh Bedi 1284)
618. *Rubus alpestris* Bentham
(Ramesh Bedi 343)
619. *Rubus biflorus* Hamilton
(Ramesh Bedi 201)
620. *Spiraea*
(Ramesh Bedi 566)
651. *Spiraea arugneus* Linnaeus
(Ramesh Bedi 816)
622. *Spiraea bella* Sims
(Ramesh Bedi 152, 382, 583)
623. *Spiraea canescens* D. Don
(Ramesh Bedi 375)

81 RUBIACEAE

624. *Galium rotundifolium* Linnaeus var. *avaricum*
(Ramesh Bedi 426)
625. *Hamiltonia suaveolens* Roxburgh
(Ramesh Bedi 662)
626. *Hydotis scandens* Roxburgh
(Ramesh Bedi 477)
627. *Hymenopogon parasiticus* Wallich
(Ramesh Bedi 498)
628. *Leptodermis griffithii* Hooker f.
(Ramesh Bedi 289, 295)
629. *Luculia gratissima* Wallich
(Ramesh Bedi 1127)
630. *Mussaenda roxbnrghii* Hooker f.
(Ramesh Bedi 527)
631. *Rubia cordifolia* Linnaeus
(Ramesh Bedi 138, 475, 811)
632. *Rubia munjista* Roxburg
(Ramesh Bedi 408, 538)

82 RUTACEAE

633. *Boenninghausenia albiflora* Richb.
(Ramesh Bedi 651, 1140)
634. *Zanthoxylum*
(Ramesh Bedi 739)
635. *Zanthoxylum acanthopodium* DC.
(Ramesh Bedi 640)
636. *Zanthoxylum alatum* Roxberg
(Ramesh Bedi 1151. 1264)
637. *Zanthoxylum hamiltonianum* Wallieh
(Ramesh Bedi 1148)
638. *Zanthoxylum tomentallum* Hooker f.
(Ramesh Bedi 673)

83 SALICACEAE

639. *Populus*
(Ramesh Bedi 799)
640. *Populus*
(Ramesh Bedi 1261)
641. *Populus gamblei* Dode.
(Ramesh Bedi 643)
642. *Salix*
(Ramesh Bedi 979)
643. *Salix elegans* Wallich
(Ramesh Bedi 342)
644. *Salix sikkimensis* Anderson
(Ramesh Bedi 122, 189)
645. *Salix tetrasperma* Roxburgh.
(Ramesh Bedi 613)

84 SAXIFRAGACEAE

646. *Bergenia purpurascens* Engler
(Ramesh Bedi 83, 178, 249)

647. *Deutzia*
(Ramesh Bedi 361)
648. *Hydrangea robusta* Hooker f. & T.
(Ramesh Bedi 556)
649. *Parnassia*
(Ramesh Bedi 628)
650. *Philadelphus coronarius* Linnaeus
(Ramesh Bedi 268)
651. *Philadephus duetzia* Stamina
synonym *Deutzia hookariana*
(Schmich) Airy, Shaw
(Ramesh Bedi 199)
652. *Ribes glaciale* Wallich
(Ramesh Bedi 177)

85 SCITAMINACEAE

653 *Amomum subulatum* Roxburgh
(Ramesh Bedi 503)
654 *Hedychium*
(Ramesh Bedi 507)
655. *Hedychium*
(Ramesh Bedi 729)
656. *Hedychium*
(Ramesh Bedi 1194)
657. *Roscoea alpina* Royle
(Ramesh Bedi 144)
658. *Roscoea procera* Smith
(Ramesh Bedi 928, 1276)

86 SCROPHULARIACEAE

659. *Hemiphragma heterophyllum* Wallich
(Ramesh Bedi 957)
660. *Mazus japonicus* (Thunberg) O' Kuntze
synonym *Mazus rugosus* Lour
(Ramesh Bedi 300)
661. *Pedicularis*
(Ramesh Bedi 224)
662. *Pedicularis*
(Ramesh Bedi 271)
663. *Pedicularis*
(Ramesh Bedi 634)
664. *Pedicularis*
(Ramesh Bedi 745)
665. *Pedicularis*
(Ramesh Bedi 1030)
666. *Pedicularis flagellaris* Bentham
(Ramesh Bedi 125, 1248)
667. *Pedicularis gracilis* Wallich
(Ramesh Bedi 745, 1269)
668 *Pedicularis lachnoglossa* Hooker f.
(Ramesh Bedi 910, 925)
669. *Pedicularis megalantha* D. Don
(Ramesh Bedi 328, 354, 1271)
670. *Pedicularis roylei* Maxim
(Ramesh Bedi 310)
671. *Pedicularis schizorhyncha* Prain
(Ramesh Bedi 153)
672. *Pedicularis trichoglossa* Hooker f.
(Ramesh Bedi 869, 956)
673. *Picrorhiza kurroa* Royle ex Bentham
(Ramesh Bedi 87, 121)
674. *Torenia vagans* Roxburgh
(Ramesh Bedi 480)
675. *Verbascum thapsus* Linnaeus
(Ramesh Bedi 402)
676. *Veronica javanica* Bl.
(Ramesh Bedi 242)

87 SELAIGINELLACEAE

677. *Selaginella*
(Ramesh Bedi 504)

88 SOLANCEAE

678. *Datura*
(Ramesh Bedi 403)
679. *Datura stramonium* Linnaeus
(Ramesh Bedi 400)

680. *Datura suaveolens* Hooker & Bentham (Ramesh Bedi 430)
681. *Lycopersicon esculentum* Miller synonym *Solanum lycopersicum* Linnaeus (Ramesh Bedi 674)
682. *Nicardra physaloides* Gaertn. (Ramesh Bedi 432)
683. *Nicotiana tabacum* Linnaeus (Ramesh Bedi 290)
684. *Scopolia anomila* Airy Shaw synonym *Scopolia lurida* Dunal (Ramesh Bedi 1158)
685. *Solanum hispidum* Pers. (Ramesh Bedi 543)
686. *Solanum khasianum* Clarke (Ramesh Bedi 414, 481)
687. *Solanum nigrum* Linnaeus (Ramesh Bedi 667)

89 STERCULIACEAE

688. *Sterculia urens* Roxburgh (Ramesh Bedi 456)

90 STYRACEAE

689. *Styrax* (Ramesh Bedi 264)

91 SYMPLOCACEAE

690. *Symplocos peniculata* Wallich synonym *Symlocos crataegoides* Hamilton (Ramesh Bedi 17)

92 TAMARICACEAE

691. *Myricaria bracteata* Royle (Ramesh Bedi 688, 1153)

93 THYMELAEACEAE

692. *Daphne cannabina* Wallich (Ramesh Bedi 131, 320, 1056)

94 TILIACEAE

693. *Grewia elestica* Royle (Ramesh Bedi 533)

95 URTICACEAE

694. *Boehmeria sidaefolia* Wedd. (Ramesh Bedi 476)
695. *Cudrania javanensis* Trecul (Ramesh Bedi 1152)
696. *Girardinia heterophylla* Dcne, (Ramesh Bedi 460, 984)
697. *Urtica* (Ramesh Bedi 704)

96 USNEACEAE

698. *Usnea* (Ramesh Bedi 1137)
699. *Usnea* (Ramesh Bedi 1145)
700. *Usnea longissima* (Ramesh Bedi 33)

97 VACCINIACEAE

701. *Vaccinium griffithianum* Wight (Ramesh Bedi 435)

98 VALERIANACEAE

702. *Nardostachys* (Ramesh Bedi 638)
703. *Nardostachys jatamansi* DC. (Ramesh Bedi 120, 639, 940, 993)
704. *Valeriana* (Ramesh Bedi 186)
705. *Valeriana hardwickii* Wallich (Ramesh Bedi 985)

99 VERBENACEAE

706. *Callicarpa arborea* Roxburgh (Ramesh Bedi 551)
707. *Callicarpa macrophylla* Wallich (Ramesh Bedi 540, 546)
708. *Gmelina* (Ramesh Bedi 439)

709. *Verbena officinalis* Linnaeus
(Ramesh Bedi 539)
710. *Viiex negundo* Linnaeus
(Ramesh Bedi 453)

100 VIOLACEAE

711. *Viola*
(Ramesh Bedi 1100)
712. *Viola biflora* Linnaeus
(Ramesh Bedi 110, 193)
713. *Viola diffusa* Ging.
(Ramesh Bedi 8)

714 VITACEAE

715. *Leena*
(Ramesh Bedi 454)

APPENDIX 2

Names of places, altitudes and dates of visits by Shri Ramesh Bedi, Leader, Herbal Expedition of India, Senior Research Officer, Ministry of Health, New Delhi in 1971.

| Date of departure. | Time of departure (Hours) | Place of departure. | Place of arrival | Date of arrival | Time of arrival (Hours) | Dates of halt |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 25.5.71 | 06.00 | New Delhi | Phuntsholing (915 m) | 26.5.71 | 12.00 | 27·5.71 |
| 28.5.71 | 08.00 | Phuntsholing (915 m.) | Thimphu (2,408 m) | 28.5.71 | 16.30 | 29-30.5.71 |
| 1.6.71 | 09.00 | Thimphu (2,408 m) | Dobji Dzong (2,434 m) | 1.6.71 | 22.00 | |
| 1.6.71 | 04.00 | Dobji Dzong (2,434 m) | Thimphu (2,434 m) | 1.6.71 | 18.00 | |
| 2.6.71 | 14.00 | Thimphu (2,408 m) | Paro (2,286 m) | 2.6.71 | 18.00 | |
| 3.6.71 | 08.00 | Paro (2,286 m) | Jobjee (3,779 m) | 3.6.71 | 17.30 | |
| 4.6.71 | 24.30 | Jobjee (3,779 m) | Ha (2, 797 m) | 4.6.71 | 16.30 | 5.6.71 |
| 6.6.71 | 09.00 | Ha (2,797 m) | Tale La (3,720 m) | 6 6.71 | 12.30 | |
| 7.6.71 | 08.00 | Tale La (3,720 m) | Yakuna (4,224 m) | 7.6.71 | 2.30 | |
| 8.6.71 | 08.00 | Yakuna (4,224 m) | Gedetan (3,962 m) | 8.6.71 | 3.00 | |
| 9.6.71 | 08.30 | Gedeten (3,962 m) | Lolithang (3,720 m) | 9.6.71 | 13.00 | 10-12.6.71 |
| 13.6.71 | 08.30 | Lolithang (3,720 m) | Damthang (2,928 m) | 13.6.71 | 14.30 | |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 14.6.71 | 01.30 | Damthang (2,928 m) | Ha (2,797 m) | 14.6.71 | 17.30 |
| 21.6.71 | 08.00 | Ha (2,797 m) | La Tale (2,610 m) | 21.6.71 | 16.00 |
| 22.6.71 | 07.00 | Dorusha (2,610 m) | Sele La (3,962 m) | 22,6.71 | 11.00 |
| 24.6.71 | 08.00 | Sele La (3,962 m) | Jamkhana | 24.6.71 | 17.30 |
| 25.6.71 | 09.00 | Jamkana (3,353 m) | Ha (2,797 m) | 25.6.71 | 13 30 |
| 27.6.71 | 07.30 | Ha (2,797 m) | Kale La (4,022 m) & back to Ha (2,797 m) | 27.6.71 | 18.30 |
| 29.6.71 | 08.30 | Ha (2,797 m) | Khedipang (3,048 m) | 29.6.71 | 15.30 |
| 30.6.71 | 07.30 | Khedipang | Sage La | 30.6.71 | 17.30 |
| 3.7.71 | 08.00 | Ha | (3,597 m) & back to Ha (2,797 m) | | |
| | | (2,797 m) | Paro (2,86 m) | 3.7.71 | 19.30 |
| 4.7.71 | 10.00 | Paro (2,286 m) | Thimphu (2,408 m) | 4.7.71 | 14.00 |
| 10.7.71 | 07.00 | Thimphu (2,408 m) | Phuntsholing (915 m) | 10.7.71 | 16.00 |
| 12.7.71 | 07.00 | Phuntsholing (915 m) | Siliguri | 12.7.71 | 12.00 |
| 12.7.71 | 24.30 | Siliguri | Bagadogra | 12.7.71 | 13.30 |
| 2.7.71 | 13.45 | Bagadogra | Dumdum | 12.7.71 | 14.45 |
| 20.7.71 | 13.30 | Dumdum | Gauhati | 20.7.71 | 15.30 |
| 20.7.71 | 18.00 | Gauhati | Shillong (1,495 m) | 20.7.71 | 21.00 |
| 25.7.71 | 07.00 | Shillong (1,495 m) | Gauhati | 25.7.71 | 13.00 |
| 25.7.71 | 22.00 | Gauhati | Hasimara | 26.7.71 | 09.00 |
| 27.7.71 | 08.00 | Hasimara | Timphu | 27.7.71 | 18.00 |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 18.8.71 | 08.00 | Timpu (2,408 m) | Paro (2,286 m) | 18.8.71 | | 18.8.71 |
| 19.8.71 | 08.00 | Paro (2,086 m) | Drukgycl-Dzong (2,640 m) | | | |
| | | | Samakha (2,755 m) | 19.8.71 | 10.70 | 19.8.78 |
| 20.8.71 | 08.00 | Samakha (2,755 m) | Gonichawa (2,755 m) | 20.8.71 | | |
| | | | Shanosam (2,798 m) | 20.8.71 | 17.00 | 20.8.71 |
| 21.8.71 | 08.00 | Shanosam (2,798 m) | Chekha (3,752 m) | 21.8.71 | 17.00 | 21.8.71 to 24.8.71 |
| | | | Geyche rest-house (3,895 m) | 22 8.71 | | |
| | | | Somana (4,371 m) | 22.8.71 | 24.30 | |
| 25.8.71 | 07.00 | Chekhae (3,752 m) | Shanosam (2,798 m) | 25.8.71 | 11.00 | |
| | | | Samakha (2,755 m) | 25.8.71 | 16.00 | 25.8.71 |
| 26.8.71 | 07.00 | Samakha (2,755 m) | Drukgyel-Dzong (2,640 m) | | | |
| | | | Paro (2,286 m) | 26.8.71 | 16.00 | 26.8.71 |
| 27.8.71 | 10.00 | Paro (2,286 m) | Thimphu (2,408 m) | 27.8.71 | 13.00 | 27.8.71 to 2.9.71 |
| 3.9 71 | 12.00 | Thimphu (2,408 m) | Phuntsholing (915 m) | 3.9.71 | 20.00 | 3.9.71 |
| 4.9.71 | 08.71 | Phuntsholing (915 m) | Bagdogra New Delhi | 5.9.71 | 13.00 | 5.9.71 to 12.9.71 |
| 13.9.71 | 09.00 | Delhi | Hasimara | 15.9.71 | 04.00 | 15.9.71 to 20.9.71 |
| | | | Phuntsholing (915 m) | 15.9.71 | 05.00 | |
| | | | Thimphu (2,408 m) | 15.9.71 | 17.00 | |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 20.9.71 | 10.00 | Thimphu (2,408 m) | Paro (2,286 m) | 20.9.71 | 16.00 | 20.9.71 |
| 21.9.71 | 12.00 | Paro (2,285 m) | Drukgyel Bzong (2,620 m) | 20.9.71 | 14.00 | |
| | | | Samakha (3,755 m) | 22.9.71 | 21.30 | 21.9.71 |
| 22.9.71 | 08.00 | Samakha (2,755 m) | Chekha (3,752 m) | 22.9.71 | 18.00 | 22.9.71 |
| 23.9 71 | 09.00 | Chekha (3,752 m) | Somana (4,377 m) | 23.9.71 | 16.00 | 23.9.71 |
| 25.9.71 | 08.00 | Somana (4,371 m) | Chung La (4,450 m) | 25.9.71 | | |
| | | Sooee (4,080 m) | Sooee (4,080 m) | 25.9.71 | 27.00 | 25.9.71 |
| 26.9.71 | 09.00 | Sooee (4,080 m) | Shinkarap (2,865 m) | 26.9.71 | 16.00 | 26.9.71 |
| 27.9.71 | 08.00 | Shinkarap (2,865 m) | Sanakha (2,755 m) | 27.9.71 | 13.30 | |
| | | | Drulgyel-Dzong (2,640 m) | 27.9.71 | 16.15 | |
| | | | Paro (2,286 m) | 27.9.71 | 17.15 | |
| | | | Thimphu (2,403 m) | 27.9.71 | 20.00 | 27.9.71 |
| 27.10.71 | 10.00 | Thimphu (2,408 m) | Bhukarnang (2,743 m) | 27.10.71 | 12.00 | |
| 27.10.71 | 14.00 | Bhukarnang (2,743 m) | Dotinang (2,610 m) | 27.10.71 | 16.00 | 27.10.71 |
| 28.10.71 | 08.00 | Dotinang (2,610 m) | Camping ground (2,700 m) | 28.10.71 | 15.00 | 28.10.71 |
| 29.10.71 | 08.00 | Camping ground (2,700 m) | | | | |
| 29.10.71 | 12.00 | BarishoBg (3,688 m) | Barishong (3,688 m) | 29.10.71 | 10.00 | |
| 30.10.71 | 08.15 | Jakhuthethe (3,962 m) | Jakhuthethe (3.968 m) | 29.10.71 | 24.00 | 29.10.71 |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | Shodumakhang (4,020 m) | 30.10.71 | 10.45 | |
| 30.10.71 | 11.30 | Shodumak-hang (4,020 m) | Lala ji ji (4,118 m) | 30.10.71 | 12.30 | |
| 30.10.71 | 14.30 | Laia Ji ji (4,118 m) | Jharithinto (4,118 m) | 30.10.71 | 15.00 | 30.10.71 |
| 31.10.71 | 07,30 | Jharithinto (4,118 m) | Yale La (,4450 m) | 31.10.71 | 21.00 | |
| 31.10.71 | 09.00 | Yaie La (4,450 m) | Lingshi (4,118 m) | 31.10.71 | 16.00 | 31.10.71 1.11.71 |
| 2.11.71 | 08.45 | Lingshi (4,118 m) | Gohi Viliave (3,962 m) | 2.11.71 | 11.30 | \ |
| 2.11.71 | | | Chebisa (3,932 m) | 2.11.71 | 13.30 | 2.11.71 |
| 3.11.71 | | | Langarthang | 3.11.71 | 11.00 | |
| | | | Jare La (4.118 m) | 3.11.71 | 15.30 | |
| | | | Chhayi Jathang (3,962 m) | 3.11.71 | 17.00 | 2.11.71 |
| 4.11.71 | 08.30 | Chhayi Jathang (3,960 m) | Gangsiri | 4.11.71 | 11.00 | |
| | | | Shinkarap (2,865 m) | 4.11.71 | 15.00 | |
| | | | Limthang | 4.11.71 | 16.00 | 4.11.71 |
| 5.11.71 | 09.15 | Limthang | Magamaga | 5.11.71 | 11.30 | 5.11.71 |
| | | | Laya (3,872 m) | 5.11.71 | 13.00 | 5.11.71 |
| 6.11.71 | 10.45 | Laya (3,872 m) | Takchhimak-hang | 6.11.71 | 12.00 | |
| | | | konai rest-house (3,658 m) | 6.11.71 | 16 30 | 6.11.71 |
| 7.11.71 | 09.00 | Konai rest house (3,658 m) | Nelu yak hut | 7.11.71 | | |
| | | | Chhamas | 7.11.71 | 11.00 | |
| | | | Lhagu ynk hut | 7.11.71 | 24.00 | |
| | | | Duntha | 7.11.71 | | |
| | | | Gasa (2,788 m) | | 15.00 | 7.11.71 8.11.71 |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 9 11.71 | 09 00 | Gasa (2,788 m) | Ghesa village | 9.11 71 | 11.30 | |
| | | | Kado village | 9.11.71 | 13 30 | |
| | | | Tamji (3,353 m) | 9.11.71 | | |
| | | | Tashithang | 9.11.71 | 17.30 | 9.11.71 |
| 10.11 71 | | Tashithang | Mage Mage | 9.11.71 | | |
| | | | Chhuza Donga | 9.11.71 | | |
| | | | Rimchhu village | 9.11.71 | 11.00 | |
| | | | Damasi village | 9.11.71 | 77.00 | |
| | | | Yamache | | | |
| | | | Hakuna | | | |
| | | | Punakha (1.847 m) | 9.11,71 | | |
| | | | Wangdiphu-undrang (1,219 m) | 0.11.71 | 19.00 | 11.11.71 |
| 11.11.71 | 13.30 | Wangdiphud-rang(1,219 m) | Thimphu (2.408 m) | 11.11.71 | 18.00 | 11.11.71 to 19.11.71 |
| 21.11 71 | 07.00 | Thlmphu (2,408 m) | Phunthsholing (915 m) | 21.11.71 | 16.00 | |
| | | | Hasimara | 21.11.71 | 19.30 | |
| 22 11.71 | 03.00 | Hasimara | New Delhi | 23.11.71 | 18.00 | |

# सामयिक चर्चाएँ

## आयुर्वेद पर मारक संकट

श्रीकान्त शास्त्री
श्री मृत्युञ्जय भवन, लखनऊ-१

भगवान मनु ने उन्नति के पथ पर अग्रसर होने के इच्छुक व्यक्ति को प्रतिदिन आत्म-निरीक्षण करने का परामर्श दिया है। उसे यह देखना चाहिये कि उसके किये हुए कार्यों में कितने सज्जनोचित हैं और कितने पशुतुल्य अर्थात् लोभ-मोह आदि के वशीभूत होकर किये गये हैं। मनु का बताया यह मार्ग जिस तरह व्यक्ति के लिये कल्याणकारी है उसी प्रकार समुदाय के लिए भी हितकर है। दुर्भाग्यवश वैद्यों में आत्म-निरीक्षण का अभाव रहा है। फलतः वे हठवादिता, अहंभाव, अलगाव और आत्म-विकत्थन आदि दोषों से ग्रस्त हो गये। आयुवद जगत् का नेतृत्व भी इन दोषों से मुक्त नहीं रहा। उसका दुष्परिणाम हमें पदे-पदे भोगना पड़ा और आज भी भोग रहे हैं।

**नवीन शिक्षा पद्धति का प्रारम्भ।**

सम्पूर्ण आयुर्वेद दो स्तम्भों पर टिका है, जिनमें एक है शिक्षा और दूसरा है चिकित्सा। चिकित्सा से भी अधिक महत्व है शिक्षा का। इन दोनों में से एक भी विकृत हो जाय तो आयुर्वेद धराशायी हो जायगा। आत्म-निरीक्षण के अभावं के कारण हमने शिक्षा और चिकित्सा दोनों का रूप बिगाड़ दिया है। अब से 50-60 वर्ष पूर्व के वैद्यों ने यह अनुभव किया कि डाक्टरों के बराबर समाज और सरकार में उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती है। नौकरियों में भी उन्हें हिस्सा नहीं मिलता है। डाक्टरों की तरह उनकी बात सरकार तत्परता से नहीं सुनती है। पर प्रश्न यह था कि समस्या सुलझायी कैसे जाय। इसके लिये यह आवश्यक समझा गया कि आयुर्वेद के सिर से "अन्साइंटिफिक" होने का कलंक धो दिया जाय जिसे तत्कालीन शासन ने स्वार्थवश लगा दिया था। वह केवल ऐलोपैथी को ही "साइन्टिफिक" मानती थी। फलतः सरकारी पद-प्रतिष्ठा के लोभ में पड़ कर और परिस्थिति से विवश होकर आयुर्वेदिक शिक्षा में ऐलोपैथी को समाविष्ट कर लेने का निर्णय ले लिया गया। पाठकों को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि ऐलोपैथी की वैज्ञानिकता से आकृष्ट होकर वैद्यों ने अपनी शिक्षा में उसको स्थान दिया था। अतः जब यह शिक्षा प्रारम्भ हुई थी उस समय लगभग हर शहर में एसे वैद्य और हकीम उपलब्ध थे जिनकी चिकित्सा-कुशलता का लोहा डाक्टर भी मानते थे। अपने घर के रोगियों का इलाज उनसे ही कराते थे। उन्होंने केवल अंग्रेजी शासन से आयुर्वेद पर "वैज्ञानिकता" की मोहर लगवाने के लिए ही यह "लशुन भक्षण" किया था। उन्हें आयुर्वेद को राजमान्यता प्राप्त करानी थी। ऐलोपैथी की राजमान्यता की कुछ झलक महाकवि अकबर के निम्नलिखित शेर से स्पष्ट है—

**"क्यों सिविल सर्जन का आना रोकता है हम नशीं,**
**बात "आनर" की है फिर चाहे शिफा हो या नहीं"।**

चिकित्सा कौशल में नहीं, अपितु सिविल सर्जन और हकीम की प्रतिष्ठा में अन्तर था। यह भी नहीं समझना चाहिए कि उस समय सभी वैद्य ऐलोपैथी के साथ गठ-बन्धन करने के समर्थक थे। स्वनामधन्य पं० रामप्रसाद जी वैद्यरत्न पटियाला, विद्वतरत्न श्री गोवर्धन शर्मा, छांगाणी, पीयूषपाणि त्र्यम्बकजी शास्त्री, श्री टी० सुखराम दास ओझा, आचार्य जीवराम कालिदास जी, स्वामी कृष्ण गोपाल जी आदि सैकड़ों विद्वान कभी उसके हृदय से समर्थक नहीं हुए। इसके समर्थकों में थे कविराज गणनाथ सेन सरस्वती, आचार्य यादवे जी, आ० पंचानन जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, साहित्याचार्य शालीग्राम शास्त्री, श्री धर्मदास कविराज, आचार्य सत्यनारायण जी शास्त्री, रसायनाचार्य कविराज प्रताप सिंह आदि। फिर भी इन वैद्यों ने चिकित्सा क्षेत्र में एलोपैथिक औषधों के प्रयोग को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। जो वैद्य ऐलोपैथी के समावेश के विरुद्ध थे उनका मुख इन लोगों ने यह कह कर बन्द कर

दिया कि ऐलोपैथी पढ़ कर निकलने वाले उभयज्ञ वैद्य (उर्फ आयुर्वेदिक डाक्टर) ऐलोपैथी के गढ़ में घुस कर आयुर्वेद का झण्डा फहरा देंगे। एलोपैथी के औषधों के दोष जनता को बतायेंगे, एलोपैथिक औषधों के समान गुणवाली औषध खोजेंगे, ग्रन्थियों को सुलझायेंगे, नवीन योगों का निर्माण करेंगे और आयुर्वेद को ऐलोपैथी के समान स्तर दिलाने में जी-तोड़ परिश्रम करेंगे। इत्यादि-इत्यादि।" परन्तु—"डूबा वंश कबीर का उपजे पूत कमाल"। इनसे आशाओं की पूर्ति तो दूर रही, ये वैद्यों का ही जीवित श्राद्ध करने पर जुट गये और डाक्टरों के पिछलग्गू बन गये। जहां ग्रन्थ का ही सफाया है वहां ग्रन्थि सुलझाने का क्या प्रश्न? नष्टे मूले कुतः शांखा। सुना है कि किसी सुन्दरी ने विश्वविख्यात लेखक बर्नार्डशा से यह अनुरोध किया कि हम दोनों एक ऐसी सन्तान को जन्म दें जो विद्वत्ता में तुम्हारी जैसी निकले और सौंदर्य में मेरी जैसी हो। श्री 'शा' ने उत्तर दिया कि यदि वह बुद्धि में तुम्हारी जैसी और शक्ल में मेरी जैसी हुई तब क्या होगा? श्री 'शा' की जैसी विलक्षणता वैद्यों में नहीं थी। फलतः आयुर्वेद और ऐलोपैथी के गठबन्धन से जो आयुर्वेदिक डाक्टर पैदा हुए वे वैद्यों के अज्ञान और डाक्टरों की ऐंठ-अकड़ का मूर्तिमान रूप निकले। ये अण्डा-पराठा तो उड़ाते हैं आयुर्वेद के नाम पर और दिल-दिमाग से डाक्टर हैं। एलोपैथी दवाइयों का अन्धाधुन्ध प्रयोग करने में गौरव का अनुभव करते हैं। उनके लिये आयुर्वेद की उन्नति का अर्थ है अपनी सुख-सुविधा। वेतनमान और नौकरियों में बढ़ोत्तरी। उन्हें न शास्त्र की उन्नति से मतलब है न आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार से सरोकार है और न देश की जनता के हिताहित का ध्यान है। एलोपैथी के समर्थक वैद्यों ने कायाकल्प के धोखे में आत्महत्या कर ली।

**मुरीदे दहर हुए वजअ मगरिबी कर ली;**
**नये जनम की तमन्ना में खुदकुशी कर ली।।**

वस्तुतः आयुर्वेद और ऐलोपैथी के मिश्रण का निर्णय शिक्षा-क्षेत्र में एक परीक्षण था और वह भी अंग्रेजी शासन काल में विवश होकर किया गया था। वह कोई अपरिवर्त्तनीय संकल्प नहीं था। हमने आयुर्वेद के निवास के लिए एक भवन बनाया था; वह भवन सुविधापूर्ण है या नहीं इसका निर्णय हम वैद्य ही करेंगे, वह भवन नहीं करेगा। यदि भवन हमारे अनुकूल नहीं है तो उसे खोद कर फेंक दिया जायगा और दूसरा भवन बनेगा। हमें विश्वास है कि आज यदि नवीन शिक्षा-पद्धति के जन्मदाता वैद्य जीवित होते तो उन्हें अपने किये पर घोर पश्चात्ताप होता। इस विष वृक्ष के उन्मूलन के लिये वे संघर्ष छेड़ देते और जनमत एवं राजमत को प्रभावित करने में कुछ उठा न रखते। यह समझना भ्रम होगा कि एलोपैथी की वैशाखी लगा कर ही आयुर्वेद उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है; अन्य भी श्रेष्ठतम मार्ग हैं।

एलोपैथी मिश्रित शिक्षा के जन्म के समय अंग्रेजी शासन विद्यमान था। भारतीयों के धर्मगत, शास्त्रगत और परम्परागत विश्वासों का उच्छेदन करके अंग्रेजों के देश, वेष, ज्ञान, बल और बुद्धि की श्रेष्ठता का सिक्का भारतीयों के मन पर जमा देने के लिए यत्नशील रहता था। यतः भारतीयों के मन में "स्व" मात्र के प्रति नफरत पैदा किए बिना उस शासन की जड़ मजबूत नहीं हो सकती थी। फलतः उन्होंने वैद्यों द्वारा प्रस्तावित एलोपैथी मिश्रित शिक्षा को स्वीकार कर लिया। पद, पैसा और प्रतिष्ठा के टुकड़े फेंक कर शासन ने वैद्यों का दीन-ईमान खरीद लिया। उन्होंने यह भी ताड़ लिया कि भविष्य में ऐसे वैद्य पैदा होंगे जिनके मन पर एलोपैथी की श्रेष्ठता की छाप होगी। आज जिन एलोपैथिक दवाओं का प्रयोग डाक्टरों तक ही सीमित है भविष्य में उनका प्रयोग करने के लिए वैद्यों की सेना उन्हें एजेन्ट रूप में मिल जायगी। राजमान्यता के लालच में शिक्षा के भीतर ऐलोपैथी का भार क्रमशः बढ़ता चला जायेगा।

वस्तुतः जिस आयुर्वेद को अंग्रेजी शासन विरोधी बन कर नष्ट नहीं कर सकता था उसको गले लगाकर उसने नष्ट कर दिया। यह देखते हुए कि सैकड़ों वर्षों से आयुर्वेद को "जीवन रस" जनता से प्राप्त होता आ रहा है, राजा-रईस उसके पोषक हैं, वह स्वतंत्र रहकर भी जीवित रह सकता और रहता आया है। फिर भी वैद्यों ने आयुर्वेद की गर्दन सरकारी चक्र के नीचे रख दी। भयंकर राजनीतिक भंवर के बीच फंस गये।

**उस पुरानी भूल का निम्नलिखित नतीजा, आज सामने है :**

(1) गाँव गाँव में पाये जाने वाले वैद्य और हकीम

समाप्त हो गये।

(2) कसबा, तहसील और जिला स्तर पर होने वाले सभा-सम्मेलन बन्द हो गये।

(3) जनता को आयुर्विज्ञान की ओर आकृष्ट करने वाले प्रयास अवरुद्ध हो गये।

(4) आयुर्वेद "जीवन विज्ञान" न रहकर सरकारी डिस्पेन्सरियों की एक चिकित्सा-पद्धति मात्र रह गया।

(5) शिक्षा का स्तर ऊंचा उठाने के नाम पर विद्यापीठ और सम्मेलन की परीक्षायें बन्द करा दी गयीं।

(6) जनता के सहयोग से अपने पैरों पर खड़े हुए आयुर्वेद विद्यालयों में ताले डलवा दिये गये।

(7) स्टैन्डर्डाइजेशन के नाम पर आयुर्वेदिक औषध निर्माण की काटेज इन्डस्ट्री बन्द करा दी गयी।

(8) ग्रामों में बसने वाले वैद्यों को समाप्त कर ग्रामीण जनता से सहायकों को छीन लिया गया।

(9) आयुर्वेद की जनप्रियता और सुलभता नष्ट कर दी गयी।

(10) घर-घर और जन-जन में फैले हुए आयुर्वेद-ज्ञान के स्रोत को सुखा दिया गया।

यह पूरा दुष्काण्ड रचा गया आयुर्वेदोन्नति के नाम पर। इस षड्यंत्र के रचयिता बने आयुर्वेदिक डाक्टर और उनके गुरु एलोपैथ। सरकार ने मोहर लगाकर षड्यंत्र को पुख्ता बना दिया। सर्वं नष्टं दरिद्रस्य।

आयुर्वेद और ऐलोपैथी के गठबंधन का सबसे अहितकारी परिणाम देश के नेताओं और कर्णधारों पर पड़ा। उनके मस्तिष्क में यह धारणा घर कर गयी कि आयुर्वेद अपूर्ण है और ऐलोपैथी उसकी पूरक है, श्रेष्ठ है। वे इन दोनों पद्धतियों के अन्तर्विरोध को क्या समझें। परिशेषात् यह मान बैठे कि जो वैद्य जितनी अधिक एलोपैथी जानता है वह उतना ही बड़ा वैद्य है। यह बात वैसी ही हुई जैसे किसी को गीता के ज्ञान की वृद्धि के के लिये बाइबिल पढ़ा दी जाय और उसके बाइबिल के ज्ञान को ही गीता के पांडित्य की कसौटी मान लिया जाय। इस भ्रांत धारणा के फलस्वरूप यह सरकार भी, विदेशी शासन के ही पद-चिन्हों पर च । आयुर्वेद जगत में भरे हुए प्रशासन के हिमायतियों ने सरकार को सही परिस्थिति समझाने के बजाय शिक्षा में ऐलोपैथी का भार बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। क्रमशः आयुर्वेदिक डाक्टरों का आयुर्वेदिक ज्ञान गिरता गया। इधर 7-8 वर्षों से तो शिक्षा बिल्कुल चौपट हो गयी है। हमारा यह अनुभव है कि आयुर्वेदिक डाक्टर अब केवल सरकारी औषधालयों के रिक्त स्थानों को शोभित करने का काम करते हैं और उसके ही लिये लालायित रहते हैं। देश, जनता और शास्त्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भूल गये हैं।

निःसंदेह सरकार की कृपादृष्टि होने से पूर्व वैद्य समाज के हाथ में रोटी का सूखा टुकड़ा था, बदन पर फटे कपड़े थे, पर वह जीवित था। आज दूध मलाई खाने का आदेश देकर उनके हाथ का सूखा टुकड़ा छीन लिया गया है, रेशमी कपड़े पहनने की आज्ञा देकर बदन के कपड़ें उतरवाकर उसे नंगा कर दिया गया है। उसकी जीवनी शक्ति क्षीणतम हो चुकी है, मृत्यु सन्निकट है। ऐसी स्थिति में हमारा आग्रह है कि सरकार आयुर्वेदिक कालेजों में आयुर्वेद की ही शिक्षा चलाये और आयुर्वेद के नाम पर दी गयी राशि उस पर ही व्यय हो; इसकी व्यवस्था करे। जो आयुर्वेदिक डाक्टर आयुर्वेद के कालेजों में और निदेशालय में हैं उन्हें ऐलोपैथिक संस्थाओं में विलीन कर दे। आयुर्वेद का हित इनसे कहां तक हो सकता यह सबने देख लिया।

"बस हो चुकी नमाज
मुसल्ला उठाइये"

यदि आयुर्वेद में कुछ वैशिष्ट्य होगा, लोकोपकारिता होगी और संसार को उसकी आवश्यकता होगी तो वह जीवित रहेगा, अन्यथा मर जायगा। उस दशा में दो-दो पैथियाँ चलाने का खर्चा और सरदर्द सरकार को नहीं उठाना पड़ेगा। अयोग्यता और अनावश्यकता से लांछित होकर डाक्टरों के हाथों मारे जाने की अपेक्षा उसका अपनी मौत मर जाना कहीं अच्छा है। दोनों मूल्यों में 'अन्तरम् महदन्तरम्' है। निश्चय ही परिस्थिति के आकलन में अंग्रेज जीत गये और वैद्य हार गये।

वैद्यों को यह समझ लेना चाहिए कि यदि माननीय शिव शर्मा जी के प्रयास से 2-4 यूरोपियन देशों में आयुर्वेद की चर्चा होने लगी अथवा विश्व स्वास्थ्य संघटन ने उसका नाम ले लिया तो इससे आयुर्वेद का समुद्धार नहीं हो जायगा। यदि कुछ डाक्टर च्यवनप्राश और मकरध्वज अपने रोगियों को बढ़ाने लगें तो इससे आयुर्वेद की गौरव-

वृद्धि नहीं हो जायगी । उसकी जड़ तो भारत में है । यहां दृढ़ और सबल बनाने से ही उसकी जीवन - रक्षा हो सकेगी । जब हर ग्राम में वैद्य उपलब्ध हो, जब वहां के अपठित स्त्री-पुरुष भी ग्रामीण वनस्पतियों का घरेलू उपयोग जानने लगें तथा गांव-गांव में सिद्धौषधें प्राप्त हों तो इसे आयुर्वेदोन्नति की प्रथम सीढ़ी समझना चाहिये । यह कार्य एलौपैथिक डाक्टरों के पुछल्लों से नहीं होगा। निःसन्देह वे बड़े चतुर कृतवद्य और दर्शनीय लोग हैं परंतु

**"यस्मिनकुले समुत्पन्नाः, गजस्तत्र न हन्यते"**

वैद्यों से हमारा निवेदन है कि समर्थ है, वे अपनी हारी हुई बाजी को अब भी जीत सकते हैं। आवश्यकता है केवल पच्चीस वैद्यों की जो अपने जीवन के तीन वर्ष आयुर्वेद की प्राण रक्षा के लिये दान करने को तत्पर हों। इन्हें जनता के अपने पक्ष का औचित्य समझा कर उसे अपने समर्थन में तैयार करना पड़ेगा । जनमत को पक्षधर बना लेने पर राजमत स्वतः परिवर्तित हो जायगा । राजद्वार पर माथा रगड़ने के बजाय जनता - जनार्दन की तपस्या करिये । इसमें निष्फलता नहीं मिलेगी । **"तपो हि दुरतिक्रम:"**

उठिये, आगे आइये और संघर्ष कीजिए :—

**"क्लैव्यं मास्मगमः पार्थ**
**नैतत् त्वयि उपयुज्यते"**

# शिशु स्वास्थ्य

## पांच वर्ष तक के बच्चों का आहार

सरस्वती—अनुराधा

[बाल पोषण ज्ञान के अभाव में बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास पूर्णतया नहीं हो पाता। दोनों बहनों ने वैज्ञानिक आधार पर इसकी जानकारी देने का प्रयास किया है। सं]

एक वर्ष से पांच वर्ष की उम्र तक की अवधि को पोषणज्ञान की शब्दावली में 'स्कूल जाने व शिक्षा पूर्व की अवस्था' कहा जाता है, जो बच्चे के विकास के लिए कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। क्योंकि तभी शिशु का सम्पर्क मां-बाप और घर के अलावा बाहरी दुनियां से जुड़ना आरम्भ होता है। शिशु सहज जिज्ञासा और कौतूहल उसे बहुत कुछ सीखने और ग्रहण करने को प्रवृत्त करते हैं। इस अवस्था में उसके भोले मानस और कोरे दिमाग पर जो छापें पड़ती हैं, वे काफी गहरी होती हैं। गीली मिट्टी जैसे उसके मानस को मां-बाप कुशलता से इच्छित रूप दे सकते हैं। यह तथ्य बच्चों की मानसिकता पर ही नहीं, बल्कि जीवन के हर पहलू, विशेषकर भोजन और स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों पर भी लागू होता है। इसलिए इस आयु वर्ग के बच्चों के मां-बाप को काफी सतर्क रहना चाहिए ताकि बच्चों की भोजन संबंधी आदतें सही रूप लें। क्योंकि ये आदतें ही सही अर्थों में भविष्य में उनके स्वास्थ्य और पोषण स्तर की नींव बनती हैं। हम वयस्क व्यक्ति चाहते हुए भी अपनी भोजन की त्रुटियों को सुधार नहीं पाते। इसलिए अच्छा तो यही होगा कि पहले से ही अपने बच्चों में दोषरहित भोजन की आदतें डालें ताकि वे पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर सभी खाद्य पदार्थों से लाभ उठा सकें। इसके लिए यह आयु उचित समय है।

इस आयु में बच्चे के शरीर में तेजी से न सही, क्रम में समान रूप से विकास होने लगता है। बच्चे की दुनियां और हरकतों का क्षेत्र पलंग व झूले की सीमा को लांघ कर बाहर विस्तृत हो जाता है। शिशु सुलभ चंचलता के कारण उसकी शारीरिक क्रियायें और कार्य-कलाप भी बढ़ जाते हैं। इसलिए शरीर को कैलरी, प्रोटीन आदि पोषक तत्वों की आवश्यकता अधिक हो जाती है। लेकिन दूसरी ओर उनके जीवन में कुछ ऐसी परिस्थितियां भी जन्म लेती हैं जो बच्चे को अच्छा आहार और आवश्यक पोषक तत्व मिलने के रास्ते में बाधक बन सकती है। प्रायः दो वर्ष का होते-होते बच्चे को मां के दूध से छुड़ाकर ठोस खाद्य पदार्थों से परिचय कराया जाता है। इन नये खाद्यों के प्रति उसके मन में जिज्ञासा और कौतूहल के अलावा 'शंका' की भावना भी कहीं छिपकर रहती है। क्योंकि उसका मानस मां की गोद और स्तनपान से अलग हो जाने के अनुभव से पूरा अभ्यस्त नहीं हो पाता। इसी असुरक्षा और वंचित हो जाने की भावना के कारण वे 'खाद्यों के प्रति विचित्र धारणायें बनाने लगते हैं छोटा-सा छोटा बहाना मिलने पर 'इनकार' करने की प्रवृत्ति पनपने लगती है। इसी-लिए इस आयु वर्ग के बच्चे खाने-पीने में बहुत सनकी और हठी होते हैं। इन सभी परिस्थितियों के कारण अक्सर बच्चों को उचित आहार नहीं मिल पाता और और वे अल्पपोषण व संक्रामक रोगों के शिकार हो जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि स्कूल जाने के पूर्व की आयु में उन्हें मिलने वाला आहार और पाली गयी आदतें उसके वर्तमान पर ही नहीं, भविष्य को भी प्रभावित करती है। इसलिए इस आयु वर्ग के बच्चों को खान-पान के

विषय पर मां-बाप को काफी ध्यान देना चाहिए। आहार योजना बनाने के पहले यह देखें कि इस उम्र में बच्चों के लिए विभिन्न पोषक तत्वों का महत्व क्या होता है और उनके लिये भोजन में क्या-क्या खाद्य पदार्थों को शामिल करना चाहिए।

**कैलरी:**

इस उम्र के बच्चे बहुत सक्रिय हो जाते हैं। उनका चंचल और नटखट मन शरीर को एक मिनट भी चुप रहने नहीं देता। उनके खेल-कूद, दौड़-धूप आदि के कारण शक्ति, अर्थात् कैलरी की आवश्यकता भी बढ़ जाती है (लगभग 1200-1500 कैलरी प्रतिदिन)। इसलिए चावल, गेहूं, अनाज, कन्द, घी जैसे अधिक कैलरी देने वाले कार्बोहाइड्रेट व वसायुक्त खाद्य पदार्थों को उनके भोजन में शामिल करना चाहिए भोजन में ऐसे पदार्थ न होने पर शरीर के विकास में भी बाधा पड़ती है। क्योंकि कार्बोहाइड्रेट या वसा युक्त पदार्थों के अभाव में आवश्यक कैलरी प्राप्त करने के लिए शरीर प्रोटीन का उपयोग कर लेता है। वैसे ही भोजन में प्रोटीन कम रहता है और वह भी कैलरी के लिए खर्च हो जाने से कोशा निर्माण के लिए प्रोटीन की कमी पड़ जाती है। इसलिए कैलरी के अलावा शारीरिक विकास और कोशिका संवर्धन की दृष्टि से भी कैलरी युक्त पदार्थ उचित मात्रा में मिलना चाहिए।

**प्रोटीन :**

शरीर के विकास और कोशिका निर्माण के लिए इस उम्र के बच्चों को 18-20 ग्रा. प्रोटीन प्रतिदिन मिलना चाहिये। अतः उनके भोजन में दूध, दाल, मूंगफली आदि शामिल करना चाहिए। शायद आप खर्च की बात सोच रही होंगी। लेकिन दूध, दही आदि जन्तु जन्य और वनस्पति जन्य पदार्थों को मिलाकर उपयोग करने से सस्ते में ही प्रोटीन की श्रेष्ठता बढ़ जाती है।

**खनिज पदार्थ**

दांतों को मजबूत करने और हड्डियों के सही विकास के लिए कैल्शियम का महत्व मानी हुई बात है। शुद्ध रक्त और उसके सही विकास के लिए 'लोहा' का होना एक शर्त ही है। कम मात्रा में ही सही, शरीर के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक खनिज पदार्थ दिलाने हेतु बच्चे के भोजन में हरी साग, फल, तरकारियां होना चाहिये।

**विटामिन**

रोग-प्रतिरोधक शक्ति कुछ कम रहने के कारण इस उम्र के बच्चे आसानी से कई बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। इस स्थिति से उनकी रक्षा करने के लिए उन्हें 'रक्षाकारी तत्व' विटामिन प्राप्त होना चाहिए। दूध, साग, तरकारी, नींबू जाति के फल, पीले फल तरकारियों द्वारा आवश्यक विटामिन, विशेषकर ए, बी और सी प्राप्त होते हैं।

इस विवरण से आप समझ सकती हैं कि उचित मात्रा में सभी पोषक तत्व मिलने के लिए बच्चे के भोजन में एक वर्ष की उम्र से ही अनाज, दालें, फल, साग, तरकारी, दूध आदि कई तरह के खाद्य पदार्थ शामिल करने चाहिए। शायद आपको संदेह हो रहा होगा कि साधारण गृहिणी को यह कैसे पता चलेगा कि बच्चे के लिए ये पोषक तत्व आवश्यक मात्रा में मिलने के लिए क्या-क्या खाद्य पदार्थ कितनी मात्रा में खिलाना चाहिए। भारतीय वैद्य अनुसंधान परिषद् ने यह समस्या भी सुलझा दी है। लीजिए प्रस्तुत है इस परिषद् द्वारा तैयार सूची (सारणी 1 सं) के आधार पर आप स्वयं तय कर सकती हैं कि रोज क्या-क्या व्यंजन तैयार करने चाहिए।

सारणी स० 1—स्कूल जाने से पूर्व की अवस्था में बच्चों के लिए दैनिक आहार-सूची

| खाद्य पदार्थ | 1 से 3 वर्ष तक शाकाहारी वर्ग | 4 से 5 वर्ष तक शाकाहारी वर्ग |
|---|---|---|
| | ग्राम | ग्राम |
| अनाज | 150 | 200 |
| दालें | 50 | 60 |
| हरी साग | 50 | 75 |
| कन्द/तरकारी | 30 | 50 |
| फल | 50 | 50 |
| दूध | 300 | 250 |
| वसा/तेल | 20 | 25 |
| शक्कर/गुड़ | 30 | 40 |

**कुछ सामान्य निर्देश :**

दैनिक भोजन योजना को अधिक सरल और व्यव-

हारिक बनाने के लिए पोषण आवश्यकताओं के अलावा कुछ अन्य बातों पर भी ध्यान देना चाहिए।

स्थूल रूप से यह देखना चाहिये कि बच्चे के दैनिक भोजन में अनाज, दाल, साग तरकारी, फल और दूध शामिल हों। मौसमी फल, तरकारियों को उपयोग करने से भोजन सस्ता पड़ने के अलावा स्वाद में भी वैविध्य आ जाता है। प्राय: केला, अमरूद, नारंगी जैसे कई मौसमी फल खिलाने में हिचकती हैं। लेकिन ये फल 'श्रेष्ठ' माने जाने वाले महंगे फलों (सेव, अंगूर आदि) की तुलना में कहीं अधिक पौष्टिक हैं। उपरोक्त आहार-सूची में खाद्य पदार्थों की मात्रा 'औसतन' रूप से दी गई है। सभी बच्चों की आवश्यकतायें एक जैसी नहीं होतीं। इसलिए उनके शारीरिक गठन, कार्यकलाप के अनुसार पदार्थों को कम ज्यादा कर सकती हैं। प्राय: बच्चे की 'भूख' इसका एक नाप है।

प्रकृति ने सभी पोषक तत्वों को ऐसा बांट दिया कि कोई भी खाद्य पदार्थ अपने में सम्पूर्ण नहीं होता। इसलिए किसी एक पोषक तत्व के लिए विशेष खाद्य पदार्थ पर निर्भर होना नहीं चाहिये। उदाहरण के लिये दूध को ही लें। प्रोटीन, विटामिन आदि की दृष्टि से श्रेष्ठतर होने पर भी केवल दूध पिलाने से बच्चे रक्ताल्पता के शिकार हो जाते हैं। क्योंकि रक्त उत्पादन के लिए आवश्यक लोहा उसमें बिलकुल नहीं है। कैलरी के लिए एक ही किस्म का अनाज जैसे चावल या गेहूं देने के बजाय तरह-तरह के अनाज और मोटे अनाज उपयोग करने से कार्बोहाइड्रेट के साथ उन सब में उपस्थित खनिज, विटामिन जैसे अन्य पोषक अंश भी प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए व्यंजन सूची तैयार करते समय मिश्रित पदार्थों और वैविध्यपूर्ण व्यंजनों को शामिल करना चाहिए। बच्चों का का पाचन तन्त्र बहुत कोमल होता है। इसलिए उन्हें अधिक मसालेदार, तेल में खूब तले हुए व्यंजन न देना ही उचित है। चाय, काफी के स्थान पर उनसे अधिक पौष्टिक दूध, लस्सी, छांछ, फल-रस आदि की आदत डालना स्वास्थ्यकर है। गुड़, शक्कर और मिठाइयां अधिक खाने मात्र से दांतों की बीमारियां नहीं होतीं। लेकिन यह भी एक कारण हो सकता है। क्योंकि साधारणतया बच्चे चाकलेट, मिठाइयां, टाफी आदि ज्यादा देर तक चबाते हुए उनका मजा लेना पसन्द करते हैं। और स्पष्ट है कि बाद में उन्हें न पानी पीने की इच्छा होती है- न मुंह को साफ धोने की फुर्सत। फलत: मुंह और दांतों के बीच इन पदार्थों के कण अटके रहते हैं जो किण्वित हो कर बैक्टीरिया की वृद्धि के लिए उचित वातावरण उत्पन्न करते हैं। बस, यही दांतों की बीमारियों का मुख्य कारण है। इसलिए बच्चों को टाफी आदि नहीं खिलाना चाहिए।

**अच्छी आदतें कैसे डालें ?**

जैसे कि इस लेख के प्रारम्भ में ही जोर दिया गया है, इस उम्र में बच्चों की भोजन की आदतों को सही रूप देने के लिए बड़ों को काफी सावधानी से काम लेना चाहिये। भोजन के समय बच्चे को आराम से बिठाने की व्यवस्था करनी चाहिये। जहां तक सम्भव हो सके परोसते समय व्यंजनों को आकर्षक बनाने और वातावरण को काफी आह्लादपूर्ण रखने पर बच्चे भोजन के समय का सानन्द स्वागत करते हैं। थोड़ा-थोड़ा करके व्यंजनों को परोसें। अमुक चीज या इतना खाने के लिए उन पर अधिक दबाव मत डालें।

इन सबसे बढ़कर महत्वपूर्ण विषय है भोजन के प्रति बड़ों का व्यवहार। घर के हर वयस्क व्यक्ति को याद रखना चाहिये कि अपने हर काम पर गौर करनेवाला, अभिव्यक्ति का अनुकरण करनेवाला एक 'जिज्ञासु' घर में उपस्थित हैं, अच्छे भोजन की आदतों के लिए उसका आदर्श वे ही है। इसलिये बच्चों के हित में आप अपनी पसन्द न पसन्द या पूर्वाग्रहों को उनके सामने थोड़ी देर के लिए भूल जाएं। (आरोग्य से साभार)

## सरकारी अधिसूचनाएँ

### GUJARAT AYURVED UNIVERSITY, INSTITUTE OF P. G. T. & R., JAMNAGAR

No. PGT-7/E/Hrm/79-80/2175 (114) dt. 31.3.79.

### CIRCULAR

The Gujarat Ayurved University invites Research Papers from the Principal, Teachers and Research Workers of the Ayurvedic Institutions as well as from the Postgraduate students and Practitioners of Ayurveda for the award of the Gold Medals sponsored by Hari Om Ashram Prerit Late Zandu Bhattji Smarak Ayurveda Research Trust in the following subjects :—

1. Basic prineiples मौलिक सिद्धांत
2. Drug Research औषध संशोधन
3. Clinical Research निदान चिकित्सात्मक संशोधन

The terms and conditions governing this award are as under :—

1. Gold Medals will be awarded in each subject for the papers adjudged best.
2. The number of papers to be submitted for the competitions is restricted to one only for each person. It should be sent in four copies.
3. The Research papers should be on the fundamental or applied Research.
4. The language of the paper may be Hindi, Sanskrit or English.
5. The last date for receipt of Research paper in the office of the Post-Graduate Teaching & Research is fixed 30/6/79.
6. The articles unpublished so far which have been selected for the award of Goldmedals will be published by the University without previous consent.

The paper may be sent to this University through the Heads of the Department in case of Teachers and students.

The Research paper must be accompanied with an application in the prescribed form (Copy enclosed).

Encl :—As above (D. M. Joshi)

### HEALTH DEPARTMENT

Notification

The 26th March, 1979

No. 31/1/79-4 HBI. In exercise of the powers conferred by section 6 (i) and 3 of the Punjab Ayurvedic and Unani Practitioners Act, 1963, and all other powers enabling him in this behalf, the Government of Haryana is pleased to appoint the following persons with immediate effect as members of the Board of Ayurvedic and Unani Systems of Medicines. Haryana against the vacancies caused due to death of Late Balbir Singh and Pt. Banarsi Dass Hakim :—

1. Shri Mohan Lal Prohit, Dhanwantri Marg, Patiala Chowk, Jind
2. Shri Manohar Lal Khurana, Khurana Dawakhana, Bhiwani stand, Rohtak-

Sd/—J K. Duggal
Secretary to Govt. Haryana
Health Department

No. 31/1/794HBI dated Chandigarh the

A copy is forwarded to the controller, Printing and stationary, Union Territory, Chandigarh with the request that notification

may kindly be published in the Haryana Government Gazette part I.

It is requested that 25 copies of this notification may kindly be supplied to this department for record.

Sd/—
Under Secretary Health
for Secy. to Govt. Haryana,
Health Department

No. 31/1/79/4HBI dated Chandigarh the

A copy is forwarded to the Accountant General, Haryana, Chandigarh for information.

Sd/ -
Under Secy. Health
for Secy. to Govt. Haryana,
Health Department.

No. 31/1/79/4HBI dt. Chandigarh the 27.3.79

A copy is forwarded for information to the following :—

1. Chairman Board of Ayurvedic and Unani System of Medicines, Kothi No. 1113, Sector 7, Urban Estate, Panchkula
2. Shri Mohan Lal Prohit, Dhanwantari Marg, Patiala Chowk, Jind
3. Hakim Manohar Lal Khurana, Khurana Dawakhana, Bhiwani Stand, Rohtak.

Sd/—
Under Secretary Health
for Secy. to Govt. Haryana
Health Deptt.

## GUJARAT AYURVED UNIVERSITY INSTITUTE OF P. G .T. & R. JAMNAGAR

Application form for submission of Research Papers for award of the Prize of the HARI OM ASHRAM PRRIT LATE ZANDU BHATTJI SMARAK AYURVED RESEARCH TRUST.

1. Name of the Scholar
2. Qualifications (with years)
3. Designation
4. Institution where serving
5. Subject of Specialisation
6. Title of the Research paper submitted.
7. Please state the name of the subject under which the Reasearch paper is submitted
8. Whether published, if so the date of its first publication.
9. Name of the Magazine/Periodical journal and address where in it was published
10. Whether the paper submitted for award is written by an individual or jointly
11. Whether the paper submitted for award has won or has been submitted for any other award ? Give particulars

(Signature)

In case, it is a joint publication/Research paper written jointly, information for coloumn 1 to 4 be given for each of the Co-writers. Separate sheet should be used where space is insufficient.

Full Address :

Date




## अ० भा० आयुर्वेद पत्रकार संघ का अष्टम अधिवेशन सम्पन्न

अ० भा० आयुर्वेद पत्रकार संघ का अष्टम अधिवेशन उ० प्र० आयुर्वेद सम्मेलन के अध्यक्ष वैद्य चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी की अध्यक्षता में दिनांक 9 अप्रैल को प्रात: काल 9 बजे भारती विद्यापीठ, खेतासराय जि० जौनपुर में सम्पन्न हुआ। अधिवेशन का उद्घाटन अ० भा० आयुर्वेद कांग्रेस के भूतपूर्व महामंत्री वैद्य चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी कानपुर ने किया। वैद्य रामकृष्ण उपाध्याय एम० एल० ए० जौनपुर ने आयुर्वेदीय पत्रकारों का स्वागत करते हुए आयुर्वेद की ज्वलन्त समस्याओं पर प्रकाश डाला। संघ के मंत्री कविराज वेदप्रकाश गुप्त वैद्य ने वार्षिक रिपोर्ट पढ़ कर सुनाई। वैद्य ताराशंकर मिश्र, वाराणसी, महावीर प्रसाद पाण्डेय, सुल्तानपुर, अयोध्या प्रसाद अचल गया (बिहार), सरनाम सिंह वैद्य के भाषणोपरांन्त श्री सुरेन्द्रनाथ दीक्षित ने पत्रकार संघ की गतिविधि पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात् संघ की संचालक समिति के पदाधिकारी एवं सदस्यों का चुनाव हुआ।

सभापति—सुरेन्द्रनाथ दीक्षित वैद्य लखनऊ, वरिष्ठ उपसभापति-ताराशंकर मिश्र, वाराणसी, उपसभापति—श्रीकान्त शास्त्री पटना, प्रधानमंत्री,कविराज वेदप्रकाश गुप्त देहली, मंत्री—गोपालजी द्विवेदी वाराणसी, प्रचार मंत्री—श्री श्रीनिवास शर्मा, गोरखपुर, ब्रह्मानन्द त्रिपाठी अजमेर, कोषाध्यक्ष—वैद्य बदलूराम रसिक लखनऊ, आय-व्यय-निरीक्षक—त्रिलोकीनाथ शास्त्री, बुलन्दशहर चुने गये।

(1) संघ ने अपने अधिवेशन में प्रथम प्रस्ताव द्वारा मांग की कि भारत सरकार इंडियन मेडिसिन सेन्ट्रल कौंसिल एक्ट 1970 में संशोधन कर विभिन्न प्रान्तों के राज्य आयुर्वेद चिकित्सा बोर्डों द्वारा अनुभव के आधार पर रजिस्टर्ड एवं सूचीबद्ध चिकित्सकों को केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद द्वारा रजिस्टर्ड किये जाने की व्यवस्था की जाय।

(2) दूसरे प्रस्ताव में मांग की गई कि इंडियन मेडिसिन सेन्ट्रल कौंसिल एक्ट सन् 70 की धारा 5 को निरस्त कर प्रदेशों के समस्त रजिस्टर्ड वैद्यों के केन्द्रीय इंडियन मेडिसिन कौन्सिल एक्ट के चुनाव में सदस्यता हेतु खड़े होने का अधिकार प्रदान किया जाय।

(3) तीसरे प्रस्ताव में उ० प्र० शासन से मांग की गई कि केन्द्रीय इण्डियन मेडिसिन कौंसिल एक्ट शिड्यूल में उल्लिखित विभिन्न उपाधिधारियों के उ० प्र० के राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालयोंमें नियुक्ति का पत्र माना जाये और इस हेतु यू० पी० इण्डियन मेडिसिन एक्ट 1939 की धारा 40 में तुरन्त परिवर्तन किया जाय।

(4) चौथे प्रस्ताव द्वारा निश्चय किया गया कि आर्यावर्त समाचार सेवा को तत्काल बन्द कर दिया जाय और उसके स्थान पर आयुर्वेद समाचार सेवा को पुनः चलाया जाय।

(5) पाँचवें प्रस्ताव में प्रांतीय सरकारों से मांग की गई कि प्रत्येक जिले में जिला आयुर्वेदिक अस्पताल तथा जिला आयुर्वेदाधिकारियों की नियुक्ति की जाय।

(6) छठे प्रस्ताव द्वारा प्रांतीय तथा केन्द्रीय सरकार से मांग की गई कि आयुर्वेद की समस्त पत्र-पत्रिकाओं की भांति छोटे पत्रकारों को भी विज्ञापन प्रदान किये जायें।

(7) सातवें प्रस्ताव में मांग की गयी कि उ० प्र० सरकार रजिस्टर्ड वैद्यों की आवश्यकता पूर्ति के लिए प्रत्येक जिले में आयुर्वेद की काष्ठादि कच्ची शुद्ध औषधियाँ उपलब्ध कराने के लिए औषधि-केन्द्रों की स्थापना करें।

उक्त प्रस्तावों की स्वीकृति के पश्चात धन्यवाद देकर कार्यवाही की समाप्ति की गई।

### आयुर्वेद रक्षक सम्मेलन

दिनांक 9-4-79 को मध्याह्न 3 बजे से रात्रि के 10 बजे तक भारती विद्यापीठ खेतासराय, जिला जौनपुर

में आयुर्वेदाचार्य पं० पुरुषोत्तम कौशिक एम० एल० ए० देवरिया की अध्यक्षता में एक आयु० रक्षक सम्मेलन भी सम्पन्न हुआ। रक्षक सम्मेलन का उद्घाटन आचार्य बदरी विशाल त्रिपाठी कानपुर ने किया। सम्मेलन में 1- रामकृष्ण उपाध्यक्ष एम० एल० ए० जौनपुर २- चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी कानपुर, 3- श्याम सुन्दर वाजपेयी हरदोई, 4- रामचरित उपाध्याय बस्ती, 5- बनारसी दास विद्यार्थी फीरोजाबाद, 6- महावीर प्रसाद पांडेय सुल्तानपुर, 7- बदलू राम रसिक लखनऊ, 8, ताराशंकर वैद्य वाराणसी, 9- ब्रह्मदत्त द्विवेदी जौनपुर, 10- राधाकृष्ण मिश्र कानपुर, 11- शंभूनाथ शास्त्री कानपुर 12- चन्द्रभाल मौर्य लखनऊ, 13- वासुदेव मिश्र जौनपुर, 14- सुरेन्द्र नाथ दीक्षित आदि विद्वान वैद्यों के भाषण हुए।

इस सम्मेलन में 60 वर्ष से ऊपर के पधारे हुए समस्त विद्वान वैद्यों को 'चिकित्सक चूड़ामणि' तथा 'वैद्य मार्तण्ड' की उपाधियों से युक्त लगभग 150 वैद्यों को अभिनन्दन प्रमाण-पत्र भेंट किये गये।

अभिनन्दन प्रमाण-पत्र राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त भारती संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाचार्य श्री कपिल देव मिश्र के कर कमलों द्वारा वयोवृद्धों को दिलाया गया।

आयुर्वेद रक्षक सम्मेलन का आयोजन अ० भा० आयुर्वेद पत्रकार संघ देहली द्वारा किया गया था।

आयुर्वेद रक्षक सम्मेलन ने आयुर्वेद रक्षार्थ एक योजना बनाने, स्मृति-पत्र तैयार करने, पत्रकार संघ की ओर से प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों को भेजने, तदर्थ सर्वविधि प्रयास करने तथा समय-समय पर अपनी रिपोर्ट पत्रकार संघ को देने के सम्बन्ध में 1- आचार्य बदरी विशाल त्रिपाठी कानपुर, 2- आचार्य चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी कानपर, 3- कविराज वेद प्रकाश गुप्ता देहली, 4- सुरेन्द्र नाथ दीक्षित लखनऊ, 5- ताराशंकर मिश्र वाराणसी इन 5- वैद्यों की एक समिति बनाई गई जिसके संयोजक ताराशंकर वैद्य चुने गये।

## प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन, उत्तर प्रदेश का अधिवेशन

प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन उत्तर प्रदेश का वार्षिक अधिवेशन दिनांक 7 और 8 अप्रैल सन् 1979 को जौनपुर जिलान्तर्गत खेतासराय में भारती विद्यापीठ के प्रांगण में नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्री चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी की अध्यक्षता में धूमधाम से सम्पन्न हुआ। उत्सव के मुख्य अभ्यागत श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के निदेशक वैद्य श्री रामनारायण शर्मा थे। प्रदेश के कोने-कोने से आये हुए 527 प्रतिनिधियों ने सम्मेलन में भाग लिया। आयुर्वेद पताका का उत्तोलन करते हुए अध्यक्ष महोदय ने आयुर्वेद के भावी विकास के लिये वैद्यों का आह्वान किया। इस अवसर पर दुर्लभ वस्तुओं, वनस्पतियों, पुस्तकों, रत्नों एवं चित्रों, अनुकृतियों आदि की एक विशाल प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के मन्त्री श्री दयाराम अवस्थी ने वैद्यों और विद्यालयों को प्रेरित किया कि सही तथ्यों के प्रकाशित करने एवं इतिहास को सुरक्षित रखने के लिए स्थान-स्थान पर ऐसी प्रदर्शनियों का आयोजन होना चाहिये।

सम्मेलन का उद्घाटन निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के अध्यक्ष एवं उ०प्र० के भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री माननीय श्री धर्मदत्त वैद्य ने किया और उन्होंने कहा कि वर्तमान समय में आयुर्वेद के संरक्षण एवं विकास के लिए वैद्यों का सुदृढ़ संगठन होना आवश्यक है। क्योंकि जनतंत्रीय शासन व्यवस्था में संगठन ही शासन पर प्रभाव डाल सकता है।

इस अवसर पर दिनांक 7 को वैद्य सुदर्शन जी द्विवेदी की अध्यक्षता में विचार-गोष्ठी का भी आयोजन किया गया। जिसमें सर्वश्री ब्रह्मदत्त द्विवेदी, रामचन्द्र पांडेय, रमाशंकर त्रिपाठी, केदारनाथ मिश्र, ब्रजबिहारी मिश्र, महावीर प्रसाद पांडेय एवं लालचन्द्र यादव ने अपने विचार व्यक्त किये। गोष्ठी का विषय आयुर्वेद के प्रति जनाकर्षण का उपाय था। गोष्ठी का समर्थन वैद्य श्री ताराशंकरजी मिश्र ने किया।

इस अवसर पर रोग निरीक्षण शिविर का आयोजन वैद्य श्री बदलूराम रसिक के नेतृत्व में किया गया। आयुर्वेद सम्मेलन की स्थायी समिति एव कार्यकारिणी की बैठक भी हुई।

अपराह्न 3 बजे सम्मेलन का खुला अधिवेशन श्री गोपाल जी द्विवेदी एवं श्री श्रीनिवास शर्मा के धन्वन्तरि

वन्दना से प्रारम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष श्री सुदर्शन दुबे ने स्वागत करते हुए प्रदेश में आयुर्वेद की परिस्थितियों का विशद विवेचन करते हुए उचित सुझाव दिया। इस अवसर पर वैद्य श्री रामनारायण जी शर्मा का अभिनन्दन किया गया। अभिनन्दन-पत्र के साथ उत्तरीय एवं नारियल उन्हें समर्पित किया गया। उन्होंने भारती विद्यापीठ को 15 हजार रुपये की सहायता दी। विभिन्न प्रस्तावों द्वारा आयुर्वेद विश्वविद्यालय, अनुदान आयोग, एवं योजना आयोग में आयुर्वेद की मान्यता और औषधि निगम की स्थापना के लिए माँग की गई। रात्रि में वैद्य श्री बदलूराम रसिक की अध्यक्षता में एक सफल कवि सम्मेलन हुआ जिसमें वैद्य ब्रजविहारी मिश्र, ताराशंकर वैद्य, गोपाल जी द्विवेदी, श्री श्रीनिवास शर्मा, महावीर प्रसाद पांडेय आदि कवियों ने भाग लिया।

दिनांक 8 अप्रैल को प्रातःकाल श्री विश्वनाथ द्विवेदी की अध्यक्षता में एक विचार गोष्ठी हुई। अपराह्न में 3 बजे पुनः खुला अधिवेशन हुआ, जिसमें 70 वर्ष से ऊपर के आयुर्वेद के विशिष्ट विद्वान एवं चिकित्सकों में श्री विश्वनाथ द्विवेदी वाराणसी, श्री श्रीपति शर्मा गोरखपुर एवं श्री बालकृष्ण शास्त्री कानपुर को प्रशस्ति-पत्र समर्पित किया गया। सम्मेलन में पारित प्रस्ताव द्वारा प्राप्त अधिकार से अध्यक्ष श्री चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी ने अगामी कार्य-काल के लिए श्री वासुदेव मिश्र वैद्य को उपाध्यक्ष, श्री ताराशंकर वैद्य को मंत्री एवं वैद्य बदलूराम रसिक को कोषाध्यक्ष पद पर मनोनीत किया। शेष पदों पर मनोनयन की घोषणा शीघ्र ही की जायगी। वैद्य वासुदेव प्रसाद मिश्र ने स्वागत समिति की ओर से उनका आभार व्यक्त किया। सम्मेलन की सफलता में श्री कपिलदेव त्रिपाठी के प्रयास का बहुत बड़ा हाथ था।

सम्मेलन में सर्वश्री रामगोपाल शास्त्री, गणेश पांडेय, जगदीश्वर दयाल अग्निहोत्री, शिवकिशोर सिंह, शिरोमणि सिंह, रामदास वैद्य, गुरु प्रसाद वैद्य एवं रामकुमार वैद्य के देहावसान पर शोक प्रकट किया गया।

## जिन्द में आयुर्वेदिक औषधालय का उद्घाटन

जीन्द : 17 मार्च, आज यहां हरियाणा की स्वास्थ्य मन्त्री डा० कमला वर्मा ने धन्वन्तरि मार्ग स्थित धर्मशाला में प्रथम शहरी राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय का उद्घाटन यहां पर भारी समुदाय की उपस्थिति में किया। इस आयुर्वेद औषधालय के खुलवाने में स्थानीय जन-कल्याण परिषद् ने अथक प्रयास किया तथा स्थान उपलब्ध करवाया। उद्घाटन के पश्चात् सार्वजनिक उद्घाटन समारोह में मंत्री महोदया का स्वागत करते हुए हरियाणा प्रांतीय आयुर्वेद सम्मेलन के महामंत्री व जन-कल्याण-परिषद के अध्यक्ष डा० मोहन लाल पुरोहित ने कहा कि जब से हरियाणा में जनता सरकार आई है तब से आप व डा० जी० एस० वर्मा सलाहकार, मुख्यमंत्री, हरियाणा आयुर्वेद के चहुंमुखी विकास हेतु कृतसंकल्प हैं।

आयुर्वेद का बजट दुगुना हुआ है, पहले केवल ५० लाख के लगभग था जो कि अब बढ़कर ११० लाख के लगभग है। आयुर्वेद के और अधिक विकास और विस्तार हेतु डा० पुरोहित ने कहा कि जिला स्तर पर २५ शय्याओं वाला इन्डोर चिकित्सालय खोले जाने चाहिये। इस अवसर पर स्थानीय विधायकों सर्वश्री मांगे राम गुप्ता तथा जिले सिंह ने सरकार के इस सराहनीय कार्य पर डा० कमला को बधाई दी। मुख्य चिकित्साधिकारी जीन्द डा० बी० एन० माथुर ने इस चिकित्सालय की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इस क्षेत्र में इस चिकित्सालय के खुलने से स्थानीय जनता को बहुत लाभ होगा। इस अवसर पर आयुर्वेद की विभागीय प्रगति पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेद-निदेशक डा० आर० दयालु ने कहा कि इस वर्ष में जितने आयुर्वेद चिकित्सालय खोले गये हैं उतने पिछले तीस सालों में भी नहीं खोले गये और विभाग इन चिकित्सालयों की दशा के सुधारने में प्रयत्नशील है।

इस अवसर पर जीन्द जिले के उपायुक्त श्री महेन्द्र सिंह राठी ने इस औषधालय के खुलने पर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि प्रथम शहरी डिस्पेंसरी जीन्द जिले में ही खुली है। यह जीन्द जिले के लिये गौरव का विषय है। आपने कहा कि जिला प्रशासन पूर्ण सहयोग देगा तथा चिकित्सालय के भावी भवन हेतु जमीन उपलब्ध कराने में जन-कल्याण परिषद् की हर सम्भव सहायता की जायेगी।

उपस्थित जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए डा० कमला वर्मा ने कहा कि हरियाणा सरकार आयुर्वेद के उत्थान हेतु हर सम्भव प्रयत्न कर रही है क्योंकि आयुर्वेद

एक पूर्ण विज्ञान है और किसी को भी इस विज्ञान के नाम पर लूट करने की छूट नहीं दी जा सकती। आपने रहस्य-उद्घाटन किया कि उन सभी कालेजों को सरकार ने बन्द करवा दिया है जो चन्दे के नाम से हजारों रुपये लेकर छात्रों को प्रवेश देते थे। उन्होंने छात्रों की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि सरकार शीघ्र ही इन्टरशीप की सुविधा देने जा रही है। आपने आयुर्वेद विभाग की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा कि २५१ वैद्य-हकीम आयुर्वेद विभाग में सेवारत हैं। इनमें से ११० के लगभग वैद्य विधिवत् अध्ययन के पश्चात् सरकार की सेवा में हैं। तथा शेष विभिन्न प्रकार की योग्यताएं रखते हैं। आयुर्वेद डिस्पेंसरियों के बारे में आपने बताया कि 18 डिस्पेन्सरियां सरकार के अपने अधीन हैं तथा सरकार शीघ्र ही अन्य डिस्पेन्सरियों का भी प्रांतीयकरण करना चाहती है। सरकारी क्षेत्र में फार्मेसी बनाने के प्रस्ताव पर सरकार विचार कर रही है।

## डा० पुरोहित हरियाणा आयुर्वेद बोर्ड के सदस्य नियुक्त

चण्डीगढ़ : 26 मार्च। हरियाणा के राज्यपाल ने प्रसिद्ध नेत्र रोग-विशेषज्ञ डा० मोहन लाल पुरोहित, जैन फ्री आई हास्पीटल, जीन्द को बोर्ड आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टम आफ मेडिसिन हरियाणा का सदस्य नियुक्त किया है। आप ह० प्रा० आ० सम्मेलन के महामंत्री भी हैं। दूसरे सदस्य रोहतक के श्री मनोहर लाल खुराना हैं।

## राजकीय आयुर्वेदिक एवम् यूनानी चिकित्सा सेवा संघ, वाराणसी

दिनांक 10-4-79 को राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सा सेवा संघ की आम बैठक क्षेत्रीय कार्यालय में श्रीमान् डा० रामकृष्ण दीक्षित क्षेत्रीय आयुर्वेद एवं यूनानी अधिकारी वाराणसी क्षेत्र की अध्यक्षता में हुई। पूरे क्षेत्र के आये हुए चिकित्सा अधिकारियों ने वर्ष 1979 हेतु क्षेत्रीय शाखा के पदाधिकारियों का चयन किया। अध्यक्षीय भाषण में अध्यक्ष महोदय द्वारा काष्ठ औषधियों द्वारा निर्मित क्वाथों का प्रयोग करने के लिए विशेष बल दिया। बाद में जलपान के बाद सभा समाप्त हो गई।

## "ग्रन्थ-विमोचन-समारोह"

चाँदसी मेडिकल हाल, गोपालगंज में 7 बजे संध्या से 9 बजे रात तक ग्रन्थ-विमोचन-समारोह सोल्लास सम्पन्न हुआ। इस समारोह की अध्यक्षता दरभंगा के प्रसिद्ध शिक्षाविद् श्री श्याम नारायण मिश्र ने की। मुख्य अतिथि थे—आचार्य गोपाल मिश्र (छपरा)। वक्ताओं ने आयुर्वेद की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त किये। विद्वानों ने एलोपैथी, होम्योपैथी की तुलना करते हुए आयुर्वेद की महत्ता प्रतिपादित की। राय प्रणीत "चाँदसी चिकित्सा का इतिहास" ग्रन्थ की विशद् समीक्षा प्रस्तुत की। इसे इन्होंने आयुर्वेद के शल्य-शास्त्र को विशिष्ट आधुनिक उपलब्धि बताया और आशा व्यक्त की कि भारत-सरकार यदि इसे शल्य-शास्त्र वाले पाठ्यक्रम में रख ले तो आयुर्वेद चिन्तन और उपलब्धि को नयी दिशा मिलेगी।

## क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी को श्रद्धाञ्जलि

सहारनपुर के कार्यालय में आज कार्यवाहक क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी श्री बासुदेवाचार्य जी की उपस्थिति में क्षेत्र के समस्त चिकित्साधिकारियों ने भूतपूर्व क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी सहारनपुर श्री मुहम्द अब्दुल लतीफ खाँ के दिनांक 16-3-79 में हृदयावसाद के आकस्मिक निधन पर गहरा शोक प्रकट किया और दो मिनट का मौन रख कर सर्वशक्तिमान परमात्मा से उनकी दिवंगत आत्मा को सद्गति व शान्ति प्रदान करें की प्रार्थना की और उनकी बेगम तथा बच्चों को एवं सभी पारिवारिक सदस्यों को इस कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करने के लिये भी प्रभु से प्रार्थना की।

## श्री बैद्यनाथ दातव्य औषधालय, नागपुर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० ग्रेट नाग रोड, नागपुर द्वारा संचालित श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र, वाकर रोड, नागपुर में माह मार्च सन् 1979 में 7259 रोगियों की निःशुल्क

चिकित्सा की गयी जिनमें 717 रोगी नये आये। रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है।

अतिसार 15, अजीर्ण 4, अग्निमान्द्य 18, आमवात 7, अर्श 9, अम्लपित्त 14, अश्मरी 1, अन्त्रवृद्धि 2, अण्डवृद्धि 1, अर्धावभेदक 1, उदर शूल 21, उदावर्त 10, कृमि 7, कामला २, कास 54, कास ज्वर 16, कर्ण रोग 9, कष्टार्तव 1, कटिशूल 3, गृध्रसी 1, ग्रंथी 5, गुदभ्रंश 1, ज्वर 133, ज्वरातिसार 3, दौर्बल्य 46, दाह 29, दन्त 5, नेत्र 4, प्रमेह 6, पामा 62, प्रदर 13, पित्त 1, प्रतिश्याय 28, पार्श्वशूल 2, बहुमूत्र 12, बाल-रोग 1, मुखपाक 5, यकृदाल्युदर 1, रक्तपित्त 4, राजं-यक्ष्मा 6, वात ज्वर 1, वात श्लेष्मिक ज्वर 15, वात-व्याधि 23, व्रण 2, वात शूल 47, वृक्क शूल 15, सन्निपात ज्वर 3, श्वास 10, शोथ 15, शिरोरोग 4, शिरःशूल 13, सूतिका 2, शीतपित्त 3, वमन 1।

## श्री ५ की सरकार

## स्वास्थ्य मंत्रालय स्वास्थ्य सेवा विभाग

## आयुर्वेद चिकित्सालय, नरदेवी, काठमांडू (नेपाल)

2035 साल में माघ महीने में निःशुल्क सेवा प्राप्त रोगियों का विवरण :

(क) नवीन तथा पुराने रोगियों की कुल संख्या 3887

(ख) 2034 साल महीने में उपचारार्थ आए नवीन रोगी 2,227।

(1) पुरुष रोगी संख्या 1,075

(2) महिला रोगी संख्या 1,154

(3) बालक रोगी संख्या स्त्री 145+पु० 115 =260

जिसमें निम्न विभागों में निःशुल्क उपचार (सेवा) किया गया।

(1) काय चिकित्सा विभाग में उपचारित 1,408

(2) शल्य-शालाक्य विभाग में उपचारित 821

### पुनरागत रोगियों का विवरण

(ग) पुनः उपचारार्थ आए हुए रोगियों की संख्या 1,660

(1) काय चिकित्सा विभाग में उपचार प्राप्त संख्या 1,071

(2) शल्य-शालाक्य विभाग में उपचारित 567

### अन्तरंग विभाग में प्रविष्ट रोगियों का विवरण

(घ) प्रविष्ट रोगियों की कुल संख्या 50

(1) गत माह में उपचार प्राप्त रोगी-संख्या 16

(2) वर्तमान प्रविष्ट रोगी संख्या 34

(3) पूर्ण स्वास्थ्य लाभ प्राप्त रोगी संख्या 23

(4) कुछ कम हुए रोगी संख्या 6

(5) स्वेच्छा से निकले हुए बीमारों की संख्या 6

(6) चिकित्साधीनस्थ रोगी संख्या 15

(7) मृत्यु संख्या 2

सर्वाधिकारी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की ओर से श्रीकान्त शास्त्री द्वारा शिवशक्ति प्रेस, लोदीपुर, पटना ८००००१ में मुद्रित तथा उनके ही द्वारा बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-८०००० १ से प्रकाशित।

# सचित्र

# SACHITRA AYURVED

# आयुर्वेद

जून, १९७९
JUNE, 1979

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः ।
पापस्य फलं नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः ॥

अर्थात् मनुष्य पुण्य का फल—सुख तो चाहते हैं परन्तु पुण्य नहीं चाहते हैं और पाप का फल—दुःख कदापि नहीं चाहते हैं किन्तु यत्न के साथ पाप ही करते हैं। संसार में देखा जाता है कि, जिसका बीज बोया जाता है, उसी का वृक्ष होता है और उसमें उसी के फल लगते हैं। इस भांति जैसा मनुष्य शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसका फल सुख या दुःख उसे अवश्य भोगना ही पड़ता है।

—भगवान् श्री व्यासदेव

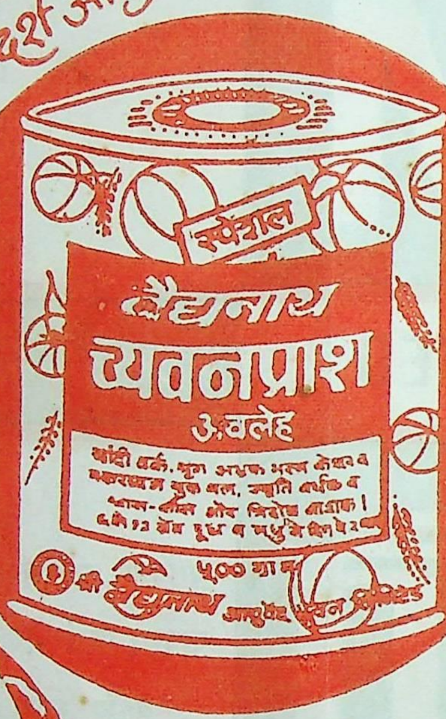

प्रकाशक




बैद्यनाथ

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१


स्पेशल
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अवलेह
५०० ग्राम


SHREE BAIDYANATH AYURVED
CALCUTTA







## स्वर्गीय पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा

गत २५ अप्रेल, ७९ को दिल्ली से इलाहाबाद जाते हुए १२ डाउन दिल्ली-हबड़ा एक्सप्रेस में हृदयगति-अवरोध के फलस्वरूप आपकी भौतिक लीला हठात् समाप्त हो गयी। आपके निधन से आयुर्वेद की ऐसी अपूरणीय क्षति हुई, जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में कठिन है। हम 'सचित्र आयुर्वेद' परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते और शोक-संतप्त परिवार के प्रति संवेदना प्रकट करते है।

—सम्पादक

'सचित्र आयुर्वेद' का अगला विशेषांक

# पुण्यश्लोक स्व० दुर्गा प्रसाद शर्मा की पुण्य-स्मृति में

## सितम्बर माह में प्रकाशित होगा

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के निदेशक मण्डल के निर्णयानुसार प्रतिष्ठान के भूतपूर्व संयुक्त प्रबन्ध-निदेशक, गोलोकवासी आयुर्वेद-चक्रवर्त्ती पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा की पुण्य स्मृति में आगामी सितम्बर माह में 'सचित्र आयुर्वेद' का एक विशेषांक प्रकाशित किया जायगा। स्व० दुर्गा बाबू द्वारा आयुर्वेदीय क्षेत्र में की गयी सेवाओं से समस्त आयुर्वेद-जगत भलीभांति परिचित है। आजीवन वे आयुर्वेद के हित-चिन्तन में लगे रहे और आयुर्वेद की कीर्त्तिध्वजा को देश-विदेश में फहराते रहे। ऐसे महाप्राण सदैव स्मरणीय होते हैं।

पुण्यश्लोक दुर्गा बाबू से सम्पर्कित तमाम लोगों से हमारा विनम्र निवेदन है कि वे स्व० दुर्गा बाबू के सम्बन्ध में लेख, संस्मरण तथा अन्य रचनाएँ आगामी २५ जुलाई '७६ तक अवश्य भेजने की कृपा करें। स्व० दुर्गा बाबू के स्नेहियों, हितैषियों, मित्रों तथा परिचितों की संख्या देश-विदेश में बहुल है। आशा है कि स्मृति-अंक के प्रकाशन में हमें उनका पूर्ण सहयोग मिलेगा।

सम्पादक
'सचित्र आयुर्वेद'
बैद्यनाथ भवन रोड,
पटना-८००००१

# सचित्र आयुर्वेद

परामर्शदाता :
आयुर्वेद-बृहस्पति
आचार्य रामरक्ष पाठक

सम्पादक :
श्रीकान्त शास्त्री, एम. ए.

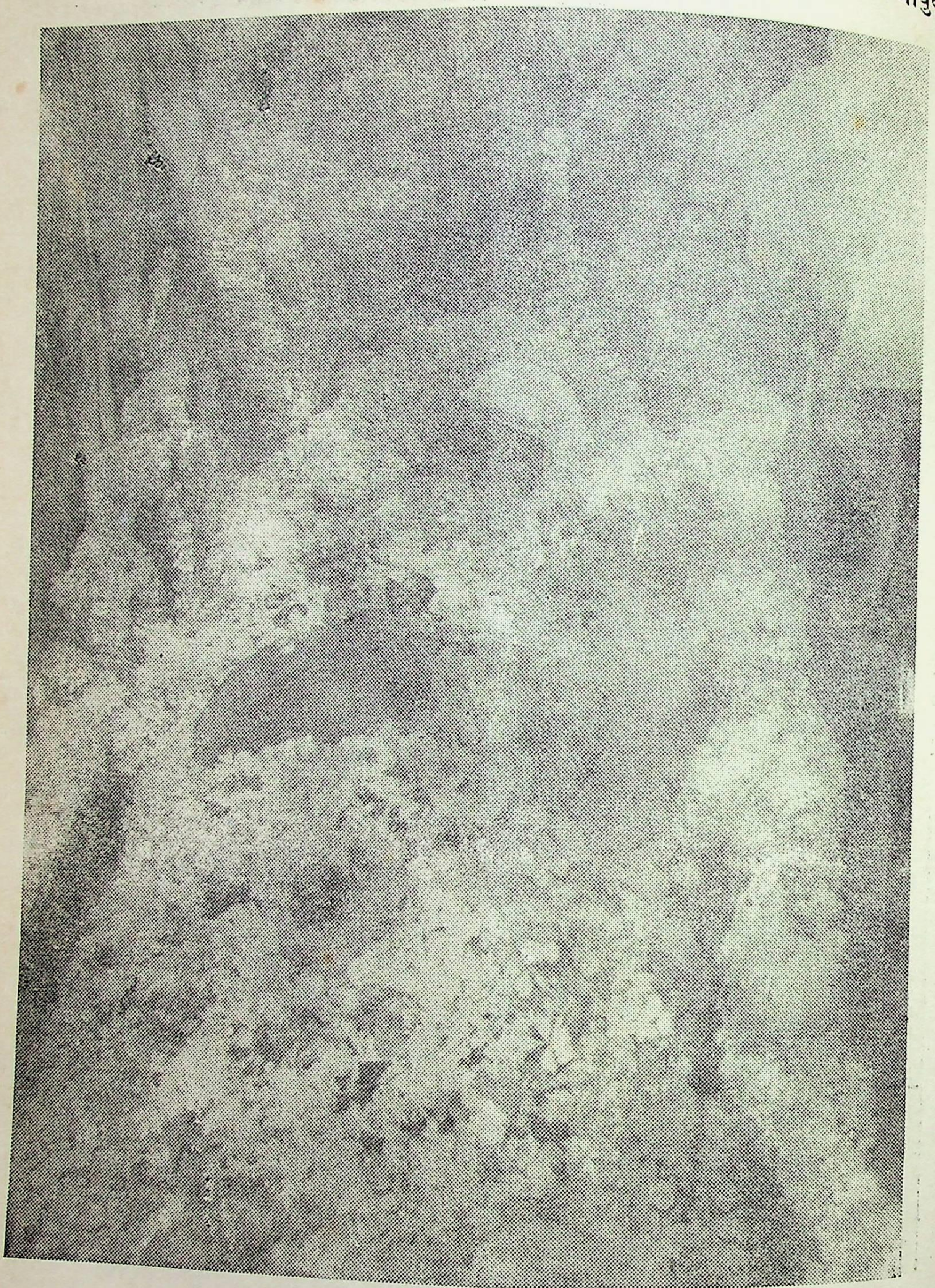
# विषय-सूची




वार्षिक मूल्य १० रु०] [एक प्रति १ रुपया



आयुर्वेद-चक्रवर्त्ती पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा चिर निद्रा में।



पुष्प मालाओं से आच्छादित स्व० दुर्गा बाबू का शव ।

Registered with the Registrar of Newspapers for India Under R. N. 2277/74

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होने वाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

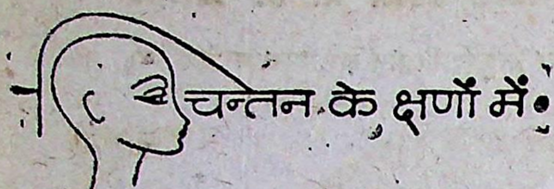
| वर्ष–३१ | पटना, जून, १९७९ | अङ्क–१२ |
|---|---|---|

# मानसिक तनाव से जीवनी शक्ति का ह्रास

उथले कारण जो भी हों, गहराई में उतरने पर एक ही प्रधान तथ्य सामने आता है कि मानसिक तनाव की अभिवृद्धि इन दिनों तेजी से हो रही है और इसी की रुग्णता की अभिवृद्धि में सबसे बड़ी भूमिका है। शरीर पर नियंत्रण करने वाली क्षमता मात्र मस्तिष्क में है। यही वह संस्थान है जिससे ऐच्छिक और अनैच्छिक सभी शारीरिक क्रिया-कलापों का सूत्र-संचालन होता है। अन्य अवयवों की दुर्बलता एवं उत्तेजना सहन हो सकती है। उसके रहते हुए भी काम चलता रहता है, पर मस्तिष्क के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। वहां तनिक-सी गड़बड़ी उत्पन्न होते ही सारा ढांचा लड़खड़ाने लगता है। नशेबाजी से उत्पन्न सामयिक विक्षिप्तता में सारा शरीर किस प्रकार लड़खड़ाने लगता है। इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। आवेशग्रस्त मनुष्यों की मुखाकृति, वाणी, विचार-पद्धति से लेकर पाचन-रक्ताभिसरण तक पर अवांछनीय प्रभाव उत्पन्न हुआ देखा जा सकता है। जब सूत्र-संचालक ही लड़खड़ाने लगा तो सारा खेल ही बिगड़ेगा। कप्तान के हड़बड़ा जाने पर सेना को बेमौत मरना पड़ता है। ड्राईवर सन्तुलन खो बैठे तो फिर गाड़ी को दुघर्टनाग्रस्त होना ही पड़ेगा। यही बात स्वास्थ्य संकट के सम्बन्ध में भी है। मानसिक तनाव का समस्त नाड़ी संस्थान पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। उस पर उत्तेजना छायी रहती है। फलतः जीवन-धारिणी शक्ति का बुरी तरह अपव्यय होता है।

अन्वेषणकर्त्ताओं ने बताया है कि गिरते हुए स्वास्थ्य और बढ़ते हुए रोग-प्रकोप के अन्य कारण उतने ही महत्वपूर्ण नहीं है; जितना कि मानसिक उद्वेग। यह अकेला ही इतना आक्रामक है कि आहार-विहार से लेकर ऋतु प्रभाव, प्रदूषण, वायरस आदि सबकी समन्वित क्षति की तुलना में अकेला विघातक सिद्ध होता है।

( स्वस्थ जीवन से साभार )




# अनारोग्यम् अनायुष्यम्

मनुष्य को ( और सब प्राणियों को भी ) उसके जन्म के पहले ही शरीर दिया जाता है। मनुष्य का शरीर हजारों मोटरों से और इंजिनों से भी सूक्ष्म और जटिल होता है। मनुष्य सौ बरस जीये, तो भी अपने शरीर को वह अच्छी तरह नहीं समझता है। तो भी कुदरत मनुष्य को उसका शरीर दे देती हैं और शरीर चलाने की कई बातें मनुष्य को सीखे बिना ही आती हैं। पशु-पक्षियों की बात तो उससे भी हैरतअंगेज होती है।

मनुष्य को सांस लेना कौन सिखाता है? खाना-पीना कौन सिखाता है? जब नर और मादा विषय-सेवन करते हैं, तब क्या उनको पता होता है कि, उसमें से बच्चे पैदा होंगे और बच्चे पैदा होने पर उनकी परवरिश भी करनी पड़ेगी?

कुदरत यानी प्रकृति माता ही माता-पिता को बच्चों के बारे में सब कुछ सिखाती है। कुदरत की ऐसी सीख को कुदरती तौर पर हम Instinct यानी सहज बुद्धि कहते हैं। यह आती कहां से है? कुदरत का यह सारा ज्ञान मनुष्य को क्रमशः मिलता है। और बाद में मनुष्य अपनी तरफ से वह बढ़ाता है। हजारों बरस के बाद भी पशु-पक्षियों ने अपने ज्ञान में कुछ वृद्धि नहीं की है। परिस्थिति प्रतिकूल हुई, तो वे हार जाते हैं, मर जाते हैं। कभी-कभी उनकी जाति ही नष्ट हो जाती है। कुदरत में कई जातियाँ नामशेष हुई हैं।

इसलिए मनुष्य को चाहिए कि कम-से-कम जीने के लिए कुदरत ने मनुष्य को जो सिखाया, उन विद्याओं का परिशीलन करके उनको बढ़ावे और बच्चों की शिक्षा में उनको प्राथमिकता और प्रधानता दे।

X X X

मनु भगवान ने कहा है कि, भूख से ज्यादा खाना सब तरह से हानिकारक है। इनका श्लोक कण्ठ करने लायक है—

अनारोग्यम् अनायुष्यम् अस्वर्ग्यम् च अतिभोजनम्।
अपुण्यम् लोकविद्विष्टम् तस्मात् तत् परिवर्जयेत्॥

पेटू बनकर अति भोजन करना आरोग्य का नाश करना है, आयुष्य को क्षीण करना है, स्वर्ग का रास्ता रोकना है। अति आहार से पुण्य भी क्षीण होता है। समाज में पेटू आदमी की प्रतिष्ठा कम होती है, लोग उसकी निन्दा करते हैं। इसलिए अति भोजन की आदत छोड़ देनी चाहिए।

मनु भगवान ने यह भी कहा है कि "न च उच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्।" जूठा मुँह लेकर कहीं भी नहीं जाना चाहिए। ऐसे अनेक नियम हैं, जिनका ज्ञान बच्चों को कराना चाहिए। आहार-विज्ञान और आरोग्य-शास्त्र हम सारी जिन्दगी सीखते ही रहते हैं। बच्चों की पढ़ाई में हर साल थोड़ा-थोड़ा करके इस विषय का अच्छा ज्ञान उनको और सारे समाज को देना चाहिए। आहार-विज्ञान और आरोग्य-विज्ञान सारे समाज को अगर अच्छी तरह सिखाया और मन पर काबू रखने की संस्कारिता समाज में फैलायी तो राष्ट्र का आरोग्य बढेगा, रोग कम होंगे और पुरुषार्थ के लिए सब क्षेत्र खुले होंगे।

आचार्य काका कालेलकर

# सम्पादकीय

## कुष्ठ-उन्मूलन सम्बन्धी प्रयास

हिन्द कुष्ठ निवारण संघ नई दिल्ली के वार्षिक अधिवेशन में बोलते हुए महामहिम राष्ट्रपति महोदय ने इस बात पर जोर डाला कि कुष्ठ रोगियों को यह धारणा मन में रखनी चाहिए कि वे ईश्वर द्वारा अभिशप्त प्राणी नहीं, बल्कि एक रोग से पीड़ित-बीमार व्यक्ति हैं। वे घृणा के पात्र नहीं, सेवा के अधिकारी हैं। मानव इतिहास में जागतिक आधार पर कुष्ठियों के प्रति घृणा एवं तिरस्कार की भावना ही समाज द्वारा अपनाई जाती रही है और उन्हें सर्वथा त्याज्य समझा जाता रहा है—यह सचाई है। जैसा कि राष्ट्रपति महोदय ने कहा कि जहाँ तक कुष्ठियों का सम्बन्ध है, उनके प्रति समाज के दृष्टिकोण में बुनियादी रूप से परिवर्त्तन होना चाहिए।

संसार का शायद ही कोई देश ऐसा हो, जहाँ कुष्ठ व्याधि से पीड़ित लोग नहीं हों। किन्तु कुष्ठियों की सर्वाधिक संख्या अफ्रीका और एशिया के देशों में (जिनमें हमारा देश भारत भी है) है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार भारत में 30-40 लाख लोग ऐसे हैं जो कुष्ठ व्याधि से पीड़ित हैं और उनमें 15% बच्चे हैं, जिनकी उम्र 14 वर्ष से भी कम है। निश्चय ही यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि इस देश में लगभग 3 लाख ऐसे बच्चे हैं जो सर्वथा निराश्रित होकर शहरों और गाँवों की गलियों में भिक्षावृत्ति से जीवनयापन कर रहे हैं। भारत की यह तस्वीर कथमपि सुखद नहीं कही जा सकती।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों के अनुसार सारे संसार में लगभग 1 करोड़ 30 लाख कुष्ठ रोगी हैं। मुश्किल से इस बड़ी संख्या के छठे भाग को ही चिकित्सा का अवसर मिल पाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की प्रकाशित रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि प्रति वर्ष सारे संसार में कुष्ठियों की संख्या में 20 लाख का इजाफा हो जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, कुष्ठियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण उदार नहीं है, आज भी उनके प्रति घृणा या नफरत की मात्रा लोगों में पूर्ववत् है—सदियों बाद भी इस दृष्टिकोण में कोई परिवर्त्तन न आ सका है—आज भी कुष्ठियों को समाज के बहिष्कार की यंत्रणा झेलनी पड़ती है, और कुष्ठ-व्याधि-पीड़ित जन भी अपने को हतभाग्य मानकर इस व्याधि को विधि का अभिशाप अथवा पूर्व जन्मकृत घोर पाप का परिणाम मानकर अपना घृणित जीवन तिल-तिल कर गलते हुए खुशी-खुशी जीते हैं—यह स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती। कुष्ठ एक विशेष चर्म रोग है और प्रारम्भिक उपचार करने पर रोग यदि सर्वथा मिट नहीं जाता तो दमित अवश्य रहता है। कुष्ठ व्याधि-उन्मूलन की दिशा में जागतिक आधार पर इधर प्रयास होने शुरू हुए हैं। सर्वप्रथम इस भ्रान्ति का निवारण आवश्यक है कि यह ईश्वरीय दण्ड है जो मनुष्य को उसके पूर्व जन्मकृत पापों के बदले भोगना ही पड़ेगा। भारत अत्यन्त प्राचीन देश है, रूढिग्रस्तता भी यहाँ परले दर्जे की है एवं पाप-पुण्य के सम्बन्ध में अत्यधिक चिन्ता करनेवाला देश है—इसलिए यहाँ भी इस धारणा के शिकार कुष्ठीजन हैं। ये लोग सड़े हुए शरीर को चिथड़ों में लपेटे, भारत के शहर या गाँव में डगमगाती चाल से भिक्षावृत्ति में संलग्न देखे जाते हैं—कइयों को तो बिना-हाथ-पैर हिलाए भिक्षाटन से जीविकोपार्जन करने का एक आधार यह कुष्ठ व्याधि दे देती है और चिकित्सा करके व्याधि को दूर करने की चिन्ता उन लोगों को जीवन भर नहीं सताती।

जहांतक कुष्ठियों की सेवा का प्रश्न है, निश्चय ही सरकार तथा समाज का इस दिशा में गंभीर दायित्व है। समाज अपने दृष्टिकोण में सुधार करे और मनुष्यता का यह जो गलितांग सामने समुपस्थित है, उनको दूर करने की दिशा में योजनाबद्ध काम करे। इस सन्दर्भ में नेहरू पुरस्कार विजेता, सुख्यात समाज सेविका मदर टेरेसा स्पृहणीय सेवा कर रही हैं। उनकी देखरेख में सम्प्रति 93 केन्द्र स्थापित हैं जिनमें 61 केन्द्र अकेले भारत में हैं जहां कुष्ठियों की सेवा एवं उपचार किया जाता है। 67 केन्द्र ऐसे हैं जिनमें 46000 कुष्ठियों का उपचार एवं उनकी देखभाल की जाती है।

सरकार, समाज-सेवी संस्थाएं तथा शिक्षित समाज सेवी जनों के संयुक्त प्रयास से आवश्यकता है इस देश में कुष्ठ उन्मूलन-विषयक एक जोरदार अभियान चलाने की जिस ओर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दिशा-निर्देश किया, है—तभी इस समस्या का सन्तोषजनक समाधान दृष्टिपथ में आ सकेगा।

# विधि-गति अति विपरीत विचित्रा

श्री जगदीश प्रसाद श्रमिक

नियति ने क्या कर दिया, वह क्या कर रही है और कब क्या कर देगी, किसी की समझ में कुछ नही आता। दुर्गा बाबू सरीखा पुण्यात्मा, रागद्वेषरहित कर्मयोगी, 'परहित निरत निरंतर निशिदिन' का व्रती, अहंकार-रहित, वैभवशाली, महान व्यक्तित्व को इतनी जल्दी नियति हमलोगों के बीच से उठा ले जायगी, इसका किसी को अनुमान भी नही था। गत २६ अप्रील की संध्या को जब उनके अकस्मात दिल्ली से इलाहाबाद आते हुए दिल्ली एक्सप्रेस के प्रथम श्रेणी डिब्बा में हृदय-गति के रुक जाने का समाचार आया तो सारा नगर शोकाकुल हो उठा। वास्तव में दुर्गा बाबू ने विधाता की ओर से एक विशिष्टता पायी थी जो विरले लोगों में होती है।

X X X

दुर्गा बाबू जिस दिन बंबई जा रहे थे, उसी दिन मैं अपनी औषधि के लिए उनके पास गया था। इधर कुछ दिनों से मैं बीमार हूं और परमश्रद्धास्पद वैद्यवर श्री पाठकजी से ही चिकित्सा करा रहा हूं। दुर्गा बाबू के पास पहुंचकर जब मैंने अपने पाकेटों की तलाशी ली तो पाया कि प्रेसक्रिप्शन वाला पुर्जा भूल से घर पर ही छोड़ आया था। दुर्गा बाबू यह जानकर हंस पड़े। सौभाग्य से उसी समय पाठकजी पहुंच गए। 'गुरु जी, आप सामने के अपने मरीज को पहचानते हैं न? आपको अपने स्वास्थ्य की कितनी चिंता है वह इसीसे मालूम हो जाता है कि आप प्रेसक्रिप्सन घर पर ही छोड़ कर दवा लेने चले आए। खैर, आप एक दूसरा नुस्खा तैयार कर दीजिए। दुर्गा बाबू ने रामरक्ष पाठक जी से कहा। दूसरा नुस्खा तैयार हो गया और मुझे दवाएं मिल गई। पर दूसरों के लिए इतनी दरियादिली से चिंता करनेवाले दुर्गाबाबू स्वयम् अपने स्वास्थ्य की तनिक भी चिंता नहीं करते थे—" परिहरि देह जनित चिंता सुख-दुख समबुद्धि सहोगों'—गोस्वामी तुलसीदास जी की इस उक्ति के परम अनुयायी की तरह। तभी तो विधाता ने बाज की तरह निर्मम हो कर हमलोगों के बीच से उन्हें झपट लिया।

यों तो जोशी जी की सभी संतानें उनके चरणचिह्नों पर चलने वाली हैं और परम उद्यमी तथा सुयोग्य भी हैं, पर दुर्गा बाबू में स्वयमस्फूर्त्त प्रेरणा और प्रवृत्ति की अद्भुत शक्ति थी। मैंने सदा उनके जीवन में प्रफुल्लता देखी, कभी भी नैराश्यजनित खिन्नता उनमें नहीं देखी, हालांकि कई बार उनके सम्मुख घोर निराशा की विषम स्थिति उपस्थित होती रहती थी। वार्ताकुशलता तो आप में ऐसी थी कि सामनेवाले दंग रह जाते थे। आपकी महान प्रतिभा, उद्यमशीलता तथा उपर्युक्त गुणों का ही यह करिश्मा था कि आप जिस संस्था में साधारण सदस्य हो कर-जाते और कुछ ही दिन बाद वहां के प्रधान पद पर आसीन हो जाते तथा सर्वसम्मत प्रधान की हैसियत रखाते। आयुर्वेद-जगत के तो आप सर्वमान्य नेता बन गए थे। आयुर्वेद को दिगदिगंत में फैलाने की आपकी अदम्य भावना के चलते ही आपने अपने स्वास्थ्य की ओर से आंखें मूंद कर सारे संसार का चक्कर लगाना शुरू कर दिया था और आपको अपने उद्देश्य में अप्रत्याशित सफलता भी मिल रही थी। लेकिन न जाने क्यों विधाता को आयुर्वेद-जगत की इस खीर की थाली में कंकड़ डाल देने की सूझी।' मैंने उनसे, एक बार पूछा— "दुर्गा बाबू, सोवियत रूस, जर्मनी और अमेरिका आदि देशों में भाषा की समस्या आपके सामने उपस्थित नहीं होती थी?' आपने झट से उत्तर दिया—"कभी नहीं, मैं पहले से ही तैयार होकर जाता था और अंग्रेजी तो सभी देशों की आम फहम भाषा है ही; जिसका मोटामोटी ज्ञान मैं रखता ही हूं।" और इसके साथ ही तुरत उन्होंने एक फाइल से रूसी और जर्मन भाषा के शब्दों और वाक्यों की टंकित प्रतिलिपि दिखलाई जिसके साथ हिंदी अनुवाद भी टंकित था। अखण्ड आत्मविश्वास सबसे बड़ी पूंजी थी आपकी।

इस अनभ्र बज्रपात से दुर्गा बाबू का परिवार ही नहीं, आयुर्वेद-जगत ही नहीं बल्कि समस्त औद्योगिक, साहित्यिक, राजनीतिक एवं सार्वजनिक क्षेत्र के लोग शोकाकुल हो उठे हैं। आपका पार्थिव शरीर फूलमालाओं तथा अनेक रंगविरंगे पुष्पों से लदा हुआ जब श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के प्रांगण में रक्खा हुआ था तो पटना के

हर तबके के संभ्रांत लोगों, बुद्धिजीवी एवं मसिजीवी, डाक्टर-वैद्य, जज-वकील, लेखक-पत्रकार आदि, का शोक-विह्वल समुदाय एक ओर नतमस्तक होकर "नारायणो नरश्चैव सत्यमेकं द्विधा कृतम्" की भावना से आपकी नश्वर देह को अन्तिम नमस्कार अर्पित कर रहे थे, वहां बालक, युवा और वृद्ध नर-नारियों का अनंत समूह आपके अंतिम दर्शन के लिए उमड़ पड़ रहा था। यह आपकी स्पृहणीय लोकप्रियता का ज्वलन्त प्रमाण था। दुर्गा बाबू की पुष्पमालाओं और विभिन्न प्रकार के सुगंधित कुसुमों एवं धूप दीपों की सुगंधि के साथ उनके यशसौरभ को विखेरती हुई उनकी अर्थी भवन के प्रांगण से निकली तो कुलश्रेष्ठ वैद्यवर रामनारायण शर्मा, दुर्गा बाबू के ज्येष्ठ भ्राता श्री हजारीलाल शर्मा, कनिष्ठ भ्राता श्री बनवारी लाल शर्मा, श्री रामावतार शर्मा उनके एकमात्र पुत्र श्री प्रमोद कुमार शर्मा आदि को अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ अर्थी में कंधा लगाए देखकर मार्ग की दोनों ओर पंक्तिबद्ध होकर खड़े पुरजन-परिजन में कोई भी ऐसा नहीं था जिसके नेत्रों में आँसू नहीं भर आये हों। इस संसार में आने और जाने का क्रम तो एक ऐसी धारा या एक ऐसा प्रवाह है जिसे रोकना मानवशक्ति के परे है, पर दुर्गा बाबू में जो देवतत्व था उसकी प्रेरणा से उन्होंने जो "सिया राम मय सब जग जानी" की भावना से नर-नारायण की अभूतपूर्व सेवा की, उसकी अविनाशी कीर्ति-पताका सदा लहराती रहेगी।

प्रत्युत्पन्न बुद्धि और आदमी को पहचानने की शक्ति भी आपमें अद्भुत थी। एक बार मेरे सामने ही एक महिला अपनी युवती लड़की के साथ आयी और बड़े करुण स्वर में, आँखें पोंछती हुई, बोली—"इसके पिता स्वर्गवासी हो गये हैं। मेरे सिर पर इस लड़की के व्याह का भार है और मेरे पास एक भी पैसा नहीं है। आप पटना के दानी लोगों में अग्रणी हैं। मैं आपके चरण छूती हूं, आप इसका व्याह संपन्न करा दीजिए। "ऐसा कहते हुए उस महिला ने उनके चरण पकड़ लिए। दुर्गा बाबू ने पूछा—"लड़का ठीक कर लिया है?" महिला ने लड़के की प्रशंसा के पुल बांधने शुरू कर दिये तो दुर्गा बाबू ने बीच में ही कहा—' अच्छा तो कितना खर्च होगा इस व्याह में?' महिला ने कहा—' केवल पांच सौ रुपए।' 'आपने कोई एस्टिमेट बनाया है?'— उन्होंने पूछा। 'नहीं बनाया तो नहीं है, लेकिन रुपए मिलते ही बना लूंगी।' 'नहीं नहीं, ऐसा मत कीजिए, आप एक बजट बनाकर मेरे पास ले आइए। मैं सब प्रबंध कर दूंगा। उस महिला के लाख प्रयत्न करने पर भी बजट बनाकर ले आने की अपनी बात पर दुर्गाबाबू दृढ़ रहे। आपने अंतमें कहा... मैं आप से कहता हूं न कि कपड़ों का बारात के खाने-पीने का तथा शादी के और सब सामानों का प्रबंध मैं बजट के अनुसार कर दूंगा। जब वह महिला निराश होकर चली गई तो दुर्गाबाबू ने मुझसे कहा—' श्रमिक जी ठीक किया न? मेरे यहां इस प्रकार का दुखड़ा लेकर अनेक लोग आते रहते हैं जो पैसे जिस काम के लिए मांगते है उसमें नहीं लगा कर दूसरे कामों में लगा देते हैं। इसलिए मैं पूरी छानबीन करके ही पैसे देता हूं। इसे भी पैसे जरूर दूंगा, किन्तु यह पता लगाकर कि इस लड़की की शादी है या नहीं।' बाद में मैंने सुना कि उन्होंने स्वयम् उस महिला के घर जाकर उसकी लड़की का व्याह बड़ी सुन्दरता से संपन्न करा दिया। उनकी उदारता और दानशीलता के ऐसे अनेक उाहरण हैं जिन्हें यदि कोई एकत्र करके लिपिबद्ध करे तो एक मोटा ग्रंथ तैयार हो जाए।

इस ५१ ५२ साल की छोटी उम्र में इतनी बड़ी औद्योगिक सफलता और लोकप्रियता अर्जित कर सकने का राज़ यही था कि आपको गीता के इस कथन पर विश्वास था कि—

योगस्थकुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धि सिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

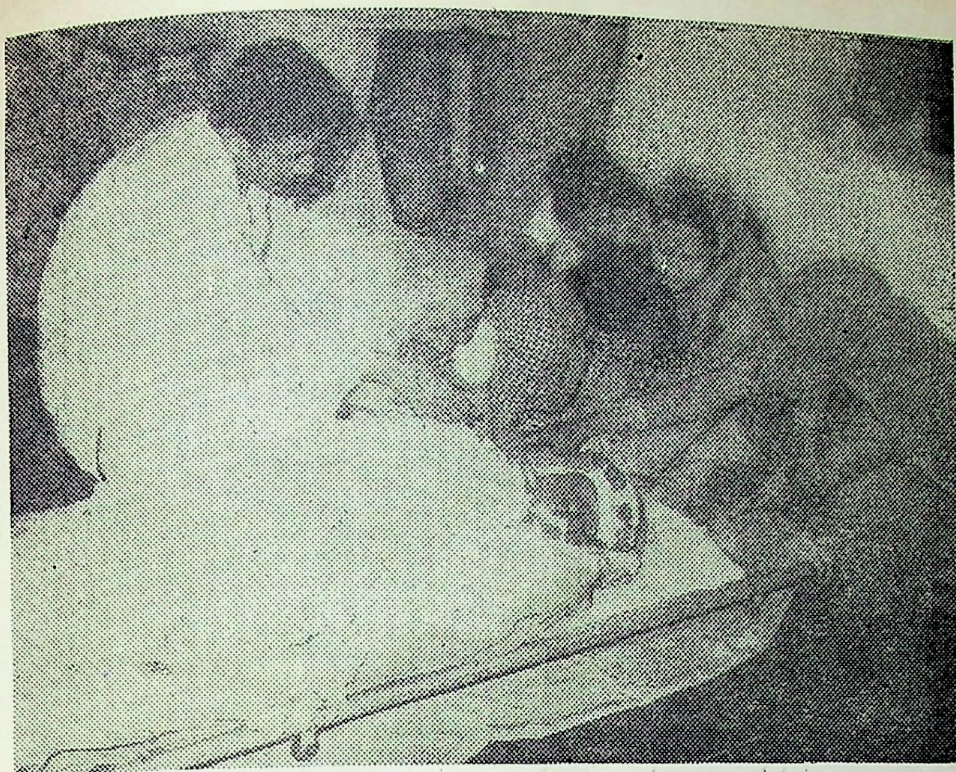
बांस घाट पर दुर्गाबाबू का पार्थिव शरीर जब धू-धू कर जल रहा था तो असंख्य लोग अपनी जेबों से रूमाल निकाल कर आखें पोंछ रहे थे। जिस पार्थिव शरीर में देवत्व रहता है आत्मा के निकल जाने पर भी उस नश्वर शरीर में कितना मोह रहता है। तभी तो सोवियत रूस में लेनिन की देह को वहां के लोग अभी तक सुरक्षित रखे हुए हैं।

आज कोई भी दुर्गाबाबू के हृदय-खण्ड—कृषिवाटिका को जाकर देख ले, वहाँ का एकाएक सुमन पौधा, एक-औषधि के वृक्ष और पौधे सारा हराभरा खेत मुर्झाया हुआ है — अपने रक्षक और माली के वियोग में रो रहा है। दुर्गाबाबू उस बाटिका के माली ही थे।

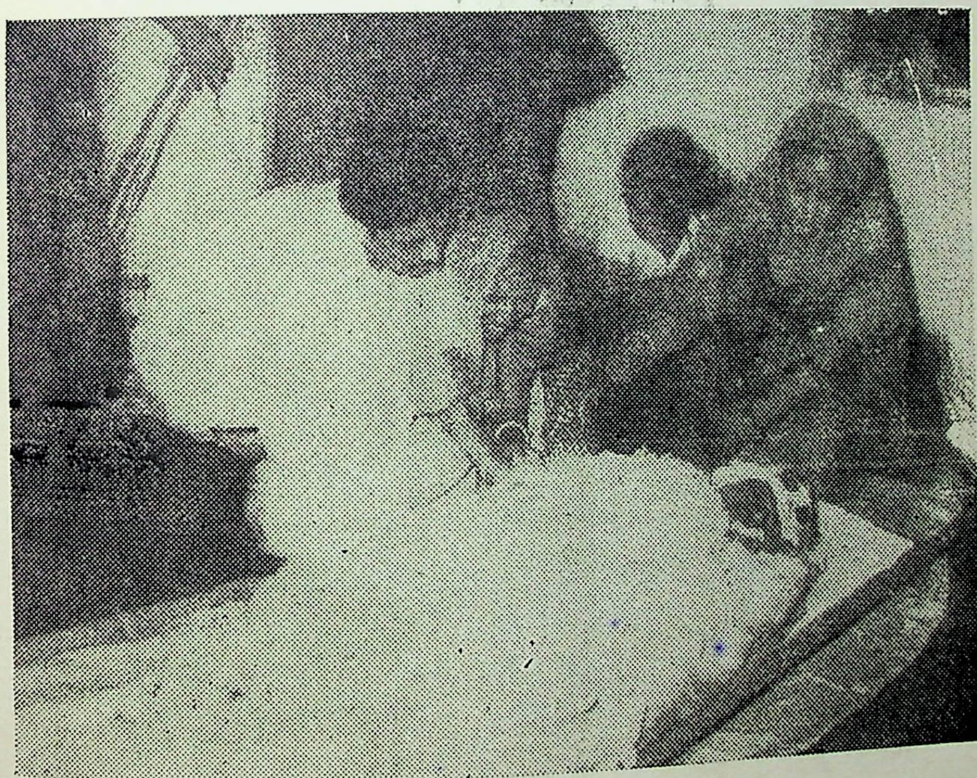
# चंदा-समाप्ति सूचना

"सचित्र आयुर्वेद" के सुधी ग्राहकों से हमारा विनम्र निवेदन यह है कि 'सचित्र आयुर्वेद' का १२ वाँ अंक आपके हाथ में है। जून ७९ के बाद 'सचित्र आयुर्वेद' ३२वें वर्ष में पदार्पण करेगा और इसके साथ ही कतिपय ग्राहकों का वार्षिक शुल्क समाप्त हो जायेगा। 'सचित्र आयुर्वेद' के उन ग्राहकों से जिनका वार्षिक शुल्क जुलाई ७८ से जून ७९ तक के लिए जमा था, हमारा विनम्र निवेदन यह है कि वे अपना वार्षिक शुल्क १०) जून अंक पाने के साथ ही मनीआर्डर से भेज दें। इस प्रकार जिन ग्राहकों का वार्षिक शुल्क हमें प्राप्त हो जायेगा उन्हें हम अलग से कोई कार्ड एवं वी० पी० नहीं भेजेंगे। उल्लेखनीय है कि वी० पी० द्वारा वार्षिक शुल्क भेजने वालों को ग्राहक शुल्क के अतिरिक्त वी० पी० चार्य भी देना पड़ेगा और इस प्रकार ग्राहकों को १०) की जगह १५) देने पड़ जायेंगे। अतः मनीआर्डर से १०) भेजना और शीघ्र भेजना अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण बात होगी। अगर किसी ग्राहक महानुभाव को अग्रिम वर्ष तदनुसार जुलाई ७९ से पुनः ग्राहक नहीं बनना हो तो वे कृपा कर वैसी सूचना कार्यालय को तत्काल ही दे देंगे।

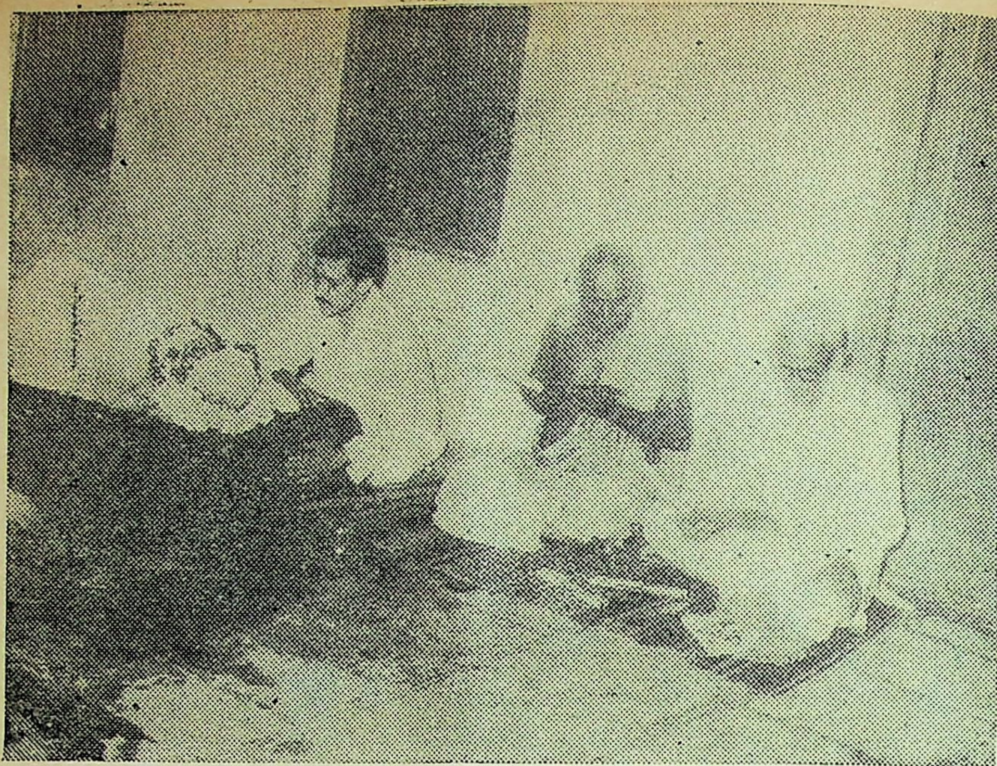
व्यवस्थापक
सचित्र आयुर्वेद
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-८०0001



शोक-विह्वल परिवार—चित्र में पुत्र, पुत्री, पत्नी, पुत्रवधू प्रभृति करुण क्रन्दन करते हुए।



पति के वियोग में उन्मादिनी-सी करुण विलाप करती हुई श्रीमती सुशीला शर्मा। श्री प्रमोद कुमार शर्मा अपनी मां को सम्भालते हुए दिख रहे हैं।



श्री प्रमोद कुमार शर्मा अपने दिवंगत पिता के शव के पास शोकाभिभूत बैठे हैं। बगल में वेदपाठी ब्राह्मण गीता पाठ करते हुए।



श्री रमाकान्त शर्मा स्व० दुर्गा बाबू के शव के पास शोकातुर बैठे हैं।

# निदान-चिकित्सा हस्तामलक
## ( छात्रोपयोगी निदान-चिकित्सा)

# श्वास और हिक्का

वैद्य रणजितराय देसाई

सोमल के आयुर्वेदोपदिष्ट कल्पों का उल्लेख हुआ। प्रकरण—समाप्ति के पूर्व पुनः स्मरण करा दूं कि, आयुर्वेद-दृष्टया इनकी उपयोगिता इनके कफ-संशमन कर्म के कारण प्रधानतया है। पूर्व-निवेदित प्रकार से ये वायु को भी समावस्था में लाते हैं। यह भी कह आए हैं कि ये आधुनिकोक्त इयोसिनोफिल—नामक क्षत कणों की वृद्धिवश अथच असात्म्य आहार एवं आमदोषज (एलर्जिक) श्वास पर भी हितावह होते हैं। अब श्वासरोगोपयुक्त अन्य कल्प प्रस्तुत करने के पूर्व संक्षेप में इयोसिनोफिलों की वृद्धि से होने वाले ज्वर का आयुर्वेद में कहां स्थान है, इस विषय में अपना नम्र मत विवेचकों के विचारणार्थ उपस्थित करना उचित माना है।

**वातबलासक ज्वर—आधुनिकों का इयोसिनोफिलिया**

सुश्रुत जी ने विषम ज्वरों के (मुख्यतः अर्वाचीन-विज्ञानोक्त मलेरिया के) निदान और लक्षण देकर अनुपद ही प्रलेपक एवं वातबलासक ज्वरों का निरूपण किया है। (देखिए: सु० 39—48)। इससे कल्पना होती है कि, प्रलेपक ज्वर का विषमज्वर से तथा वातबलासक ज्वर का प्रलेपक ज्वर से कुछ सादृश्य पूर्वाचार्यों ने पाया होगा। प्रलेपक ज्वर को सुश्रुत और तन्मार्गानुसारी माधवकर ने यक्ष्मा का अङ्गभूत ज्वर कहा है। विषम ज्वर एवं यक्ष्मा में कुछ साम्य यह है कि, दोनों ज्वरों के उदय और मोक्ष नियत काल पर होते हैं। विषम ज्वर में उदय अमुक समय-विशेष पर, तथा प्रलेपक में सायंकाल।[1] यह सत्य है कि, प्रलेपक ज्वर में कभी ज्वरोष्मा सम्पूर्ण अहोरात्र में भी रहता है; परन्तु यह स्थिति विषम ज्वरों में भी उनकी जीर्णावस्था में सुप्रत्यक्ष है। ज्वरमोक्ष दोनों में स-स्वेद होता है। दोनों त्रिदोषोत्थ होते हैं।

विषम ज्वर के तत्काल अनन्तर प्रलेपक ज्वर का निर्देश विशेष तो व्यवसाय में निदान की दृष्टि से उपयोगिता को लक्ष्य में रख कर किया गया है। प्रत्येक चिकित्सक के अनुभव में यह वस्तु निश्चित ही आई होगी कि, कई बार रोग वास्तव में यक्ष्मा होता है, परन्तु उसे जीर्ण विषम ज्वर मान कर तदनुरूप क्रियाक्रम का निष्फल आलम्बन किया जाता है। इसके विपरीत, यह भी देखने में आता है कि, ज्वर यथार्थतः जीर्ण विषम ज्वर होता है, परन्तु उसे यक्ष्मा समझकर उपचार-योजना की जाती है। दोनों ज्वरों का अध्ययन साथ ही हुआ हो तो दुःस्थिति की स्मृति चिकित्सकों को रहती है। इन भ्रांतियों के प्रसंग में यह भी कह देना आवश्यक है कि, सम्प्रति विषम ज्वर, टायफॉयड, यक्ष्मा आदि किसी भी रोग का ग्रन्थोक्त चित्र प्रायः देखा नहीं जाता। कारण कदाचित् यह है कि, लोगों में स्वयं उपचार करने की प्रवृत्ति घर कर गई है।

अस्तु। अब वातबलासक ज्वर के विषय में तन्त्रकारों के कथयितव्य पर दृष्टि-निक्षेप करें। मधुकोषकारों ने आरम्भ ही में कहा है—**उक्तसंगत्या प्रलेपकादनु उपद्रवत्वेन तत्सधर्मिणि वातबलासके प्रतिलोमतन्त्रयुक्त्या वातबलासकमेवाह—वाच्ये नित्यमिति।** इस वचन में व्याख्याकारों ने वातबलासक को प्रलेपक का उपद्रव रूप (प्रायः समान ही निदान से उत्पन्न होने तथा समान ही उपचार से शान्त होनेवाला)

---

1. Evenning rise of temperature—ईवनिंग राइज ऑफ टेम्परेचर।

प्रारम्भ में यह भी स्थिति हो सकती है कि, सायंकाल शरीरोष्मा दौर्बल्य की वृद्धि न हो केवल क्लम (थकावट), अवसाद, आदि लक्षणों का आविर्भाव हो।

एवं समानधर्मा कहते हुए प्रलेपक ज्वर के प्रतिपादनानन्तर वातबलासक के निरूपण के न्याय्य होने का निर्देश किया है। जैसा कि रोगवाचक संज्ञा से सूचित है—इसमें वायु से प्रेरित—स्वस्थान से च्युत किया जाकर वायु के आशयापकर्ष के स्वभावाधीन अन्यत्र विक्षेपित—कफ कारणभूत होता है। 'बलास' का अर्थ आयुर्वेद में कफ-प्रसिद्ध ही है। मधुकोषकारों ने इस विषय में कहा है—**वात-बलासकस्तु यथार्थनामा वातेरितो बलासक आरम्भको यस्येति।** अन्यत्र, किसी ने इस रोग को कफाधिक तो किसी ने वाताधिक कहा है, उसका गूढार्थ मधुकोषकारों ने उपर्युक्त प्रकार से प्रदर्शित किया है। उन्होंने इसमें पित्त का भी सहकार बताया है एवं उसका भी प्रकुपित वायु द्वारा आशयापकर्ष होना कहा है।

इस रोग के लक्षण निम्न कहे गए हैं—नित्य मन्द ज्वर रहना, अङ्गों की स्तब्धता (तज्जन्य अकर्मण्यता), अवसाद, रौक्ष्य, शोथ और (उल्लिखित रीत्या) श्लेष्माधिक्य तथा कष्टसाध्यता।

मधुकोषकारों ने प्रलेपक ज्वर के साथ पूर्वोक्त प्रकार से सम्बन्ध कह कर भी लक्षणों में आए 'शोथ' के प्रसंग से कहा है कि, यह वातबलासक शोथ का उपद्रव होता है। अन्य व्याख्याता गदाधर कहते हैं कि, यह वातबलासक रोग कइयों के मत से कुम्भ-संज्ञक पाण्डुरोग का विषय है।

मधुकोषकारों ने अपनी प्रस्तावना में वातबलासक को जो प्रलेपक ज्वर का उपद्रव अथ च उसका समानधर्मा कहा है, वह नव्यमत के साथ भी संवाद रखता है। इयोसिनोफिलों की वृद्धि होने से भी यक्ष्मा के तुल्य लक्षणों का आविर्भाव हुआ करता है, यह शोध हुई उसके पूर्व इससे आक्रान्त आतुरों को यक्ष्माक्रान्त मान कर उनका तदनुरूप ही उपचार किया जाता था, तथा उन्हें सेनिटोरियम में भी भेजा जाता था। इस वृत्तान्त से आधुनिक प्रत्यक्षानुसार इयोसिनोफीलिया और प्रलेपक ज्वर में कुछ सादृश्य है, इसकी कल्पना सहज ही हो सकती है। स्मरण रहे, कोई लेखक वातबलासक को विटामीन बी. के एक प्रकार के अयोग या हीनयोग[1] से होनेवाला बेरी-बेरी रोग भी लिखते हैं। अधिक विचार विचक्षण

1. Deficiency—डेफिशेन्सी।

वैद्यों की विवेचक बुद्धि के लिए छोड़कर अब श्वासरोग में उपयुक्त अन्य प्रचलित कल्पों का निर्देश करते हैं।—

**कनकासव :**

सिद्धान्त एवं प्रत्यक्ष अनुभव-उभय दृष्टियों से यह कनकासव श्वास और कास दोनों में उपयोगी कल्प है। इसके निर्माणार्थ धत्तूर (कनक) के फल, पत्र, मूल-त्वक् एवं शाखा-मिलित 16 तोला (आर्द्र हो तो 32 तोला), वासा के मूल की त्वचा 16 तोला; यष्टी मधु, पिप्पली, कण्टकारी, नागकेशर, शुण्ठी, भार्गी एवं तालीसपत्र—प्रत्येक 8-8 तोला लेकर सबको जर्जर (जौ कूट) कर लें। अब धातकी पुष्प 64 तोला तथा मुनक्का 80 तोला लें। इन्हें एक पात्र में रख; 25।। सेर 8 तोला जल में देशी खाँड या चीनी 10 सेर, मधु (अभावे पुराना गुड़) 2।। सेर घोल उक्त पात्र में डाल संधानार्थ रखें। संधान-क्रिया चालू होने पर धत्तूर से तालीश पत्र-पर्यन्त द्रव्यों का चूर्ण पात्र में डाल दें। एक मास के अनन्तर आसव तैयार होने पर वस्त्रपूतकर रख लें।

यह कनकासव दोनों समय प्रधान भोजन के अनन्तर 1।-2।। तोला ($\frac{1}{2}$-1 आउन्स) समभाग जल मिला कर सेवन करें। इसके निरन्तर व्यवहार से श्वास रोग में अतिशय लाभ होता है। वेग-काल में भी इसका उचित मात्रा में उपयोग करने से वेग का बल मन्द होता है। इसका पाठ मूल में भैषज्यरत्नावली में आया है। आयुर्वेद-सार संग्रहकार लिखते हैं कि—मूल पाठ के अनुसार खाँड लेने से आसव अम्ल बनता है। अतः, उसकी मात्रा द्विगुण रखी है।

धत्तूर कनकासव का विशिष्ट घटक है। यह वनस्पति-शास्त्र तथा औषधि गुण-धर्मशास्त्र दोनों के विचार से बेलाडोना के वर्ग की वनौषधि है। बेलाडोना का स्तम्भहर[1] गुण सुविदित है। धत्तूर में भी यही क्रिया स्वभावतः होती है। अतएव श्वास के वेगों में धूमपान आदि के रूप में इसका प्रचार शास्त्र-शुद्ध है। उदरशूलों

1. Antispasmodic (एंटिस्पैज्मॉडिक)। प्रायः लेखक इसके लिये 'संकोच-विकास प्रतिबन्धक' इस नूतन संज्ञा का व्यवहार करते हैं। उसका अर्थ तो स्रोतों के संकोच और विकास दोनों को रोकने वाला होता है, केवल संकोच के प्रतिबन्ध का नहीं।

आदि शूलों का कारण भी आमपक्वाशय में उग्र स्तम्भ हुआ करता है। अतएव, बेलाडोना एवं धत्तूर के कल्पों का इस रोग में व्यवहार एलोपैथी और आयुर्वेद में पुष्कल होता है। कनकसुन्दर, ग्रहणीकपाट आदि इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

कनकासव में वासा, कण्टकारी, यष्टीमधु आदि कफ को विलीन कर निकालने वाले एवं श्वास-कास में लाघव उत्पन्न करने वाले द्रव्य विद्यमान होने से इन रोगों के लक्षणों का प्रशमन होता है। धत्तूर स्तम्भहर होने से इन व्याधियों में उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार घटक द्रव्यों को देखते हुए कनकासव श्वास-कासहर द्रव्यों का सुभग संयोग है। परन्तु इसमें शुष्क गुण (व्याख्या आगे देखिए) भी होने से कतिपय व्यक्तियों में कफ की शुष्कता हो जाने से व्यापत्ति (विपरीत परिणाम) भी देखे जाते हैं। जिन जनों में प्रकृत्यारम्भक दोषों के स्वभाववश शुष्क गुण की उल्वणता होती है, ऐसे वात-प्रकृति, पित्त-प्रकृति किंवा वात-पित्त प्रकृति पुरुषों में यह व्यापत्ति सविशेष लक्षित होती है।

शुष्क गुण का आयुर्वेद तथा आधुनिक द्रव्य-गुण विज्ञान के शब्दों में अर्थ का अवबोध अब क्रम-प्राप्त है। शुष्क गुण द्रव्य-गुण से विपरीत गुण है। आचार्य भाव मिश्र ने इन दोनों शब्दों का परिचय निम्न पदों में दिया है : **द्रवः क्लेदकरो व्यापी शुष्कस्तद्विपरीतकः** (पूर्व खंड)। सुश्रुत की एक प्रति में द्रव **और** शुष्क गुणों के लक्षण दिये हैं : **द्रवः प्रक्लेदनो व्यापी शुष्कः स्याद् बन्धकारकः** (**सु॰सू॰** 46)। वैशेषिक दर्शन के प्रशस्तपाद भाष्य के गुण-ग्रन्थ में द्रव गुण का परिचय कराते हुए कहा है : **द्रवत्व स्पन्दनकारणम्**। एतावता शुष्क गुण इसके विपरीत वहनशीलता-रहित होता है।

इन समस्त वचनों का समुच्चित अर्थ यह है कि: द्रव-गुण क्लेदकर (द्रवता वा आर्द्रता का उत्पादक), वहन-शील, अथच व्याप्त हो जाने के स्वभाववाला होता है। शुष्क गुण इसके विपरीत क्लेद का आचूषण (शोषक; आचूषण तथा उसका सहचारी रोपण कर्म सुश्रुत ने विशद गुण का परिचय देते हुए बताया है; वह प्रकृत्या शुष्क गुण पर भी घटित होता है), एवं वहन के अभाव के कारण बन्धकारक (व्यवहार में मोदक आदि को एवं शरीर में कफ, पुरीष, मूत्र, शुक्र प्रभृति में स्थित द्रवत्व को घटा कर उन्हें बांधने वाला) हुआ करता है। शुष्क द्रव्य में पृथ्वी, वायु तथा अग्नि भूत की उल्वणता (प्राधान्य) होता है। इन भूतों में स्थित शुष्क गुण के कारण ही, जैसा कि ऊपर कह आए हैं, वात-पित्त प्रकृति स्त्री-पुरुषों में प्रकृत्या शुष्क गुण की विद्यमानता के अधीन बाह्य शुष्क आहारौषध द्रव्यों, विहार, देश तथा काल का प्रभाव इन जनों में अधिक लक्षित होता है।

बेलाडोना तथा उसका सत्व एट्रोपीन नाड़ी-संस्थान को प्रभावित कर अधिकांश स्रावों को, तद्यथा लाला-ग्रन्थियों, आमाशय-रस की ग्रन्थियों, अग्न्याशय, संपूर्ण आम-पक्वाशय (महास्रोत) एवं प्राणवह स्रोतों (श्वास-पथ) की कफोत्पादक ग्रन्थियों तथा तथा स्वेदवह स्रोतों (ग्रन्थियों) के स्रावों में न्यूनता लाते हैं। मुखगत लाला-स्रावी तथा कफ-प्रवर्त्तक ग्रन्थियों के स्राव की अल्पतावश मुख, तालु और गल शुष्क हो जाते हैं। मात्रा का अति-योग हो जाए, तो शुष्कता की इयत्ता इतनी अधिक हो जाती है कि कवलन ( निगिरण, निगलना ) अशक्य हो जाता है। इनके अतियोग से आमाशय के लवणाम्ल का भी ह्रास अथवा स्राव का सर्वथा अभाव हो जाता है। प्राणवह स्रोतों में स्थित कफोत्पादक ग्रन्थियों का स्राव अति क्षीण हो जाता है। स्वेद का स्रवण अति न्यून हो जाने से स्वेद का प्रवल प्रतिबन्ध हो जाता है। त्वचा शुष्क एवं उष्ण हो जाती है। मूत्र की उत्पत्ति पर इसकी कोई क्रिया नहीं होती। तथापि अधिक मात्रा में इसके उपयोग से मूत्राशय का वध (पेरेलिसिस) हो कर मूत्र-संग (मूत्र की अप्रवृत्ति) होती है। मूत्र के अतिरिक्त याकृत पित्त एवं स्तन्य के स्रावों पर भी बेलाडोना तथा एट्रोपीन का प्रतिबन्धक प्रभाव नहीं होता।

धत्तूर बेलाडोना का सजातीय होने से उसमें भी यह शोषणात्मक स्वभाव होता है। त्रिभुवनकीर्ति में धत्तूर-स्वरस की शास्त्रोक्त विधि से भावना दी गई हो, तो वह भी गलशोष करती है। कोई उपयोक्ता तो कहते हैं कि, त्रिभुवनकीर्ति का सेवन करने के पूर्व एक गिलास जल भर तैयार रखना पड़ता है। इस औषध में यह शुष्कता होने के कारण ही प्रतिश्याय में इसके उपयोगी होने पर भी प्रतिश्यायारम्भक दोष की संक्रान्ति गल में होने से कास हुआ हो, परन्तु स्वयं प्रतिश्याय शान्त हो गया हो

तो त्रिभुवनकीर्ति का सेवन कराने से कफ शुष्क हो कास के वेगों में वृद्धि होती देखी जाती है। (सशेष)

## यम-किंकर कॉलेस्टिरोल

कॉलेस्टिरोल (पर्याय-कॉलेस्ट्रिन) शब्द आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान में यत्किंचित् भी रस लेनेवाले सभी जनों को सुपरिचित है। यह हृदय-रोगों, हृदय-रोग का आक्रमण (हार्ट-एटेक), पक्षाघात और अन्त में अकाल मृत्यु के कारणों में अत्यत्त स्मरणीय है। उत्तर यूरोप का फिनलैंड-नामक छोटा-सा देश उक्त विकृतियों से विश्व समस्त में सर्वाधिक आक्रान्त भू-विभाग था। वहाँ के जाग्रत निवासियों और शासन ने इस व्याधि के निर्मूलनार्थ जो विपुल पुरुषार्थ किया, वह चिकित्सा-शास्त्र के इतिहास का अत्यन्त उज्ज्वल प्रकरण है। वैज्ञानिक शोध जन-समाज के लिए कितनी कल्याणकारी हो सकती है, इसका उत्तम उदाहरण फिनलैंड का उक्त अभियान है।

शरीर में इस कॉलेस्टिरोल की मात्रा के नियंत्रण में सर्वोपरि महत्त्व लशुन का और उससे उतर केर पलाण्डु का है, यह नवीनतम शोधों से विदित हुआ है। वाग्भट-द्वय ने लशुन को सर्वोपरि वातघ्न कहा है। उसके पश्चात् इस दृष्टि से पलाण्डु का क्रम है। काश्यप ने एक समग्र अध्याय लशुन को अर्पित किया है तथा कहा है कि, लशुन के जो प्रयोग इस अध्याय में दिए गए हैं उनको आचरण में लाया जाए तो वायु गृह-द्वार से ही लौट जाता है। इन प्रयोगों का संपूर्ण ज्ञान तो मूल ग्रन्थों के स्वाध्याय से ही हो सकता है। केवल उदाहरण रूप में एक रसप्रद चर्या का उल्लेख कर दूं। इसके अनुसार घर के द्वारों, खिड़कियों आदि पर लशुन की मालाएं लटकानी चाहिए; बिछौने पर लशुन बिछाकर रखना चाहिए, ओढ़ने के वस्त्र पर भी इसी प्रकार लशुन बिछाना चाहिए। वैज्ञानिक अनुसंधान पर अवलम्बित लशुन-विषयक शोधों और आयुर्वेद में लशुन के प्रभावों के संबंध में जो प्रतिपादन किया गया है, उसका तुलनात्मक अध्ययन एक उपयोगी विषय कहा जा सकता है।

लशुन के सेवन में एक व्यापत्ति अवश्य है। यह उष्ण-तीक्ष्ण होने से किसी में इसके व्यवहार से मुखपाक-प्रभृति विकार उत्पन्न होते हैं। उन्हें अल्पमात्रा में लशुन ले खापड़े के साथ चटनी बनाकर किंवा लशुन को तेल में भूंज कर इसका सेवन कराया जा सकता है।

लशुन के सम्बन्ध में उत्तर यूरोप के ही एक चिकित्सक की विचारधारा को भी स्मृति में लाया जा सकता है। यह महाशय रोगमात्र में लशुन के उपयोग के समर्थक थे। अपने अनुभवों और विचारों का निष्कर्ष इन महानुभाव ने 'गार्लिक किंग' नामक अंग्रेजी पुस्तक में दिया है। बहुत वर्षों पूर्व स्वर्गीय स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने 'लहसुन बादशाह' नाम से उक्त पुस्तक का रूपान्तर मुद्रित कराया था।

फिनलैंड के अभियान का वृत्तान्त अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ने को मिलता है। नीचे ऐसा ही एक परिचय गुजराती मासिक 'जनकल्याण' के फरवरी १९७९ के अंक से प्रस्तुत किया जा रहा है। वाचकों को यह विवेचन निश्चित ही पथ-प्रदर्शन कराएगा।

'आपको हार्ट-एटेक (हृदय-शूल) का आक्रमण हुआ है?'

'ना मुझ पर तो नहीं हुआ, परन्तु मेरी पत्नी पर अवश्य हुआ था।'

'फिर क्या हुआ?'

'पहली बार तो कुछ न हुआ। परन्तु उसे दूसरा आक्रमण हो, इस प्रतीक्षा में हूं।'

'जिससे दूसरा विवाह किया जा सके, क्यों?'

'बात तो लगभग ऐसी ही है।'

और दोनों बात करने वाले हंस उठते। विश्व के शिखर पर फिनलैंड नामक एक देश है। उसके करेलिया नाम के विभाग में कृषकों में इस प्रकार का हास-परिहास साधारण हो गया था। परन्तु इस हास-परिहास के मूल में एक गम्भीर और उद्वेग-जनक कारण था। इस प्रदेश में वस्तुतः हृदय-शूल ने अपना विकाराल स्वरूप प्रदर्शित करना आरम्भ किया था।

फिनलैंड की राजधानी हेलसिन्की से कोई दो-सौ मील दूर उत्तर में स्थित इस रमणीय प्रदेश में हरियाले, लहलहाते खेतों, हरित-वर्ण अरण्यों और शुभ्र जल के सरोवरों की संख्या अपार थी। ऐसे सुन्दर वातावरण में रहने वाले स्त्री-पुरुषों में एक लाख अस्सी हजार जन हृदय शूल से काल-कवलित हो गए थे। इसे एक विक्रम (रेकर्ड ब्रेक) ही कहना होगा। किसी भी देश के समान फिनलैंड वासी भी भिन्न-भिन्न रोगों से मृत्यु प्राप्त करते थे। परन्तु

इनमें दो-तिहाई लोक हृदय-शूल अथवा तन्मूलक मस्तिष्क की रक्तवाहिनी के विवरण से (फटने से) मरते थे।

दुःखप्रद सत्य तो यह था कि, तीस वर्ष से अधिक वय के जन 45 वर्ष की वय तक पहुँचे, उसके पूर्व ही उनकी छाती में वेदना हो उठती। इतनी लघु वय में छाती में वेदना हो इसका क्या अर्थ? एवं इसके अनन्तर जीवन में प्रौढ़ावस्था के आगामी वर्ष कैसे बिताए जाएं? इन प्रश्नों के रूप में पारिवारिक समस्याएं खड़ी होने लगीं।

विश्व भर में 'हार्ट एटेक' स्त्रियों को भी होता ही है। परन्तु फिनलेंड की स्त्रियों में इसकी संख्या शेष समस्त विश्व की तुलना में तीन गुनी थी। सामान्यतः. हृदयरोग के आक्रमण के कारणों में निष्प्रयोजन दौड़ादौड़ तथा हाय-तौबा भरे जीवन को प्रधान माना जाता है। यह होते हुए भी स्त्रियों को हृदय-रोग का आक्रमण हो इससे क्या समझा जाए। ऊपर कहा जीवन का प्रकार तो पुरुषों में ही देखा जाता है न?

हृदयरोग का प्रमाण समग्र फिनलेंड में अति वेग से बढ़ रहा था। वस्तुस्थिति का विचार करें तो यह होने का कोई कारण था नहीं। अमेरिका अथवा यूरोप के किसी भी देश की अपेक्षया फिनलेंड का जीवन सर्वथा भिन्न स्वरूप का था। तथापि, इस दारुण रोग ने इस देश में अपनी लीला का विस्तार किया था!

यूरोप में मानवों की औसतन उम्र 70 वर्ष की आकी गई है। फिनलेंड के करेलिया विभाग में औसत आयु 60 वर्ष की है। वैसे तो यहां का जलवायु सर्वथा आदर्श माना जाता है। लोक दूर-दूर से आराम करने तथा शांति प्राप्त करने के हेतु ठेठ फिनलेंड जाया करते थे। ऐसे इस देश के मूल निवासी स्वयं ऐसे दुर्दान्त रोग से आक्रान्त हो, इसकी कल्पना भी की नहीं जा सकती थी। तथापि सत्य स्थिति यही थी।

इस परिस्थिति का ज्ञान हुआ तो लोक स्तब्ध-से हो गए। मरना किसे सुहाता है? उसमें अकाल मृत्यु तो किसी को रुच ही नहीं सकती। पुरुष सीधा-सादा एवं सब प्रकार से स्वस्थ हो और उस पर हृदय-शूल का हमला हो तथा वह अतर्कित ही मृत्यु का ग्रास बने तो इससे कितनी-कितनी जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं?

1972 के आस पास इस दुःस्थिति के निराकरण के लिए – अन्य शब्दों में हृदय-रोग के आक्रमणों पर प्रत्याक्रमण के लिए--फिनलेंड में प्रबल कार्यवाही आरम्भ की गई। इसने समस्त विश्व के चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट किया। कारण, उक्त अभियान के निष्कर्ष का लाभ पृथ्वी भर के लोगों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता था। यह रोग वर्तमान युग का प्रसाद है। दौड़ा-दौड़ इतनी वृद्धि को प्राप्त हो गई है कि विचारा हृदय उसका सामना ही कर नहीं सकता।

इन लोकों के पांच वर्ष के अनुसंधान एवं उत्कट प्रयोगों और परीक्षाओं के फलस्वरूप दो सत्य प्रकाश में आए। इनमें एक तथ्य तो समग्र विश्व में रुच जाए, ऐसा था, जब कि दूसरा सत्य उसे स्तब्ध कर देने वाला था। सत्य यह था कि ग्राम-विभागों के आरोग्य-प्रद वातावरण में रहने से हृदय-रोग होने की संभावना कम हो जाती है, प्रचलित मान्यता निर्मूल है। कौन विश्वास करेगा इस बात पर कि, ग्राम-वास अहितावह भी हो सकता है?

दूसरा सत्य इस अभियान से यह फलित हुआ कि, तन्मयतापूर्वक प्रयास किए जाएं तथा जनता को जाग्रत् किया जाए तो हृदय-रोग के आक्रमण को ठेला जा सकता है तथा इससे होनेवाली मृत्यु-संख्या की दर को नीचे लाया जा सकता है।

1957 तक यही धारणा बद्धमूल थी कि, हृदय रोग केवल बैठे रहने वाले व्यक्तियों को ही होता है। यह बात है भी ऐसी कि, इसे स्वीकारना ही पड़े। जो जन बैठा ही रहे, चले भी कम से कम और व्यायाम का नाम न ले। उसका हृदय हतबल हो जाता है ऐसा मन्तव्य था, परन्तु इन लोकों ने जो अनुसंधान किया उसका सार यही था कि, यह मान्यता सर्वथा भ्रान्ति-मूलक थी।[1]

ऐसा घातक रोग फिनलेंड के निवासियों को होना संभव है, परन्तु किसी को स्वीकार्य न लगे, ऐसी स्थिति

---

1. यह कालेस्टिरोल पित्ताशय में संचित हो शुष्क हो जाए तो इसे 'गॉल स्टोन' कहते हैं। गाय-बैल में हुई इस पथरी का गोरोचन नाम प्रसिद्ध है। प्रश्न है कि क्या कालेस्टिरोल को 'रोचन' नाम दिया जा सकता है?

थी। कारण, यहां के निवासियों का जीवन सर्वथा भिन्न प्रकार का था। बस्ती मुख्यतः कृषकों की थी। कृषक बैठे रहते नहीं, परन्तु इतना अधिक काम भी नहीं करते। निसर्ग-समृद्ध वातावरण में श्रमपरायण जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति को हृदयरोग पीड़ित करे, यह बात विलक्षण लगे, ऐसी थी। तथापि सत्य तो यही था।

वनों में कार्य करने वाले फिनिश लोक भी इस रोग से आक्रान्त न होने चाहिए। खुली हवा में लकड़ी काटना, दौड़ा-दौड़ का कोई कारण नहीं। तुलना में सर्वथा शान्तिमय जीवन। इन जनों को किसी भी सूरत में बैठक का जीवन व्यतीत करने वाले कहा ही नहीं जा सकता। तथापि ऐसे ये लोक भी हृदय-रोग के शिकार बनें, यह कैसी बात ?

अतः 1960 में इस आशय के आंकड़े प्रकाशित हुए, कि हृदय-रोगों से मृत्यु पाने वाले लोकों की संख्या की दृष्टि से फिनलैंड का क्रम प्रथम है। वैज्ञानिक अपने पूर्वग्रहवश इन आंकड़ों को ही अशुद्ध मानने लगे। सच्ची मानें भी कैसे ? सामान्यतः हृदय-विकार जिन कारणों से होते प्रसिद्ध हैं, उन कारणों का तो यहां सर्वथा अभाव ही था। तो भी समस्त विश्व में फिनलेंड में इस रोग की व्याप्ति सर्वाधिक हो, इसका अर्थ क्या है?

1969 में केलिफोर्निया युनिवर्सिटी के डाक्टर एन्सेल कीज एवं अन्य अमेरिकन तथा फिनिश वैज्ञानिकों ने एक भारी अनुसंधान हाथ में लिया। अमेरिका, ग्रीस, इटली, जापान, निदरलैंड्स, युगोस्लाविया तथा फिनलेंड में हृदय-रोग पीड़ितों की संख्या कितनी है, इसका परिज्ञान पाना इस अनुसंधान का ध्येय था। आंकड़ों से निश्चित हुआ कि, इन सभी देशों की तुलना में हृदय-रोग की दृष्टि से फिनलेंड मुखर था। उस पर इसके करेलिया प्रदेश में तो समूचे फिनलेंड की अपेक्षया हृदय-रोग का प्रसार तिगुना था। आंकड़े देखकर, वैज्ञानिक तथा जनगण सहसा चौंक पड़े।

नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में टाउन हॉल में सभाओं का आयोजन कर उन्होंने इस दस्यु रोग के सम्बन्ध में चर्चा-विचारणा आरम्भ की। प्रारम्भ में तो नागरिक इस बात में विस्मय व्यक्त करते कि उन्हें यह रोग हो कैसे सकता है ? यह तो अद्भुत, अति अद्भुत-सा है।

डॉक्टर इस क्षेत्र में क्या कर सकते हैं, ऐसे प्रश्न पूछे जाने लगे। एक डॉक्टर ने अपनी स्मृति को झकझोर कर कहा—'हमारे पास कोई स्पष्ट प्रत्युत्तर उस काल था ही नहीं। फिर भी हम इतना अवश्य छाती ठोंक कर कहते कि, चिकित्सा-शास्त्र किसी न किसी प्रकार इस गूढ समस्या का रहस्य और उपचार ढूंढ़े बिना न रहेगा, यह निःशंक है।

परन्तु जनता को इस धूमिल उत्तर से लेशमात्र संतोष न होता था। अतः इन लोकों ने 1971 के जनवरी मास में एक ऐसा काम किया जो जगत के चिकित्सा-शास्त्र के इतिहास में न भूतो न भविष्यति। उन्होंने सरकार के लिए एक सुविशाल आवेदन-पत्र तय्यार किया। इसमें विनती की गई थी कि, देश में से इस रोग को निकाल फेंकने के कार्य में वह सम्पूर्ण सहायता करे। इस आवेदन पर लाखों हस्ताक्षर लिए गए।

इन हस्ताक्षर करने वालों में एक ने कहा : हमने विचार किया कि, यदि सरकार हमारे पास से कर वसूल कर इस रकम का विनियोग मार्ग-निर्माण एवं अन्य लोकोपयोगी कार्यों में कर सकती है तो हृदय-रोग के आक्रमणों का प्रतीकार करने और उससे होने वाली मृत्यु-संख्या की दर घटाने में इस रकम का उपयोग क्यों नहीं किया जाय ?

और वस्तुतः सरकार ने उनके तर्क को स्वीकारा। तथा $13\frac{1}{2}$ लाख रुपयों का बजट इस कार्य के लिए पृथक् रखा। हृदय-रोग को उच्छिन्न करने के निमित्त बीस मनुष्यों के स्टाफ से एक परियोजना बनाकर उसे मूर्तिमान् किया गया।

डाक्टरों, विज्ञान-विशारदों, अनुसंधाताओं एवं समाज-स्वास्थ्य के निष्णातों ने प्रथम कार्य तो विविध क्षेत्रों के हजार व्यक्तियों को लेकर उनके विषय में सर्वेक्षणात्मक अनुसन्धान करना आरम्भ किया। इनकी जांच उनके आहार एवं रहन-सहन के विषय में करना निर्धारित हुआ। यह शोध तो अतिशय विस्मय-स्तिमित करने वाली थी। उदाहरणतया, मेट्टीमिटिन नामक एक व्यक्ति की बात करें। इसकी वय 49 वर्ष, व्यवसाय-कृषि तथा पशुपालन। शीतकाल में लकड़ी काटने को वनों में जाता। घोर परिश्रमी। इसका पिता 49 वर्ष की वय में हार्ट-एटेक से मरण को प्राप्त हुआ था। इसका बड़ा भाई 51 वर्ष

की आयु में इसी व्याधि से लोकान्तर-गत हो गया था। माता पर 57 वर्ष की वय में हृदय-शूल का आक्रमण हुआ था। कुछ ही काल पूर्व इसकी छोटी बहन को इस पाजी रोग ने दबोच लिया। यह छोटा था, तो उसके साथ 40 विद्यार्थी पढ़ते थे। इनमें एक तिहाई हृदय-रोग से परलोक के पथिक हो चुके थे।

इसी प्रकार की खूब-खूब जानकारी एकत्र हो चुकने पर इन लोकों के समक्ष एक चित्र आविर्भाव पाने लगा। किस आहार-द्रव्य का अतियोग होने पर उपभोक्ता के (खाने वाले के) लिए हृदय रोगोत्पादक स्थिति की वृद्धि हो जाती है, इस दिशा के अनुसन्धान से विदित हुआ कि, जो जन दूध एवं तज्जन्य आहार-कल्पनाओं का अति मात्रा में उपभोग करते थे—अन्य शब्दों में जिनके भोजन में स्नेह का प्रमाण अत्यधिक होता था—उनमें हृद्रोग होने की सम्भावना सविशेष होती थी।

इस अभियान के निदेशक (डाइरेक्टर) रूप में डाक्टर पेकठा पुस्का की नियुक्ति की गई थी। केवल 31 वर्ष वय का यह डाक्टर अतिशय बुद्धि-सम्पन्न और अनुभवी था। उसे इस अनुसन्धान में उत्कट रस था। फलतः उसने अपनी संपूर्ण शक्तियां इस अभियान में लगा दीं। परिणाम भी इसके असामान्य ही आए।

डॉ० पुस्का का कथन है कि, हमारे लिए यह पता लगाना सर्वथा सरल हो गया, कि करेलिया के निवासियों का मुख्य व्यवसाय पशु पालन का होने से वे अपने आहार में दूध तथा उसकी पनीर जैसी कल्पनाओं का विपुल मात्रा में उपभोग किया करते थे।'

डॉक्टर का मन्तव्य शत-प्रतिशत सत्य था। यहां का प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन प्रातराश में अतिस्नेह (फैट) युक्त दूध के दो से तीन गिलाश गटगटा जाता था। पश्चात्, ब्रेड पर अच्छी भली मात्रा में मक्खन चुपड़ कर खाता। ऊपर से क्रीम-मिश्रित कॉफी पीता। मध्याह्न तथा सायंकाल के भोजन में भी दूध की कल्पनाओं का ही ढेर-सा होता। शाक-भाजी का उपयोग तो न्यूनातिन्यून ही होता।

आहार इतना अयुक्त (असन्तुलित) हो तो उसके दुष्परिणाम न उपजें, तभी आश्चर्य कहा जाए। हरी शाक-भाजी नाम मात्र न हों, ऐसा भोजन चाहे जितना पौष्टिक हो तो भी अनुपयुक्त ही होगा।

इस प्रकार स्नेह प्रधान तथा असन्तुलित भोजन का उपभोग करने पर भी अधिकांश लोकों के शरीर मेदस्वी न होकर पूर्णतः सुघटित और सुडौल रहते। इसका कारण यह था कि, ये लोक खुले वातावरण में कठोर परिश्रम किया करते थे। वास्तव में तो, इनके शरीर ऊपर से देखने से भले दृढ़ दीखते हों, अन्दर से तो खोखले ही होते। उनके शरीर में रक्त के परिभ्रमण की गति अनियमित रहती। हृदय के स्पन्दन में भी अनियमितता पाई जाती है। इसका परिणाम क्या हो सकता है, यह सुगमता से समझा जा सकता है।

डॉक्टरों ने सहस्रों जनों की रक्त-परीक्षा की। उन्होंने पाया कि पच्चीस-पच्चीस वर्ष के युवकों में भी कॉलेस्टिरोल की मात्रा 40 मिलीग्राम अधिक थी। साधारणतः रस-रक्त में कॉलेस्टिरोल का प्रमाण 200 मिली ग्राम जितना हो, तो कोई क्षति नहीं। इनका भोजन ही ऐसा था कि, उससे कॉलेस्टिरोल की मात्रा में वृद्धि हो।

डॉ० पुस्का का कहना है कि, प्रति-दिन इतना सारा स्नेह (फैट) शरीर में जाता हो और उसके विपरीत परिणाम न उत्पन्न हों, तो ही आश्चर्य हो। मेरे देश के निवासी अपनी सरलता के शिकार हो गये।

पुरुष अपनी आयु के पचपनवें वर्ष में पहुँचे और स्त्रियां पचास वर्ष की हो जाएं तब तक तो उनके शरीर में कॉलेस्टिरोल की मात्रा बढ़ कर 200 से 60 मिली ग्राम अधिक हुई होती। रक्त के परिवहन में विघ्न उत्पन्न करने में यह स्थिति जवाबदेह होती।

ग्यारह सहस्र मनुष्यों का सर्वेक्षण किया गया। उससे यह अदभुत जानकारी प्राप्त हुई कि, बस्ती के 30 प्रतिशत अधिक व्यक्ति रक्तचाप से पीड़ित थे। एवं 54 प्र० श० पुरुष प्रति-दिन 20 अथवा अधिक सिगरेट पीते थे। सौभाग्यवश पहले के अनुसंधानों से विदित हो चुका था कि, धूमपान का हृदय से साक्षात् सम्बन्ध है। परन्तु यह धूमपान अयुक्त आहार के साथ संयुक्त होकर क्या अनर्थ वरपा कर सकता है, यह विदित न था।

1972 के मई मास में इन भयावह आंकड़ों को देखकर स्तब्ध हो गए अनुसंधाताओं, वैज्ञानिकों तथा डाक्टरों के समक्ष एक विकट समस्या आ उपस्थित हुई--करेलिया--निवासियों की आहार-विषयक चर्चा में कोई परिवर्तन लाया जाए तो हृद्रोग पर क्या इसका कोई

प्रभाव होना संभव है? डा० पुस्का को इस दिशा में अटूट श्रद्धा थी। उन्होंने अपनी टीम को कहा 'जैसे हो वैसे करेलिया के स्त्री-पुरुषों के भोजन में परिवर्तन लाकर ही हम निश्चिन्तता का श्वास लेंगे।'

इस प्रयोजन से सर्व-प्रथम व्यापक पैमाने पर जनता को प्रशिक्षित करना आरंभ किया गया। रेडियो और समाचार-पत्रों के माध्यम से प्रतिदिन लोगों के समक्ष उपर्युक्त प्रकार के तथ्यों का गंज खड़ा किया गया।

फिनलेंड की जनता यों अपेक्षाकृत अतीव जाग्रत् जनता है। तथापि उससे एक भूल हुई। इस भूल को सुधारने के हेतु, इस संकट के निवारण के लिए वह कटिबद्ध हो गई। परन्तु इस संकट का प्रत्युपाय क्या किया जाए? यह प्रश्न स्थान-स्थान पर पूछा जाने लगा। अब डाक्टरों के पास तो इसका उत्तर था ही। परन्तु वे जनता के समक्ष परिस्थिति की गंभीरता का संपूर्ण चित्रण उपस्थित करना चाहते थे।

डा० पुस्का एवं उनके एक सहकारी ने बेलियोडेरी के मालिक से मिलकर एक बात की; 'करेलिया विभाग में एकमात्र आपकी डेरी का दूध और उसकी कल्पनाएं बिकती हैं न?'

'लगभग ऐसा ही है। इस विभाग में दूध के विषय में हमारा एकाधिकार है।'

'बहुत अच्छी बात है। आप अब अल्प स्निग्धता (फैट) वाले दूध की जिन्स बेचें तो अच्छा हो। आज समग्र करेलिया में भोजन में स्नेह की मात्रा इतनी अधिक बढ़ गई है कि जनता के जीवन-मरण का प्रश्न खड़ा हो गया है।'

'आपका कथन सत्य है। लोकहितार्थ आगे से मैं ऐसा ही करूंगा।'

और अगले ही सप्ताह यह परिवर्तन क्रिया में आ गया। भोजन में अन्य परिवर्तन सोसेज प्रोडक्ट नामक मांसाहारमें किया गया। फिनलेंडवासियों को सोसेज बहुत भाता है। और इसमें स्नेह ठूंस-ठूंस कर भरा होता है।

आर्ने हेलोनेन अपने छोटे भाई से मिलने आया था। उसकी वय 47 वर्ष की थी। उसे 'हार्ट एटेक' हुआ था। डॉक्टर ने आर्ने को सूचित किया: 'जन-आरोग्य के हेतु हम एक विनती करना चाहते हैं।'

'डॉक्टर, यह क्या बोले! आपको तो हमें आदेश देना चाहिये।'

'अच्छी बात है। आप जो सोसेज बनाते हैं उसमें स्नेह (फैट) का प्रमाण घटा दें, तो बहुत अनुग्रह होगा।'

'जनता का हित होता हो, तो मैं इसके लिए उद्यत हूं। शेष फैट को मैं विदेशों में निर्यात करूंगा। मुझे तो उलटे लाभ ही होगा।'

'और बहुजन को भी लाभ होगा।' डॉक्टर के सहकारी ने हंस कर कहा।

छः महीने तक उसने प्रयोग किये। हर प्रकार के सोसेज बना-बना कर उन्हें रद्द कर दिया। अन्त में एक सरस फॉर्म्यूला हाथ में आया। इसके अनुसार स्नेह की मात्रा में 20 प्रतिशत न्यूनता होती थी, और स्वाद में कोई भिन्नता न आती थी। इस प्रकार एक बड़ा काम हो गया।

काज कॉस्केला नामक एक अनुसंधाता। उसे एक उदात्त विचार स्फुरित हुआ। डॉ० पुस्का के मत से यह एक भव्य विचार था।

कॉस्केला ने अपनी पत्नी को कहा: 'हम पतिदेवों के रक्षण का काम तुम लोगों के हाथों में है।'

'यह बात कहाँ से ले आये?'

'पत्नियां ही पति को जिला सकती हैं और मार भी सकती हैं। तुम लोग खरीद करती हो, रसोई करती हो, तुम्हीं परोसती हो, तुम्हीं जीवन को टिकाए रखती हो।'

'बात है क्या, कुछ स्पष्ट तो कहिए न।'

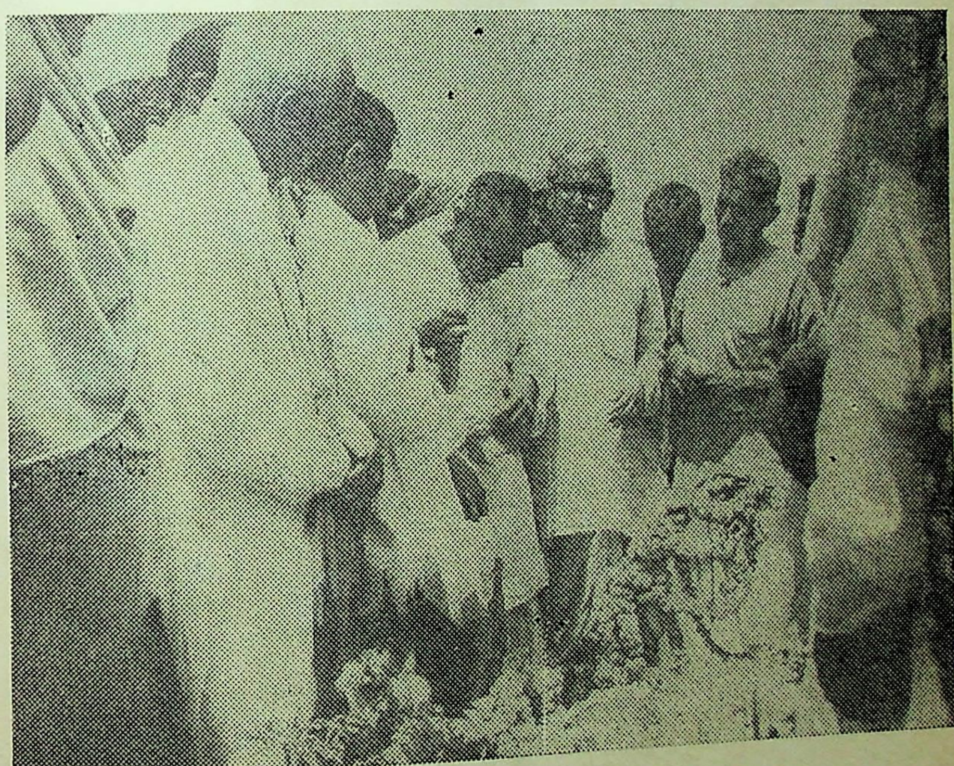
'तुम स्त्रियों को समझाने की कार्यवाही हाथ में ले लो। समस्त फिनलेंड को जाग्रत करो। उन्हें बता दो कि, आहार में परिवर्तन लाने का काम तुम्हारे हाथ में है। फिर यह कार्य तुम्हारे लिये है भी अति सुगम।'

और सारे फिनलेंड के महिला-मंडल काम में लग गए। इन सब में 'माटा एसोसिएशन'—नामक मंडल ने तो प्रचार की पराकाष्ठा ही कर दी। ग्यारह हजार सदस्यों ने तीन सप्ताह में एक-एक कुटुम्ब को जाग्रत कर दिया।

इस मंडल की शाखाएं सारे फिनलैंड में व्याप्त थीं। प्रत्येक शाखा में हृदय रोग और आहार के परस्पर कार्य-कारण भाव के सम्बन्ध में जानकारी कराई जाती थी। कौन आहार-द्रव्य रोग के ह्रास को कितनी मात्रा मे



अंग्रेजी दैनिक 'सर्चलाइट' के एडवाइजर श्री राजेन्द्र शर्मा दिवंगत दुर्गा बाबू के शव पर माल्यदान करते हुए।



भारत प्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सक एवं बिहार विश्वविद्यालय के भू० पू० उपकुलपति डा० दुखन राम अपनी अन्तिम प्रणति निवेदित करते हुए। उनकी बायीं ओर बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के निदेशक श्री बी० एल० शर्मा, एवं दायीं ओर प्रतिष्ठान के व्यवस्थापक श्री माहेश्वर मिश्र हैं।



चिरैयाटांड स्थित श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन से दिवंगत दुर्गा प्र० शर्मा की अर्थी शव-यात्रा के लिए बाहर ले जायी जा रही है।



शवयात्रा बांसघाट (श्मशान) पर आकर रुकी। शव के साथ बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के सैकड़ों कर्मचारियों के अतिरिक्त नगर निवासी भी भारी संख्या में दिखायी दे रहे हैं।

बढ़ाता है। इसके व्यवस्थित आंकड़े प्रस्तुत किये जाने लगे।

न्यून स्नेहांश वाले आहार तथा उनकी कल्पनाएं किस प्रकार बनाई जा सकती हैं, इसका प्रत्यक्ष निदर्शन कराना आरम्भ किया गया। चहुं ओर स्नेह (फैट), आहार और रोग से मुक्ति की चर्चा चालू हो गयी।

बहिनों को एक वस्तु सविशेष समझाई जाती थी: 'अपने पतिदेवों को यह कदापि सूचित न करें कि, आहार में क्या परिवर्त्तन किया जाने लगा है। दैनिक भोजन में हरी शाक-भाजी की मात्रा बढ़ाती जाओ और जिन द्रव्यों में स्नेह का प्रमाण अधिक हो ऐसे द्रव्यों का उपयोग उत्तरोत्तर घटाती जाओ, अथवा आहार में स्नेह की मात्रा न्यून करती जाओ। अच्छी तरह समझ लो कि, तुम्हारे पति का आरोग्य ही नहीं, जीवन ही तुम्हारे हाथ में है। याद रखो कि, तुम अपना और अपनी संतानों का भी भविष्य सुधार रही हो।'

इतनी उग्र प्रचार-प्रवृत्ति और परिश्रम का परिणाम तत्काल प्रत्यक्षगोचर हो, यह सम्भव नहीं। परन्तु इन कुटुम्बों के बालक बड़े होंगे, तो निःशंक हृद्रयरोग के आक्रमण के भय से लगभग मुक्त हो चुके होंगे। एक बहिन का कहना है कि: 'हमने अपने बालकों में न्यून स्नेहांश-युक्त आहार-द्रव्यों के सेवन की आदत डाली है। हमारी पुत्रियाँ कल गृहिणी बनकर जहां भी जाएंगी, वहां अपने पितृ-गृह जैसी ही आहार-कल्पनाएं बनाकर परोसेंगी। इस प्रकार हम न केवल वर्त्तमान पीढ़ी के, प्रत्युत आगामी पीढ़ियों के कुटुम्बों के कल्याण की साधना में निमग्न हैं। तो फिर हमें आह्लाद कैसे न हो।'

डा० पुस्का कहते हैं: 'आज के बालक अपने पिता-पितामह-प्रपितामह की तुलना में बहुत अधिक जीएंगे, इस विषय में मेरे मन में तिल मात्र संशय नहीं।' इनका यह विश्वास विज्ञान पर आधृत है। मनुष्य जब भी अपने आहार-विहार की आदतों को सुधारता है, तो लाभ हुए बिना नहीं रहता।

आहार के अतिरिक्त धूमपान एवं 'हाईपरटेन्शन' (हाई ब्लड-प्रेशर) को भी नियंत्रित करने के प्रयास चालू हैं। 'हाइपरटेन्शन' नव-निर्मित संज्ञा है। यह वर्त्तमान युग की देन है। मनुष्य खूब दौड़-धूप करके और तीव्र चिन्तासक्त होकर इस विलक्षण मानसी स्थिति को स्वयं आमंत्रित करता है।

1972 में धूमपान पर नियंत्रण का आरम्भ किया गया। 1975 में केवल 42 प्रतिशत पुरुष और 11 प्र० श० स्त्रियां धूमपान करती थीं। इन अवशिष्ट स्त्री-पुरुषों को भी इस व्यसन से मुक्त करने के प्रबल प्रयास किए जा रहे हैं। इनकी सफलता असंदिग्ध है।

परन्तु डाक्टरों का वास्तविक मोर्चा तो 'हाइपरटेन्शन' के प्रति है। सारे देश में सतह सहस्र स्त्री-पुरुष गणना द्वारा इस व्याधि से अभिभूत पाए गए। इन सबको पकड़-पकड़ कर हास्पिटलों में भर्ती किया गया। ये जब अपनी जीवन-चर्या को बदलने को उद्यत हुए, तबही इन्हें मुक्त किया गया। ऐसा परिवर्त्तन शक्य है, यह क्या परितोष का विषय नहीं?

इस अभियान का परिणाम यह लसित हुआ है कि, समग्र प्रदेश में हृदय-रोग के आक्रमण में 40 प्र० श० न्यूनता आ गई। हृद्रोग से मृत्यु का अंक भी अच्छी-भली मात्रा में घट गया है। परन्तु डाक्टरों ने इस बात पर विशेष ध्यान रखा है कि, आवश्यक से अधिक आशावादी न हो जाएं।

यह ध्रुव सत्य है कि, फिनलेंड की जनता का यह अभियान विश्व भर में स्वास्थ्य-सम्बन्धी गुरुतम साहस है। केवल पांच वर्षों में इन लोकों ने आधुनिक युग के अभिशाप-रूप इस रोग पर प्रभुत्व प्राप्त कर विक्रम (रेकर्ड) स्थापित किया है, इसमें लेश मात्र संशय नहीं।

# संस्कृत वाङ्मय में बरगद

डा० सीताराम झा
प्राणाचार्य एवं आयुर्वेदाचार्य, अनुसंधान-सहायक
वनौषधि सर्वेक्षण एकक,
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, जम्मू (तवी)

**सामान्य परिचय**

अत्यन्त संक्षेप में 'बरगद' वटादिवर्ग एवं दंशरोमकुल का एक दीर्घायु अति प्राचीन सुप्रसिद्ध, दिव्यगुण तथा सामयिक गुणयुक्त अत्युपयोगी वृक्ष है। नगरीय-ग्रामीण जनता इसके चिकित्सीय, आर्थिक तथा व्यापारिक बहु उपयोगिता से पूर्ण परिचित तथा लाभान्वित हैं। बरगद के परिचयज्ञापक एवं उत्पत्तिबोधक संस्कृत पर्याय नामों में न्यग्रोध, वट, भाण्डीर, शृङ्गी, शिफारुह एवं वनस्पति का मुख्य रूप से उल्लेख है।

**आधार एवं स्वरूप**

हमारे देश में 'बरगद' का सबसे प्राचीन नाम न्यग्रोध है। बाद में इसका नाम 'वट' भी पड़ा है। यजुर्वेद और अथर्ववेद इन दोनों संहिताओं में न्यग्रोध नाम से उल्लेख मिलता है। इसके बाद के साहित्य शतपथ ब्राह्मण (800 ई० पू०) कात्यायन श्रौत सूत्र आदि ग्रन्थों में भी इसका न्यग्रोध के नाम से उल्लेख हुआ है। आदि कवि महर्षि बाल्मीकि (400 ई० पू०) ने रामायण में इस वृक्ष के लिए 'वट' नाम भी दिया है लेकिन अधिक स्थलों पर न्यग्रोध नाम ही लिखा है।

चरक में न्यग्रोध और वट दोनों नामों से बरगद के चिकित्सा-सम्बन्धी उपयोगों का वर्णन है। चरक के मूत्र-संग्रहणीय, कषाय स्कन्ध, गर्भस्थापन - विधि तथा ज्वर चिकित्सा में और सुश्रुत के न्यग्रोधादिगण में इसका उल्लेख है। भाव-प्रकाश में यह क्षीरी वृक्षों एवं पंच-वल्कल में लिया गया है।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में रचे गए काव्य-ग्रन्थों में कवियों का झुकाव न्यग्रोध नाम की ओर अधिक था। कविवर भट्ट नारायण (600 ई० पू०) ने वेणी-संहार में चौथे और पांचवें दोनों अंकों में 'न्यग्रोध' नाम दिया है।

मध्य तथा उत्तरकालीन उपनिषदों में यथा-कृष्णोप-निषद्, रामरहस्योपनिषद और शिवोपनिषद आदि में न्यग्रोध नाम नहीं मिलता। उपर्युक्त सभी उपनिषदों में इस वृक्ष का 'वट' नाम से उल्लेख हुआ है।

उत्पत्ति तथा उपलब्धि की दृष्टि से एतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार भूमि पर 'न्यग्रोध' का वृक्ष सबसे पहले कुरुक्षेत्र में उत्पन्न हुआ। प्राचीन काल में देवताओं ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ करके स्वर्गलोक की प्राप्ति की थी—वहीं न्यग्रोध का प्रादुर्भाव यज्ञ के सोमर से होना बताया गया है[1]।

शतपथ ब्राह्मण के एक आलंकारिक वर्णन में इन्द्र की हड्डियों से गिरी स्वधा द्वारा न्यग्रोध की उत्पत्ति लिखी है[2]।

**स्वरूप**

वनस्पति-जगत में पर्ण की सबसे बड़ी मूर्धा वास्तव में भारतीय 'बरगद' का वृक्ष बनाता है। इतना विशाल और विस्तृत वृक्ष अपनी भारी-भरकम शाखाओं के बोझ को कैसे सम्हाले? प्रकृति ने इसका प्रवन्ध बड़ा सुन्दर किया है। शाखा जब बड़ी हो जाती है तो उसमें एक वायव्य जड़ लटक पड़ती है जो नीचे की ओर बढ़ती हुई जमीन में धंस जाती है। शाखाओं के बढ़ने और जटाएं (वायव्यमूल) छोड़ने का क्रम कभी समाप्त नहीं होता।

**छाल**

श्वेत, धूसर, मोटी एवं स्वाद में कसैली होती है।

**पत्ते**

बड़े, चर्म सदृश, गूढ़े स्निग्ध हरित होते हैं। इसके नूतन पत्र शृङ्ग जैसी नुकीली कलिकाओं में लिपटे हुए निकलते हैं। अतः इसे 'शृङ्गी' कहते हैं।

**पुष्प**

तथाकथित फल के भीतर छोटे-छोटे पुष्प होते हैं जो डण्ठलरहित सूक्ष्म होते हैं। पुष्पकर्णिका (पुष्पाधार)

पत्र-कोण से निकल कर फल का रूप धारण कर लेता है। इसलिये अदृष्टपुष्प होने के कारण इसे वनस्पति कहा गया है। पुष्प वसन्त-ग्रीष्म में तथा फल वर्षा में होते हैं।

**सांस्कृतिक तथा धार्मिक महत्व**

संस्कृत साहित्य के प्राचीन कवियों ने इसे अतिशय शोभावान वृक्ष की तरह वर्णन किया है। राजा भोज ने चम्पू रामायण में घने, श्यामल पत्तोंवाले व्योमरूपी न्यग्रोध वृक्ष के नीचे आती हुई जटाओं की तुलना पृथ्वी पर आ लगी वर्षा की धाराओं से की है।[3] श्री हर्ष (12वीं शती) के नैषध में पुष्करद्वीप का सौन्दर्य तो बरगद ही है।[4]

छान्दोग्योपनिषद के एक संवाद में श्वेतकेतु को आत्म-ज्ञान देते हुए आरुणि बतलाते हैं कि जिस प्रकार न्यग्रोध फल के एक बीज के अन्दर महान वृक्ष विद्यमान है किन्तु वह दीखता नहीं—उसी प्रकार प्रकृति में परमात्मा व्याप्त हैं।

धर्म-ग्रन्थों से पता चलता है कि हमारी राज्य व्यवस्था में सीमाओं का निर्धारण करने के लिए ग्रामों और नगरों के चारों ओर सीमा-वृक्ष के रूप में 'बरगद' और 'पीपल' आदि रोपे जाते थे।[5]

संस्कृत की एक लोकोक्ति में 'बड़' की छाया की गरमियों में जहाँ शीतता बताया है, वहाँ सर्दियों में गरम बताया है।[6]

श्री हर्ष ने न्यग्रोधमण्डल की हिमशीतल छाया तले साक्षात ब्रह्मा का आवास बताया है।[7]

पद्मपुराण के अनुसार 'वट' रूद्र का रूप है। (रूद्र-रूपो वेटस्तद्वत-)। आयु, अरोग्य, सौभाग्य, सम्पत्ति और सन्तति की कामना से जो नारी वटसावित्री का व्रत रखती है अथवा इसकी सिद्धि के लिये उद्यापन करती है उसे यथेष्ट फल मिलता है।[8]

पुराकाल में जंगलों के अन्दर रहने वाली यज्ञ, गंधर्व आदि जातियां वट वृक्षों को घर बनाकर रहती थीं। सिद्ध पुरुष इनकी शीलल छाया में निवास करते थे। वनवास के समय चित्रकूट को जाते हुए सीता जी प्रयाग कालिन्दी के तट पर स्थित बरगद के महावृक्ष को नम-स्कार किया था और हाथ जोड़कर उससे निर्विघ्नता के लिये आशीर्वाद भी मांगा था।[9]

सामयिक कार्यों के लिए 'न्यग्रोध' का उपयोग करने के उदाहरण भी मिलते हैं। युद्ध क्षेत्र में श्रान्त वीरों के विश्राम के लिए 'न्यग्रोध' वृक्ष उचित आश्रय समझा जाता था। मूर्छित दुर्योधन को एक 'वट' वृक्ष के नीचे भूमि-शय्या पर लिटाया गया था, जिससे मूर्च्छा दूर हो जाए[10]।

**औद्भिदीय विवेचन**

प्रकार भेद से रामायण में 'बरगद' के विभिन्न नामों के लिए चार शब्द आये हैं। 'न्यग्रोध, श्यामन्यग्रोध-श्याम, वट, वट और भाण्डीर। प्रयाग में कालिन्दी के तट पर जिस बरगद के वृक्ष को सीता जी ने नमस्कार किया था उसे वाल्मीकि ने 'श्यामन्यग्रोध' और 'श्यामवट' लिखा है[11]। पम्पासर में श्री रामचन्द्र जी ने जिस बरगद वृक्ष का वर्णन किया है—रामायण में 'वट' और 'भाण्डीर' नाम मिलते हैं[12]। किष्किंधा से दक्षिण सह्य पर्वत पर स्थित बरगद के वृक्षों का वर्णन रामायण में न्यग्रोध नाम से हुआ है[13]।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 12 में बरगद का एक प्रकार 'कृष्णवट' नाम का उल्लेख आया है। इस सम्बन्ध में प्रचलित आख्यायिका के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण ने इसके पत्र को हृदयाकार प्याले के सदृश रूप दिया था जिस रचना को संस्कृत में पुट कहते हैं। भागवत् (नवीं शती ई० प०) तथा दूसरे मध्यकालीन साहित्य में 'वट' के इसी पुट में श्रीकृष्ण के सोने की कल्पना की है। इसी से इस भेद का नाम कृष्णवट पड़ा था[14]।

स्वरूप-भेद मुख्य रूप से पुष्प और जटाओं का है। अमरकोश में वानस्पत्य और वनस्पति की परिभाषा इस प्रकार है कि 'वानस्पत्यः फलैः पुष्पात,वनस्पतिर्ना द्रुमात् विना पुष्पं फलिद्रुमैं'। इसी परिभाषा की पुष्टि हिन्दी विश्वकोष ने भी की है—'वनस्पत्यः पुष्पजात फलवृक्षः' अर्थात् वह वृक्ष जिसमें पहले फूल लग कर पीछे फल लगते हैं यथा—आम, जामुन आदि।

'वनस्पति'—पुष्पहीन फलवान वृक्षः अर्थात्—वह वृक्ष जिसमें फूल न हो केवल फल ही हो यथा--गूलर, बड़, पीपल, कटहल आदि।

महाकवि श्री भवभूतिविरचित 'उत्तररामचरितम्' अंक—1 में लक्ष्मण कहते हैं--(लक्ष्मण--एष भरद्वाजाऽऽ-

वेदितश्चित्रकूटयायिनी वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः श्याम नाम) कि कालिन्दी के तट पर चित्रकूट को जाने वाली सड़क के किनारे अवस्थित जिस श्याम नामक 'वट' को भरद्वाज ने बताया था वह यहां खड़ा है। इसकी व्याख्या में श्री मज्जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य लिखते हैं कि 'यमुनायाः तटे वनस्पतिः अपुष्पफलासमन्वितः वटः तरुविशेषः'। अब यहां यह शंका उत्पन्न होती है कि क्या बरगद में पुष्प नहीं होता? लगता ऐसा है कि बड़ फूल नहीं धारण करता, केवल फल ही पैदा करता है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है।

बरगद, गूलर आदि दूध वाले पेड़ में फूल न आने के लोक-विश्वास के विपरीत महर्षि वाल्मीकि ने इन वृक्षों के फूलों का उल्लेख किया है। वाल्मीकि ने दिखाया है कि वालि का वध करके सुग्रीव को शासन दिया गया है तो अभिषेक की सामग्री में बरगद आदि क्षीरी वृक्षों के प्ररोह और फूल भी लिए गये थे।[15]

पुराने ऋषि-महर्षियों के सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण का यह विशिष्ट उदाहरण है।

चरक ने 'वनस्पति' की परिभाषा लिखते समय इसका उल्लेख किया है—'अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः।' यहां पर अपुष्पाः इस शब्द का अर्थ पुष्परहित नहीं है बल्कि इसका अर्थ है अदृष्ट पुष्प अर्थात गुप्त पुष्प जो दिखाई न पड़े। ऐसी ही उदुम्बर, अश्वत्थ, पाखर इत्यादि के भी पुष्प होते हैं।[16]

चरक चिकित्सा-स्थान अध्याय-3 में ज्वर चिकित्सान्तरगत चन्दनादि तैल के प्रयुक्त द्रव्यों में न्यग्रोध और वट दोनों अलग-अलग नाम से निर्देश हैं। वट और न्यग्रोध में अन्तर बताते हुए इसका निराकरण चक्रपाणिदत्त टीका में इस प्रकार है कि 'निष्प्ररोहो वटः न्यग्रोधस्तु प्ररोहवान।' अर्थात् ऐसे बरगद जिसमें प्ररोह व जटायें न हों इस भेद को वट कहना चाहिए और जटाओं वाले बरगद को न्यग्रोध।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण में वर्णित बरगद के ये चार भेद महर्षि वाल्मीकि स्पष्ट रूप से जानते थे। अदृष्ट पुष्प के निराकरण में प्रा ीन आचार्यों के सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण के इस विशिष्ट उदाहरण से हमें पेड़-पौधों के सम्बन्ध में उनके प्राचीन गौरव का पता चलता है और एक नई दिशा में सोचने की प्रेरणा भी मिलती है।

**औषधीय गुण-धर्म विवेचन**

वटप्ररोहा/, त्वक्, शृंगाणि, क्षीरं च उपयुक्तं भवति क्रियासु।

षटस्य गुणा :—वटः शीतो गुरु ग्राही कफ पित्तव्रणापहः।
वर्ण्यो विसर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत्॥
भा० प्र०

मूत्रसंग्रहणीयेषु द्रव्येषु वटःश्रीचरकमतेन समाविष्टः।

रसः— वटस्य सर्वांगाणां रसः कषायः।

विपाकः— नियमानुसरेण कषायरसस्य वटस्य विपाकः कटुकः।

वीर्य च— वटः शीतः पृथिवीवायुबाहुल्यात्।

अन्यो गुणः— वटः गुरुः। कषायरसस्य पृथिवीवायुबाहुल्यात् गुरुत्वम्।

दोषेषु कार्यम्—शैत्यात् कषायत्वात् वटः पित्तं शमयति तथा वातं च प्रकोपयति।

कषायरसत्वात् कफघ्नो भवति।

धातुषु च कार्यम्—शैत्यात् कषायत्वाच्च रक्तगतं पित्तं कफं च शमयति, रक्तं च शोधयति। रक्तस्य प्रसादनं च कुरुते। विशेषेण तु (न्यग्) रक्तं रोधयति कषायत्वात् गौरवाच्च।

मले—शरीरस्थं क्लेदं मेदश्च विशोषयति कषायत्वात् वटः। क्लेदमेदोविशोषणात् मूत्रस्य संग्रहणं भवति।

वटस्य रोगेषु चोपयोगः—सर्वेषु पित्तजेषु रक्तजेषु पित्तकफजेषु च रोगेषु वटस्य उपयुक्तानि भवन्ति। व्रणः संजायते प्रायः पाकात् श्वयथुपूर्वकात्। तत्र शोफे, वीसर्पे, मसूरिकायां, भगंदरपीटिकावस्थायां, उपदंशजे व्रणे च पावस्य रक्षणार्थं न्यग्रोधादिगणस्य पाने लेपने, सेचने च उपयोगो भवति। व्रणावस्थायां तु व्रणशोधनार्थं वटस्य क्वाथेन व्रणधावनं प्रशस्यते। प्रमेहपीटिकायां, तथा मेदोदोषाद्भवपीटिकायां पाकशान्त्यर्थं वटस्य क्षीरस्य, वल्कलस्य वा प्रसेचनं उपयुक्तं भवति। प्रमेहजे व्रणे कफमेदः क्लेदोपशान्त्यर्थं वटक्वाथः प्रशस्तः। अस्थिभंगे संधिभंगे च वटवल्कलजाः कुशाः प्रशस्ताः।

रक्तपित्ते—ऊर्ध्वगे तथा अधोगे रक्तपित्ते न्यग्रोधस्या-

शयेन उपयोगः। गुदगते रक्तपित्ते वटप्ररोहैः शृतं क्षीरं अथवा वटशृंगैः शृतं पयः हितम्।

मेदतोऽतिप्रवृत्ते रक्ते वटप्ररोहैः शृतं क्षीरं तथा च न्यग्रोधवल्कलक्वाथस्य उत्तरो बस्तिः प्रशस्यते।

न्यग्रोधशृंगान् जर्जरीकृत्य तप्ते जलेऽहोरात्रं वासयेत्। तेनाम्बुना घृतं पचेत्। तच्च घृतं शर्करामाक्षिकयुक्तं लेहयेत्। अधोगे रक्तपित्ते ऊर्ध्वगेऽपि वा तद् उपयुक्तम्। वटस्य क्षीरं सर्करं विशेषेण योनिमार्गगं रक्तं जयति।

उरःक्षते—न्यग्रोधशृंगैः श्रृतात् क्षीरात् समुद्भूतेन सर्पिषा शल्योदनं क्षतोरस्कः नरः संधानार्थमाद्यात्।

रक्तातिसारे, रक्तप्रवाहिकां गुदभ्रंशे च—वटप्ररोहजसिद्धक्षीरस्य पिच्छाडस्तिः घृतमाक्षिकशर्करान्वितः उपयुक्तो भवति। वटपल्लवैः शृतं छागक्षीरं पित्तातिसारे रक्तातिसारे गुदपाके च पाने, भोजने गुदसेचने च हितकरं भवति।

पित्तजच्छर्याम्—दुर्जयायां तृष्णायां च—वटशृंगावरोहजः क्वाथः शीतकषायो व क्षौद्रयुक्तः पीतः छर्दि ज्वरं अतिसारं, मूर्च्छां, दुर्जया तृष्णां च हन्ति।

प्रमेहे—मूत्रसंग्रहणत्वात् सर्वप्रमेहेषु वटस्योपयोगः। तत्र विशेषेण पित्तजमेहे। प्रमेहस्योपद्रवशान्त्यर्थं, पीटिका शान्त्यर्थं च न्यग्रोधस्य उपयोग.। वटवल्कलस्य चूर्णं मधुना लिह्यात् तत् पित्तप्रमेहं हन्ति। तथा च आहारे वटफलानि प्रमेहे उपयुक्तानि भवन्ति।

योनिरोगेषु—वटशृंगानि शुक्रधातुबलकराणि गर्भाशय बलकराणि च भवन्ति। रक्तजयोन्यां, तथाश्वेतप्रदरे च वटवल्कलकषाय योनिप्रक्षालनार्थं हितः। तथा च सः पाने हितकरो भवति। वटक्षीरं सशर्करं गर्भाशय गतरक्तं हन्ति।

वीसर्पे मसूरिकायां दाहे च – पित्तजे बीसर्पे वटांकुरलेपनात् वटवल्कलस्य प्रलेपनाद्वा पित्तस्य दाहस्य च शांतिर्भवति। वीसर्पे दाहे च शीतत्वात्, कषायत्वात् स्तंभनाच्च पाने लेपने च वटस्योपयोगः पाकरक्षणर्थं भवति। मसूरिकायां शीतोदकेन वटत्वग् प्रलेपः हितः। तेन दाहशांतिर्भवति। तथा च रक्तस्रवस्य भयं नावतिष्ठति।

पुंसवनविधौ—वटस्य प्रथमोद्भिन्नस्य वटशृंगस्य अष्टकं पयास कल्कीकृत्य नासया मुखेन वा पीतं पुत्रोत्पादकं भवति। यस्याः पुत्रो नोत्पद्यते तथोत्पन्ना वा चिरं न जीवति तथैव पातव्यम। वटस्य प्रभावादेव एतत् कार्यं भवति।

**आभार प्रदर्शन**

इसके लिए युनिट के परियोजना अधिकारी महोदय का लेखक विशेष रूप से आभारी है, जिनके द्वारा दिये गए पथप्रदर्शन के आधार पर ये कार्य पूर्ण हुए हैं।

---

1, 'तेषां यश्चमसानां रसोऽवौऽत्तेऽत्ररोधा अभन्नथय उर्ध्वस्तानि फलानि"।
—ऐ० ब्रा० श. 5 अ. 35 : 31

२. "अस्थिभ्य एवास्य स्वधाऽस्रवत्स न्यग्रोधोऽभवत्"।
—श० प्रा० 12, 3, 2, 7, 9

3. घनश्यामलपत्रस्य व्योम-न्यग्रोधशाखिनः।
प्ररोहा इव लक्ष्यन्ते वारिधारा धरांगता॥
—चम्पू रामा. कि. का. 29

4. न्यग्रोधनादिव दिवः पतदापादे-
न्यंग्रोधमात्मभरधारमिवावरोहै।
तं तस्य पाकिफलनीलदलद्युतिभ्यां
द्वीपस्य पश्य शिखिपत्रजमातपत्रम्॥
—नैषधीय चरितम् 11 ; 30

5. सीमावृक्षांस्तु कुर्वीत न्यग्रोधोश्वत्थकिंशुकान्।
शाल्मलीसालतालांश्च क्षीरीणाश्चैव पादपान्॥
—मनु॰

6. कूपोदकं वटच्छाया श्यामा स्त्री तरुणं दधि।
शीतकाले भवेदुष्णं उष्णकाले च शीतलम्॥

7. देवः स्वयं वसति तत्र किल स्वयम्भू-
न्यंग्रोधमण्डलतले हिमशीतले यः।
सत्वां विलोक्य निजशिल्पमनन्य कल्यं
सर्वेषु काहषु करोतु करेण दर्पम॥
—नैषधीय चरित, सं 11 ; 29

8. आयुरारोग्यसौभाग्य संपत्सन्तति काम्यया।
या नारी वटसावित्री व्रतमात्र करिष्यति॥
गृहीतं तत्र सिद्ध्यर्थमुद्यापनयथापि वा।
यथाशक्ति यथावित्तं सा तत्फलामवास्यति॥
—प्र० मा०श० 214, 72 ; 46-47

9. ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम्।
परीतं बहुभिर्वृक्षैः श्यामं सिद्धोपसेवितम्॥

तस्मिन्सीतांजलिं कृत्वा प्रयुंजीताशिषां क्रियाम् ।
समासाद्य च तं वृक्षं वसेद्वति क्रमेद्वा ।।
—रामायण, अयोध्या का० सर्ग 55; 6-7

10. अये, अयमसौ सरसीसरोज विलोलनसुरभिशीतल-मातरिश्वसंवाहित सान्द्रकिसलयो न्यग्रोधपादपः । उचिता विश्रामभूमिरियं समरूव्यापार खिन्नस्य वीर-जनस्य। --वेणीसंहार, अंक-४

11. तेषु ते प्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात् ।
श्यामं न्यग्रोधमासेदुः शीततां हरितच्छदम् ।।
न्यग्रोधं समुपागम्य वैदेही चाभ्यवन्दत ।
नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिव्रतम् ।।
--रामा० अयो० का० सं ५५; 23-34.

12. तिलकैर्बीजपूरैश्च वटैः शुक्लद्रुमैस्तथा ।
पुष्पितैः करवीरैश्च पुंनागैश्च सुपुष्पितैः ।।
मालतीकुन्द गुल्मैश्च भाण्डीरैर्निचुलैस्तथा ।
अशोकैः सप्तपर्णैश्च केतकैरतिमुक्तकैः ।
--रामा० अरण्यकाण्ड--सं 76; 16-17

13. अशोकांश्च करंजांश्च प्लक्षन्यग्रोध पादपान् ।
पश्यन्नपि ययौरामः सध्यस्य मलयस्य च ।।
--राम० युद्ध का सर्ग 4: 71-73

14. करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि ।।
तस्मिन् पृथिव्यां ककुदिप्ररुढं वटं च तत्पर्णपुटेशयानम् ।
ताकं च सप्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितोऽपाङ्ग निरीक्षणेन् ।।
--भागवत स्कन्ध-12

15. सक्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहत्कुसुमानि च ।
शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेतं चैवानुलेपनम् ।।
रामा० कि० का० 26;25

16. भा० प्र० निघण्टु-वटादिवर्ग-टीकाकार—
विश्वनाथ द्विवेदी

# आयुर्वेद-अनुसन्धान के बढ़ते चरण

## गृध्रसी रोग पर चिकित्सात्मक गवेषणा

### (वातारि पाक के चिकित्सालयीय शोध परिणाम)


**वैद्य मदनगोपाल शर्मा, भिषगाचार्य**
एच० पी० ए० जामनगर (गुजरात)
वरिष्ठ विशेषज्ञ एवं प्रभारी अधिकारी
एवं
**वैद्य लोकनाथ शर्मा, भिषगाचार्य**
आयुर्वेद बृहस्पति (कायचिकित्सा) रा० वि०वि०
सहायक विशेषज्ञ चिकित्सक;
राजकीय आयुर्वेदिक अनुसन्धान केन्द्र, उदयपुर


आचार्य चरक ने गृध्रसी का सामान्यज एवं नानात्मज उभयविद विकारान्तर्गत उल्लेख किया हैं। गृध्रसी वेदना प्रधान कष्टदायक व्याधि हैं। गृध्रसी रोगी प्रतिक्षण वेदना से ग्रसित रहते हैं तथा उक्त रोग मानव शरीर में पांडुता, देह प्रवृक्रता, मांस शोष क्रिया-हानि आदि स्थायी विकृतियां भी कालान्तर में उत्पन्न कर सकता है। वात की अभिवृद्धि में सहायक शीत गुण व्याध्युप्ताव में सहायक होता है। मेरु प्रदेश होने के कारण इस क्षेत्र का जल गुरु हैं परिणामतः सामज व्याधिया उक्त क्षेत्र में बाहुल्येन देखी जा सकती है। गृध्रसी सामज व्याधि हैं तथा अपानवात वैगुण्य के परिणाम स्वरूप रोग की सम्प्राप्ति बनती हैं। इस रोग की प्रायः लाक्षणिक चिकित्सा ही आधिक्येन देखी जाती हैं। रोग की सर्व सुलभ चिकित्सा के लिए वातारिपाक का उक्त चिकित्सा के संदर्भ में प्रयोगार्थ चयन किया गया है।

राजकीय मदन मोहन मालवीय आयुर्वेदिक महाविद्यालयान्तर्गत संचालित राजकीय आयुर्वेदिक अनुसंधान केन्द्र के आतुरालय में रुग्ण का नैदानिक परीक्षण विभिन्न प्रपत्रकों के आधार पर किया जाता हैं तथा आवश्यकतानुसार विकृति विज्ञानीय परीक्षण प्रयोगशाला में करवाने का प्रयास किया जाता हैं प्रातः-सायं वातारिपाक का सेवन करवाया गया, औषध प्रयोग के साथ-साथ स्थानंजयेद्धि पूर्व सिद्धान्त के आधार पर पृष्ठ, कटि, स्फिकं जानु, जंघा पाद आदि स्थानों पर प्रकुपित दोषों द्वारा जो 'स्रोतोरोधादि विकृतियां उत्पन्न होती हैं। उनमें शमन क्रिया हेतु नारायण तेल से वैज्ञानिक अभ्यंग एवं वाष्प स्वेद तथा पिण्ड स्वेद का भी प्रयोग करवाया गया हैं।

**प्रयोगीय औषधि मात्रा**

प्रतिदिन प्रातः सायं 10 से 20 ग्राम तक की मात्रा में—वातारिपाक दुग्ध या उष्ण जल के साथ सेवन करवाया गया हैं।

**तालिका संख्या १**
**लिंगानुसार वर्गीकरण**

| क्रमांक | लिंग | प्राप्त रोगी | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | पुरुष | 7 | 39 |
| 2. | स्त्री | 11 | 61 |
| 3. | अधित रोगी | 18 | — |

परीक्षणार्थ प्रविष्ट 18 रोगियों का लिंगानुसार विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि अधीत रोगियों की संख्या अधिक रही जिनका 61 प्रतिशत रहा एवं पुरुष रोगी 39 प्र०श० रोग ग्रसित अवस्था में प्रविष्ट हुए। भारतीय महिला वर्ग प्रायः प्रर्युषित आहार स्वयं सेवन करता है पुरुष को प्रदान नहीं करता ।साथ ही ग्रामीण और पिछड़े वर्ग की स्त्रियों को पोषाहार क ।अभाव ही रहता है। अतः आवृतवात प्रधान विकृति से होने वाली युक्त व्याधि का प्रतिशत स्त्रियों में अधिक उपलब्ध हुआ।

## तालिका संख्या—२

### वयानुसार वर्गीकरण

| बाल | | | मध्य | | वृद्ध | | | अधीत रोगी |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| क्षीरप | क्षीरान्नाद | अन्नाद | यौवन | सम्पूर्णता | परिहाणि | वृद्ध | | |
| 1 वर्ष | 1 से 2 वर्ष | 3 से 16 वर्ष | 17 से 21 | 21 से 30 | 31 से 40 | 41 से 70 | 70 से अधिक | |
| ... | ... | ... | 2 | 2 | 4 | 9 | 1 | 18 |
| प्रतिशत ... | | — | 11 | 1, | 32 | 50 | 6 | 100 |

वयोअहोरात्रि मुक्तानां तेअन्तमध्यादिका क्रमात्, के सिद्धान्त पर प्रायः उक्त व्याधि की सर्वाधिक प्रतिशत 50 प्रतिशत परिहाणि में अंकित की गई प्रकृत्याशीर्यमाण शरीर के निरन्तर शीर्णता के प्रति तथा वात से विषमाग्निवशात् अपान विकार से या सम्यक् परिपोषणाधीन आहार के अभाव में पुनः वात वृद्धि; अवष्ठम्भ, विवन्ध आदि कारणों से अपान दूषित होकर अपने क्षेत्रीय नाडी बाल पर प्राकृतिक व्यक्तिक क्रियाओं का अपघात कर अवरोध सह अन्य बेदनाओं तोद, भेद, शूल आदि की उद्भूति में सहायक होती है। बाल्यावस्था में इस व्याधि से ग्रसित रोगी इस क्रम में एक भी (अंकित) नहीं किया गया बध्यावस्था में पूर्णतः अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सका कि इस अवस्था में निरन्तर अपथ्य सेवन, द्रुतगतियान गमन आदि श्रमशील तथा अत्यधिक दैन्यावस्था के व्यक्तियों में ही उक्त व्याधि की स्थिति पायी गयी।

## तालिका संख्या—३

### जाति के अनुसार वर्गीकरण

जाति

| | ब्राह्मण | जैन | राजपूय | कायस्थ | सिन्धी | दर्जी | सूनार | मुस्लिम | अनुसूचित |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| प्रा० रोगी | 6 | 1 | 1 | 1 | 2 | 1 | 1 | 3 | 2 |
| प्र०श० | 33 | 6 | 6 | 6 | 16 | 6 | 6 | 17 | 11 |

उक्त अधीत रोगियों के अनुसार सर्वाधिक रोगी 33% प्र० श० ब्राह्मण जाति के प्रवेशार्थ उपस्थित हुए। प्रायः आज के लोकतन्त्रीय समाज रचना में आर्थिक स्थिति उक्त समाज की स्थिति उत्तम न होने के कारण वातकारक आहार विहारादि के सेवन में विशेष सहायक सिद्ध होता है। इससे न्यून 17 प्र० श० रोगी मुस्लिम समाज के परीक्षणीय स्थिति में उपलब्ध हो पाये जिनके साथ भी आर्थिक मनोदशा न्यूनता के लिये प्रायः स्पष्ट ही नहीं होती आधियु आहारीय व्यवस्था में रजोगुण बहुलता तथा आवासीय स्थिति में सूर्य प्रकाश का अभाव एक कमरे में पूरे परिवार का वास आदि में स्वास्थ्य विकार की स्थिति में लाने में सहायक सिद्ध होते हैं अन्य समाज के प्रायः 1 या 2 रोगी ही पूरे कार्य काल में अध्ययन हेतु उपलब्ध हो पाये।

## तालिका संख्या—४

### आर्थिक स्थिति के अनुसार वर्गीकरण

| क्र० स० | आर्थिक स्थिति के अनुसार वर्ग | प्राप्त रोगी | अधीत रोगी | प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| 1. | उच्च वर्गमासिक आय 500 रु० से उपर | 2 | 18 | 11 प्र०श० |
| 2. | मध्यम वर्ग 100 रु० से 500 रुपये तक | 7 | ,, | 39 प्र०श० |
| 3. | निम्न वर्ग 100 रुपये से कम | 9 | ,, | 50 प्र०श० |

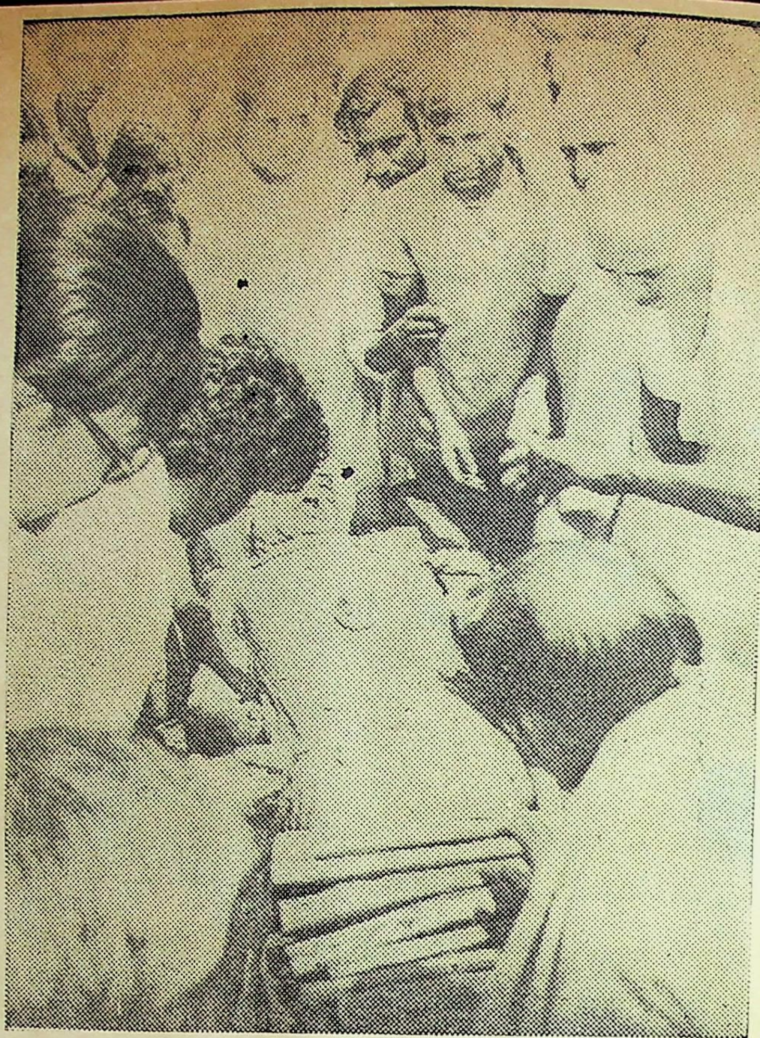
अधीत कुल 18 रोगियों में 50 प्र०श० रोगी तो इस प्रकार की स्थिति के उपलब्ध हुए कि जिनकी मासिक आयु रु० प्रतिमाह से भी न्यून पायी गई। मंहगाइ के



श्मशान घाट में अर्थी पर से शव को उतारा जा रहा है। चित्र में मुण्डित और श्वेत वस्त्र में श्री प्रमोद कुमार शर्मा दिवंगत पिता की अन्त्येष्टि के लिये सन्नद्ध दिख रहे हैं।



चितारोहण के पूर्व अन्तिम दर्शन। चित्र में दिवंगत दुर्गा बाबू के अनुज श्री बनवारी लाल शर्मा एवं सुपुत्र श्री प्रमोद कुमार शर्मा विर्निमेष दृष्टि से मृत शरीर को देख रहे हैं।



चन्दन की लकड़ियों एवं नारिकेल से सजायी गयी चिता। दिवंगत पिता के मृत शरीर को अग्नि की लपटों में अर्पित करने के लिए श्री प्रमोद कुमार शर्मा तत्पर दिखायी दे रहे हैं।



युग में दैनिक आवश्यकताओं की भी सामान्य रूप में पूर्ति होना संभव नहीं हैं तो शारीरिक स्थास्थ्य के सभी धातुओं को सम बनाने के लिये किस प्रकार अर्थाभाव में समर्थ हो सकते हैं। 'वायोर्धातु क्षयात् कोपो मार्गस्यावरणन चै' के सिद्धान्त पर पूर्व कारण शरीर सम्मत् के आधार पर देखते बनती है। ग्रामीण क्षेत्र के आदिवासी जिनका मुख्य कार्य लकड़ी काट कर जंगलों से जो कि शहर के करीब 8-10 मील तक की दूरी पर स्थित है, प्रतिदिन लाकर जीविकोपार्जन के साधन जुटाते हैं। अत्यध्वगमन, अनशन और विशेष रूप से वायु के अभिवर्जन के लिये हेतुओ की गणना में आते हैं।

## तालिका संख्या-५

व्यावसायिक वर्गीकरण

| क्र० सं० | नाम व्यवसाय | रुग्ण संख्या | अधित रोगी | प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| 1. | कृषि | 3 | 18 | 17% |
| 2. | अध्ययन-अध्यापन | — | ,, | — |
| 3. | गृह कार्य | 8 | ,, | 44% |
| 4. | श्रमिक | 6 | ,, | 33% |
| 5. | सिलाई कार्य | ० | ,, | 6% |

व्यावसायिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर स्त्री रुग्णायें अधिक मात्रा में प्रविष्ट हुई थीं। जिनका अधिकतर कार्य गृह कार्य ही रहता है। कुछ महिलाये श्रमिक वर्ग की भी उपस्थित हुईं। सर्वाधिक ४४ प्रतिशत रोगी कुछ तो कार्य विहित होने से गृह कार्य की स्थिति में लिये गये हैं तथा जो सद्गृहिणियां जिनका गृहकार्य के अतिरिक्त अन्य कार्य उल्लेखनीय नहीं है शारीरिक श्रम के अभाव में शारीरिक स्रोतों की विशुद्धि का अभाव तथा वातावरण एकरुपता स्वास्थ्यकर वायु का अभाव तथा श्रम विशेष के अभाव में अग्निमन्दता या विषमता साथ ही शरीर के अनुकूल आहार-विहार का अभाव इसमें मुख्य कारण पाया गया है :

४

## तालिका संख्या-६

गृध्रसी रोगियों का व्यसनात्मक वर्गीकरण

| क्र० सं० | नाम व्यवसाय | प्राप्त रोगी संख्या | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1. | धूम्रपान | 6 | 33 |
| 2. | चायपान | 13 | 72 |
| 3. | मद्यपान | 4 | 22 |
| 4. | तम्बाकू | 2 | 11 |
| 5. | भांग | 1 | 6 |

व्यसन के आधार पर अध्ययन करने पर सर्वाधिक रूप में 72 प्रतिशत चायपान के व्यसनी आगार में प्रविष्ट होकर लाभ प्राप्त कर पाये। चाय एक मधुर विष है जिसके निरन्तर सेवन से रक्तालपता, अग्निमांद्य, अम्लपित्त, अन्नाद्रवशूल आदि का प्रादुर्भाव ही नहीं होता अपितु निरन्तर विबन्ध की स्थिति में रहने पर अर्श, आटोप, गुल्म एवं रक्त व्याधि का प्रारूप निर्माण करने में निमित्त कारण करती है।

यह स्वयं रूक्ष होने से वायु के रूक्ष गुण का अभिवर्धन कर गृध्रसी नाड़ी में रूक्षता उत्पादन करने में हेतु बनती है। शोधन के अभाव में उक्त व्याधि को पोषण मिलता है। चाय विबन्ध होने से अप्रत्यक्ष रूप में हेतु सिद्ध हो सकती है। मद्यपान के रोगियों में प्रायः मस्तिष्कगत उत्तेजना होकर हेतु सिद्ध हो सकती है। तेजस्व तत्व की अधिकता के कारण (विदग्धाजीर्ण) की स्थिति बनती है तथा प्रारम्भ में यकृत की क्रियावृद्धि तत्पश्चात् ह्रास हो जाता है। इससे उदर में अग्नि की मन्दता वायु के अभिवर्धन में सहायक होता है। भंग तो स्वयं कफहरी है।

## तालिका संख्या-७

ऋतु के अनुसार गृध्रसी रोगी वर्गीकरण

| क्र० सं० | ऋतु नाम | प्रसित रोगी | अधीत रोगी | प्र०श० |
|---|---|---|---|---|
| 1. | हेमन्त | 3 | 18 | 17 |
| 2. | शिशिर | 5 | ,, | 28 |
| 3. | बसन्त | — | — | — |
| 4. | ग्रीष्म | 2 | ,, | 11 |
| 5. | वर्षा | 5 | ,, | 28 |
| 6. | शरद | 3 | ,, | 17 |

आदान काल के प्रारंभ में तथा विसर्ग के प्रारम्भ मे ऋतु सन्धि में उक्त व्याधि ग्रसित रोगी अधिक प्रविष्ट हुए। वर्षाग्नि बलं क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः के आधार पर विसर्ग काल के प्रारम्भ में अग्नि बल के क्षीण होने से मल का विसर्ग सम्यक् नहीं हो पाता तथा भोजन का परिपाक वर्षाम्ल विपाकायें के अनुसार आहारीय द्रव्यों के अभ्यवहरण पर जरण शक्ति की न्यूनता से अम्लविपाक होता है। सम्यक् विपाक के अभाव में सामरस की उपस्थिति तदनन्तर स्रोतोरोध, अतः उक्त व्याधि के प्रति सहेतुकता दृष्टिगत होती है "शिशिररूपं विशेषणम् अर्थात् हेमन्तवात शिशिर में सक्रिय होती है। किन्तु शिशिर में हेमन्त की अपेक्षा अग्निबल अल्प हो जाता है। अतः वायु प्रत्यक्ष रूप से व्याधि के प्रति हेतु बन जाती है।

## तालिका संख्या—८

**देशानुसार गृध्रसी रोगी विवरण-तालिका**

| क्र० सं० | नाम देश | अधीत रोगी | प्राप्त आतुर | प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| 1. | जांगल | 18 | 7 | 39 |
| 2. | आनूप | 11 | 3 | 17 |
| 3. | साधारण | 11 | 8 | 44 |

देशानुसार वर्गीकरण में 44 प्र० श० रोगी साधारण देशवासी पाये गये। प्रायः यहाँ साधारण देश से 'साधारण सम मल" के आधार पर व्याधि के प्रति सीधा सामंजस्य बिठाना कठिन है। अन्य हेतु ही कारणभूत है, 39 प्र० श० जांगलदेश में ग्रसित रोगी प्रविष्ट हुए "जांगल-वात भूयिष्ठ" के आधार पर प्रत्यक्ष सहेतुकता का प्रतिपादन किया जा सकता है। आनूप देश में व्याधित केवल 17 प्र० श० रोगी प्रवेशार्थ उपलब्ध हुए जो कि साम स्थिति के थे। आवरणज वात प्रकोपक हेतु के रूप में आनूप देश "आल्पतुं कफोनूवणम्" के सिद्धांतानुसार निदान के रूप मे प्रतिपादित किया जा सकता है।

## तालिका संख्या—९

**गृध्रसी रोगियों की परिणाम तालिका**

| क्र० सं० | परिणाम | अधीत रोगी | लाभान्वित रोगी | प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| 1. | पूर्ण स्वस्थ | 18 | 12 | 67 |
| 2. | मध्यगत | " | 3 | 17 |
| 3. | सामान्य लाभ | " | 2 | 11 |
| 4. | असाध्य | " | 1 | 6 |

अधीत रोगियों के परीक्षण एवं प्रयोग से ज्ञात हुआ कि 12 रोगी पूर्ण लाभान्वित हुए जिनका प्रतिशत 67 रहा। 17 प्र० श० रोगी स्वेच्छा से पारिवारिक परिस्थितिवश चिकित्सा से मध्य में चले गये। ऐसे रोगी लाभान्वित अवश्य हुए हैं किन्तु उक्त पूर्ण लाभ का निष्कर्ष नहीं हो सका। 11 प्र० श० रोगी सामान्य लाभान्वित हुए अधीत रोगियों में एक रोगी को लाभ नहीं हुआ जिसका प्र० श० 6 रहा।

## तालिका संख्या—१०

**गृध्रसी रोगियों की लिंगानुसार परिणाम तालिका**

| क्र० सं० | लिंगानुसार रोगी | प्राप्त रोगी | अधीत रोगी | पूर्णस्वस्थ | मध्यगत | सामा० लाभ | अल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | पुरुष | 7 | 18 | 4 | 2 | — | — |
| प्रतिशत | — | 39 | — | 22 | 17 | — | — |
| 2. | स्त्री | 11 | 18 | 8 | 1 | 2 | 2 |
| प्रतिशत | | 61 | — | 44 | 6 | 11 | 6 |

लिंगानुसार परिणाम के अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि स्त्री रोगी 61 प्र० श० चिकित्सार्थ उपलब्ध हुई उनमें 44 प्र० श० रुग्णा पूर्ण लाभान्वित हुई तथा पुरुष रोगी 22 प्र० श० पूर्ण लाभान्वित हुए। पुरुष रोगी 11 प्र०श० मध्यगत रहे तथा स्त्री रोगी संख्या 6 प्रतिशत रही। पुरुष रोगी असाध्यता को प्राप्त नहीं हुए अधीत रोगियों में स्त्री रोगी 1 असाध्य रहा जिसका प्रतिशत 6 रहा है।

अधीत रोगियों में अधिकतम मात्रा 600 ग्राम दी गई एवं न्यूनतम मात्रा 16 ग्राम दी गयी तथा यह प्रभावी रही।

वातारि पाक औषध की औसतन मात्रा 1 किलो 609 ग्राम रही तथा चिकित्सावधि न्यूनतम 6 दिन रही। औसतन चिकित्सावधि 46 दिन रही।

जीर्ण रोगियों में 157 दिन तक औषध प्रयोग कराया गया औसतन चिकित्सा 46 दिन रही। इस अवधि में रोगोन्मूलन देखा गया। नारायण तैल का अभ्यंग तथा अवस्थानुसार वाष्प स्वेद पिण्ड स्वेद स्थानिक दिये गये।

**निष्कर्ष**

इस क्षेत्र के सर्वाधिक अंगविशेष विकृतिकारक वात व्याधि विशेष पर पुनः-पुनः चिकित्सा-परीक्षणों के आधार पर वातारिपाक सामान्योपचार एवं अल्प व्यय साध्य औषधि है। उक्त औषध प्रयोग सौकर्य तथा उदरशोधक होने से वात का अनुलोमन कर अवजयन करती है। उक्त प्रक्रिया से गृध्रसी नाड़ीशूल एवं गृध्रसी नाड़ी पर क्षय एवं आवरण से होने वाली विकृति का शमन होता है।

उपर्युक्त प्रत्यक्ष परीक्षणों से प्राप्त सांख्यिकीय आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रयोगीय औषध व परिणाम उत्साहवर्धक है। परीक्षण अभी चालू है।

# विदेशों में आयुर्वेद के अग्रदूत

डा० राजेन्द्रप्रकाश आ० भटनागर
एम. ए., पी-एच. डी., भिषगाचार्य (स्वर्णपदक प्राप्त), आयुर्वेदाचार्य, एच. पी. ए. (जाम.), साहित्यरत्न,
प्राध्यापक
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, उदयपुर, (राज०)

अत्यन्त प्राचीनकाल से भारतीयों ने अपने ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार सुदूर विदेशों में किया था। भारत के ये संस्कृति—दूतव्यापारी, शिक्षक, धर्म-प्रचारक, विजेता और चिकित्सक आदि के रूप में यहां से विदेशों में गये। विश्व का ऐसा कोई भाग अछूता नहीं रहा, जहां भारतीय नहीं पहुंचे हों और वहां उन्होंने अपनी संस्कृति का फैलाव न किया हो।

वैदिक युग, रामायण और महाभारत काल में भी भारतीय विदेशों में पहुंचे थे और वहां अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। परन्तु उनके विषय में न तो व्यक्तिगत रूप से और न वहां के (विदेशों के) साहित्य में कोई जानकारी उपलब्ध होती है। हां, बौद्धकाल में और उसके बाद विदेशों में जाने वाले भारतीय प्रवासियों का वृत्तान्त विदेशों के ही साहित्य के माध्यम से प्रकाश में आता है। पाश्चात्य विदेशी यात्रियों की भांति इन भारतीय यात्रियों में धनलिप्सा तथा विदेशों पर शासन या प्रभुत्व कायम करने की इच्छा या साम्राज्य-विस्तार की नीति नहीं थी।

पाश्चात्य विदेशी यात्रियों ने प्रशंसा, प्रसिद्धि की लालसा से अपने यात्राभियान के सम्बन्ध में आत्मकथाएं लिखीं या लिखवायीं थीं। अपने धर्म के प्रचार के लिए खून-खराबा, लूटखसोट और स्थानीय निवासियों को गुलाम बनाने की नीति भी उनमें थी। ये सब बातें भारतीय यात्रियों में कदापि नहीं मिलती। उन्होंने तो भारतीय ज्ञान-विज्ञान का प्रखर प्रकाश विदेशों में फैला कर वहां के जन-जीवन के साथ, कला, शिल्प, साहित्य को समृद्ध, समुन्नत और नवीन रूप देने का प्रयत्न किया। स्वार्थ सिद्धिपूर्ण अपने कष्ट-साध्य, बलिदानी जीवन वृत्त का य भयानक यातनापूर्ण साहसिक यात्राओं का विवरण नहीं लिखा। भारतीय साहित्य में वैसे भी स्वप्रशंसा या आत्मचरित का अभाव प्रारम्भ से रहा है। अधिकांश यात्री या तो विदेशों में ही रह गये या वहीं मर गये।

बौद्धकाल में भारतीय यात्रियों ने दो मार्गों से विदेशों का भ्रमण किया था। एक **जलमार्ग** से, दूसरा **स्थलमार्ग** से। **जलमार्ग** से मुख्यतया वे दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों और द्वीपों में तथा **स्थलमार्ग** से मध्य एशिया, चीन, कोरिया आदि देशों में पहुंचे थे। दोनों ही मार्ग अनेक प्रकार की नैसर्गिक, भौतिक और मानवीय व जीव-जन्तुओं से उत्पन्न विपत्तियों से व्याप्त थे।

भारत से चीन, जापान, कोरिया को जलमार्ग से भी जाते थे। यह मार्ग सिंहल (लंका), मलय, जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों में होकर जाता था। इस मार्ग के इन प्रदेशों में भी ये यात्री प्रसिद्धि प्राप्त करते थे। यहां मध्य-एशिया और चीन, कोरिया, जापान, तिब्बत आदि देशों में जाने वाले और वहां आयुर्वेद का प्रचार करने वाले भारतीयों के विषय में बताया जायेगा। उन देशों में मुख्यतया **स्थलमार्ग** से जाना होता था। यह मार्ग मुख्यतया **गान्धार (कन्धार)** की राजधानी **पुरुषपुर (पेशावर)** से प्रारम्भ होता था। भारत की अन्तिम सीमा यहां तक थी। यहां से '**कुभा नदी**' (वर्तमान '**काबुल दरया**') के किनारे किनारे उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ते हुए '**नगर-हार**' (वर्तमान '**जलालाबाद**') होते हुए '**कपिश**' देश (वर्तमान '**काफिरसितान**') में पहुंचते थे। यह क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण और समृद्धिशाली था। मध्य-एशिया पूर्वी-एशिया से भारत को आने वाले सब रास्ते यहां मिलते थे। **कपिश** से मध्य-एशिया व चीन की ओर जाने वाले दो दो मार्ग थे—एक मार्ग हिन्दुकुश की विकट

पहाड़ियां पार[1] करके 'हूणों के देश'[2] ('बदखशान' और 'बाखान' का बीचवर्ती 'बोक्कान नामक संस्कृत देश) में जाता, वहां से दुर्गम पथ से 'पामीर' (प्राय: यह 16-18 हजार फुट ऊंचाई वाला पठारी क्षेत्र होने से इसे 'पृथ्वी की छत' कहा जाता है) को-लोपान तो' (ताशकुर्गान') नामक स्थान पर, फिर आगे घने कुहरे से आच्छादित पर्वतों को लांघ कर यारकन्द, खोतान, निया, मिगान होते हुए चीन के प्रवेश द्वार 'तुन-सोयाङ्' पहुंचता था। 'निया' से 'तुन-हो याङ् तक भयंकर मरुभूमि वाला है। कभी इस क्षेत्र में समृद्ध बस्तियां आबाद थीं; परन्तु 700 ई० तक यह क्षेत्र उजड़ गया था और यहां मरुस्थल बन गया था।

कपिश से दूसरा मार्ग 'फु-खिया-ला' वहि्लक-बल्ख) 'पो-नो छाम्-ना' (बदखशान), को-लो-पान्-नो (ताशकुर्गान) होता हुआ पामीर का पठार पाकर 'शो-ले' (शंलदेश या काशगर) पहुंचता था, वहां से 'थियेन-शान' पर्वत के उत्तर 'भरुक' किजिल, 'कुचार' (प्राचीन 'कुचा' या 'कुची') अग्निदेश (कराशर), का-ओ-छाङ् (वर्तमान तूफान) स्थानों को पार करते हुए चीन की 'तुन-हो याङ्' पहुंचते थे। कपिशा से आने वाले मध्य एशिया के ये दोनों मार्ग 'तुन हो-याङ्' में मिल जाते थे। यहां पर चीन की सीमा लगती थी।

कुछ यात्री 'बदखशान' से काशगर न जा कर उत्तर की ओर मार्ग पकड़ कर 'आमुदरया' (प्राचीन 'वक्षु' नदी) और 'थियेनशान' पर्वत पार करके ताशकन्द, समरकन्द होते हुए 'भरुक' पहुंचते और वहां से उपर्युक्त मार्ग से 'तुन-हो-याङ्' जाते थे। 7वीं शती में 'ह्यूनसाँग' नामक चीनी यात्री इसी मार्ग से भारत आया था।

कुछ यात्री सिंधु नदी की घाटी से सीधे उत्तर में गिलगित, दरद (दारेल की तराई) और पामीर होते हुए खोतान पहुंचते, वहां से मरुभूमि के मार्ग से अग्निदेश (कराशर) में से चीन की सीमा पर पहुंचते थे। चीनी यात्री 'फाहीयान' इसी मार्ग से भारत आया था। यह मार्ग अत्यन्त विकट, पहाड़ी-दुर्गमता से भरा हुआ था।

चीनी की सीमा पर, 'तुन-हो याङ्' में मुख्य बौद्ध विहार बना हुआ था। यहां पर चीन से भारत जाने वाले और भारत से चीन आने वाले यात्री विश्राम करते थे। मध्य एशिया से चीन के बीच 'गोबी' का भयावह मरुस्थल है।

अनेक यात्री लक्ष्य स्थल तक पहुंचने से पूर्व या पुनः अपनी मातृभूमि लौटने से पूर्व ही मार्ग की भीषण गर्मी, सर्दी, बर्फीली हवाएं, तुषारपात-हिमपात, हिंस्र जीवों के दाव, जंगली मनुष्यों की लूट खसोट और हत्या आदि के कारण ही प्राण त्याग कर देते थे।

बौद्धकाल के अधिकांश भारतीय यात्री बौद्ध भिक्षुक थे। इसके अतिरिक्त बौद्धेतरजनों ने भी विदेशी यात्राएं की थी। उनमें संगीत, नृत्य, ज्योतिष, आयुर्वेद के विद्वान मुख्य थे। चीनी साहित्य में प्रामाणिक हिन्दू-ग्रंथों, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, ज्योतिष और आयुर्वेद के अनुवाद-ग्रंथों के मिलने से अनेक हिन्दू या बौद्धेतर विद्वानों के भी वहां जाने की पुष्टि होती है। दक्षिण चीन के 'चुआन-चौ' नामक बन्दरगाह को पहले 'जायतोन' के नाम से जाना जाता था। यहां 10वीं-11वीं शती के दो विशाल बौद्ध मन्दिर मिले हैं। इनमें कालीयदमन, नरसिंह शिवलिंग आदि हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। ये कृतियां निश्चित ही भारतीय शिल्पियों की रचनाएं हैं। 13वीं शती में मार्कोपोलो ने इस बन्दरगाह पर भारतीय वाणिज्य पोतों द्वारा गर्म-मसाले व अन्य बहुमूल्य पदार्थ लाये जाने का उल्लेख किया है।

इन भारतीय विदेशी यात्रियों ने मुख्य रूप से पांच प्रकार के कार्य किये—

(1) बौद्ध धर्म या अन्य भारतीय मतों का उन देशों में प्रचार किया। इसके लिये किसी हत्या, षड्यंत्र, मार-पीट आदि का आश्रय नहीं लिया। लोगों का दिल जीत-कर और उन्हें समझा-बुझाकर ऐसा कराया। धर्म को राज्याश्रय भी दिलाया। धर्म ग्रन्थों का प्रचार किया।

(2) संस्कृत, पाली आदि के अनेक भारतीय ग्रन्थों का चीनी आदि वहाँ की भाषाओं में अनुवाद कार्य किया, स्वयं प्रेरित होकर या वहां के राजाओं की प्रेरणा से।

---

1. कपिश देश से हिन्दुकुश पर्वत को पार करके तीन पर्वतीय मार्ग थे—1. पंजशिर नदी की घाटी, 2. कुशान घाटी, 3. बामियान की घाटी।

2. यहां के निवासी 'गुप्तहूण' या 'श्वेतहूण' (हेप्थलीट Hepthaletes) कहलाते थे।

(3) स्वयं इन यात्रियों द्वारा संस्कृत या चीनी आदि भाषाओं में नये ग्रन्थों की रचना की गई।

(4) ध्यान, योग, सिद्धि द्वारा चमत्कार प्रदर्शन-पूर्वक वहा की प्रजा को आकर्षित किया।

(5) भारतीय गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद जैसे विज्ञानों तथा नाटय, साहित्य, कला, संगीत, शिल्प आदि ललित कलाओं का प्रसार किया।

इस प्रकार संपूर्ण भारतीय-संस्कृति इन सुदूर देशों में फैलाने का कार्य इन संस्कृति-दूतों ने किया था।

बौद्ध धर्म के 'महायान' का चीन, मध्यएशिया, कोरिया, जापान आदि देशों में विशेष रूप से फैलाव हुआ। विदेश में गये अनेक आयुर्वेदज्ञों में से कतिपय का विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—

**चीन में आयुर्वेद**

चीन के सम्राटों की यह मान्यता थी कि भारतीय वैद्यों में जड़ी-बूटियों के प्रयोग से मनुष्य की इच्छानुसार लम्बी आयु करने का ज्ञान प्रचलित है। वस्तुतः आयुर्वेद के आठ अंगों में से एक 'रसायन' है, जिसका प्रयोजन मनुष्य को जरा और व्याधि को दूर रखकर दीर्घ आयु प्रदान करना है इसमें ऐसे ही औषधि-प्रयोगों और उपायों का वर्णन मिलता है। इन प्रयोगों के जानकार वैद्यों की खोज और उन्हें लाने के लिए चीनी सम्राट अपने दूत यहां भेजते रहते थे।

चीनी साहित्य में ऐसे ही एक **वैद्यनारायण स्वामी** का उल्लेख मिलता है, जो ईसवीय ७ वीं शती में भारत से चीन गया था। वह ब्राह्मण था। उसके औषध प्रयोग द्वारा तत्कालीन चीनी सम्राट दीर्घायु हुआ था।

आयुर्वेद के कुछ संस्कृत ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद भी हुआ था। भारतीय वनौषधियों (जड़ी-बूटियों) और योगों के नाम भी चीनी चिकित्सा-शास्त्र में मिलते हैं।

**कोरिया में आयुर्वेद**

चीन के उत्तर-पूर्वमें कोरिया का प्रायद्वीप है। यहां भी भारत का बौद्ध-धर्म फैला था। पाचवीं शती मध्य तक यह धर्म बहुत फैल चुका था। इस काल में एक भारतीय वैद्य का कोरिया में पहुंचना ज्ञात होता है। उसका वास्तवीक नाम कोरिया-वासियों में अप्रचलित रहा परन्तु वहां के साहित्य में उसे **'कृष्ण विदेशी'** नाम से संबोधित किया गया है। संभवतः वह वर्ण में कृष्ण और विदेश से आगत होने से, यह नाम रखा गया है। यह भी सम्भव है। कि वह चीन होकर वहां पहुंचा था। इस भारतीय वैद्य ने कोरिया में सिल्वर की राजकुमारी को एक भयंकर व्याधि से अपनी चिकित्सा द्वारा ठीक किया था। इससे वह वहां पर बहुत प्रसिद्ध हो गया था तथा आयुर्वेद की धाक वहां जम गई थी। कृष्ण विदेशी बौदध-धर्म का भी ज्ञाता था, उसने 'त्रिरत्न' का प्रचार किया।

**तिब्बत में आयुर्वेद**

भारतीय आयुर्वेद, रसायन शास्त्र और तंत्र-शास्त्र का तिब्बत में प्रचार-प्रसार करने वाले' **पद्मसंभव**' का जन्म 'लंकापुर' (उड़ीसा) के एक राजपरिवार में हुआ था कुछ विद्वान इनका जन्म स्थान 'जहोर' [वर्तमान 'सुकेतमंडी' हिमाचल प्रदेश] नामक स्थानको मानते हैं। इनके पिता का नाम 'इन्द्रमूर्ति' वा 'इन्द्रबोधि' था। इनका विवाह 'कुमार देवी' से हुआ था। यह असाधारण बौद्धिक शक्ति के भण्डार थे। उन्होंने नालन्दा विश्वविद्यालय में उच्चशिक्षा ग्रहण की थी और अपनी प्रतिभा व अद्भुत योग्यता के कारण वहां तंत्र-विभाग व प्रमुख आचार्य नियुक्त हुए थे। इनका तंत्र-शास्त्र (रहस्य-पूर्ण यौगिक शक्तियों) और वैद्यक ज्ञान पर विशेष अधिकार था। उस समय 'शान्तरक्षित' (जन्म ई० ६५०) तिब्बत में बौद्ध-धर्म के प्रचार हेतु गये हुए थे। शान्तरक्षित और ईत्सिग ने ६७५ ई० से ६८५ ई० तक नालन्दा में उच्च शिक्षा ली थी। शांतरक्षित वहां के प्रमुख आचार्य बनाये गये थे। तिब्बत के राजा **ति-सोंग-दे-सेन**' के आमन्त्रण पर ये ७५ वर्ष की आयु में ७२४ ई० में नेपाल होकर तिब्बत गए थे। वहां भूतप्रेत-पूजकों का बोलबाला था। उनके द्वारा नये (बौद्ध) धर्म के प्रचार से वे क्षुब्ध हो गए। उनके उपद्रवों से शांतरक्षित को पुनः नेपाल लौटना पड़ा। दो वर्ष बाद, पुनः तिब्बत के राजा के आमंत्रण पर ये पद्मसंभव को साथ लेकर वहां गए 'पद्म संभव तांत्रिक-क्रियाओं में निपुण थे। उनके कारण तिब्बत के भूत-प्रेत-पूजक शांत हो गये : पदसंभव ने वहां तंत्र विद्या का प्रचार किया। उनकी शिक्षाओं से ही तिब्बत में तांत्रिकवाद और बौद्धवाद के समन्वय से नवीन 'लामाधर्म' का प्रारंभ हुआ।

**जापान में आयुर्वेद**

जापान में भारत का ज्योतिष और आयुर्वेद कोरिया से ही पहुंचा था। कोरिया से अनेक भारतीय वैद्य जापान में बुलाये गये थे। उन्होंने वहां **आरोग्यशालाओं** और **विद्यालयों** की स्थापना भी की थी। कई जापानी विद्यार्थी भारतीय विद्याओ को सीखने के लिए चीन भी भेजे गये थे।

# मानसिक रोग मिर्गी—एक समस्या

सुश्री शुभा श्रीवास्तव

मस्तिष्क एवं तांत्रिका-सम्बन्धी रोगों में मिर्गी का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति में मस्तिष्क और तांत्रिका दोनों से ही सम्बन्धित विकृतियां पाई जाती हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि कोई व्यक्ति अचानक ही बेहोश होकर गिर पड़ता है, उसके हाथ-पैर प्रकम्पित होने लगते हैं, मुंह से झाग और लार निकलने लगता है, अचेतावस्था में ही रोगी के उत्सर्जी अंगों से मल-मूत्र निकल जाता है, हृदय की धड़कन रुकने लगती है, नाड़ी की गति एवं रक्तचाप मन्द पड़ जाता है। संज्ञाहीनता की इस दशा में मिर्गी के रोगी को उन्माद के रोगी की भांति दौरे के समय अपने चारों ओर घटित होने वाली घटनाओं का ज्ञान नहीं होता। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि कोई व्यक्ति विशिष्ट अवसरों यथा उत्सव, गोष्ठी-सम्मेलन आदि में वक्तव्य देते-देते अचानक ही अर्थहीन व्यवहारों का प्रदर्शन करने लगता है, भाषण देना बन्द कर वह विभिन्न हाव-भाव करने लगता है और कुछ सेकेण्डों के बाद वह पूर्वस्थिति में आ जाता है वास्तव में रोगी को जितनी देर तक बोलना बन्द रखता है और विचित्र व्यवहार करता है। उसे उसका ज्ञान नहीं होता। आपने प्रायः देखा होगा कि कोई व्यक्ति अचानक लिखते-लिखते रुक जाता है अथवा बिना किसी प्रतिक्रिया के अग्नि का स्पर्श कर लेता है। वास्तव में यह भी मिर्गी का दौरा है जो 2 से 30 सेकेण्ड तक रहता है। इस प्रकार का दौरा पुरुषों की अपेक्षा 5-12 वर्ष की स्त्रियों में अधिकता से पाया जाता है। कभी-कभी तो टेलीविजन देखते-देखते अथवा पूर्ण रूप से एक ही ध्वनि सुनने और एक ही वस्तु देखने से भी रोगी संज्ञाशून्यता की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। प्रायः यह देखा जाता है कि गाड़ी से अथवा बस से यात्रा करते समय चारों ओर दिखाई पड़ने वाले दृश्य भी रोगी व्यक्ति के तांत्रिका एवं मस्तिष्क को उत्तेजित करते हैं जिसके परिणामस्वरूप दौरे शीघ्रता से पड़ने लगते हैं।

मिर्गी रोग के सम्बन्ध में आम जनधारणायें अत्यन्त ही भ्रामक है। बहुत ही कम लोग इसे एक रोग के रूप में स्वीकार करते हैं। साधारणतया इस रोग से ग्रस्त लोगों को उपचार के तौर पर चमड़े का जूता सुंघाया जाता है, मार-पीट के माध्यम से (जिसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 'पीटोपैथी' की संज्ञा दी जा सकती है) औपचारिक करने का प्रयास किया जाता है। वास्तव में ये अबोध व्यक्ति रोग की जटिलता को नहीं जानते और अनुचित प्रयासों से रोग को इतना विकट रूप दे बैठते हैं कि रोगी को अपने प्राणों तक से हाथ धो देना पड़ता है।

कुछ लोगों ने मिर्गी रोग को लाइलाज बताया है किंतु कुछ अन्य विचारकों के अनुसार यह रोग अस्थायी रूप से ठीक अवश्य किया जा सकता है। यद्यपि यह मुझे भी ठीक-ठीक नहीं मालूम कि मिर्गी का उपचार किया जा सकता है या नहीं। किन्तु इतना अवश्य कहूंगी कि यदि रोग के आरम्भ होते ही रोगी किसी अच्छे मनोचिकित्सक एवं तंत्रिका-सम्बन्धी रोगों के विशेषज्ञ के पास पहुंच जाएं तो इस रोग से छुटकारा अवश्य पा सकता है।

मिर्गी रोग के लक्षण अधिकांश अर्थों में उन्माद रोग के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं इस कारण यह पता लगाना अत्यन्त कठिन होता है कि रोगी को दौरा मिर्गी का पड़ा है अथवा उन्माद का। आइए अब कुछ ऐसे लक्षणों की विवेचना की जाये जो मिर्गी एवं उन्माद दोनों के रोगियों में समान रूप से न पाये जाते हों ताकि जनसाधारण को यह जानने में सुविधा हो कि रोगी किस रोग से आक्रान्त है, उन्माद से अथवा मिर्गी से। उन्माद एवं मिर्गी रोग के सामान्य लक्षणों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. बेहोशी आना (चेतन शक्ति का ह्रास)

2. बौद्धिक क्षमता का ह्रास

3. निर्णय-क्षमता का ह्रास (दुविधात्मक स्थिति का होना)

4. अनियंत्रित सार्वांगिक क्षमता।

चेतन शक्ति का ह्रास हो जाने के कारण ही उन्माद एवं मिर्गी के रोगी किसी भी समय अचेत हो जाया करते हैं। इन रोगों में सांवेगिक क्षमता के अनियंत्रित हो जाने के कारण ही रोगी विभिन्न भाव-भंगिमायें अपनाते और अर्थहीन व्यवहारों का प्रदर्शन करते हुए देखा जाता है। रोगी में निर्णय लेने की भी क्षमता शनैः-शनैः घटने लगती है परिणामतः वह अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पाता और अशांत रहता है।

उक्त समानताओं के साथ ही साथ मिर्गी एवं उन्माद रोग के लक्षणों में कुछ विभिन्नताएं भी हैं जिनके आधार पर दोनों ही प्रकार के रोगियों को सरलता से पहचाना जा सकता है। ये लक्षण इस प्रकार हैं।

1. मिर्गी का दौरा पड़ने पर रोगी वास्तव में संज्ञाहीन हो जाता है और बेहोशी की अवस्था में अपने चारों ओर घटित होने वाली घटनाओं का उसे ज्ञान नहीं होता जबकि उन्माद के रोगी को अचेतावस्था में अपने इर्द-गिर्द होने वाले क्रिया-कलापों का ज्ञान रहता है।

2- मिर्गी के रोगी के मुंह से अचेतावस्था में झाग अथवा लार निकलता रहता हैं जबकि उन्माद के रोगी के मुंह से बेहोशी की स्थिति में किसी भी तरह का स्राव नहीं निकलता।

3. मिर्गी के रोगी को दौरा पड़ने पर कपड़े में ही मल-मूत्र हो जाया करता है जबकि उन्माद के रोगियों को इसकी शिकायत नहीं होती।

4. मिर्गी का दौरा पड़ते समय रोगी की जीभ ऐंठ जाती है और दोंनों जबड़ा के बीच दबकर उसके कट जाने की सम्भावना होती है। जब कि उन्माद का रोगी जान-बूझ कर अपनी जिह्वा को काटकर रोग की विषमता प्रदर्शित करने का प्रयास करता है।

5. मिर्गी के रोगी का शरीर बेहोशी की दशा में उन्माद के रोगी के शरीर की भांति स्थिर नहीं पड़ा रहता वरन उसके पूरे शरीर में तीव्र स्पन्दन होने लगता है और उसकी मांस-पेशियां तथा रक्त-वाहिनियां कड़ी हो जाती है।

6. मिर्गी का रोगी किसी भी रोग के लक्षण को सरलता से अपने व्यवहार में नहीं ला पाता जब कि उन्माद का रोगी यह कार्य सरलता से कर लेता है।

7. मिर्गी का दौरा किसी भी जगह, एकांत अथवा समूह कहीं भी पड़ता है जब कि उन्माद का रोगी सुरक्षित स्थानों में विशिष्ट व्यक्तियों के सामने अथवा भीड़ में बेहोश होता है।

**मिर्गी के कारण**

मिर्गी रोग की व्यापकता को देखते हुए उसके विभिन्न कारकों पर प्रकाश डालना अति आवश्यक है ताकि समस्त लक्षणों के आधार पर रोगी के रोग-सम्बन्धी निदान सरलता से प्रस्तुत किये जा सकें :—

1. कुछ लोगों का कहना है कि मिर्गी एक वंशानुगत रोग है। अतः माता-पिता के क्रोमोजोम्स का असामान्य संगठन, उनके जीन्स की विषमता सन्तान में मिर्गीरोग को जन्म देती है।

2. आयुर्वेदिक चिकित्सकों के मतानुसार पित्त की विकृति ही मिर्गी रोग को जन्म देती है।

3. प्राचीन सम्प्राप्ति के आधार पर हृदय या सम्पूर्ण रक्तवह-संस्थान एवं मस्तिष्क की विकृति ही मिर्गी रोग को जन्म देती है। पुरातन चिकित्सा - शास्त्रियों ने 'हृदय चेतना स्थानम्' कहकर हृदय को ही चेतना का प्रमुख केन्द्र माना है और इसमें उत्पन्न विकृति को ही अचेतावस्था हेतु उत्तरदायी ठहराया है।

4. शिरोऽभिघात (सिर की चोट) के कारण भी व्यक्ति मिर्गी रोग का शिकार हो जाता है। गत प्रथम महायुदध में मिर्गी अथवा अपस्मार के रोगियों की चिकित्सकीय परीक्षा के उपरान्त यह पता चला है कि 50 प्रतिशत व्यक्ति में केवल सिर की चोट से ही रोग का प्रारम्भ हुआ है।

5. यह रोग चिन्ता, काम, क्रोध, शोक तथा उद्वेग जैसे मानसिक कारण एवं मस्तिष्कावरण-शोथ (मैनिन्जाइटिस), मस्तिष्कागत-रक्तस्राव तथा मस्तिष्कार्बुद (ब्रेन ट्यूमर) जैसे शारीरिक दोषों से भी उत्पन्न होता है।

6. स्वभावतः दुर्बल मन वाले मनुष्यों में मिर्गी रोग अधिकता से उत्पन्न होता है।

7. पेशी-विकृति भी अपस्मार रोग के लक्षणों को जन्म देती है।

8. व्यवहार-सम्बन्धी दोष, यथा नाखून काटने से भी मिर्गी रोग हो सकता है।

**रोग का निदान**

सर्वप्रथम यह रोग मिर्गी अथवा अपस्मार है या नहीं इसकी जानकारी अत्यावश्यक है। इस सन्दर्भ में सर्वाधिक स्मरणीय बात यह है कि रोगी सभी क्रियाएं अचेतावस्था में करता है और बेहोशी के दौरान अपने इर्द-गिर्द घटित होने वाली घटनाओं से अनभिज्ञ होता है। रोगी गन्दे साफ किसी भी स्थान पर गिर पड़ता है, उसे भीड़ और एकान्त का ज्ञान बेहोशी के समय नहीं रह जाता और उसके बाद मुंह से झाग निकलना, जबान लड़खड़ाना, हाथ-पैर कांपना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते है। दिन-रात किसी भी समय दौरा पड़ जाता है और रोगी दुर्बलता, मनोविक्षिप्तता की स्थिति का शिकार हो जाता है।

अतः मिर्गी अथवा अपस्मार के रोगी को खतरे से एवं उसके व्यक्तित्व को विकारग्रस्त होने से बचाने के लिए निम्नलिखित उपाय प्रयोग में लाये जाते हैं।

1. तनावपूर्ण स्थितियों से रोगी को बचाये रखना चाहिये। उसे भय, विषाद, चिन्ता आदि से दूर रखना चाहिये। प्रायः लोग इस रोग को भूत-प्रेत का प्रकोप मानकर अनायास ही रोगी का उपहास करत हैं यह स्थिति निस्सन्देह उसके लिए शोचनीय एवं तनावपूर्ण हो जाती है। अतः रोगी के समक्ष ऐसी कोई परिस्थिति नहीं उत्पन्न करना चाहिये जिससे कुछ सोचना पड़े।

2. रोगी को आग के पास, नदी, तालाब के जल में स्नानादि हेतु नहीं भेजना चाहिये और ना ही उसे अकेले लम्बी यात्रा पर ही जाते देना चाहिये क्योंकि आग, पानी, छाया, परिछाई आदि उसके मस्तिष्क को उत्तेजित करती है और यह उत्तेजना दौरे के रूप में सामने आ सकती है।

3. रोग के पूर्व लक्षणों यथा अस्थिरता, चिड़चिड़ापन आदि को देखते ही रोगी को लिटा देना चाहिये।

4. रोगी को व्रत; उपवास नहीं रहने देना चाहिए।

5. अनियमित जीवन-व्यवस्था, थकानपूर्ण स्थितियों से रोगी को बचाना चाहिए। मादक-द्रव्य (विशेषतः शराब) का प्रयोग नहीं करने देना चाहिए क्योंकि ये मिर्गी को प्रोत्साहित करते हैं।

6. तार्किक विचार रोगी के समक्ष नहीं रखना चाहिए और न ही तर्क हेतु उसे बाध्य करना चाहिए।

7. दवा के माध्यम से रोगी को अच्छी से अच्छी चिकित्सा प्रदान करने का प्रयास करना चाहिए तथा कम-से-कम 3 वर्ष तक सुयोग्य चिकित्सक का उपचार नियमित रूप से करना चाहिए।

8. रोग का सही निदान करने के लिए ई० ई० जी (इलेक्ट्रो इनसिफैग्राम) करना लेना चाहिए। यद्यपि यह साधन बहुत व्ययसाध्य है और भारत के कुछ ही शहरों में उपलब्ध है फिर भी इसके व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु सरकार निरन्तर प्रयत्नशील है।

9. दौरे के समय रोगी को इस तरह लिटा देना चाहिये कि उसके शरीर में चोट न आय। रोगी के कमीज का बटन खोल देना चाहिये ताकि उसका गला न घुट जाये। इसके साथ ही रोगी के सिर के नीचे तथा दोनों जबड़े के बीच स्पंज का टुकड़ा अथवा कोई नर्म चीज रख देना चाहिए ताकि अचेतावस्था में सिर पटकने अथवा जीभ लड़खड़ाने पर उसके सिर एवं जीभ में घाव न उत्पन्न हो।

10. ज्वर के समय दौरा पड़ने पर रोगी की हालत बिगड़ सकती है और मृत्यु आदि का भी अंदेशा हो जाता है अतः किसी अच्छे चिकित्सक का परामर्श लेना चाहिए।

इस रोग से ग्रस्त रोगियों के मिलने पर हम सबका यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि उसे अविलम्ब किसी सुयोग्य चिकित्सक की शरण में भेज दें।

# Pharmaceutics in Ayurveda

**Dr. Y. Kondal Rao**, L. I. M.,
Honorary Consultant,
The Indian Medical Practitioners' Co-operative Pharmacy and Stores Limited, Adyar, Madras-20

The Science of Indian Medicine is intended to give a person healthy and long life so that he can pursue the aims[1] of life, namely, Dharma,[2] Artha,[3] Kama[4] and Moksha[5] uninterruptedly. Indian medical science has three divisions, aetiology (Hetu skanda), symptomatology (Lingaskanda) and therapeutics (Oushadaskanda). The drug and Pharmaceutical preparations come under the third category.

The Oushadaskanda consists of formulary of medicinal preparations, mode of processing and standards for such preparations. Details of these are found in Veda and also the earlier Tamil and Persian literature.

In the samhitas of Caraka.[6] Susruta[7] and Vagbhata[8] and in the books on medicines in Tamil by Siddhars[9] and in Persian by Hakeems, codification of medicines into different categories has taken place. Elaborate rules have been laid as to when and how the raw materials have to be collected and stored and also for what period of time the potency of such drugs is maintained. Such elaborate classification of the prepared drugs could not be found in any other system of medicines in such an early period of history as found in Indian Systems of medicine.

During the medieval period between the 10th and 15th century A. D. a large volume of medical literature had come into existence. These literatures, from the stand point of pharmaceutical knowledge, are worth mentioning than even the earlier ones.

Pharmaceutics is a branch of this medical science that deals with the art of preparing medicine, namely collection, processing, preservation and distribution of drugs. These drugs are indicated to keep up the health of individuals. Qualities of these medicines are Babukalpa[10]-adop'ability for various pharmaceutical forms, Bahuguna possessing broad spectrums indication, Sampanna-virtues converged, and yogya-ready for administration. In view of such an importance it is considered to be one among Triskhanda[11] and Catuspada[12] of Ayurveda and is constituted on sound scientific lines.

So the pharmaceutics in Ayurveda is a fertile ancient source for inspiration and adoption.

We will now consider the elements of Pharmaceutics in Ayurveda.

*Procurement*[13] *of Raw Materials*— Pharmaceutics is mainly based on Raw materials. Vegetable, Animal and Mineral Kingdoms are the three sources for them.

*Vegetable Kingdom*—Barks, extracts, flowers, fruits, leaves, latex, root, rhizomes, resins, seeds, tubers, wood core, whole plant etc, are of vegetable origin.

While[14] collecting them due consideration is given to the influence of seasons, environment, position, maturity, habitat etc. These precautions are meant to procure constituents of high therapeutie value.

Modern findings that the Sandalwood of high altitude is more aromatic and therapeutically effective than that of plains, alkaloid content in Dhatura leaves collected in morning hours is higher, etc., are valuable information in this context.

**General Rules Regarding Collection of Plant Materials**

1. Places—The field area where from the plant materials have to be collected should not be.

a. full of pits of small or big size, b. full of stones c. full of ant hills d. a burial ground e in the vicinity of slaughter houses f. a temple g. sandy h. rocky i. alkaline j. full of cracks on the earth k. far off from water resources 1. a foot path.[14]

The place must be of sadharana[15] and jangala[16] characters. It should have sufficient infiuence of chilliness, sunrays, wind and water [17]

**Favourable conditions of the soil**

1. Where grass grows in plenty 2. Where the soil is soft and sticky and firm 3. Where surfaces are plain 4. Where colour of the soil is black, red or yellow. [8]

Further, the soil must be sweet and of golden colour and the ground should not have been ploughed. The place should not be near big tree. [9] Even the plant materials from favourable soil should be of the following characteristics.

1. Not affected by worms and moth, by poison and by lethal weapons,[20]

2 Not exposed to excessive sun rays, wind, fire and water.[21]

3. They should be mature, fertile and deep rooted.[22] Roots going to northern direction is more preferable.[23]

II. Time :—They have to be collected in respective seasons.[24] They should possess their characteristic taste, colour, smell and stature.[25] They have to be collected in the morning with pure heart facing east or north.[26]

Wherever the time is not mentioned, it is presumed that it should be in the morning.[27] Branches and leaves of recent sprouting should be collected in Vasanta Ritu and Varsharitu.[28]

Roots from the trees which have shed down all their leaves should be collected in Sisira and Grisma ritu.[29]

Bark, tuber and latex shall be collected in Saradritu[30] and Stem in Hemantaritu.[31]

Flowers and fruits should be collected in their respective seasons.[32]

Saradritu is supposed to be the best period for collecting all parts of plants material afresh.[33]

Purgatives and Emetics should be collected at the end of Vasantaritu.[34]

Invariably all plant materials must be fresh.[35] If it is not possible we can use plant material not exceeding one year.[36]

According to the intrinsic nature, materials like Guduci[37] Vasa[38] etc., were used fresh and materials like Vidangam; long pepper, jaggary, Honey etc., were used, old.[49]

Iteme like Aconite,[40] Nuxvomica,[42]

Croton seeds,[43] Marking nut,[44] Dhatura seeds ect,.[45] were subjected to a process of Sodhana Karma[46] to mitigate their virulent nature prior to useing them as medicine.

III. **Storage Room :**—[47] The Store room should face east or north and devoid of the influence of fire, moisture, wind, dust, rats, quodrupads etc. Drugs should be properly covered and kept suspended. They can be stored in earthern pots covered and kept on wooden planks.

Usually fruits must be ripe except in the case of Bilvam.[48] The fruit should not be worm-infested, exceed its ripe stage and unseasonal.[49] This is applicable for leaves, tubers etc.[50]

IV. Age of Preparation :—Any plant material can be kept as it is, for one year. Afterwards they are supposed to lose their qualities.[53]

Powders are likely to loose their quality after two months, Gutika and Lehyam after one year. Ghritam and Tailam after 4 months; Asava, Dhatu and Rasa Oushada are as effective as they are old [52]

V. **Parts to be collected :**—Wherever the part of the drug is not mentioned it is presumed that root should be taken.[53]

Wherever the roots are big in size, the portion alone is taken. Thin roots and rootlete can be taken.[54]

From the items like Nyagrodha,[55] the bark portion is to be taken. From the plants like Dhataki[56] only flowers are to be taken. From the items like Snuhi[57] only latex is to be taken. From items like Asana[58] the core is to be taken. From items like Guduci[59] branches and stemps are to be taken.[60]

Wherver the proportions of ingredients are not given in the formula, all of them are to be taken in equal quantity.[65]

Wherever the vessel is not specified, earthern vessel is preferable.[62]

Wherever the liquid is not specified, water is to be taken.[63]

Wherever the oil is not epecifically mentioned, Gingelty oil is to be taken.[64]

Wherever the salt is not specifically mentioned, the Rock salt is to be taken.[65]

If the mustard is not specified, white mustard is to be taken.[66] When the animal is not specified in the case of Milk, Ghee, Gurd, Urine, and dung, only those of Cow's are to be taken.[67]

Wherever Sandalwood is mentioned in the case of Churna, Lehya, Asava and Sneha, only Sandalwood white is to be used.[68]

In the case of Kashaya and lepa, only Red Sandalwood is preferred.[69]

The same drug, when mentioned twice in a formula, is to be doubled in quantity.[70]

VI. **Naming of a formulation :**—While giving a name to a formulation, the following principles are adopted generally. 1. Name of the first ingredient in the formulation.[7?] (eg.) Talisadi Churan 2. The inventor's name may be indicated in the name of the medicine (eg ) 1. Agastya Haritaki 2. Cyavanaprasa Lehyam 3. Kankayanavati.

The resemblence of a particular thing may be the criteria for naming the medicine eg. 1. Rasakarpooram because of the resemblance of camphor.

2. Rasa Parpati resemblence of Appalam (4). According to the manufacturing process (eg.) Brahmi Swarasan, Vaca Churna

(5). Taking consideration of the main ingredient in a formula (eg,) 1. Draksharishta 2. Ayaskriti 3. Amukkra Churnam. (6). The action of the particular formulation may be the crieteria for naming the medicine (eg.) 1. Vranasanjivi tailam 2. Amavata tailam.

**ANIMAL KINGDOM :**—Accessary sex glands, Amber, blood, bile, bones, coral, civet, dung, eggs, flesh, folicles of castor beaver, feathers, glandular organs, gall stone, ghee, Ivory, milk, musk, operculum, pearls, skull, shells, silk pod, teeth, urine, venom etc., are obtained from animal kindom. Here also due consideration is given to the age, sex, stature, parts of the body, pregnancy, health, mode of death etc., of the animal.

When Arsa Sampradaya moved cautiously with mercurial, metals and minerals, the inquesitive mind of Tantric period adopted them on various considerations. Hence they probed deep to find out some method by which these drugs could be availed beneficially and preserved for a considerable length of time.[72] Small dose pattern, absence of dislike of taste and quick relief out weighed the risks involved by using them. This ought to have been the motive behind the scientists of Tantric period who were mainly responsible for prevelance of this Rasa Sastra. They succeeded in rising this to the level of a Philosophy by name Rasesvara[73] Darsana. Impetus so started in 9th century rose to this level in 14th century. This can be said the golden era of Pharmaceutics in Ayurveda.

Thus alum, arsenic disulphide, antimony, ammonia, bituman, borax, calamine, copper sulphate, cinnabar, corrosive sublimate, copper, ferrous sulphate, gypsum, gold, iron, iron pyrites, lead, mercury, mica, quartz, red-earth, rock salt, sulphur, silver, tin, zinc, etc.. constitute mineral Kingdom.[74]

Taking note of the poisonous nature of these drugs, authors have devised elaborate medicinal process to treat them and make them fit for human consumption. It is only after this treatment, these drugs are administered or entered into consumable medicine.

**PROCESSING :**—Therapeutic value of these drugs is responsible for their inclusion in the flora of medicine. They were found to possess individual,[75] combined,[76] catalytic[77] and modified[78] actions. Pharmaceutically these values must be exploited for the benefit of humanity.

To suit various contingencies, these had also to be stored for ready use. In this process, these therapeutically potent drugs were preserved in various forms to keep quality. It was done by simple change in the form of those drugs as in the case of powders, confections etc., or imbibing them through the media of solvents like Ghee, oil etc. These Pharmaceutical forms involved many pharmaceutical processes like Pulverisation,[79] contusion,[80] grinding,[81] trituration,[82] lavigation,[83] ebullitio,[84] evaporation,[85] dehydration,[86] simple[87] and destructive[88] distillation, fermentation,[89] colation,[90] calcination,[91] sublimation[92] etc. To effect these processes various apparatus were also designed.

There are are hundreds of medicinal forms as Churnam, Lehyam etc., where vegetable Kingdom is in major proprition than the mineral and animal kingdoms. There

is a different kind of classification of preparation containing mercury, metals and minerals as primary constituents and the rest as secondary by Vagbhata in Rasaratna-samuchaya.[93] Having elaborated the metals, minerals and mercurials with their Sodhana, Mardana and Samskara processess which are aimed at their utilisation in medicines he dwells upon this point. Mercury, when having lost its canclaya-mobility and Durgrahatva-known as Rasa-bandha and it is of 25 varieties. While processing these drugs, due care is taken to avoid incompatabilities. Caraka[94] ennumerates them as Incompatabilities in respect of place, time, digestive power of the subject, dose, immunity, tridosa, process-virya, bowel condition of the subject, maturity, combination and mental satisfaction are to be avoided.

In the matter of posology authors of Ayurveda have stressed the importance of studying the constitution of individuals. Sarngadhara[95] says that dose is not a constant factor. But it is to be decided on the besis or time, digestive power, age, strength, constitution, dosha involved and the subjects.

Mode[96] of indication is of 10 varieties in empty stomach, before or in the middle or after food, between or in every morsal of food, frequently with food, before and after food and in the night.

The mode of administration of a drug also plays an important role here. Concept of Anupana,[97] the vehicle, comes under this. Drugs are more active therapeutically under the influence of such Anupana. Again, theses Anupana vary according to the individuals; and it is possible to decide them only on the study of individuals concerned.

Besides, as far everything else, for selecting a drug for indication also substratum[98] of vitiation, geographical[99] habitat and constitution, physical strength,[100] strength, time factor[101] of the diseases, like the eve of season, timing of the illness etc., nature[102] digestive factor, innate constitution,[103] age,[104] mental[105] stamina, self compatability,[106] food[107] habit and similar other factors[108] of the individuals are necessarily to be identified first. Absence of such approach and stray success secured are not considered rationale in Ayurveda.

Further, certain dietary and behaviour patterns, which are generally denoted by the word 'Patya'[109] are also of significance for efficient therapeutic value of the drug.

Such precautionary methods are scrupulously laid down by Ayurveda because of the recognition of the fact that the body mechanism is always at the risk, of bad influence of the Tridosa, the vitiating factors namely Vata, Pitta and Kapha that coexist from the inception awaiting opportunities to interfere with.[110] So Ayurveda expects a drug or the treatment to be absolutely pure, lest it should meddle with the equilibrium of Tridosha. A mode of treatment, when mitigates one adverse condition and produces another undesirable result, it is said to be an imperfect treatment.[111]

## NOTES AND REFERENCES :

1. Carakasamhita—Sutrasthana Ch. 1-15 Purusartha
2. Observance of right path prescribed by religious scriptures of Hinduism.
3. Possession of Wealth
4. Fulfilment of desires
5. Salvation
6. Treatise known as Agnivesa Samhita on medicine redacted by Caraka, supposed to be flourished between 2nd century B. C. and 2nd century A. D.
7. Treatise on surgery believed to be revised and recompiled by famous Buddist patriarch.
8. Believed to be a Buddist of Sind who probably lived in the 5th or 6th century A.D. He has left us two valuable works, the Astangasangraha and Astangahridya.
9. 1. Nandi, 2. Agastiyar, 3. Tirumular, 4. Punnakkesar, 5. Pulastiyar, 6. Puonaikkannar, 7. Idaikkadar, 8. Bogar, 9. Pulikai Isar, 10. Karuvurar, 11. Konkanavar, 12 Kalangi, 13. Sattainathar, 14. Azhganee, 15. Agappai, 16 Pampatti, 17. Theraiyar, 18. Kudhambai

   Names like Bogar, Idaikadar and Therayar are of recent origin and these Siddars lived probably in the middle ages. There are also authors of Siddha treatises like Sattaimuni, Yugimuni, Machamuni, Kakabusundar etc., whose works are available in parts at the present day and are being used.
10. Astangahridaya—Sutrasthana--Ch. I.
11. Carakasamhita—Sutra--Ch. I-24
12. Astangahridayam—Sutra--Ch. I-26
13. Bhavaprakasa Nighantu, Dhanvanataranighantu, Rajanighantu, Kaiyadevanighantu are the main sources of literatures regarding these raw materials.
14. Carakasamhita-Vimanastham--Ch.III-4
15. Moderate place—Ibid- 8 and 9
16. Dry and arid—Ibid 8 and 9
17. } Sarngadharasamhita— Prathamakhanda--Ch. I-58
18. } Susrutasamhita—Sutrasthana Ch. XXXVI-3
19. }
20. }
21. } Carakasamhita-Kalpasthana Ch. I-9-10
22. }
23. } Astangahridya Kalpasthana Ch. IV-1-4
24. Caraka—Kalpa--Ch. I-10
25. Susruta—Sutra Ch. XXXVI-3
26. Astangahridya—Kalpa--Ch. VI Sarngadhara—Prathamakhanda Ch. I-56-57
27. Sarangadhara—Prathamakhanda Ch. I-47
28. } Caraka--Kalpa--Ch I-10
29. }
30. }
31. }
32. }
33. 34. Sarangadharasamhita Prathamakhanda Ch. I-59
35, 36. Susruta--Sutra--Ch. XXXVI-7
37. Tinospora cordifolia
38. Adatoda vasica
39. Emblia ribes
40. Sarngadhara. Prathama khanda Ch. I-14

Susruta---Sutra Ch. XXXIV-7
41. Aconitum ferox, Vatsanabhil
42. Strychnos nux-vomica, Visamusti
43. Croton tiglium, Dantibeejam
44. Semicarpus anacardium, Bhallatakam
45. Datura metel, Dhatura
46. Specific process of purification to mitigate their side effects.
47. Caraka--Kalpa--Ch. 1-11.
48. Astangahridaya--Sutra Ch. VI8-23
49. 50. Ibid-138-140
51. 52. Sarangadharasamhita—Prathamakhanda Ch. I—51-53
63. 54. Ibid-60
55. Ficus bengalensis
56. Woodfordia fruticosa
57. Euphorbia tirucalli
58. Pterocarpus Marsupium
59. Tinospora cordifolia
60. Sarnyadhara—Prathamakhanda—Ch. I 61-62
61.–65. Ibid—47-48
66.–67. Dravyagunavignanam—Utharasthana—Prathamakhana
68. 69. Sarngadharasamhita Prathamakhanda Ch. 1 50
70. Ibid-49
71. Dravyagunavignanam—Utharasthana, Prathamakhanda-11. 12.
72. Rasendrasarasangraha Ch. I-4
73. Rasaratnasamuchaya Ch. JV-17-21
74. Ibid
75. Astangahridaya—Sutra—Ch, IX-23-25
76. Caraka—Vimana—Ch. I-11.
77. Yogavahi
78 Samskara
79. Curnanam
80 Kuttanam
81. Mardanam
82. Sammardana
83. Pesana
84. Kvathana
85. Baspikarana
86. Sospikarana
87. Arka
88. Dravakam
89. Madyavidhana
90. Galana
91. Bhalana
92. Urdhvapatana
93. Rasararatnasamucoaya Ch. XII-60-104
94. Caraka—Sutra—Ch. XXVI 86-102
95. Sarngadharasamhit—Prathamna Khanda Ch. I-37
96 Astangahridaya—Sutra Ch. XIII 37-40
97. Ibid Ch. VIII 47-54
98. Dusyam
99. Desa
100. Bala
101. Kala
102. Anala
103. Prakriti
104. Vayah
105. Satva
106. Satmya
107. Ahara
108. Ibid Ch. XII-66 67
109. Caraka—Sutra Ch XXV-45-47
110. Astangahridaya Sutra Ch. XIII 19
111. Ibid-19

## BIBLIOGRAPHY


Astangahridaya —Vagbhata
Astangasangraha —Vagbhata
Bhavaprakasanighantu —Bhavaprakasa
Carakasamhita —Agnivesa
Dhanvantara Nighantu
Dravyagunavignam —Yadavaji Trikamji Acharya
Glossory of Indian Medicinal Plants —Chopra
Introduction to Siddha System of Medicine —Dr. V. Narayanaswami
Kaiyadeyanighantu —Kaiyadeva
Rajanighantu
Rasaratnasamuchaya —Vagbhata
Rasendrasarasangraha —Gopalakhnan
Sarngadharasamita —Saragadhra
Susrutasamhita —Susruta








# Ayurvedic Approach to Healthful Longevity

Kaviraj **Purushotham Dev Multani**

Health longevity has always been cherished wish of man. Ayurveda (Ayur-life;Veda-science) literally means the science of life. This covers art of a term primarily suggestive of health and long life. The main objective of Ayurveda is restoration and maintainance of the metabolic equilibrium (DhatuSamya-Kriya).

Health(Swasthya) is defined as (a) Dhatu Samya (Well balanced metabolism) plus (b) prasanna-atama-indria-manah (a happy state of the being,the senses and the mind.) Senses here mean the five organs of perception (Smell, taste, sight, touch and hearing) coupled with the organs of action namely mouth, hands, feet, organs of excretion and reproduction.

Disease is defined as 'Dukh Sanyoga' I. e. contact with Dukha. Dukh has no equivalent in English language. It stands for physical discomfort, pain or suffering, as well as for mental anguish, including the pangs of jealousy, fear, anger, avarice, hate, passion etc.

It is to be everlasting glory of our ancient that the very modern idea of stressing prevention more than cure, health before ill health meet us from the very dawn of history. Take for instance, the first chapter of 'Caraka Samhita' which expound the quest of longevity; wherein are laid down rules for the good and bad life, the happy and unhappy life, and what is wholesome and what is unwholesome, in relation to life as also the span of life. similarly, the arrangement of topics in the welknown treatise 'Astangahridaya'. The first portion of work concerns itself with the rules of hygiene and sanitation rules for dinacharya, ritucharya, food, drinks etc.

First of all and most of all to live nobly, to think clean thoughts, to feel noble emotions and to behave rightly under all the varying conditions and circumstances of our daily life. It is good to have clean body, but clear minds are even more essenlial. It is good to keep our body clean and, feed on pure food; but it is better to take bath and have our food with clean minds and pure hearts. Such is the ancient teachings which Ayurveda has ever proclaimed. Our forefathers attach so much importance to the rules of hygiene living that they incorporated their into the Nityavidhis in which it was incumbent upon every body to carry out every day and all day long. These rules of Achara of hygienic conduct meet us every where in the Sruties, Vedas, Smritis, Dharmsastras, Itihasas, Puranas, and scientific treatises, popular songs, kavyas, natakas, and literature in general as though they desired that every body should become drilled in the habit of healthy living, no matter what their special study or avocation may be.

For physical fitness in old age various measures have been suggested specially for sensory organs which are considerd important as they have to meet demands of daily requirements and compensate their tear and wear. For instance, eyes are to be protected by application of various kinds of collyriums; nose should be kept free from contamination by instilling medicated oils; ear drops should be used ragularly for prevention of ear diseases; teeth and tongue should be made clear by gargles and mouthful of Til oil (Gengil oil). To preserve lustre of skin oil massage and regular bath are prescribed. Physical exercise helps to delay ageing process and keep elderly persons healthy and active. Besides, it is strongly recommended not to suppress natural urges such as passing of urine, stools, semen, sneezing, vomiting, yawning, hunger, thirst, tears, sleep, and deep breath. The above mentioned practices if prosecuted regularly promotes the strength of body, mind and senses; and prevent the rapid onset of physical incompetence in aged persons and promote vigour and zest for life.

There are certain yogic postures and practices conduced to physical partially even mental well-being of aged and elderly persons The yogic direction on the art of relaxation of the body and the mind are fairly practical and can be followed by aged persons for long span of life.

Moral hygiene, (Sadavritta), as totally distinct from mental hygiene, is an integral part of the Ayurvedic conception of the prevention of human ills. A bad morality, asserts Ayurveda, cannot be conducive to peace and happiness of the community and vitiates even the normalcy of the elements of nature, the qualities of the soil and the produce, and even the seasonal phenomena like rainfall, heat and cold, etc. It is not necessary for a modern materialist to accept this view; but the genearl ethical approach to world problems which follows as a necessary corollary to it should be acceptable to every one.

Charaka says, 'As the age of truth declines some people find themselvcs in possession of too much (adana). This leads to Gaurava (heaviness in body and lethargy in mind) Gaurva leads to srama (sense of fatigue) which results in alasya (laziness). This leads to sanchaya (hoarding) and hoarding to parigraha (appropriating what belongs to others) and parigraha to lobha (greed and avarice). This chain of demoralisation goes on through treachery, falsehood, uncurbed desire, anger and wrath, vanity, hatred; cruelty, shock, fear, distress, sorrow, anxiety (abhidroha, anritavachanatva, kama, krodha moha, dvesha, paurushya, abhighata, bhaya, tapa, shoka, chittodvega), etc. Then the bodies and the minds of the people deteriotate and become a ready prey to diseases. Thus even the span of life is lowerd. " -Charaka, Vimana III,33.

It is often overlooked that the great advances in surgery and medicine have refused to pay dividends in the terms of equally spectacular and truly sound physical health and mental happiness, essentially due to a striking lack of appreciation of the role of moral approach in the achievement of these objectives.

Dr. Alexis Carrel, the American Nobel Prize winner in surgery, in his inspired book, 'Man the Unknown,' has drawn our attention to the fact that the progress in modern medicine has failed to check the onslaught of mental diseases on mankind. 'While infantile diarrhoea, tuberculosis; diphtheria, typhoid fever, etc., are being elminiated, they ara being replaced by degenerative diseases. There are also a large number of affections of the nervous system and of the mind. In certain States the multitude of the insane confined in the asylums exceeds that of the patients kept in all other hospital. Like insanity, nervous disorders and intellectual weakness seem to have become more frequent. They are the most active factors of individual misery and of the destruction of families mental deterioration is more dangerous for civilisation than the infectious diseases to which hygienists and physicists have so far exclusively devoted their attention.'

Ayurvedic approach to mental health, as in the case of the physical health, is threefold, through drugs, diets and practices. The drugs include brahmi,shankha-pushpi (Medhyeshu sarveshu chashakhapushih, i. e. shankhapushpi excels in intelligence-improving herbs), vacha, etc. Ayurveda looks with disfavour on basically non-curative, habit-forming and toxic drugs. It appears that the medhya and rasayana drugs of Ayurveda have no parallel drugs in modern medicine.

**Food and mode of living:** Saatvic foods, or foods and drinks which build less excitable and less violent minds and promote higher qualities of the mind as against the Raajasic (energy building, prone to contribute to restlessness of the mind) and the Taamasic ones (conducive to lethargy and unintellegence), and Saatvic modes of living and thinking are elaborately described in Ayurveda and its counter-part, the yogic living. It does not follow that all energising foods are non-saatvic or vice-versa.Cow's milk is both energising and conducive to non-voilent intelligence. Buffalo's milk energising and fatening but not conducive to keenness of intelligence. Of course, in making these comparisons, it is understood that all hereditary, social, physical, emotional, mental and educational factors are equal. Exclusive meatdiet supported by alcoholic drinks is a typically violence provoking diet. It also trends to make for cruelty, selfishness and treachery. Continued heavy feeding, feeding on kandoori fruit etc., shall lead to stupidity. There is no doubt, their consiousness is effected by the quality and quantity of food.

The Ayurveda has laid due strees on the mental, moral and spiritual health As Carrel has aptly put it, 'Artificial health does not suffice for the human happiness.' The health of the mind therefore should be reared, says Charaka, (tranquility), Smriti (recapitulation of supprssed) and on Jnanna (understanding), Vijnaana (knowledge), Dharya (regressed memories) and samadhi (introspection-meditation). This is to be co-ordinated; of course, with corresponding diets, and if necessary drugs.

In short, Ayurvedic approach to health-full longevity, subordinates the destruction of diseases to the construction of the tisses.

The stress is laid on saving the man and developing his general resistence and specific resistence against various dieases. Diseases are destroyers of health of the good of life and life itself. Therefore, if a man follows principles of 'Achara-samhita' i.e. Swasth-vritta and sadavritta as laid down by our Rishis to maintain good health; the span of life is sure to be prolonged. The best antedote to disease is enhancing health which in turn has an effect on delaying ageing processes as an attempt to prolong life and avoid undesirable aspect of ageing.

Healthful longevity is not showered by the God as a gift, but it has to be achieved through one's own sustained efforts throughout the life.

References:—

1. Charak Samhita, Volume V, Jamnager.
2. Ayurdharma, Volume I No. 2, Bombay
3. Ashtang sangrah.
4. Sachitra Ayurved, Dec 78, Patna.
5. The Journal of Research o Indian medicine, yoga + Homeopathy (1978): 1.8] Varanasi.

# Anatomical Approach To Srotus

**Dr. J. N. Mishra** (Demonstrator)
**Dr. Y. D. Shukla** (Reader)
**Dr. G. Thatte** (Professor)
Department of Sharir
State Ayurvedic College, LUCKNOW

## INTRODUCTION

The basic requirement of life is tripod of security, nourishment and reproduction. On the first two depend the life of the individual, on the third the continuance of the species. The single cell animal is in immediate contact with its environment water, from which it receives its nutrient material and oxygen and to which it returns its waste products. Even in the most complex animal each leads a similar life in immediate contact with the tissue fluid in which it is bathed. Thus, living body is nothing but collection of cells arranged in different colonies in tissue fluid.

Many cells of the body differ from each other functionally but basic characters are same; i. e. each cell requires nutrition for maintenance of life, and all cells utilize oxygan (PRAN VAYU) as one of the major substances from which energy is derived, combining with carbohydrates, fat or protein to release the energy required for cell function. All cells also deliver and products of their chemical reactions into the surrounding tissue fluid.

The fluid inside the cells is known as Intracellular fluid (STHAI DHATU) and the fluid in the spaces outside the cells is extracellular fluid (ASTHAI DHATU). The intracellular fluid differs from the extracellular fluid in constitution. This difference is maintained throughout the life by a special mechanism, which keeps the static or constant conditions in the internal environment (extracellular fluid), is known as transport system with the help of minute channels SROTUS. All the organs and tissues (made up of cells) of the body perform functoins that some or the other way help to maintain these constant conditions, e. g. the lungs provide oxygen required by cells, the kidneys maintain constant iron concentrations, and the gut provides nutrients. Thus, each organ or tissue contributes to HOMOESTASIS i. e. static condition of internal environment.

Extracellular fluid is transported to all parts of the body in two different stages. (i) Movement of blood around and around the circulatory system; (ii) Movement of fluid between the blood capillaries and the cells.

The term SROTUS is derived from the Sanskrit root स्रु स्रवणे to move or to flow. According to CHARAK the transportation system of the fluid of the body is known as SROTUS and they are numerous in number. CHARAK schools are of the view that body is nothing but a collection of SROTUS and life rests in it.

SUSHRUT schools state, the internal spaces, leading to DHATU, carrying nourishment and waste products along with DOSH to and from each cell through SROTUS by branching after branching.

This study has gone through the conditions laid out by different schools of thought to derive an ideal definition of SROTUS and tried to find out the anatomical structure meant by different Ayurvedic classics.

**Material and Method**

This study has included the conditions laid out by different schools of thought viz., CHARAK, SUSHRUT & VAGBHATTA and two commentators i. e. CHAKRAPANI of Charak and DALHAN of Sushrut. The literal meaning of Sanskrit word has been consulted by MADHUKOSH an authentic Sanskrit—English dictionary published by Govt. of India.

This paper has included three SHLOKAS of SUSHRUT viz.; Sush. Sha. 9/25, Sush. Sha. 4/9 and Sush Sut. 14/1-3; five SHLOKAS FROM CHARAK viz. Cha. Sut. 30/11. Cha. Sus. 28/5, Cha. Vim. 5/3, Cha. Vim. 6/30 and Cha. Chikit. 24/36, and two SHLOKAS from VAGBHATTA viz. ASTH. Hrid. Sha. 3/43 and Asth. Hrid. Sha. 3/46. One commentary of DALHAN on Sush. Sut. 14/1-3 and five commentaries on all above Shlokas of Charak for study have also been included. Thus; total sixteen notes of different Ayurvedic classics have been picked up in this study in reference to SROTUS.

The literature available in 1976 edition books of physiology and Anatomy regarding physiological and anatomical aspects of cell, intercellular fluid, microscopic channels present in tissue fluid, cellular metabolism and exchange of nourishment and waste products between cells and the channels nearby, have been consulted. GUYTON's Physiology and GREY's Anatomy of 1976 edition have been taken as standard in reference to modern literature.

Only those SHLOKAS have been picked up for records, which have clearly mentioned non-controvertial characters of SROTUS. Controversial statements of different schools of thought have not been taken into account. Common characters given in every Scholar's note have been counted in Group No. I; Non-controversial uncommon characters have been put in Group No. II. Characters of Grp. No. I are essential major factors and characters of Grp. No. II are taken as detailed description of some of very essential factors stated in Grp. No. I.

**Observation**

*From following* table common conditions have been picked up and put in Group No. I, and other conditions in Group No. II.

**Table No. I**

**Following table shows compilation of characters giveu in different Seholars' notes in order of preference.**

| S.N. | *Condition taken from Ayurvedic classics in reference to SROTUS | CHA. | SUSH. | CHAKR. | DALH. | VAGBHA. |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | SROTUS are tubular structure. | *sut. 28/5 | sha. 9/25 | sut. 28/5 | — | sha. 3/46 |
| 2. | SROTUS are five channels | vim. 5/3 | sha. 4/9 | vim. 5/3 | sut. 14/1-3 | ,, ,, |
| 3. | SROTUS branch freely | vim. 6/30 | ,, | ,, | — | sha. 3/43 |
| 4. | RAS (fluid) flows in the SROTUS. | sut. 30/11 | sha. 9/25 | sut. 30/11 | sut. 14/1-3 | ,, |
| 5. | Fluid permeates through SROTUS. to and fro. | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| 6. | Cellular metabolism of the boby takes place through SROTUS | vim. 5/3 sut 28/3 | — | vim. 5/3 sut 28/3 | ,, | ,, |
| 7. | Permeation or diffusion of the nutrients and water products takes place through AYUN-MUKH | sut. 28/5 | — | sut. 28/5 | — | — |
| 8. | SROTUS are not SIRA and DHAMNI. | chikit. 24/36 | sha. 9/24 | chik. 24/36 | — | --- |

In the above table, out of eight conditions five have fallen in Group No. 1 and rest of three conditions come to Group No. 11.

**Table No. II**

**Following Table shows the possible structures ( Anatomical ) covering the conditions mentioned in the column.**

| S.No. | Conditions in order | Veain Artery | G.I.T. | Repro-ductive | Respirat | Urinary | Lymphat | Capillary |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | SROTUS are tubular structure. | + | + | + | + | + | | + |
| 2. | SROTUS are fine channals | — | — | + | + | + | | + |
| 3. | SROTUS branch freely | + | — | — | + | + | + | + |
| 4. | RAS (fluid) flows in the SROTUS. | + | — | — | — | + | | + |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 5. | Fluid permeates through SROTUS to and fro. | − | + | − | + | + | + |
| 6. | Cellular metabolism of the body takes place through SROT. | − | − | + | − | − | + |
| 7. | Permeation on diffusion of the nutrients and waste product takes place through AYUN-MUKH. | − | + | − | − | − | ⊕ |
| 8. | SROTUS are not SIRA and DHAMNI. | − | + | + | + | + | + |

Above two tables and the graph shown below reveals that there are eight conditons laidout for ideal definition of SROTUS and, if all possible anatomical tubular structures are compared with the conditions laid in Table No. I; that the Capillary if the structure which satisfies all the conditions in the Table No.I.

**RESULT**

1. *There* are total eight characters mentioned in different Ayurvedic classics.

2. Capillary is the anatomical tubular structure which can be compared hundred percent with the conditions taken in our study.

3. This study also reveals that different Ayurvedic classics have not accepted the structure fulfilling below 39% of the conditions of our study, as a SROTUS.

**DISCUSSION**

At least first four conditions out of six conditions of Group No. I have been considered as basic requiremnet to reach near the definition of SROTUS, and in Table No. II, all major tubular structures present in the body have been compared of the conditions arranged in Table No, 1. It has been found that Capillary is the structure which satisfies all eight coditions mentioned in our study by different Ayurvedic classics.

Lymphatic and Urinary systems are next to capillaries which fulfill 75% conditions mentioned in the Graph. But, still they can not be included in an ideal definition of SHROTUS, because condition No. 6th. and 7th. of Group No. 11 are not fully explained by these structures. Hence this study reveals that Capillary is the ideal structure stands for the definition of SROTUS.

**SUMMARY**

This is a matter of appreciation that in the ancient period when the physics was not so much devoloped to visualise microscopic structures pesent in the body, our great philosphers peniterated their thoughts into the microscopic anatomy. So far as the classification of SROTUS is concerned, on the basis of the infererence drawn by this paper, all the capillaries are innumerable in number but they can be classified according to the fuctional divisions of the tissues.

The capillary system is distributed all over intercellular fiuid of the body, it is

traversing through every system. It keeps the internal environment constantly moving but keeping static in respect to its constituents. The classification of SROTUS in different Ayurvedic classics justifies the emphasis over the tubular structure which are collection of cells bathed in a tissue fluid (Asthai. Dhatu) and they are basically used only for transportation of some or the other materials; these types of SROTUS have been labelled as BAHIRMUKH (because opening outer world of the body) or STHOOL i. e. macrotubular structures. But, internal environment of these STHOOL SROTUS are also kept constant with the help of special system, labelled as SUKSHAMA or YGAVAHI or ANTARMUKH SROTUS (because being microscopic, taking part in cellular metabolism and opening into intercellular fuid). This system transports materials as well as maintains the constitution of interstitial fluid constant.

The cell membrane is made up of lipid matrix, perhaps partially covered on each side by a layer of protein leaving pores (AYUN-MUKH). CHAKRAPANI's version regarding AYUNMUKH through which metabolism occurs, looks to be true in the sense that the wall of cells are porous and they receive nutrients and excrete out their excretary products into iterstitial fluid by two proceses, (a) Diffusion, (b) Active Transport.

Imbalance of constituents of internal environment caused by constantly receiving nutrients and pouring out excretory products, are balanced by regular exchange of materials through patent, pores (AYUN-MUKH) of SROTUS or capillaries. Thus, these AYUN-MUKA of capillaries control and regulate the metabolism of cells. Any obstruction to these AYUN-MUKH leads to disequilibrium of internal environment causing VYADHI. Hence-forth, the idea of AYUN-MUKH of our AYURVEDIC classics still holds its status In modern era, which is a matter of proud to this science.

In the end, we can say that this paper is in a position to formulate an ideal definition of SROTUS; as follows SROTUS are microscopic tubular structures containing RAS (fluid substances or ASTHAIDHATU) permeating through them and take part in cellular metabolism through AYUN MUKH.

**Bibliography**

1. Sushruta Samhita
2. Charak Samhita
3. Astang Hr.daya
4. Astang Sangraha
5. Ayurvediya Kriya Sharir by Sri Ranjita Rai Desai:
6. Introduction to Kaya Chikitsa By Sri C. Dwarkanath
7. Dige.tion and Metabolism in Ayurveda By Sri C. Dwarkanath
8 Gray's Anatomy 1973 Edition.
9. Guyton's Physiology
10. Wright's Physiology
11. Physiology By Best Taylor
12. Amar Kosh
13. Glossary Published By Govt. of India.

# गरीबों की कस्तूरी—लहसुन

वैद्य लक्ष्मी नारायण शास्त्री,
एम. ए एस.
आरोग्य निकेतन, जमघट, पो०-दरियापुर
( मुंगेर )

लहसुन एक अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है। इसमें अनेक औषधिक गुण भरे पड़े हैं। महात्मा गांधी बराबर लहसुन का प्रयोग किया करते थे। उन्होंने कहा है—"लहसुन तो गरीबों की कस्तूरी है और मुझे इसके प्रयोग से बड़ा लाभ पहुंचा है।" एक प्रसिद्ध कोष में लहसुन शब्द का अर्थ "रोगों को काट कर निकालने वाला" दिया है अर्थात् इसके सेवन से अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। प्राचीन युग के प्रसिद्ध वैद्य ऋषि चरक और सुश्रुत ने भी लहसुन के गुणों की प्रशंसा की है। महर्षि चरक के अनुसार लहसुन के प्रयोग से वायुगोला, पेट की गड़बड़ी, कोढ़, सफेद दाग, त्वचा के रोग एवं पेट के कीड़े नष्ट होते हैं। महर्षि सुश्रुत के अनुसार लहसुन तेज, दस्तावर, ताकतवर, कांतिदायक, नेत्रों के लिए उपयोगी, टूटी हड्डियों को जोड़ने वाला, दिल की बीमारी को दूर करने वाला, पुराने ज्वर का शमन करने वाला एवं सूखा रोग को दूर करने वाला है। लहसुन से पेट की अंतड़ियां पुष्ट होती हैं, मस्तिष्क की शक्ति प्रबल होती है, पुट्ठों और नसों की पीड़ा दूर होती है, दमा, लकवा, गठिया, गले की खराश, मोच और व्रण आदि चर्मरोग में लाभकारी है।

चरक और सुश्रुत के अतिरिक्त आधुनिक अनुसंधान-कर्त्ता वैज्ञानिकों ने भी इस पर गवेषणापूर्ण अनुसंधान करके बताया है कि लहसुन स्वास्थ्य के लिए बड़ा लाभदायक है।

लहसुन का गुण बताते हुए हीयर्ज ने 'हेल्थ' नामक पत्रिका के अगस्त 1957 के अंक में लिखा है—"लहसुन बड़ा शक्तिशाली एण्टी सेप्टिक है, पायरिया, फोड़े, चर्मरोग आदि में यह बड़ा ही प्रभावकारी है। जहां कहीं सूजन हो, लहसुन उसे नष्ट कर देता है। लहसुन के प्रयोग द्वारा आप प्रकृति की उपचार-क्षमता को बल प्रदान करते हैं।"

डा० रेगनर हस ने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि लहसुन पोलियो रोग को रोकने में बड़ा लाभकारी है। मास्को में एक बार पोलियो रोग का आक्रमण बड़ी तेजी से हुआ। स्कूलों के छोटे-छोटे बच्चे बड़े पैमाने पर पोलियो से ग्रस्त होने लगे। उस समय डा० हस ने वहां के तीन स्कूलों के छात्रों को लहसुन का प्रयोग कराया और इस प्रयोग के फलस्वरूप उन तीन स्कूलों के सभी बच्चे पोलियो के आक्रमण से बचे रहे।

'साइन्स' नामक पत्रिका में एक बार लहसुन के बारे में छपा था कि लहसुन ट्यूमर रोकने के लिए एक-मात्र दवा है। इस तरह यह कैंसर रोग को रोकने में परम उपयोगी है।

भारत सरकार द्वारा स्थापित एवं संचालित मैसूर की प्रयोगशाला में खाद्य पदार्थों पर अनुसंधान किये जाते हैं। वहां से प्रकाशित 'खाद्य विज्ञान' नामक पत्रिका में एक बार लहसुन के बारे में प्रकाशित हुआ था कि लहसुन रोगानुनाशक, प्रस्वेदक, मूत्र-वर्द्धक एवं कफ-निवारक होता है।

इस तरह देश और विदेश में अनेक वैज्ञानिक अन्वेषकों ने लहसुन पर शोध किये और लहसुन के गुणों की प्रशंसा की। आयुर्वेदिक चिकित्सा में इसे बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आधुनिक अनुसंधानकर्त्ताओं ने बताया है कि लहसुन में एल्लिसिन नामक पदार्थ होता है जो जीवाणुनाशक गुणों से पूर्ण होता है। लहसुन के क्वाथ में तथा लहसुन के रस में रोग के जीवाणुओं को मारने की अद्भुत क्षमता होती है। भोजन में लहसुन के प्रयोग से आंतों में 'थायामीन' (विटामिन बी.) अधिक मात्रा में तैयार होता है। आंतों में एल्लिसिन थायामिन के साथ मिलकर एल्लिसिन थायामिन बनता है जो कि थायामिन की अपेक्षा तेजी से जज्ब होता है।

राजयक्ष्मा जैसे भयंकर रोग भी लहसुन के प्रयोग से

आसानी से दूर किये जा सकते हैं। आंतों के तपेदिक में इसका छः माशा से एक बोतल तक रस एक तोला जल के साथ देने से बहुत लाभ होता है। रक्तचाप में भी लहसुन बड़ा गुणकारी सिद्ध हुआ है। आचार्य विनोबा भावे के भाई श्री बालकृष्ण जी को राजयक्ष्मा हो गया था। उन्होंने प्रतिदिन ५ तोले लहसुन का सेवन करके इस भयंकर रोग से छुटकारा पा लिया। इसके अतिरिक्त और कोई दवा नहीं की। उनके इस प्रयोग के बाद से सभी प्राकृतिक चिकित्सक अब राजयक्ष्मा रोग में प्राकृतिक उपचारों के साथ-साथ लहसुन का सेवन कराते हैं।

घी, मक्खन और दूध के साथ लहसुन का सेवन अधिक शक्ति प्रदान करने वाला होता है। यद्यपि किसी-किसी के मत से लहसुन सेवन करने वालों को दूध का सेवन नहीं करना चाहिये परन्तु महात्मा गांधी लहसुन का प्रयोग बराबर बकरी के दूध के साथ किया करते थे। नपुंसकता दूर करने के लिए तथा बांझपन को मिटाने के लिए लहसुन का उपयोग बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है। यह वीर्य की वृद्धि करता है तथा उसे दृढ़ करता है। अफगानिस्तान के लोग इसे बराबर मात्रा में घी के साथ उपयोग में लाते हैं। इसे पीस कर चौगुने दूध में पकाकर भी वे अधिक प्रयोग करते हैं। वे लोग इसे उत्तम कोटि का 'टानिक' मानते हैं। लहसुन के साथ घी, दूध, मक्खन आदि चिकने पदार्थ का अधिक सेवन करना चाहिए। ऐसा न करने से यह शरीर में अधिक गरमी उत्पन्न करता है जिससे हानि की संभावना भी हो सकती है। गर्मी के दिनों की अपेक्षा जाड़े में इसका अधिक सेवन करना चाहिये। दूध, घी, मक्खन दही या सब्जी के साथ कच्चे लहसुन का सेवन करना अधिक लाभकारी होता है। पकाये जाने पर इसके गुण कुछ न्यून हो जाते हैं।

लहसुन के बारे में कुछ लोगों की धारणा है कि यह ब्रह्मचर्य के लिये बाधक है और यही कारण है कि धार्मिक दृष्टिकोण से इसका निषेध किया गया है किंतु महात्मा गांधी, श्री बालकृष्ण जी तथा अन्य कुछ महापुरुषों ने प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया है कि यह ब्रह्मचर्य के पालन में बाधक नहीं है। यदि विधिपूर्वक इसका सेवन किया जाय तो इससे अधिकाधिक लाभ उठाया जा सकता है। लहसुन एक उत्तम कोटि का शक्तिशाली रसायन है और यह वीर्य को पुष्ट करता है तथा पुष्ट वीर्य का उत्पादन करता है।

प्रसिद्ध छः प्रकार के रसों में लहसुन में ५ प्रकार के रस पाये जाते हैं। सिर्फ एक रस की कमी के कारण इसे रस-ऊन=रसुन कहा जाता है। इसकी जड़ में चरपरा, पत्तों में कड़वा, नाल में कषैला, नाल के अगले भाग में लवण और बीजों में मधु रस रहता है। एक अम्ल रस की इसमें कमी रह जाती हैं।

लहसुन में विटामिन 'सी' और 'ई' पर्याप्त मात्रा में होता है। इसके अतिरिक्त विटामीन 'ए और ,बी' भी इसमें पाया जाता है। इसमें 4% प्रोटीन तथा 16% कार्बोहाइड्रेट होता है। इसमें चिकनाई नहीं होती।

लहसुन के गुणों से प्रभावित होकर मिश्र के लोग इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं तथा इसकी पूजा करते हैं। रोम के लोग मजदूरों को ताकत और जोश दिलाने के के लिए इसका प्रयोग करते हैं। मुर्गों को लड़ाने वाले अपने मुर्गों को परम लड़ाकू बनाने के लिए तथा उनमें तेजी लाने के लिए काफी मात्रा में उन्हें लहसुन खिलाते हैं।

**विभिन्न रोगों में लहसुन के प्रयोग**

खाँसी, दमा और कफ के रोगों में—अदरक, नीबू का रस, नमक, जीरा तथा अनार दाना के साथ लहसुन की चटनी पीसकर सेवन करने से लाभ करता है।

लहसुन को कुचलकर रोज चार घंटे सूंघने से काली खांसी अच्छी हो जाती है।

छोटे बच्चों की कुकुरखांसी की आरंभिक अवस्था में 20 से 30 बूंद तक लहसुन का ताजा रस अनार के शरबत के साथ मिलाकर चार-चार घंटे पर देने से बहुत शीघ्र खांसी दूर हो जाती है।

**गठिया**– हरड और सोंठ एक-एक छटांक, दालचीनी, छोटी ईलाइची एक-एक तोला, लहसुन २ छटॉक—सबको एक सेर दूध में पका कर उनका खीर बनाकर खाने से लाभ होता है।

घी में लहसुन को भूनकर रोज खाने से गठिया में लाभ होता है। सूजे हुए जोड़ों पर तीसी के आटे में लहसुन को पीसकर बांधना चाहिए।

**घाव पर**—घाव को सर्वप्रथम लहसुन के जल से धोकर साफ कर लें और उसके बाद लहसुन को पीस कर

उसकी पट्टी घाव पर बांध दें। इससे घाव शीघ्र भर जायगा और अच्छा हो जायगा। जिन घावों के भीतर के तन्तु शीघ्रता से नष्ट हो रहे हैं और उसके कारण उस अंग को काट कर निकाल डालने की जरूरत महसूस होती हो, उनमें लहसुन का प्रयोग करने से बहुत लाभ होता है तथा अंग कटवाने की प्रायः जरूरत नहीं रहती।

**चर्मरोग में**—लहसुन के रस को रोग-स्थान पर लगाना चाहिए तथा खैर के काढ़े के साथ लहसुन खिलाना चाहिए। इससे दाद, खाज, खुजली आदि सभी रोग दूर हो जाते हैं।

**पेशाब रुकना**—सीवन की जगह पर तीसी के आटे के साथ लहसुन पीसकर या केवल लहसुन की पुल्टिस पेट पर बांधने से पेशाब खुल जाता है।

**मधुमेह**—त्रिफला के साथ लहसुन खाने से मधुमेह में बड़ा लाभ होता है।

**मिरगी**—लहसुन के साथ पकाया हुआ दूध पीने से मिरगी में लाभ होता है। बेहोशी की दशा में लहसुन को कुचल कर उसे रोगी को सुंघाने से तथा उसका दो-तीन बूंद रस नाक में टपकाने से बेहोशी दूर हो जाती है।

**मोच और हड्डी के टूटने पर**—हड्डी के टूटने, कटने या अपनी जगह से खिसक जाने पर लहसुन पीस कर दूध के साथ पिलाने से तथा आक्रान्त स्थान पर लहसुन को पीस कर तेल में मिलाकर गरम-गरम लेप करके बांधने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

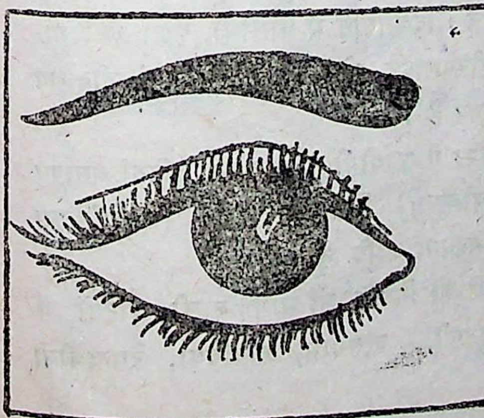
**निमोनिया और इन्फ्लूएन्जा में**—मूंग या अदरक के पानी में लहसुन का रस मिलाकर देने से विशेष लाभ होता है। इसके अतिरिक्त लहसुन की गरम-गरम पुल्टिश छाती पर बांधने से विशेष लाभ होता है।

**राजयक्ष्मा**—लहसुन के ताजे निकाले हुए रस एक ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार शहद के साथ सेवन करने से क्षय रोग दूर होता है। आक्रांत स्थान पर लहसुन का रस समान भाग वेसलीन के साथ मिलाकर लगाना चाहिए। चिकित्सा-काल में दूध और मक्खन का सेवन अनिवार्य है। लहसुन एक प्रबल कृमिनाशक पदार्थ होने के कारण क्षय रोग के कीटाणुओं की वृद्धि को रोकने में बहुत ही उपयोगी है। यह हड्डियों तक के क्षय को दूर कर सकता है।

**लम्बी आयु के लिए**—आधा पाव लहसुन छीलकर पीस लें और उसे एक पाव शुद्ध घी में भूनें। इसमें से थोड़ा शहद के साथ खाकर ऊपर से दूध पीवें। घी और शहद की मात्रा में समता न रहे! एक साल तक इसका नियमित सेवन करने से सौ साल की आयु हो जायगी गेहूं, जौ की दलिया और दूध, दूध-भात भोजन में लें। यह योग सभी रोगों को दूर करता है।

**स्त्री का दूध कम होने या खराब होने पर**—भोजन सामग्री के साथ लहसुन का प्रयोग करने से विकृत हुआ दूध शुद्ध होता है तथा अधिक मात्रा में आने लगता है।

**पेट के कीड़े**—लहसुन पीस कर पानी में घोल लें और जिसके पेट में कृमि हो गयी हो उसे उस पानी का एनिमा दें। इससे अनेक प्रकार की कृमि नष्ट होती है।



# सिक्किम (हिमालय) का वनौषधि सर्वेक्षण अभियान

डा० मायाराम उनियाल,
प्रभारी अधिकारी
क्षेत्रीय आयुर्वेद अनुसन्धान-केन्द्र, झांसी

प्राकृतिक नैसर्गिक सौन्दर्य एवं विपुल वनसम्पदा से भरपूर सिक्किम प्रदेश का भारत में विधिवत् विलय 16 मार्च 1975 को हुआ। यह प्रदेश जड़ी-बूटियों, खनिजों एवं वन्य जन्तुओं के लिए विश्वविख्यात है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल 7.325 वर्ग किलोमीटर है, जो कि 600 मीटर की ऊँचाई से लेकर 6400 मीटर की ऊँचाई तक चला गया है। इस प्रदेश की आबादी लगभग 3 लाख है। प्रदेश में बसने वाले लोग नेपाली, लेपचा एवं भोटिया हैं जो कि गांव में बसते हैं। सभी गांव पहाड़ी ढलानों एवं टिस्ता तथा रिंगित नदियों की घाटियों में बसे हुए हैं। समस्त प्रदेश को व्यवस्था की दृष्टि से चार जिलों में विभक्त किया गया है। लेपचा एवं भोटिया लोगों का रहनसहन, खानपान तथा सभी रीति-रिवाज तिब्बतियों से मिलते हैं। ये लोग बौद्धधर्म को मानने वाले हैं, यही कारण है कि ये अपने को सिक्किमी मानते हैं। नेपाली (पहाड़ी) भी काफी संख्या में हैं। ये लोग हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं। लेपचा, भोटिया; लामा को अपना प्रधान गुरु मानते हैं। इन लोगों के जन्म से लेकर विवाह, मरण आदि सभी संस्कार लामा कराता है। लामा के निर्देश पर ही ये लोग चिकित्सा आदि करवाते हैं। धान, मक्का, कोदों एवं बड़ी इलायची की मुख्य खेती होती है।

परम्परागत वनौषधि उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए सिक्किम के प्रदेश का सर्वेक्षण जुलाई 1978 को हुआ: केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय भारत सरकार की भारतीय चिकित्सापद्धति, एवं होम्योपेथी की केन्द्रीय अनुसंधान परिषद् का एक अन्वेषक दल डा० मायाराम उनियाल पार्टी लीडर एवं श्री रूपकुमार इस्सर (वाटनिस्ट) को 3 माह के लिये प्रारम्भिक सर्वेक्षण हेतु भेजा गया एवं इस अवधि में दल ने नवीन उपलब्धियां पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सिक्किम के वन क्षेत्रों में जो प्राप्त की हैं उनकी संक्षिप्त जानकारी यहाँ नीचे दी जा रही है।

1. समस्त प्रदेश में परम्परागत चिकित्सा (एमची पद्धति) करने वाले चिकित्सक लगभग 15 के करीब हैं। ये चिकित्सक जड़ी-बूटियों द्वारा, अग्निकर्म द्वारा; रक्तमोक्षण द्वारा एवं जल-चिकित्सा द्वारा रोगियों की चिकित्सा करते हैं। लामा के निर्देश पर तंत्र-मंत्र आदि विधियों से स्वास्थ्य-लाभ में विश्वास करते हैं।

2. अकाल के समय या गरीबी होने पर लेपचा एवं भोटिया लोग इस क्षेत्र में उगने वाली सूरणकुल का उपयोगी कन्द नागदमनी (तौं, लड्वा) की रोटी बनाकर खाते हैं। इस रोटी को खाकर दो-तीन दिनों तक भूख रह सकता है जो कि शारीरिक शक्ति बनाये रखता है। नागदमनी का उपयोग सीमान्त क्षेत्रों में बसने वाले आदिवासी स्थानिक मध्य मरचा (छंग) में भी करते हैं।

3. दल ने कुछ विशेष किस्म की नवीन जड़ी-बूटियों का पता लगाया है जिनका परम्परागत उपयोग स्थानिक एमची करते हैं उनमें माईकोपिला (ससूरिया), यांकी (सौगों) शर्मागुरु, महागुरु, एकलावीर (छुका) रम्बू, पांगेत्त, तिक्ता; आसोलो, पेमा, सोंगठे (मेन्ड्रोगोरा) यांगचीता (जिसेन) आदि द्रव्य मुख्य हैं।

4. चरक एवं सुश्रुत संहिता में वर्णित अज्ञात दिव्यौषधियां एवं अष्टवर्ग के द्रव्यों की खोज करने में दल को सफलता मिली है। जिनमें जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा ऋद्धि-वृद्धि आदि आठों उपयोगी कन्द हैं। दिव्यौषधि में गोलोमी, छत्रा, आदित्यपर्णी, अजा, क्षीरपलाण्डू, सोम की किस्में एवं जीवनीय गुण के द्रव्य मुख्य हैं।

5. मलेरिया में उपयोगी परम्परागत बूटियाँ बसाका (डाईचूरा फेब्रीव्यूजा) छितोंन/सप्तपर्ण (एलस्टोनिया स्कोलेरिस), सिंकोना आदि मुख्य हैं।

6. विदेशों को निर्यात की जाने वाली बूटियों में जटामांसी, कुटकी, वत्सनाभ, अतिविषा, रेवन्दचीनी

(हत्राब) लाइकोपोडियम, सालमपंजा, कस्तूरी (मस्क) लीमोशीशी (पोडोफिलम) आदि कतिपय द्रव्य इस प्रदेश में सुलभ हैं।

7. दल ने प्रारम्भिक सर्वेक्षण काल में लगभग 6000 पादपों का संग्रह किया है जिनमें लगभग 900 किस्में हैं। इन प्रजातियों में एक सौ साठ परम्परागत चिकित्सा महत्व की, 430 किस्में औषधि उपयोग की एवं 25 किस्में व्यापारिक (कार्मसियल) महत्व की हैं।

8. दल ने इन क्षेत्रों में बसने वाले लगभग 5000 रोगियों से संपर्क किया जिनमें मुख्य रूप से यह देखा गया कि इस प्रदेश के निवासियों को सफेद उदरकृमि (बूकाबू), रक्तकृमि (बू-मारपो), गण्डमाला (ववा-के), उदरविकार (फानासे), कास (लोचुमतवो) क्षय (टी.वी.), आमवात (टूम्वो), शोथ (फेकेंच), अर्श (मस्सा) आदि रोग सामान्य रूप से है।

9. इस क्षेत्र में बसने वाले लोग अपनी चिकित्सा प्राकृतिक खनिजों से मिश्रित जल एवं उष्ण स्रोतों (हाट सलफर स्प्रिंग) वाले स्थानों में एक माह/पन्द्रह दिनों तक ठहर के स्नान करते हैं तथा रक्तविकार, उदरविकार, शोथ आदि रोगों से मुक्त होते हैं।

10. वन्य जन्तुओं में कस्तूरी, लालभालू, स्नोलेपर्ड, हिमालयन पांडा, जंगली याक, जंगली कुत्ते (वन कुकुर) एवं रंग-बिरंगे किस्मो की तितलियां तथा कई किस्म के हिमालय क्षेत्र में मिलने वाले पक्षीगण मिलते हैं।

# आयुर्वेद का दीप्तिमान सूर्य अस्त हो गया

## दिवंगत दुर्गा बाबू के कर्ममय जीवन पर वक्ताओं द्वारा प्रकाश

### देश-विदेश में शोक सभाएँ एवं श्रद्धाञ्जलि-अर्पण

[ कार्यालय समीक्षक द्वारा ]

दिनांक 25 अप्रैल। लगभग 10-30 बजे रहे होंगे। अचानक एक कर्मचारी ने हमारे विभाग में आकर कहा, "साहब, अब इस दुनिया में नहीं रहे।" हमलोग यह सुनते ही हतप्रभ हो गये। इस समाचार पर विश्वास नहीं हो रहा था। समाचार की सत्यता के बारे में पता लगाने के लिए मैनेजर साहब के दफ्तर की ओर हमलोग दौड़ पड़े। तबतक यह समाचार बिजली की तरह कारखाने के सभी विभागों में पहुंच चुका था। सभी कर्मचारी मैनेजर साहब के दफ्तर की ओर जा रहे थे। उनके दफ्तर में बहुत लोग थे। सभी गुमसुम। चेहरे पर गम की छाया। किसी को भी नियति के इस क्रूर विधान पर विश्वास नहीं हो रहा था। सभी का ध्यान मैनेजर साहब की ओर; और उनका ध्यान टेलीफोन के चोगे की ओर। कई लाइनों पर लाइटनिंग काल इलाहाबाद के लिए बुक कराया गया था। किन्तु टेलीफोन का यंत्र हमलोगों की पीड़ा को शायद नहीं समझ रहा था। अन्त में मैंने साहस करके पूछा—आपको कैसे पता चला कि साहब अब इस दुनिया में नहीं रहे। मैनेजर साहब ने बताया कि इलाहाबाद जी. आर. पी. को उनका मृत शरीर स्टेशन पर मिला है। उनके पास सीता वर्ल्ड ट्रैवल्स का कार्ड मिला है। पुलिस ने उसी कार्ड पर अंकित टेलीफोन नम्बर पर सूचना दी है। सीता ट्रैवेल्स वालों ने दुर्गा बाबू की बड़ी लड़की, किरणजी, जो दिल्ली में रहती हैं, उनको सूचना दी। और किरणजी ने अभी-अभी टेलीफोन पर बताया है। समाचार का माध्यम ऐसा था कि अविश्वास भी नहीं किया जा सकता था। अविश्वास का एक ही कारण था। और वह कारण यह था कि दुर्गा बाबू पूर्ण स्वस्थ थे। उनमें काम के प्रति अपूर्व लगन थी एवं जिन्दगी के हर क्षेत्र में उन्होंने असीम साहस का परिचय दिया था। शायद वे रवि बाबू की "एकला चल रे" कविता से प्रभावित थे। इसीलिए तो वे अकेले विश्व में आयुर्वेद का झण्डा फहराने के लिए निकल पड़े थे। उनका विश्वास था कि आयुर्वेद ही एक ऐसा चिकित्सा-शास्त्र है जो पूर्ण चिकित्सा-शास्त्र है और इस शास्त्र के द्वारा ही विश्व के पीड़ित मानवों को व्याधियों से मुक्त किया जा सकता है। उनका उद्देश्य शाश्वत था। ठीक राजा महेन्द्र एवं संघमत्रा की तरह। उनकी कार्य-शक्ति विलक्षण थी। ऐसा हमलोगों को विश्वास था कि मुगल साम्राज्य से लेकर ब्रिटिश साम्राज्य तक उपेक्षित आयुर्वेद को पुनः एक बार अपनी प्राचीन गरिमामय पद दिलाकर ही वे अपना नश्वर शरीर छोड़ेंगे। यही कारण था कि इस अप्रत्याशित घटना पर किसी को विश्वास नहीं हो रहा था।

लगभग 11 बजे इलाहाबाद से लाइन मिली। दुर्गा बाबू के अनुज रामावतार बाबू से मैनेजर साहब ने बात की। इलाहाबाद में प्रतिष्ठान के निदेशक-मंडल की बैठक होने वाली थी। वहां पर लगभग सभी निदेशक उपस्थित थे। दुर्गा बाबू भी दिल्ली एक्सप्रेस से बैठक में सम्मिलित होने के लिए आ रहे थे। यह दुखद समाचार उन लोगों को मालूम नहीं था। मालूम होते ही दुखकी घटा छा गयी। वे लोग इलाहाबाद स्टेशन दौड़ पड़े। उनलोगों ने लगभग 12 बजे टेलीफोन किया कि उनका मृत शरीर इलाहाबाद स्टेशन पर नहीं बल्कि कानपुर स्टेशन पर पाया गया है। वहां शव का अन्त्य-परीक्षण (पोस्ट मार्टम) हो रहा है। वे लोग शव के साथ आसाम मेल से पटना आयेंगे। बाद में कानपुर में स्व० दुर्गा बाबू के बहनोई श्री मोरोलिया जी एवं कानपुर जी० आर० पी० से भी इस दुखद समाचार की पुष्टि

हुई। पुष्टि होते ही स्व० दुर्गा बाबू के परिवार के सभी सदस्य, प्रतिष्ठान के समस्त कर्मचारी एवं हितैषी शोकाकुल हो गये। प्रतिष्ठान तत्काल बन्द कर दिया गया। सभी काम-काज सहसा ठप हो गए।

स्व० दुर्गा बाबू के एकमात्र पुत्र श्री प्रमोदकुमार शर्मा उसी दिन दिल्ली एक्सप्रेस से निदेशक-मंडल की बैठक में सम्मिलित होने के लिए इलाहाबाद जा रहे थे। उन्हें बनारस स्थित आयुर्वेद के एजेंट ने मुगलसराय में यह दुखद समाचार सुनाया। वे तत्काल दूसरी गाड़ी से पटना वापस चले आये।

प्राप्त जानकारी के अनुसार पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा दिल्ली से, दिल्ली एक्सप्रेस द्वारा दिनांक 24 अप्रैल, 1979 को लगभग 11 बजे रात्रि में रवाना हुए। उन्हें इलाहाबाद में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के निदेशक-मंडल की बैठक में भाग लेना था। अलीगढ़ के पास शौचालय से निकलते समय गिर जाने से उनका सिर फट गया। सह-यात्रियों ने सहारा देकर उन्हें उठाया, किन्तु तत्काल कोई उपचार नहीं किया जा सका। इटावा स्टेशन पर डाक्टरों से उपचार करवाया गया; उसके बाद जब कानपुर स्टेशन पर डाक्टरों को दिखाया गया तो डाक्टरों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया। पोस्ट मार्टम रिपोर्ट के अनुसार उनका प्राणान्त अचानक हृदयगति अवरूद्ध हो जाने के कारण हुआ है।

3 बजे सुबह आसाम मेल से उनका शव पटना लाया गया। पटना जं० रेलवे स्टेशन पर उनके अंतिम दर्शनार्थ हजारों व्यक्ति उपस्थित थे। उनके परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त बिहार के भूतपूर्व मुख्य मंत्री श्री केदार पाण्डेय, बिहार चेम्बर ऑफ कामर्स के अध्यक्ष एवं पटना के मेयर श्री के० एन० सहाय, प्रतिष्ठान के पदाधिकारीगण एवं कर्मचारीगण तथा अन्य हजारों परिचित उपस्थित थे। शव को देखते ही सभी लोग रो पड़े। उनके मित्र श्री बलराम दूबे तो उनके मृत शरीर को हृदय से चिपकाकर कई मिनट तक रोते रहे। स्टेशन पर बड़ा हृदय विदारक एवं कारूणिक दृश्य उपस्थित हो गया था। उनका शरीर बर्फ से ढका हुआ था। स्टेशन से शव बैद्यनाथ प्रतिष्ठान लाया गया। सुबह होते ही मुहल्ले के लोगों, पटना के सम्भ्रान्त नागरिकों, प्रतिष्ठान के समस्त कर्मचारियों ने पुष्पांजलि अर्पित की। उनके शव को देखने एवं अन्तिम श्रद्धांजलि देने के लिए तांता-सा लगा हुआ था। भीड़ समाप्त नहीं हो रही थी।

पंडित दुर्गा प्रसाद शर्मा के असामयिक निधन का समाचार मिलते ही जयपुर में उनके परिवार के सदस्यगण शोक-विह्वल हो गये। उनके ज्येष्ठ भ्राता श्री हजारीलाल शर्मा अपनी पत्नी, एक पुत्र श्री राजेश शर्मा के साथ उनके अंतिम संस्कार में सम्मिलित होने के लिए विमान द्वारा दिल्ली होते हुए पटना दिनांक 26 अप्रैल को प्रातः 9 बजे पहुंचे।

दिनांक 26 अप्रैल को, लगभग 10.30 बजे शव यात्रा बैद्यनाथ भवन, चिरैयाटांड से प्रारम्भ हुई। पुष्पमालाओं एवं अगरबत्ती से सुगन्धित अर्थी के पीछे-पीछे हजारों लोग 'राम-नाम सत्य है' कहते हुए ग्रीष्म की तपती सड़कों पर चल पड़े।

शव-यात्रा में प्रतिष्ठान के प्रबन्ध-निदेशक एवं स्व० शर्मा जी के पूज्य-पितृव्य श्री रामनारायण शर्मा, अग्रज श्री हजारीलाल शर्मा एवं अनुजगण सर्वश्री बनवारी लाल शर्मा, श्री रामावतार शर्मा, श्री रमाकान्त शर्मा, श्री रामकृष्ण शर्मा, श्री बृजेन्द्र कुमार शर्मा, श्री विश्वनाथ शर्मा, श्री सुरेश कुमार शर्मा, भतीजा श्री राजेश शर्मा एवं पुत्र श्री प्रमोद कुमार शर्मा के अलावा प्रतिष्ठान के व्यवस्थापक श्री माहेश्वर मिश्र, 'सचित्र आयुर्वेद' के सम्पादक श्रीकान्त शास्त्री, बैद्यनाथ के कलकत्ता निर्माण-केन्द्र के व्यवस्थापक वैद्य वेणी प्रसाद शर्मा, जनवाणी प्रिन्टर्स के प्रबन्धक श्री रामजी शर्मा, बैद्यनाथ प्रतिष्ठान, पटना के सभी पदाधिकारी एवं कर्मचारीगण, पटना के मेयर श्री के० एन० सहाय, माधो मिल्स के मालिक श्री नटवर लाल काबरा, भूतपूर्व संसद सदस्य श्री रामावतार शास्त्री एवं वाल्मीकि चौधरी, भू० पूर्व मुख्यमंत्री श्री केदार पांडेय एवं दारोगा प्रसाद राय, 'सर्चलाइट' के एडवाजर, श्री राजेन्द्र शर्मा, ठाकुर कम्पनी के श्री रामेश्वर ठाकुर, आकाशवाणी, पटना के श्री सत्यदेव नारायण अष्ठाना, इण्डियननेशन, आर्यावर्त्त के विज्ञापन मैनेजर श्री गिरीन्द्र मोहन भट्ट, कविवर रामदयाल पांडेय, पटना नगर के लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार, साहित्यकार, समाजसेवी, उद्योगपति एवं अन्य हजारों व्यक्ति शामिल थे। शव-यात्रा में लोगों की संख्या को देखकर ही अनुमान

लगाया जा सकता था कि स्व० दुर्गा बाबू का प्रवेश पटना के जन-जीवन में कितना गहरा था। सभी दैनिक पत्रों एवं आकाशवाणी के सम्वाददाता श्री अन्त्येष्टि में शामिल थे। पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा के एकमात्र पुत्र श्री प्रमोद कुमार शर्मा ने दाह-संस्कार सम्पन्न किया।

दिनांक 7 मई, 1979 को उनका श्राद्ध-कार्य अत्यन्त साधारण ढंग से सम्पन्न किया गया। इस बीच उनकी आत्मा की शांति के लिए रामायण, गीता एवं गरुड़ पुराण का पाठ प्रतिदिन विद्वान विप्रों द्वारा होता रहा। हजारों की संख्या में दरिद्रनारायण को भोजन कराया गया।

+ ✤ +

## शोक सभाएं तथा श्रद्धांजलि-अर्पण

**बैद्यनाथ प्रतिष्ठान, पटना में शोक सभा**

दिनांक 25 अप्रैल, 1979 को दुर्गा बाबू के असामयिक निधन की पुष्टि होते ही लगभग 1 बजे दिन में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन मजदूर यूनियन के तत्वावधान में कर्मचारियों की एक शोक सभा हुई। सभा की अध्यक्षता श्री सरयू प्रसाद पाण्डेय ने की। यूनियन के प्रधान सचिव श्री विमलचन्द्र झा ने प्रस्ताव पेश किया। समस्त कर्मचारियों ने दो मिनट मौन रह कर दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की।

दिनांक 27 अप्रैल, 1979 को प्रतिष्ठान में समस्त पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों की एक शोक सभा हुई। उसमें प्रतिष्ठान के प्रबन्ध-निदेशक एवं स्व० दुर्गा बाबू के चाचा श्री रामनारायण शर्मा एवं अग्रज श्री हजारी लाल शर्मा एवं अनुज श्री रमाकान्त शर्मा भी शामिल हुए। प्रतिष्ठान के प्रबन्धक श्री महेश्वर मिश्र ने शोक सभा की अध्यक्षता की एवं "सचित्र आयुर्वेद" के सम्पादक श्री श्रीकान्त शास्त्री ने शोक प्रस्ताव पेश किया। श्री शास्त्रीजी ने स्व० दुर्गा बाबू का पुण्य स्मरण करते हुए दो शब्द कहे। खासकर उनका यह कहना अत्यन्त मार्मिक था कि इसी जगह पर स्व० दुर्गा बाबू हम लोगों को देश-विदेश की कथा सुनाया करते थे और इसी स्थान पर आज हम उनकी शोक-सभा के लिए एकत्रित हुए हैं। सभी उपस्थित लोगों ने दो मिनट मौन रह कर दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की।

**पटना की अन्य सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं में शोक सभा**

**बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन**

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भवन में दिनांक 27 अप्रैल 1979 को बिहार हिन्दी प्रगति समिति के अध्यक्ष कविवर श्री रामदयाल पाण्डेय की अध्यक्षता में एक शोक सभा हुई। सर्वश्री किशोरी प्रसन्न सिंह, श्री श्रीकांत शास्त्री, सम्मेलन के महामंत्री प्रो० केसरी एवं प्रो० सीताराम दीन ने उनके गुणों पर प्रकाश डाला एवं श्रद्धांजलि अर्पित की।

**बिहार चेम्बर्स आफ कामर्स**

बिहार चेम्बर आफ कामर्स में श्री श्री के० एन० सहाय की अध्यक्षता में एक शोक सभा हुयी जिसमें एक शोक प्रस्ताव पारित किया गया।

**इण्डियन फर्मास्युटिकल एसोसिएशन**

बिहार ड्रग्स एण्ड फर्मास्यूटिकल मैनुफैक्चर्स एसोसियेशन, पटना एवं इण्डियन फर्मास्यूटिकल एसोसियेशन की बिहार शाखा के दफ्तर में एक शोक सभा हुयी, जिसमें एक शोक प्रस्ताव पारित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री एस० लश्कर, श्री आर० के० गुप्ता, श्री बी० गुहा ठाकुरता, श्री सी० घोरावत, श्री ए० के० राव एवं अन्य लोगों ने संवेदना प्रकट की।

**बिहार पेपर मर्चेन्ट्स एसोसिएशन**

बिहार पेपर मर्चेण्ट्स एसोसियेशन की ओर से श्री के० सी० भार्गव की अध्यक्षता में एक शोक सभा हुई। राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, पटना, बिहार इण्डस्ट्रीज एसोसियेशन पटना, इन्टीग्रेटेड मेडिकल सोसाइटी, पटना, लायन्स क्लब ऑफ पटना, स्वामी विवेकानन्द सेवाश्रम, बिहार सर्वाङ्गीण विकास संस्थान, पटना नगर वैद्य सम्मेलन, देशबन्धु आयुर्वेद भवन, पटना, पटनासिटी प्रज्ञा परिषद्, साम्प्रदायिकता विरोधी सभा, पटना एवं संजीवन समाज, पटना में शोक सभाएं आयोजित की गयी थीं। वक्ताओं ने स्व० दुर्गा बाबू के मानवीय गुणों का साश्रुनयन उल्लेख करते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

**बिहार के अन्य स्थानों में शोक सभाएं**

दि गया माहुरी ट्रेडिंग कम्पनी, गया, राजगीर योग संस्थान, एवं स्वा. केन्द्र, राजगीर दयानन्द आयुर्वेद महा-

विद्यालय, गोपालगंज, जिला—' वैद्य समेलन, गोपालगंज, अनिरुद्ध प्रसाद एण्ड सन्स, सीवान, श्री विश्वशान्ति औषधालय गया, सारण जिला वैद्य सम्मेलन, विश्व संस्कृति संगम नालन्दा, अरुण केमिकल इन्डस्ट्रीज प्रा०लि० सुल्तानगंज, मुंगेर चेम्बर आफ कामर्स, मुंगेर, अष्टांग आयुर्वेद चिकित्सा महाविद्यालय, भागलपुर, दक्षिण पटना स्नातक संघ, नेशनल इन्टीग्रेटेड मेडिसीन, बेगूसराय, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन ईशीपुर, भागलपुर, ब्राह्मण संघ, गिरीडीह, अखिल भारतीय सामाजिक स्वास्थ्य संघ, पटना, बरौनी प्रखण्ड (गोपालगंज) के वैद्यों की सभा, राजगृह बुद्ध विहार सोसाइटी एवं पाटलीपुत्र नागरिक सांस्कृतिक केन्द्र, पटना, विप्लव, पटना, राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सा परिषद, पटना, सर्वे आफ मेडिसीनल प्लान्ट्स यूनिट पटना, राजकीय अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय बेगूसराय, योगायुर्वेद शोध संस्थान गया, चन्द्रमोहन दोपनारायण, हवेली खड़गपुर, इण्डियन फर्मास्यूटिकल एशोसियेशन, बेगूसराय, पटना नगर (जिला) वैद्य मण्डल (सम्मेलन), पटना सिटी एवं दरभंगा डिवीजनल चेम्बर आफ कामर्स, दरभंगा में शोक सभायें आयोजित की गयी और दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजली दी गयी।

### पश्चिम बंगाल में शोक सभाएं

जनवाणी प्रेस, कलकत्ता, नागरिक स्वास्थ्य संघ, शिवशक्ति सेवा-समिति, हरियाणा नागरिक संघ, हरियाणा छात्र परिषद्, आयुर्वेद विज्ञान परिषद्, अ०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन' आयुर्वेदीय परिषद, अपर इन्डिया एशोसियन, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन कलकत्ता, हिन्दी नाट्य परिषद, राजस्थान ब्राह्मण संघ, मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी, श्री काशी विश्वनाथ सेवा-समिति, श्री विश्वनाथ सेवा-समिति, श्री दाधीच परिषद, श्री फतहपुर ब्राह्मण पंचायत, श्री मण्डल विप्र सभा, रामगढ़, ब्राह्मण सभा, कलकत्ता विद्वत, परिषद, मारवाड़ी ब्राह्मण सभा, कलकत्ता मारवाड़ी' सम्मेलन, युग निर्माण-योजना एवं विशुदधानन्द दातव्य औषधालम में सभायें आयोजित की गयीं। संयोजक धन्वन्तरि परिषद, कलकत्ता था।

### उ० प्र० में शोक सभाएं

#### काशी हिन्दू विश्वविद्यालय शोकमग्न

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान, एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद संकाय के सभी अध्यापकों, छात्रों एवं कर्मचारियों की एक शोक-सभा श्री लक्ष्मीशंकर विश्वनाथ गुरू की अध्यक्षता में हुई।

#### बैद्यनाथ के नैनी केन्द्र में सभा

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि0, नैनी के कर्मचारियों की एक शोक सभा हुई। गुप्ता आयुर्वेदिक फार्मेसी राठ, हमीरपुर, राधा औषधालय, वाराणसी, राजस्थान ब्राह्मण सेवा समिति, गोरखपुर, अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय, लखनऊ, जिला आयुर्वेद सम्मेलन, मुरादाबाद, कम्पाउन्डर संघ-मीरजापुर, राजस्थान ब्राह्मण सेवा समिति, मीरजापुर, जिला वैद्य सम्मेलन, सुल्तानपुर, श्री धान्वन्तरीय प्रतिष्ठान, गोरखपुर, भारतीय चिकित्सा संगठन, वाराणसी, एवं आरोग्य आयुर्वेद विद्यालय एवं चिकित्सालय, फैजाबाद में शोक सभाएं हुयीं।

### दिल्ली में शोक सभाएं

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली आनन्द औषधालय, दिल्ली, भारतीय चिकित्सा-पद्धति एवं होम्योपैथी की केन्द्रीय चिकित्सा परिषद्, दिल्ली, इन्द्र प्रस्थीय वैद्य सभा, दिल्ली।

### राजस्थान में शोक सभाएं

राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर, राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्, सीकर, इण्डोफ्लेक्स, जयपुर, दैनिक राष्ट्रदूत, जयपुर, श्री स्वामी लक्ष्मीराम चिकित्सालय, जयपुर, श्री गौड़ विप्र माध्यमिक विद्यालय, जयपुर, राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्, सीकर।

### मध्यप्रदेश में शोक सभाएं

वैद्य हकीम परिषद्, दतिया, श्री वृज आयुर्वेदिक औषधालय, बैतूल (म०प्र0)।

### महाराष्ट्र में शोक सभाएं

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि0, नागपुर के तत्वावधान में समस्त कर्मचारियों की एक सभा। झण्डू वक्र्स फर्मास्यूटिकल लि0 बम्बई, बम्बई वैद्य सभा बम्बई।

### आंध्र प्रदेश

डा0 नोरीराम शास्त्री राजकीय-कालेज, विजयवाड़ा।

**आसाम**

राजकीय आयुर्वेदिक कालेज गोहाटी, श्री एस0 भट्टाचार्य, प्राचार्य।

X X X

देश के विभिन्न स्थानों में हुई शोक सभाओं के अतिरिक्त देश के राजनेताओं, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, विद्वानों एवं धर्मगुरुओं ने पत्र या तार भेज कर अपनी संवेदनाएं प्रकट की हैं। उनमें से निम्नांकित प्रमुख हैं:—

भारत के उप प्रधान मंत्री एवं प्रतिरक्षा मंत्री, श्री जगजीवन राम, पेट्रोलियम, रसायन तथा उर्वरक मंत्री, भारत सरकार, श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा, श्री राम सुन्दर दास, मुख्य मंत्री, बिहार सरकार, श्री कैलाशपति मिश्र, वित्त मंत्री बिहार सरकार एवं बिहार के भूतपूर्व मुख्य मंत्री सर्वश्री केदार पाण्डेय, दारोगा राय एवं डा० जगन्नाथ मिश्र, श्री रामानन्द तिवारी, संसद-सदस्य, बिहार, श्री महामाया प्रसाद सिन्हा, संसद-सदस्य, श्री धर्मदत्त वैद्य, विधायक (उ.प्र.), श्री एस० वी० सोहोनी, भूतपूर्व लोकायुक्त, बिहार, श्री प्रियव्रत शर्मा, अध्यक्ष, द्रव्यगुण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, डा० ज्योति मित्र, रीडर, मौलिक सिद्धान्त विभाग, डा० पी० जे० देशपाण्डे, अध्यक्ष, शल्य-शालाक्य, प्रोफेसर राम सुशील सिंह, द्रव्यगुण विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, श्री गोविन्द प्रसाद वैद्य; अध्यक्ष, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, श्री श्रीकृष्ण मुलतानी, प्रधान मंत्री, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, डा० तेज बहादुर चौधरी, नवागढ़ (उ प्र.), डा० पी० डी० जोपट, हैदराबाद, पं० इन्द्रदत्त त्रिपाठी, वाराणसी, डा० वाई० कोण्डल राव, मद्रास, श्री रामदयाल पाण्डेय, अध्यक्ष, हिन्दी-प्रगति-समिति, बिहार, कविवर हंस कुमार तिवारी, भूतपूर्व अध्यक्ष, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, स्वामी हरिनारायणानन्द, कुलपति, बिहार सांस्कृतिक विद्यापीठ, कोसाला विक्रमनायके, टोकियो (जापान), डा० पी०एन०वी० कुरूप, केंद्रीय आयुर्वेद-यूनानी, परामर्शदाता, केंद्रीय आयुर्वेदीय एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् दिल्ली, पं० विष्णुकान्त झा, पटना, वैद्य जीवन राम सहल, चिड़ावा (राज), वैद्य हनुमान प्रसाद शर्मा, फुलेरा सुन्दरेश एण्ड पारब, कोजिमा किवीमासेली (टोकियो), श्री शोभाकान्त दास, मद्रास श्री कीर्तिपाल शर्मा, मथुरा, सुख संचारक कम्पनी मथुरा, श्रीमती सरला सोब्रन, दिल्ली, श्री सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, लखनऊ, श्री गुनसेना (श्रीलंका), श्री किशोर शर्मा, इन्दौर, डा० बगारहत्ता, जयपुर, श्री गैर सिंह शेखावत, जयपुर, अन्नू बांका, श्री रिधकरण ढांढ, बम्बई, वैद्य रामगोपाल शर्मा एवं वैद्य श्रीराम शर्मा, बम्बई, श्री ज्ञानचन्द जैन, चाईबासा, श्री रघुवर दयाल, बुलन्द शहर, श्री प्रकाश मरोलिया, कानपुर, श्री वेणी शंकर शर्मा, भूतपूर्व संसद-सदस्य कलकत्ता, श्री के० एन० सारस्वत, कलकत्ता, श्री सीताराम रूंगटा, चायबासा, श्री विश्वपति शर्मा, बम्बई, श्री जगदीश शर्मा, नयी दिल्ली, डा० एल० डी० कपूर, लखनऊ, स्वामी सीताराम शरण डालमिया नगर, रतनचन्द अशोक चन्द बर्मन, निदेशक एवं स्टाफ, डाबर (कलकत्ता), श्री एम० पी० वशिष्ठ, बम्बई, श्री अम्बिकादत्त, बम्बई, श्री प्रह्लाद जोशी, बम्बई, कौशलया वैद्य, नयी दिल्ली, श्री हनुमान पेरीवाल, नयी दिल्ली, श्री गणेशदत्त शंकरदत्त, इलाहाबाद, श्री अजीत खत्री, कलकत्ता, श्री प्रेमलाल, अमृतसर, श्री ग्रामीण लाल, लालसोंट (जयपुर), श्री ए.सी. अग्रवाल, हिन्डालको श्री जिन रुहा, हिरोशिमा (जापान), श्री होरी उही (जापान), श्री प्रकाश शर्मा, पेटाईङ्ग जया. निहाल विक्रमनायके कोसाला एजेन्सीज कोलम्बो, श्रीकृष्णलाल मत्ता, थाईलैंड, विलियम अभविस, श्रीलंका 'श्री एस०' जयसिंघे, श्रीलंका, कविराज विद्यानारायण शास्त्री, ईशीपुर, भागलपुर, डा० कृष्णचन्द्र पिंडावाला, उज्जैन, वैद्यराज पं० जगदीश प्रसाद शर्मा, नयी दिल्ली, डा० मायाराम उनियाल, झांसी, नारूला उद्योग लि० दिल्ली, श्री बी० के० गुहा ठाकुरता, हिस्दुस्तान ग्लास एण्ड इण्डस्ट्रीज लि० कलकत्ता, श्री चन्द्रमौलि मिश्र, भभुआ, निजी सचिव, महारानी हथुआ, श्री मुरलीधर सारस्वत, चुरू, वैद्य राम सहाय वर्मा, फीरोजाबाद, श्री वेंकट लाल ओझा, हैदराबाद, श्री पुरुषोत्तम मंत्री, राजस्व एवं देवस्थान विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर, पं० शिव शर्मा, बम्बई डा० लोकेशचंद्र, संसद-सदस्य, आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी, हाथरस, श्री के० बी० एन० सिंह, कार्यकारी राज्यपाल, बिहार, श्री पुरुषोत्तम कौशिक, पर्यटन और नागर विमानन मंत्री, भारत सरकार, नयी दिल्ली, श्री आर० एस० पाण्डेय पटना, डा० एन० हनुमन्त राव,

विजयवाडा, श्री भोला पासवान शास्त्री, संसद - सदस्य एवं अध्यक्ष, अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित आदिम जाति आयोग, दिल्ली, श्री सतीशचन्द्र अग्रवाल, राज्य वित्त मंत्री, भारत सरकार, नयी दिल्ली, श्री जगदम्बी प्रसाद यादव, उद्योग राज्य मंत्री, भारत सरकार, नयी दिल्ली, श्री द्वारकानाथ तिवारी, संसद सदस्य, श्री राजेद्र अवस्थी, सं० कादम्बिनी, नयी दिल्ली, श्री गया प्रसाद सिंह, कुलपति, भागलपुर विश्वविद्यालय, प्रो० श्री रंजन सूरिदेव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, कवि० श्री हरदयाल, नई दिल्ली, कवि० जी० एल० चानना नई दिल्ली, श्री ताराशंकर वैद्य, वाराणसी, श्री बदलूराम रसिक, लखनऊ, श्री द्वारिका मिश्र, ओड़ो (नवादा)।

इसके अलावा सैकड़ों पत्र एवं तार प्रतिदिन आ रहे हैं। स्व० दुर्गा बाबू के प्रति इतने लोगों के दिलों में श्रद्धा देखकर उनके वियोग को सहने की शक्ति प्राप्त होती है। धन्य हैं ऐसे महापुरुष, जो अपने पीछे इतने लोगों को रोते हुए छोड़कर चले जाते हैं। मृत्यु तो अनिवार्य है। इसकी अनिवार्यता देखकर एवं गीता में कहे गये इस श्लोक को पढ़कर कुछ शान्ति मिलती है :

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्माद परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥
(1/27)

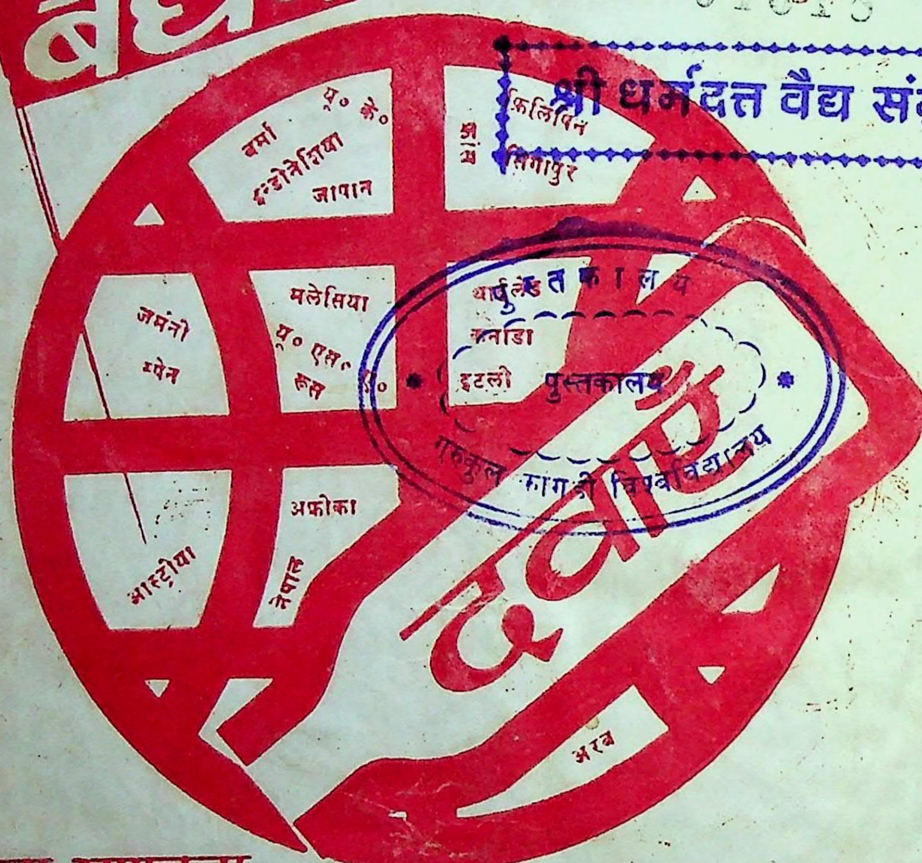
अर्थात् जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु सुनिश्चित है और जो मर चुका है, उसका जन्म लेना भी सुनिश्चित हैं। इसलिए जिससे बचा नहीं जा सकता, उसके लिए शोक नहीं करना चाहिए।

# 'सचित्र आयुर्वेद' में प्रकाशित जुलाई '७८ से जून '७९ तक के लेखों की वार्षिक विषय-सूची

फोन- 53647
53592
53048

TELEX : 22-316 SBAR—

सदैव व्यवहार करें






शुद्धता, गुणवत्ता, स्वास्थ्य एवं शक्ति के लि




देशी दवाओं के
सबसे बड़ा
निर्माता एवं निर्यात

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटे
कलकत्ता. पटना. झांसी. नागपुर. नैनी (इलाहाबाद)



सर्वाधिकारी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की ओर से श्रीकान्त शास्त्री द्वारा शिवशक्ति प्रेस, लोदी

